☞ सुचना ☜

पाठगणो ! इस ग्रन्थ का पठन श्रवन करते किसीभी प्रक
का संशय समुत्पन्न होवे तो उसका खुलासा इस ग्रन्थ के कर्ता
कीजीये प्रसिद्ध कर्ता तो गुणदोष विषय जुम्मे दार नहीं है.

प्रसिद्ध कर्ता.

अर्पण पत्र

कच्छ देश पावन कर्ता, आठकोटी मोटी पक्ष सम्प्रदायके परमाचार्य पुज्यपाद श्री कर्म सिंहजी महाराज के शिष्यवर्य-प्रवर पण्डित-कवीवरेंन्द्र आत्मार्थी मुनिराजश्री नागचन्द्रजी,

मैं

स्वप्नमेभी

नहीं जानताथा

कि—इस जन्म में

" परमात्म मार्ग दर्शक "

ग्रन्थ मेरे हाथसे लिखा जायगा.

आदी में आपकी प्रेरना सेही

यह ग्रन्थ लिखने को

शक्ति वान हुवा, जिससे

यह ग्रन्थ आपही को

समर्पण कर के

कृतज्ञता हुइ

समजता

हूं

इस हेतुसे कि—आपके और मेरे शुद्ध-परमार्थिक प्रेम में प्रति दिन वृद्धी होवो !

गुणानुरागी—अमोलख ऋषि.

☞ सुचना ☜

पाठगणो ! इस ग्रन्थ का पठन श्रवन करते किसीभी ग
का संशय समुत्पन्न होवे तो उसका खुलासा इस ग्रन्थ के कर्ता
कीजीये प्रसिद्ध कर्ता तो गुणदोष विषय जुम्मे दार नहीं है.

प्रसिद्ध कर्ता.

सुनिवर्य ? जेम छेदित वृक्ष जल सिंचन थी पुनः पलवित थायछे तेम आपना सद्बोध थी म्हरो उत्सहा सर जीवन थयो छे, अने हवे केटलाक दिवस मनन करी आपनी आज्ञानुसार ग्रन्थ लखी, शुद्धी वृद्धी अर्थे आपनीं सेवामां ते ग्रन्थ मोकळवा आसेवक आतुरछे जी

दास-अमोल ना नमस्कार.

और फाल्गुन शुक्ल प्रती पदा (१) को ग्रन्थ लिखना प्रारंभ किया नवीन ग्रन्थ रचना शुरू किया जान लालाराम नारायणजी के सु-पुत्र लालासुख देव सहाय जी ने महाराज श्री से नम्र अर्ज करी कि 'इस ग्रन्थ की अमूल्य भेट श्री संघको करने का लाभका भागी मुझे बनानेकी कृपा किजीये !' अर्थात् इसको प्रसिद्ध करने में जो कुछ खरच लगेगा सो में देवूंगा ! यह ज्ञान वृद्धिकी शोकीनता देख ग्रन्थको उत्तम बनाने महाराज श्री का अधिक उत्सहा बढा. आषाढ शुक्ल पंचमी को बीसो ही प्रकरण का लेख समाप्त कर. पुनः शुद्धा वृती लिखनी शुरू करी. और नव प्रकरण लिखाये बाद कच्छी मुनि श्री की सेवामें भेजे, और फिर संपूर्ण ग्रंथ लिखाये बाद रहा भाग भेजा. जिससे शुद्धी वृद्धी कर अनेक सुचना के साथ ग्रन्थ और पत्र आया जिसकी नकलः—

श्रावण सुदी १३ सोम. कच्छ—कुनी.

विद्या विलासी, बाल ब्रह्मचारी. पण्डित प्रवर. कुलकुन्द ति-लक, महाशय, श्री नान श्री अमोलख ऋषिजी नी पवित्र सेवामां—

हैद्राबाद मा कमान.

अत्रस्थ विराजता मुनिपुंगव [illegible] मुनि [illegible] मातानां प्रभावे आनंद मां वर्ते छे. आप [illegible] [illegible] वना नमस्कार सुख शांती पूर्वक छे. ते [illegible] [illegible].

केम फरहर से ? त्यारे आपणा धर्मनी थाती अधोगति केम अटकसे त्यारे अपणा धर्म नी झानु झलाली केम चलकसे ? माटे हे वीर पुत्र वीर तत्व राखो ! !

काम करनारने जक्त जनो कोइ वखाणे, तो कोइ विघ्न संतोषी जनो वगोवसे. तेथी काम करणार ने डरी न जवु, आप श्री ने तो उदार चितना थइ नीचेना पदपर हमेश लक्ष राखवोः—

" श्वान भसे, गजराज गणे नहीं " तेम ज्ञानी न गणे अज्ञानी गालों " वश एज पद वक्तो वक्त याद करवो.

दास—नाग चंद्रना नमस्कार.

☞ इस पत्रके पठन से यहां विराजते मुनि राज श्री का ज्ञान प्रसार का उत्सहा सर जीवन हुवा, और उत्तर दिया जिसकी नकल:

दक्षिण—हैद्राबाद—चार कमान.

" मनहर "

पूर्ण गुण कर भरे मुक्ति पंथ शुद्ध करे ।
ज्यगत् जीवों मे सिरे, नित्य शुद्धा चारी हैं ॥
करत प्रकाश धर्म, नाहिं रखते हैं भर्म ।
रमत संयमा श्रम, गणपत धारी है ॥
ममता मोह विडार, चंद्र से शीलता धार ।
सिंधू ज्यों गंभीर, दर्श सुखकारी है ॥
हरत राग रूद्वेष, जीवों की दया हमेश ।
जीनोको वंदना नित्य, कोट्यान हमारी है ॥ ❋

❋ इस छंद के दोनो पदों के पहिले २ बडे अक्षरों में दोनों मुनिराज के नाम कथा गये हैं.

मुनिवर्य ? जेम छेदित वृक्ष जल सिंचन थी पुनः पलवित थाय छे तेम आपना सद्बोध थी म्हरो उत्सहा सर जीवन थयो छे, अने हवे केटलाक दिवस मनन करी आपनी आज्ञानुसार ग्रन्थ लखी, शुद्धी वृद्धी अर्थे आपनीं सेवामां ते ग्रन्थ मोकलवा आसेवक आतुरछे जी

दास—असोल ना नमस्कार.

और फाल्गुन शुक्ल प्रती पदा (१) को ग्रन्थ लिखना प्रारंभ किया नवीन ग्रन्थ रचना शुरू किया जान लालाराम नारायणजी के सु-पुत्र लालासुख देव सहाय जी ने महाराज श्री से नम्र अर्ज करी कि 'इस ग्रन्थ की अमूल्य भेट श्री संघको करने का लाभका भागी मुझे बनानेकी कृपा किजीये !' अर्थात् इसको प्रसिद्ध करने में जो कुछ खरच लगेगा सो में देवूंगा ! यह ज्ञान वृद्धिकी शोकीनता देख ग्रन्थको उत्तम बनाने महाराज श्री का अधिक उत्सहा बढा. आषाढ शुक्ल पंचमी को वीसो ही प्रकरण का लेख समाप्त कर, पुनः शुद्धा वृती लिखनी शुरू करी. और नव प्रकरण लिखाये बाद कच्छी मुनि श्री की सेवामें भेजे. और फिर संपूर्ण ग्रंथ लिखाये बाद [illegible] भाग भेजा. जिससे शूद्धी वृद्धी कर अनेक सुचना के साथ ग्रन्थ और पत्र आया जिसकी नकल:—

श्रावण सुदी १३ सोम. कच्छ—[illegible].

विद्या विलासी, बाल ब्रह्मचारी. पण्डित प्रवर, मुनेन्द्र तिलक, महाशय, श्री सान श्री असोलख ऋषिजी नी पवित्र सेवमां—

हैद्राबाद [illegible].

अत्रस्थ विराजता मुनिपुंगव [illegible] मुनि [illegible] मातानां प्रभावे आनंद मां प्रवर्ते छे. [illegible] दना नमस्कार सुख शांती पूछे छे. ते [illegible].

कळता अत्रना मुनि मंडल ने सुज्ञ श्रावको पण उक्त ग्रन्थनी तारीफ करता में सांभल्या, "गुण सर्वत्र पूज्य ते" दरेक स्थले गुण पूजाय छे "विद्वान सर्वत्र पूज्यते."

यद्यापि पर्यंत उक्त विषयो पर कोइ महात्मा अे कलम कसी नथी, ते पहेल करवानो मान आपश्रीनेज घटेछे अने ते विषे करेल परिश्रम आपनो सफल थयेल छे ऐ पुस्तक प्रसिद्ध थयेथी जैन जैनोतर प्रजामां एकी अवाजे प्रसंसा पात्र थसे तेमां संशयनथी ! एहवा ग्रन्थों दरेक सम्प्रदाय वाला विद्वान मुनियों लक्ष पुर्वक वांचेस तो जरूर राग द्वेषनी प्रणती थों कमथाय. एहवा उत्तम पूस्तकनी आपणामां एक दरजननी जरूर छे.

वली आवा अनेक पुस्तको छपावी जन समुहने ते पूस्तकोने मफत वाचवानो लाभ मले एहवा हेतुथी मफत वेंचनार श्रावक महशयो ने पण धन्य वाद घटे छे.

आ जगत् मां ज्ञान दान समान अन्य कोइ उत्तम दान नथी, एम चौकस छे, छत्ता ए दान आपनार कोइ हजारों मां एकादज मली आवे छे, कदापि पैसा आपनार मली आवे, पण उत्तम प्रकारना ग्रन्थ रचनारतो लाखो मां पण एकाद नर रत्न मली आवेछे, त्यारे हैद्राबाद ना पुर्ण शुभाग्ये आप जेवा कवी रत्न श्रावको ने मल्याछे, अने आपने लालाजी जेवा उदार दिलना सखी ग्रस्थो मल्या छे, तमो बन्ने वडे दक्षिण हैद्राबाद पण प्रसिद्धी मां आवेल छे.

आवा उत्तम पुस्तक ने प्रगट करा वनार लालाजी ने कोट्यान धन्यवाद छे.

नाग चंद्रना जयजिनेन्द्र.

[illegible] पाठक गणो! ८१ वर्षकी वृद्ध वयको प्राप्त हुवे ६६ वर्षके संयमी नागें

तीर्थ के अधीपति श्री आचार्य महाराज (तीर्थंकर के पाट तक के) पदको प्राप्त हुवे पुक्त अनुभवीयों के खुद मुखार्विंद से इस ग्रन्थको इतना मान मिला है, तो हम सहर्ष खातरी पूर्वक कहेत हैं कि-यह ग्रन्थ यथा नामस्तथा गुणका कर्ता हो, सर्व मान्य बने, इस में कुछ आश्चर्य नहीं ! और इस ही हेतु से उन महात्मा ओं के हस्त पत्रों की अक्षारो अक्षर चूंटनी कर नकल इस में छपाइ गइ है, कि इस ग्रन्थ के जन्म का हेतु और श्री आचार्य जी महाराज तथा महा मुनिराज की तरफसे दर्शाये हुवे अभिप्राय को पढ कर पाठक गणो का मन इसका अत्यन्त पठन करने आकर्षाय, और संपुर्ण पठन कर सद्गु-णोका हृदयागार में संग्रह कर, परमात्म मार्गके प्रवृतक बन, परमात्म पदको प्राप्त कर, परमानन्दी परम सुखी बने !

[illegible] दु० हैद्राबाद.
[illegible] १०६९
[illegible] पूर्णिमा.

सुज्ञेषु किमधिकं,
गुणानुरागी;
लाला-सुख देव सहायजी ज्वालाप्रशाद.

इस ग्रंथके कर्त्ताका संक्षिप्त जीवन चरित्र.

मारवाड देशके मेडते शहरके रहीस, मंदरमार्गी वडे साथ ओसवाल काँसटीया गोतके, भाइ कस्तुरचंदजी व्यापार निमित्ते मालवाके आसटे ग्राममें आ रहेथे, उनका अकस्मात् आयुष्य पूर्ण होनेसे उनकीसुपत्नी जवारावाइने वैराग्य पाकर ४ पुत्रोंको छोड साधूमार्गी जैन पंथमें दीक्षा ली, और १८ वर्ष तक संयम पाला. मातापिता व पत्नी के वियोगकी उदासी से शेट केवलचंदजी भोपाल शहरमें अरहे, और पिताके धर्मानुसार मंदीमार्गीयोंके पंच प्रतिक्रमण, नव समरण, पूजा आदि कंठाग्र किये. उस वक्त श्री कुंवरजी ऋषिजी महाराज भोपाल पधारे, उनका व्याख्यान सुननेको भाइ फूलचंदजी धाडीवाल केवलचंदजीको जवरदस्तीसे ले गये. महाराज श्रीने सुयगडांगजी सूत्रके चतुर्थ उद्देशकी दशमी गाथाका अर्थ समझाया. जिससे उनको व्याख्यान प्रतिदिन सुननेयी इच्छा हुइ. शनैः शनैः प्रतिक्रमण. पच्चीस वोलका थोक इत्यादि अभ्यास करते २ दिक्षा लेनेका भाव हो गया. परंतू भोगावली कर्मके जोरसे उनके मित्रोंने जवरदस्तीसे हुलासावाइके साथ उनका लग्न कर दिया. दो पुत्रको छोड वो भी आयुष्य पूर्ण कर गइ. पुत्र पलानार्थ, सम्बन्धीयोंकी प्रेरणासे तीसरी वक्त व्याव करनेके लिये मारवाड जाते, रस्तेमें पूज्य श्री उदेसागरजी महाराजके दर्शन करनेको रतलाम उतरे, वहां वहुत शास्त्रके जाण, भर यूवानीमें सजोड शीलव्रत धारण करनेवाले भाइ कस्तूरचंजी लसोड केवलचंदजीको मिले. वो उनको कहने लगे कि, ' विषका प्याला सहज ही गिरगया, तो पुनः उसको भरनेको क्यों ते-

यार होते हो ?' यों कहते उनको पूज्य श्रीके पास ले गये. पूज्यश्रीने कहाः–' एक वक्त वैरागी बने थे, अब बनडे (वर) बननेको तैयार हुये क्या ?' इत्यादि बचनों सुण केवलचंदजी ब्रह्मचार्यव्रत धारण कर भोपाल गये. दिक्षा लेनेका विचार स्वजनोंको दर्शाया, परंतु आज्ञा नहीं मिलनेसे एक मास तक भिक्षाचारी कर आज्ञा संपादन करी, और संवत् १९४३ चेत सुदी ५ के रोज श्री पुनाऋषिजी महाराज के पास दिक्षा ले पूज्य श्री खुबाऋषिजी महाराज के शिष्य हूवे. और ज्ञान अभ्यास कर तपश्चर्या करनी सुरू करी. १,२,३,४,५,६,७,८,९,१०, ११,१२,१३,१४,१५, १६,१७, १८, १९,२०, २१,३०,३१,४१,५१,६१,६३, ७१,८१,८४,९१,१०१,१११,१२१, यह तपश्चर्या तो छाछ के आधारसे करी, और इसके सिवाय छः महीनेतक एकान्तर उपवास वगैरा बहुत तप किया. तथा पूर्व, पंज्जाब, मालवा, गुजरात् मेवाड, मारवाड,दक्षिण, वगैरा बहुत देश स्पर्शे.

श्री केवलचंदजी के ज्येष्ट पूत्र अमोलखचंद पिताकी साथ ही दिक्षा लेनेको तैयार हुवा, परंतू बालवयके सबबसे स्वजनोने आज्ञा नहीं दी, और मोसालमें पहुंचा दिया. एकदा कवीवर श्री तिलोकऋषिजी महाराज के पाटवी शिष्य पंडित श्री रत्नऋषिजी महाराज और तपस्वी श्री केवलऋषिजी महाराज इच्छावर ग्राम पधारे. वहांसे दो कोश खेडी ग्राममें मामाके यहां अमोलखचंद थे वो पिताके दर्शनार्थ आये. दर्शन से वैराग्य पुनः जागृत हुआ, और १० वर्ष जितनी छोटी वयमें दीक्षा धारण कर ली. (संवत् १९४४ फाल्गुण वदी २) श्री अमोलख ऋषि श्री केवलऋषिजी के शिष्य होने लगे, परंतू `` कहा कि मेरा अबी शिष्य करनेका इरादा नहीं है. तब पूज्य खुबाऋषिजी महाराज के पास ले गये, पूज्य श्रीने अमोलख ऋ-

पिजीको अपने ज्येष्ट शिष्य श्री चेना ऋषिजी महाराज के शिष्य व नाये. थोडे ही कालमें श्री चेनाऋषिजी और श्री खूबा ऋषिजीका स्वर्गवास होनेसे, श्री अमोलख ऋषिजीने श्री केवल ऋषिजीके साथ तीन वर्ष विहार किया; फिर श्री केवल ऋषिजी एकल विहारी हुवे; और श्री रत्न ऋषिजी दूर ग्राम रहे; इस लिये अमोलख ऋषिजी दो वर्ष तक श्री भेरू ऋषिजी के साथ रहे, उस वक्त (सं १९४८ फालगुनमें) औसवाल ज्ञातीके पन्नालाल नामके ग्रहस्थने १८ वर्ष की उम्मर मे दिक्षा धारन कर अमोलख ऋषिजी के चेले हुवे, उनको साथ ले जावरा ग्राममें आये; वहांश्री कृपारामजी महाराजके शिष्य श्री रूपचंदजी गुरुके वियोगसे दुःखी हो रहे थे. उनको संतोष उपजाने पन्ना ऋषिजी को समर्पण किये; देखिये एक यह भी उदार ता ! पीछे श्री रत्नऋषिजीका मिलाप होनेसे उनके साथ विचरे. इन महापूर्षने उनको योग्य जान; बहुत खंतसे शास्त्राभ्यास कराया. जिसके प्रसादसे गद्य—पद्यमें कितनेक ग्रंथ बनाये, और बना रहे है. तथा अनेक स्वमति—परमतियोंको सत्य धर्ममें द्रढ किये और कर रहे हैं.

श्री अमोलख ऋषिजी के; संवत १९५६ में मोतिऋषिजी नामके एक शिष्य हूए; कि जिनोंने बंबइ में काल किया.

हमारे सुभाग्योदय से स० १९६२ से तपस्वीराज श्री केवल ऋषिजी महाराज रस्ते में क्षुधा त्रषा आदि अनेक दुष्कर परिसह सहन कर यह क्षेत्र पावन किया; और वृद्ध अवस्थाके कारणसे अशक्त शरिर होने से यहां विराज मान हूवे है. और इनकी सेवामें पण्डित प्रवर बाल ब्रम्हचारि श्री अमोलख ऋषिजी महाराज यहां बिराजते हैं; मुनिश्री के सद्बोधसे आज तक ३५२५० पुस्तके अमुल्य सर्व हिंदमें और ब्रह्मा अमेरीक आदि देशोतक दिये गये है; और दिये जाते

है. जिसमें से २९७५० पुस्तके तो खुद हैद्राबाद शेहरसे ही दीगइ है और दीजा रही है. इस से खुला मालुम होता है कि विद्वान मुनिराजों और उदार प्रणार्मी श्रावको का सम्बन्ध मिलने से समया नुसार प्रवृती करने से जग जीवोंको केसा लाभ मिलता है.

☞ हमारी नम्र विनंती है कि जैसा प्रयास ज्ञान बृद्धी का बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी और इन के सद्बोध से यहां के तथा अन्यग्राम के श्रावको कर रहे हैं, इससे भी अधिक सर्व हिन्द के साधु मार्गीयों से होने की अत्यन्त आवश्यकता है, जो सर्व संघ इस प्रत्यक्ष दाखले को ध्यान में लेकर, ज्ञान बृद्धी-सम्पबृद्धी वगैरा साधु मार्गी धर्मोन्नती के एकेक कामों का स्वीकार कर यथा शक्ति प्रवृती करेंगे तो जरूर २ यह पूर्ण शुद्ध धर्म पुनः पूर्ण प्रकाश [illegible].

धर्मोन्नती इच्छक
लाला-सुखदेव सहायजी ज्वाला प्रसाद.
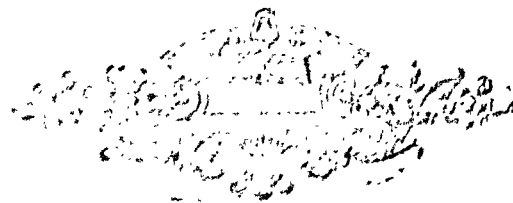
इस ग्रंथके प्रसिद्ध कर्ताका संक्षिप्त जिवन चरित्र.

दक्षिण हैद्रावादमें दिल्ली जिल्लेके कानोड (महेंद्रगड) से आकर निवास करनेवाले अग्रवाल वंशमें शिरोमणि धर्म—न्याय-विनय दया क्षमा आदि गुणों युक्त लालाजी साहेव नेतरामजी के सु पुत्र रामनारायणजीका जन्म संवत् १८८८ पोष वद ९ का हुवा, और उन्के सु पुत्र सुखदेव सहायजीका जन्म संवत् १९२० पोष सुद १५ का हुवा, और उनके सुपुत्र ज्वालाप्रसादजी का जन्म संवत् १९५० के श्रावण वदी १ का हुवा. उक्त तीनो लालाजीने सनातन जैन धर्मके पुज्य श्री मनोहरदासजी महाराजकी सम्प्रदायके पूज्य श्री मंगलसेन जी स्वामी पास सम्यकत्व धारण करी है. परंतु यहां हैद्रावादमें आये पीछे साधूदर्शन न होनेसे जैन मंदिरमें जाते थे, और हजारों रुपे खर्चकर मनहर मंदिर भी यहां वनाया है. तथा प्रभावना स्वामीवत्सल आदि कार्योंमें अच्छी मदद करते हैं; यहांके जौहरी वर्गमें अग्रेसर हैं, और राज्यदरवारमें लख्खो रुपेका लेनदेन करते हैं.

लालाजी के तर्फसे एक दानशाळा हमेश चालु है, और भी सदावृत अनाथोंकी साहयता वगैरा पुण्य कार्य अछी तराह करते हैं, सांसारिक प्रसंगो में भी लख्खों रूपेका व्यय इन्होने किया है, ऐसे श्रीमंत होने पर भी विलकुल अभीमान नहीं है.

जवसे तपस्वीजी महाराज श्रीकेवल ऋषिजी और इनकी सेवामें वाल ब्रह्मचारी श्री मुनिअमोलख ऋषिजीका यहां विराजना हुवा है तवसे लालाजी सुखदेव सहायजी जरुरी कारण सिवाय हमेशा व्याख्यान श्रवण

का लाभ लेते हैं, और ज्ञान वृद्धी के शोकीनहो 'जैन तत्व प्रकाश' परमातम मार्ग दर्शक ध्यानकल्पतरु जेसे बडे २ ग्रन्थो, तथा और भी चरित्रों वगैरा हजारों ग्रन्थों, हजारो रुपे का सद व्ययकर प्रसिद्ध कर जो हिंद के जैन वर्ग आदि को अमुल्य ज्ञानका लाभ दे उपकार किया तथा कर रहे हैं. और तन धन मन कर यथा शक्ति धर्म दीपा रहे हैं, यह लालाजी साहेब की धर्म फैलाव की उत्कंठा हरेक श्रीमंतो को अनुकरण करने जैसी है. ऐसे उदार कृत्यों से धर्म दीपता है, सद्ज्ञान के प्रसारसे अपने भी ज्ञान वर्णीय कर्म क्षय होते हैं, और पढने वाले को सुणने वाले को, यों एकेक से आगे अनेक जीवों को महा लाभ मिलता है. इसालिये यह वात सब ध्यान में ले यथा शक्ति धर्मो वृद्धी करेंगे. इस हेतुसेही यह संक्षिप्त जीवन चरित्र यहां दिया है.

गुणानुरागी

सेक्रेटरी–ज्ञान वृद्धी खाता.

" परमात्म मार्ग दर्शक " ग्रन्थका शुद्धी पत्र.

☞ पाठक गणों ? अवल निम्न लिखी प्रमणे सर्व पुस्तक को शुद्ध कर फिर यत्ना युक्त पढीये जी ?

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९	८	काने	करने	१३५	१	तपास्वरजी	तपेस्वरीजी
११	४	नाशा	नशा	,,	१२	ध्यानपे	ध्यानेंमे
१८	२४	वक्त	वक्र	१३८	२	धारे	पधारे
२१	२१	पाम्द	पार्श्व	,,	८	बनावे	बनाने
२१	१	सर्व	सर्प	१३८	२१	क्रोड जितने	क्रोड वर्ष जितने
२१	४	पयाय	पर्याय	१४१	१	रतो	रता
,,	१	द्वादशोग	द्वादशांग	,,	२१	भोगालि	भोगामि
२९	१४	जीप	जीये	१४३	२०	धर्माधि	धर्माबि
३२	४	पन्तु	परन्तु	१४६	१	सपनी	संपने
,,	९	पकपरे	आपक	१४७	१०	वेरोगी	वैरागी
,,	,,	यतो	तो	१४८	२	माइन्द्रियों	मनइन्द्रियों
३६	७	वाम्वार	वारम्वार	१४८	७	न्यासी	संन्यासी
३७	६	चिन्तनय	चिन्तवन	,,	२१	वता	त्वता
४६	१४	धरकर	धारकर	१४९	पटी	मुच	मुज
६१	१८	श्यास	श्याम	१५०	२१	किया	क्रिपा
६५	१६	ंधिया	भ्यिया	१५४	१०	सवके	सवको
८८	१९	भनेका	अनेक	१५८	१८	धय	धैर्य
९९	१२	स्याहा	स्याही	१६०	१७	दाही	नाहि
१०१	१७	केद्रो	क्षिणमोही केद्रो	,,	१८	वडते	वैठते
१०१	१२	द्दशु	शुद्ध	१६१	१९	स्माव	स्वमाव
१०५	२	काकी	काका की	१६४	१३	चला	चल
१०६	६	यथाघ्य	यथातथ्य	१६६	८	कुदृशा	कुदर्शी
१०७	१	निक्षेया	निक्षेपा	१६७	१	जोग	जो
११६	११	अस्टूट	अटूट	,,	१८	येही	ही
११८	१४	पूजमिया	पूजीणयापिटा	१६८	४	पृव्ती	पृथ्वी
,,			दणिया	,,	५	ही	०
११२	२७	नीचा. देवे.	नीचा करदेवे	,,	७	पृथ्वी	प्रकृती

पृष्ठ	पंक्ती	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ती	अशुद्ध	शुद्ध
१७९	६	पडोवने	पठोवने	२१३	२१	तत्वर्ध	तत्वार्थ
१८२	१८	बेक्रय	वैक्रम	२३१	९	दीनो	दोनों
१८४	५	कर वोबचनपन्न	करे वो बच्चपन	"	१९	असता	आसता
"	८	तधा	तथा	२३८	२२	दर्णन	दर्शन
"	१०	सहायताका	सहायताकर	"	२४	अज्ञानने	अज्ञान से
"	२०	उपासिक	पासिका	२४१	७	आगधने	आराधने
"	२४	वाला	वाली	"	८	लगगी	लगी
१८८	१७	मिच्तामि	मिच्छामि	२४३	३	आकषाते	आकर्षाते
१८९	१३	निन्दाको	निदाकरे	२३९	९	कषषा	कषाय
१९१	४	अनस	अनसन	२४६	९	सहगो	साहगो
१९२	२४	तमस्वी	तपस्वी	२४७	११	नास्थि	नास्ति
२०३	१७	अनवस्थिर	अनवास्थित	"	२३	भवत	भवन
२०४	२२	ज्ञात	ज्ञान	२४९	१४	वरात्त	वरोक्त
२०८	१७	पडिओ	पगडिओ	२५१	९	रवाळी	स्वाळी
२१२	१०	जीवोहो	जीवोही	२५४	४	शिक्ष	शिक्षा
२१३	१७	३३ ही	३३ सागर ही	"	८	बाजि	बीज
२१६	१४	जै है	जैसा है	२५६	२१	अधिकार	अधिकाइ
"	१९	क्वाचित	क्वचित	"	२४	सिद्ध	सिद्धी
"	२०	दोपास्त	दोपास्त	२५७	११	से	सार से
				"	२२		
२१८	११	रक	कर	२५८	२२	अधिकार	अधिक
२१९	४	बता	वर्ती	२५९	२	हो	वो
"	२	न होंगे नहीं	होंगे नहीं	२६०	१२	किया	क्रिया
२२१	२४	कुले मे	कुलोंमें	"	"	में सूत्र में	सूत्र में
२२२	१४	श्वेर्य	एश्वैर्य	२६४	टी.प	अशिये	अतिशय
२२३	७	का	कर	२६६	१८	तुम्मेंहि	तुम्भेहिं
"	हेडिंग ३	दीसन	दीसत	२६७	३	८ पठ	पाट
२२४	हेडिंग	३ आयनन	६ आयतन	"	१४	सामिक	सामायिक
"	४	वाहि	वाहिर	"	१८	ग्रहण	ग्रहणा
२२१	३	निदीं	निन्दा	२७१	हेडिंग	आस्यक	आवश्यक
[illegible]२	"	उत्सत्र	उत्सत्र	२७४	१४	ग्रहण	ग्रहणा
	२२	दशानको	दर्शनको	२७९	१७	मव्व	सव्वं
	१४	योक	योग्य	२८०	२०	ज्ञान चारित्र	ज्ञानदर्शनचारित्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६३	८	४०९६+४०-९६	४०९६×४०९६=१६७७७२१६
३६७	२१	पीला	पीछा
३६९	७	सयणा	सयणासन
,,	८	पन्दरह	पांच
३७०	२२	पन्दरह	पंच.
३७१	३	अशातटले	आशातना टाले
,,	८	१६	१५
३७२	१०	ध्यानेके ९ भेद	ध्यानके ४ ८भेद
	११	मुख्य ? भेद	मुख्य ४ भेद
,,	,,	२आर्थध्यान ३	१ आर्तध्यान,२
,,	,,	ध्यान ३ धर्म	ध्यान ४
,,	,,	ध्यान ४	
,,	,,	चार	०
,,	१६	आर्थध्यानीके १ लक्षण	आर्तध्यानी के ४ लक्षण
,,	,,	२अक्रांदकरे ३	१अक्रांदकरे, २
,,	१७	शोककरे ४	शोककरे, ३
,,	,,	और ५	और ४
,,	१८	रोद्रध्यानी के १ भेद	रौद्रध्यानके ४ भेद
,,	२०	अनुक्रम	अनुरक्त
,,	२१	रोद्रध्यानीके १ लक्षण	रौद्र ध्यानी के ४ लक्षण
३७७	टीप १२	भगवन्त	भवान्त
३७९	२	विष	विषय
३८४	२४	पिशाबमडाकीनी	पिशाच डाकिनी
३८५	५	व्यातन्रा	व्यन्तरा
,,	१५	होहार	होणहार
३९२	२४	कीलज्जाभि हानी कारक होती हैं.	०
३९७	१७	दियती	दिया

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	२०	निगडाहो	निगडी न हो
४०१	६	अलच	अवल
४०३	८	पूरुर्पाथ	पूरुषार्थ
,,	३	द्रूपा	द्रुपा
४०६	१५	यहीं	नहीं
४१०	२२	यह	यह ७
४१३	१०	शीलत	शीतल
४१७	२३	प्रसंद	प्रसन्न
४१८	२	तीहो	तोही
४१९	६	सद्बोध	सद्‌बोध
४२१	१	गीली	गाली
,,	१३	देना	दे, ना
,,	१९	कम	कर्म
४२४	१८	परपात्मा	परमात्मा
४२५	५	स्वात्मकी	स्वात्मको
४२७	५	२४ योग२९ भ्यास	२४ योग भ्यास २९
४२८	७	निराकर	निराकरण
"	२४	कार हो	कारथे
४३०	१९	हां	हा
४३१	१३	वि	विद्या
४३२	१८	आश्रिहा	आश्रिय
४३३	१६	तपसे	तपसे जितने
४३४	६	ज्ञान ज्ञान	ज्ञान
,,	७	अतृत्ती	अतृप्ती
४४१	२४	पूण्य	पूज्य
४४४	५	भी	•
,,	६	जो	०
४४८	१५	लेने	होवे
४५१	१३	खडाय	खरडाय
४५२	१४	चुकटले	चुटकेल

पृष्ठ	पंक्ती	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पांक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५८	१२	सिरपर जुंजवा	सिर परजुंजना	४७३	१४	वाणाकामार	वाणका मारा
४५९	४	वने नहीं	वने	,,	२२	त्रिषय	विषम
४६०	७	टुकर	दुकार	४७५	२	प्रगामा	प्रगमा
,,	८	,,	,,	४७६	१८	जन	जैन
४६१	२१	श्वावक	श्रावक	४७७	८	सवोधन	संवेधन
४७१	४	आश्रय	आश्रव	४७९	९	वैट	बैठे
,,	६	जातिअं	जातिणं	४८०	१६	वंधप	वंधन
४७२	१८	आगे	माये	,,	२३	का	की

☞ इस सिवाय और भी अनुस्वर्ग मात्रा वगैरे के तथा भाषा सम्बन्धी सर्व दोषों को शुद्ध कर यत्ना युक्त पढिये, और गुणोंहीको ग्रहण कर परमात्म पद प्राप्त कर परम सुखी बनीये ??

श्री परमात्म मार्ग दर्शक ग्रन्थकी विषय अनुक्रमणी का.

विषय	पृष्टांक	विषय	पृष्टांक

इति श्री परमात्म मार्ग दर्शक की विषया नुक्रमणिका समाप्त.

ॐ

॥ श्री परमात्माय नमः ॥

श्री

परमात्म मार्ग दर्शक.

मङ्गलाचरणम्.

श्लो. ज्ञान लक्ष्मी घनाश्लेष, प्रभवानन्दनान्दितम् ।
निष्टितार्थ मजं नौमी, परमात्मा नमव्ययम् ॥१॥

जो परम-उत्कृष्ट-विशुद्ध आत्माके धारक परमात्मा, या परा=त्कृष्ट, मा=लक्ष्मी जिस आत्माको प्रगटी हो सो परमात्मा, सो ज्ञानादि लक्ष्मी युक्त अर्थात् सर्व पदार्थोंके जानने देखने वाले सर्वज्ञ सर्व दर्शी गुणे की लक्ष्मी से जिनकी आत्मामें एक रूपता अभिन्नता से प्राप्त हुवे है, और परमानन्द अर्थात् परम अतीन्द्रिय अनन्त सुखमें निमग्न लीन स्वरूप हुवे है. और निष्टितार्थ हुवे है, अर्थात् जिनके सर्व अर्थ प्रयोजन प्रति पूर्ण हुवे हैं, जिससे जो कृतार्थ हुवे हैं. और अज हुवे है अर्थात् उनका अब पुनर्जन्म धारण करना नहीं है, और अ-व्यय हुवे है अर्थात् अविनाशी-नाशरहित हुवे हैं. अजर है ऐसे चार मुख्य विशेषणो युक्त जो परमात्मा हैं. उनको मेरा त्रिकाल त्रि-योगकी विशुद्धी से वारम्वार नमस्कार हो.

प्रवेशिका.

" अप्पा सो परमप्पा "

तत्वज्ञ महान् सत्पुरुषोंका फरमान है कि- " आत्मा है सो ही परमात्मा है " अर्थात् आत्मा का जो निज-शुद्ध सत्य स्वरूप है, वो ही परमात्म स्वरूप है; परन्तु अनादी कर्मों के प्रसंग कर यह आच्छादित होने से आत्म नामसे पहचाना जाता है. जैसे व्यवहार सत्कर्मों कर सामान्य मनुष्य से भट (सिपाइ) तलार (कोतवाल) मंत्री (प्रधान) राजा और महाराजा पदको प्राप्त होते हैं, तैसे ही यह आत्मा शास्त्रोक्त ऊंच (अच्छे) कृतव्यों कर, सम्यक्त्व आदि गुण स्थानारोहण करता २ परमात्म पदको (तीर्थंकर पदको) प्राप्त करता है. अन्य पद प्राप्त कर प्राणी प्रापात (पडना) भी हो जाता है, परन्तु जो आत्म परमात्म पदको प्राप्त हुइ है, वो कदापि नहीं पडती है, अर्थात् अनंतानंत काल तक परमात्माही बनी रहे अक्षय अव्याबाध निरामय सुख भुक्ती है. ऐसा अप्रतिपाती और सर्वोत्कृष्ट सुख मय जो परमात्म पद है, उसे प्राप्त करने सर्व सुखार्थी मुमुक्षु जनोंको अभिलाषा होवे यह स्वभाविकही है, और इस अभिलाषा-वांछाको पूर्ण करने का उपाय भी सर्वज्ञ प्रभुने भव्य गणोंपर परम कृपालू होकर जैनागम-शास्त्र द्वारा फरमाया है, प्रकाश किया है. उसेही यहां स्व-आत्माको और पर आत्मा को यथा बुद्धि विस्तार युक्त बताकर उस परमात्म पदको प्राप्त होने प्रवृत करना चहाता हूं:—

गाथा—आर्यावृत्तम्

अरिहंत सिद्ध पवयणे। गुरु थेरे वहुस्सुए तवस्सीसु ॥
वच्छल्लया य ते सिं । अभिक्खनाणो वउगेय ॥ १ ॥
दंसण विणय आवस्सएय । सीलव्वय निरइयारे ॥
खणलव तव च्चियाए । वेयावच्चे समाहीए ॥ २ ॥
अपुव्व नाण ग्गहणे । सुयभत्ती पवयणे पभावणया ॥
ए एहिं कारणेहिं । तित्थयर तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥

ज्ञाताजी सूत्र अध्या ८

भाषा—दोहेः—अरिहंत सिद्ध सूत्र गुरु। स्थिविर वहु सूत्री जाण ॥
गुण करतां तपश्वी तणा । उपयोग लगावत ज्ञान ॥ १ ॥
शुद्ध सम्कत्व नित्य आवश्यक । वृत शुद्ध शुभध्यान ॥
तपस्या करतां निर्मळी । देत सू—पात्रे दान ॥ २ ॥
वयावच्च सुख उपजावतां । अपूर्व ज्ञान उद्योत ॥
सूत्र भक्ति मार्ग दीपत । वन्धे तीर्थंकर गोत ॥ ३ ॥

अस्यार्थम्—१ अर्हंत भगवंत के गुणानुवाद करते, २ सिद्ध भगवंत के गुणानुवाद करते, ३ प्रवचन—शास्त्र—श्री जिनेन्द्र की वाणी के गुणानुवाद करते, ४ गुरु महाराज के गुणानुवाद करते, ५ स्थिविर महाराज के गुणानुवाद करते, ६ वहू सूत्री—उपाध्याय महाराज के गुणानुवाद करते, ७ तपश्वी महाराज के गुणानुवाद करने, ८ ज्ञानमें वारम्वार उपयोग लगाते, ९ सम्यक्त्व निर्मल पालते, १० गुरु आदिक पूज्य पुरुषोंका विनय करनेसे, ११ निरंत्र षट्आवश्यक—प्रतिक्रमण करने से, १२ शील ब्रह्मचार्य आदिक वृत—प्रत्याख्यान निर तिचार—दोष रहित पालने से, १३ सदा निर्वृती वैराग्य भाव रखने से, १४ वाह्य—प्रगट और अभ्यंतर—गुप्त तपश्चर्या करने से, १५ सू—पात्र दान उदार भाव से देने से, १६ गुरु, तपश्वी, गल्याणी (रोगी) नवदिक्षित

इन की वैयावृत-सेवा भक्ती करने से, १७ समाधी भाव-क्षमा करने से १८ अपूर्व-नित्य नवा ज्ञानका अभ्यास करने से १९ सूत्र भक्ति-जिनेश्वरजी के वचनों का भक्ति भाव पूर्वक श्रवण पठन मनन करनेसे, और २० जैन धर्मकी तन मन धनसे, प्रभावना—उन्नती कर दिपानेसे, इन २० कामों करते २ जो कभी उत्कृष्ट रसायण आवे अर्थात्—हूबहु रस आत्मामें प्रगमें, उन गुणोंमें आत्मा तल्लीन होवे तब तीर्थंकर गौत उपार्जन होवे, अर्थात् उस आत्माको आगमिक तीसरे जन्ममें तीर्थंकर पद-परमात्म पदकी प्राप्ती होती है. ❋

अब इन वीसही बोलोंका आगे प्रथक २ (अलग २) प्रकरणोंमें सविस्तार वरणव किया जायगा.

❋ उमास्वामी कृत तत्वार्था धीगम सूत्र के ६ अध्यायमें कहा हैं-

सूत्र—दर्शन विशुद्धि, विनय संपन्नता, शीलवृतेष्व नतिचारो, ऽभिक्ष्णं ज्ञानोपयोग, संवेगौ. शक्तिस्त्याग, तपसी सङ्घ साधू समाधि वैयावृत्य करण, मर्हदाचार्य बहुश्रुत्त प्रभावना भक्ति, रावश्यका परिहाणिर्मार्गे, प्रभावना, प्रवचन वत्सलत्व मिति तीर्थकृत्वस्य ॥२३॥

अर्थ—१ सम्यक् दर्शन की परमोत्कृष्ट विशुद्धि से, २ विनय युक्त नम्रता रखनेसे, ३ शीलव्रतादिव्रत अनिचार-दोष रहित पालनेसे, ४ ऽभिखणं-सदा वारम्वार ज्ञानमें उपयोग लगानेसे, ५ संवेग-वैराग्य भाव रखनेसे, ६ सू-पात्र को यथा शक्ति दान देनेसे, ७ तपश्चर्या कर नेसे, ८-९ सङ्घ और साधूकी वैयावत कर समाधी उपजानेसे, १०-१३ अर्हंत—आचार्य—बहूसूत्री—और शास्त्र इन चारोंकी भक्ति पूर्वक आज्ञाका आराधन करनेसे, १४ सामायिकादि छः आवश्यक निरंत्र परम शुद्ध भावसे करनेसे, १५ सम्यग् ज्ञानादि जो मोक्ष मार्ग है उसे अनुष्ठान और उपदेश आदि द्वारा प्रभावना-महिमा प्रगकट करनेसे, और १६ अर्हंत शासनके अनुष्ठान करनेवाले ज्ञानी; तपश्वि बाल-वृद्ध-साधु, शिष्य, ग्लानी (रोगी) आदि की वत्सलता भक्ति करनेसे. इन १६ काम करने से, तथा इन मे के २-४ आदि यथा शक्ति गुणोंका आराधन करने से जीव तीर्थंकर गौत्र उपार्जन करता है. यह १६ बोल वरोक्त गाथामें कहे हुवे २० बोलोंमें समाजाते हैं.

श्री परमात्मायनमः

प्रकरण—पहिला

" अर्हत—गुणानुवाद "

अहो अर्हत भगवंत ! आपने पूर्व जन्म में वीस बोलमें से बोलोंकी आराधना कर महान्—पुण्य रूप महालक्ष्मी का संचय कर, स्वर्ग नर्क का मध्यमें एक भवकर, मति श्रूति अवधी यह तीन ज्ञान युक्त सर्वोत्तम निकलङ्क कुलमें मातेश्वरी को उत्तमोतम १४ स्वप्न अवलोकन होने के साथ ही अवतरते हो, उसे च्यवन कल्याण कहते हैं, उस वक्त आपके पुण्य के प्रभावसे आपके पिताश्रीजी के घरमें उत्तम द्रव्य (रत्न सुवर्ण वस्त्र भुषण व सुगन्धी द्रव्यों) की वृष्टि होती है, घर पुर देशमें धन धान्य निरोग्यता सुवृष्टि आदि सुख संपती की वृद्धि होती है, मातेश्वरीको शुभ दोहद डोहले (वांच्छा) होती है, वो देव जोगसे सर्व पूर्ण होते हैं; नव मांस आदि काल सुख से पूर्ण होता है जब आप जन्म धारण करते हो उसवक्त तीनही लोकमें महा दिव्य प्रकाश होता है; जिससे आश्चर्य चकित हो नर्क के जीवोंको निरंत्र दुःख देने वाले यम—परमाधामी नेरीयों (नर्कके जीवों) को मारना—छोड देते हैं; जिससे निरंतर दुःखानुभव करने वाले नर्क के जीवों को भी सुखानुभव होता है. तो अन्य जीवों को उसवक्त सुख होवे उसमें संशयही कायका ? अर्थात् आपके जन्म की वक्त निगोद से लगाकर सर्वार्थ सिद्ध तक सुख शांती का वरताव होता है. उसवक्त आपके

पुण्य से आकर्षाये (खेंचे) हुवे छप्पेन्न कुँमारिका देवीयों ओर चौसँठ इन्द्र आदि असंख्य देव देवी यों ओर आपके पिता आदि अनेक गण मनुष्यों जन्मोत्सव बडी धामधुम के साथ करते हैं, इसे जन्म कल्याण कहते हैं.

अहो परम ऐश्वर्यताके धारक प्रभू ! आपके शरीरकी रचना भी एक अलोकीक–अद्भूत होती है. समचउरंस संस्थान से संस्थित अंगोपांग सब संपूर्ण अत्यंत मनोहर मानोपेत होते हैं. पर्वतके शिखर जैसा १२ अंगुल ऊंचा, अतीश्याम (काले) चीगटे कुर्वली पडे हुवे प्रदक्षिणावर्त सघन बालोंसे भरा हूवा सुशोभित मस्तक, अष्टमी के चन्द्र जैसा भलभलाट करता हुवा लिलाट (लिल्लाड), संपूर्ण चन्द्र तुल्य गोळाकार सौम्यदिप्त कान्तीवंत मुखारविंद, परमाणुपेत कर्ण (कान,) धनुष्याकार काली भृमूह, कमलपुष्य सम विकसित् नेत्र, गरुड पक्षी जैसी लम्बी सरल नाशीका, दाडिम की कली (दाणे) जैसे अत्यन्त श्वेत पंक्ति-बन्ध ३२ दाँत, शंख जैसी चार अंगुल प्रमाणें ग्रीवा (गरदन,) सिंह समान स्कन्ध, नगर के दरवज्जे की भागल जैसे जानु (घुटने) तक लटकते वांहां (हाथ,) लाल वरण मांस से पुष्ट चन्द्र–सूर्य–शंख–चक्र–साथीया–मच्छ आदि सर्व शुभ लक्षणों से अलंकृत करतल (हतेलीयों), छिद्र रहित करांगुली, रक्त वर्ण नख, विस्तिर्ण, विशाल (चौडा) पुष्ट श्रीवच्छ साथीये से आंकित हृदय, पुष्ट उतरते पासे, मत्स (मच्छ) जैसा उदर (पेट), पद्म कमल जैसी विकुश्वर गंगावर्त सी नाभी, केशरी सिंह समान कटि विभाग, अश्व सम गुप्त चिन्ह, परेवा जैसा निर्लेप स्थन्डिलस्थान, हाथी की सूंड जैसी उ-। जंघा, मांस से पुष्ट गुप्त जानू (गोडे,) काछव तुल्य सु संस्थित (पग) रक्त वर्ण चीगटे नख, पर्वत–मगर–ध्वजा–आदि सर्व

शूभ लक्षणा से अलंकृत, उदय होते सूर्य जैसे देदिप्य रक्त वरणके चरणतल (पगतली). और सर्व शरीर एक हजार आठ उत्तमोत्तम लक्षण, तथा तिल मश आदि व्यंजन करके विभुषित, सर्व प्रकारके रोग रहित, रज-मेल-श्लेपम-श्वेद-कलङ्क इत्यादि सर्व दोष वर्जित, निर्धूम अग्नि-व-ऊगते सूर्य जैसा देदिप्य मान, झलझलाट करता हुवा सब शरीर अतीही सुन्दर मनहर होता है, चन्द्रमाके प्रकाश जैसी सब शरीरकी प्रभा पडती है. नख और केस (वाल) मर्याद उप्रांत-अशोभनीक वढते नहीं हैं, रक्त और मांस गोदुग्ध से भी अति उज्वल (श्वेत) और मधुर (मिष्ट) होता है, श्वाशोश्वास में पद्म कमल से भी अधिक सुगन्ध महकती है. आहार और निहार करे सो चर्म चक्षु धारक देख शक्ता नहीं है, अवधी आदि ज्ञान वाले देख सकें, शरीर को किसी भी प्रकारका अशुभ लेप लगे नहीं, ऐसे सर्वोत्तम शरीर के धारक होते हैं. सर्व लोकमें शांत राग रूप (सर्वोत्तम) प्रमाणुओं मानो इतनेही थे कि जितने से आपका शरीर बना है. क्यों कि आपके समान अत्युत्तम शरीर का धारक इस जगतमें अन्य कोइभी नहीं है. जैसे तारागणों को जन्म देनेवाली तो सर्व दिशाओं हैं, परन्तु सूर्यको जन्म दाता तो इकेली पूर्व दिशाही है. तैसेही आप जैसे पुत्र रत्नको जन्म दाता रत्न कूंख धारणी सती शिरोमणी एक आपही की माता है.

अहो भगवंत ! आप तीन ज्ञान सहित होते हो. इस लिये आपको कृतव्य कर्म का ज्ञान अव्वल से ही होता है. तदनुसार आप संसार व्यवहार साधने, पूर्वोपार्जित भोगावली कर्मोका क्षय करनेही भाव वैराग्य धरते लुखवृत्तीसे संसार कार्य करते भी निर्बन्ध जल कमल वत् रहते हो. अर्थात् कर्मों कर बन्धाते नहीं हो.

अहो दया सिन्धु ! आप तीन जगत के उद्धार के लिये, धर्म

प्रायन जानोंको धर्म का अव्वल मार्ग दर्शाने के लिये, या धर्म की प्रभावना (उन्नत्ती) करने के लिये, जीत व्यवहार को अनुसर दिक्षा जैसे अत्यूत्तम कार्य मे भी विलम्ब कर, बारह मांस (महीने) तक निरंत्र-सदा एकक्रोड आठलक्ष सोनैये (१६ माशे सुवर्ण की महोर) का अमोघ धारा से सवा पहर दिन चडे वहां तक दान देते हो! बारह महीने में तीन अब्ज अठयासी क्रोड अस्सी लाख (३,८८,८०,•००००) इतने सोनैये (मोहरों) का दान देते हो! और आप के दान की महिमा भी अचिन्त्य है, अर्थात् आपके दिये दान को फक्त कंगालही ग्रहन करते हैं, एसा नहीं है! परन्तु बडे २ चक्रवर्ती महाराजाओं, और शेठ, शेन्यापतिओं आदिसवजन बडे हुलास प्रणाम से ग्रहण करते हैं. क्यों कि आपके हाथका दान अभव्यको प्राप्त नहीं होता है, और आपके हाथ का दिया हुवा सोनैया जहां तक जिसके घरमें रहता है वहांतक उस घरमें वडा रोग दारिद्रता, उपद्रव वगैरा दुःख नहीं होता है. अहो प्रभू ! आपके हाथसे दिये हुवे पुद्गलों में भी कैसी अजब शक्ति प्राप्त होजाती है.

अहो कृपाळू देव ! आपको निश्चय है कि में इस भवके अंतमें जरुर ही मोक्ष प्राप्त करुंगा, तो भी कर्त्तव्य परायण हो निश्चयकी सिद्धी के लिये व्यवहार साधने सर्व संसारिक राज ऋद्धि का त्रिविध २ त्याग कर दिगम्बर—नग्न हो, सुगन्धी—कोमल केशोका स्वहस्त से पंच मुष्टी लोचकर ' सिद्धाणं नमो किच्चा ' अर्थात् सिद्ध भगवंतको नमस्कार कर दिक्षा वृती धारण करते हो अर्थात् जावजीव पर्यंत सर्वथा सावद्य (जिससे दूसरेको दुःख होवे) ऐसे जोग (मन वचन काय की प्रवृती) का त्याग करते हो कि उस ही वक्त आपको चौथे मनःपर्यव की प्राप्ती होती है, और उसही वक्त इन्द्र आपके स्कन्ध पर

एक देव दुष्य नामक वस्त्र की स्थापना करते है, परन्तु आप उस वस्त्र को किसी भी कार्य में नहीं लगाते हो, अहो आश्चर्य वैराग्य दिशा आपकी ! वो वस्त्र थोडे ही कालवाद कहीं गिरजाता है, और आप अप्रमादी पणे सुमन्डमें अप्रतिवन्ध विहार करते ही रहते हो.

अहो जिनेन्द्र ! आप जिस कार्यके लिये प्रवृत होते हो उसकार्य को तह मनसे अडग रह कर पूरा करते हो, येही आपकी शूर-विर-धीरता रूप उत्तमता का लक्षण हे; अर्थात् दिक्षा धारण किये वाद पूर्वोपार्जित वाकी रहे कर्मोका नाश काने देव-दानव-मानव के किये हुवे अनेक दुःसह परिसह उपसर्ग जिसे आप सम भाव कर सहन करते हो, उस से किंचित् ही कम्पायमान-चलाय मान आपके परिणाम कदापी नहीं होते हैं, उलट विशेष उन उपसर्गों सन्मुख होनेसे वे वेचारे उपसर्ग परिसह डरकर आपही शांत पडजाते हैं; तो भी आप विश्रांती धारण नहीं करते कर्म शत्रू ओंका चक-चूर करने चौथ छट अठम मास दो-मास जावर्त् छः छः मांस की जब्वर २ तपश्चर्या कर क्षुधा-त्रषा शीत-ताप-दंशमच्छर आदिक अनेक दुष्कर काय क्लेश तप करते निरंतर प्रवृनते हो. और नवे कर्मका वंन्धन न होवे इस लिये मौन (चूप) वृती धारण कर एकान्त वासी वन, सदा ज्ञान ध्यान तप संयम में आपनी आत्मा को तल्लीन वना परम शांत रस में रमण करते ही रहते हो, कि जिससे वे कर्म आपका स्पर्श नहीं करते वेचारे दूरही रहते हैं.

अहो नाथ ! मुझे आश्चर्य होता है. कि—संसारी जन शत्रू ओंका परांजय करने क्रोध में धम धमाय मान हो संग्राम आदि की युक्ती योजते हे. और आपने तो क्षमा-शांत भाव से शत्रू ओंका नाश किया, यह अपूर्व युक्ती आपने वहुतही अच्छी निकाली. इस

१ एक उपवास, २ वेला (दो उपवास) ३ तेला (तीन उपवास) ४ छःमहीनेके उपवास.

विश्वमें प्रत्यक्ष ही देखते हैं, कि—उष्णता से शीतका जोर अधिक होता है, * धूप जितनी शिघ्रतासे दहन नहीं कर शक्ति है इतनी शिघ्रतासे सीत दहन कर शक्ती है, अर्थात् शीत काल (सियाले) में दहा पडता है, तब क्षिण मात्र में सतर बन्ध कइ क्षेत्र (खेतों) को जला डालता है, तो अध्यात्मिक परम शान्ति की प्रबलता से कर्म रूप शत्रू ओंका दहन होवे इसमें आश्चर्य ही क्या ?

अहो प्रभू ! इस अनोखी यूक्तिसे बेचारे चार (ज्ञाणवर्णी, दर्शनावर्णी, मोहनिय और अंतराय) घन घातिक कर्म शत्रू त्रास पाकर थोडे ही कालमें पलायन कर जाते हैं, कि उसही वक्त आपकी अनंत आत्मिक शक्ति प्रगट होती है, अर्थात् अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्य इन अनंत चतुष्टयकी प्राप्ती होती है. जिससे आप सर्व द्रव्य—क्षेत्र—काल—भाव और भव को एक ही समयमें जानने देखने वाले होते हो, क्षायिक यथाख्यात चारित्र और अनंत दान-लाभ—भोग—उपभोग और वीर्य लब्धी की प्राप्ती होती है, और पूर्वोपार्जित तीर्थंकर नाम कर्म रुप महा पुण्यका उदय होने से स्वभाविक व देवकृत अनेक महान् ऋद्धियों प्रगट होती है. जहां प्रपदाका विशेष आगम होने का अवसार होता है, वहां समव स्मरण की अलोकिक रचना होती है, अर्थात् पृथवी से अढाइ कोस ऊंचा २०,०० पंक्तियों यूक्त चांदी सुवर्ण और रत्नो के त्रि-कोट (गढ) के अन्दर मध्य भागमें मणीरत्न के सिंहासण पर चार अंगुल अधर, छत्र, चमर, प्रभा मंडल यूक्त विराजते दिखते हो. तब चारही दिशामें चार मुख दिखते है. और अशोक नामक वृक्ष सदा छांया करता दिखता है, सहश्र ध्वजाके परिवार से आगेको इन्द्र ध्वजा फरगती दिखती है, धर्म चक्र

* इस लिये ही पंजाबमें शीत—ठन्ड को जाडा (जब्बर) कहते हैं

और साढी बारह क्रोड बाजोंका आकाशमें गरणाट शब्द सुनाता है, योजन प्रमाण अचित पुष्पों की बृष्टी इत्यादि अतिशय दिखते हैं, परन्तु यह सब विसा पुद्गल होने से दिखते तो है, परन्तू हाथमें नहीं आते है. और इस लिये इन से किसी प्रकारकी अयत्नाभी नहीं होती है.

अहो इश्वर ? आपके गुणों रुप सुर्भिगन्धसे अकर्षाये सद्वोध श्रवण करने के पिपासे द्वादश जात की पर्षदा (४ जातके देवता ४ जातकी देवांगना, मनुष्य मनुष्यणी, तिर्यंच तिर्यंचणी, अथवा साधू साध्वी, श्रावक श्राविका) का क्रोडों गमका आगम होता है. उस वक्त आपका सद्वोध भी वडाही आश्चर्य कारक होता है, अर्थात चार कोसमे भराइ हुइ परिषदा आपके फरमाये हुये वचनों को एकसा वरोवर श्रवण करती है. आर्य अनार्य पशु पक्षी आदि सभीको अपनी २ भाषामें वोध प्रगमता है, सव समज जाते हैं. और सिंह वकरी आदि के जो जाति विरोध है, सो अथवा जमान्तरका विरोध समव सरण में विलकुलही समरण नहीं होता है, सर्व जीव आपसमें स्नेह भाव—मैत्री भाव से वर्तते हैं. छः राग और तीस रागणियों से भरा हुवा सरल और उंच शाव्देमें गहन गंभीर्थता युक्त, परस्पर विरोध रहित, पूर्व शंसय को हरण कर नवा संशय न उपजे ऐसा. भाषाके सर्व दोषों रहित. देश काल उचितता तात्विक ज्ञानसे भरपूर, मध्यस्तपणे, निडरपणे, विलम्ब रहित, हर्षयुक्त, भाद्रवके मेघकी तरह, या केशरी सिंह की माफक गाजते गुंजारव शव्दो में फरमाते हैं, जिससे श्रवण कर वडे २ सुरेन्द्र नरेन्द्रों विद्वरेन्द्र चमत्कारको प्राप्त होते हैं. श्रोताओंके हृदय में हूबहु रस, प्रगमता है, वाणी में तल्लीन हो हा ! हा !! करते है, अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है. अहो प्रभू इसजगत में आप जैसा उपकार करने कोइ भी सामर्थ्य नहीं है.

अहो महादयाल ! आपके महान् पुण्य प्रताप के प्रभाव कर आप जिधर पधारते हो उधर आगेको भूमी खड्डे टेकरे रहित बराबर हो जाती है, काँटे उलटे पडजाते हैं, ऋतू भी सम प्रगमती है अर्थात् उष्ण कालमें शीतलता और शीतकालमें उष्णता रुप हो सब जीवों को सुख देति है, आप विराजते हो वहां चारों तरफ मंद २ शीतल सुगन्धी हवा चलती है जिससे सर्व दुर्गन्ध दूर हो जाती है. वा वरीक २ सुगन्धी अचित पाणीकी वृष्टीसे सब रज दब जाती है, अशुभ वर्ण-गंध-रस-स्पर्श का नाश हो, शुभ प्रगमते हैं. पच्चीस २ योजन में मारी मृगी (प्लेग) इत्यादि किसी प्रकारकी बिमारि होवे तो सर्व नाश हो जाती है, तीड उंदीर आदी क्षुद्र जीवोंकी उत्पती नहीं होती है, स्वचक्र परचक्रका भय नहीं होता है, अतिवृष्टी अनावृष्टी दुर्भिक्ष-दुष्काळ नहीं पडता है, और पहिले किसी भी प्रकारका उपद्रव होवे तो भगवंत आपके पधारने से सर्व नाश होजाता है, वहवा पुण्य प्रतापी पुरुषोत्तम अद्वितीय परमात्मा ! आपके आश्रीतों का भी आपका सहवास द्रव्य से ऐसा सुख देनेवाला होता है, तो फिर आपके भाविक-भक्त जनों अनंत अक्षय मोक्षके सुख प्राप्त करें इसमें आश्चर्य ही कायका ?

अहो परमात्मा ! यह तो आपके बाह्यगुणोंका यत्किंचित वर्णन किया, आप जैसे बाह्यगुणों कर सु-शोभित हो तैसेही अभ्यान्तर गुणों करभी पवित्र हो, अर्थात् आपके अज्ञान-मिथ्यात्व-क्रोध-मान-माया लोभ-रति-अरति-निद्रा-शोग—हिंशा-झूट-चोरी-विषय-भय-मत्सरता-प्रेम-क्रिडा-हाँस-मोह-ममत्व इत्यादि सब दुर्गुणों रुप अपवित्रताका नाशकर आप निर्दोषी परम पवित्र हुवे हो, जिससे गुण निःपन्न आपके अनेक नाम हैं. जैसेः—

१ आपने घन घातिक कर्मोंका नाश किया जिससे आप 'अरिहंत' कहलाते हैं. २ भवांकूर व कर्मांकूर का नाश किया इसलिये 'अरुहंत' कहलाये. ३ सुरेन्द्र नरेन्द्रादि सबके पूज्य हुवे इसलिये 'अर्हंत' कहलाये. ४ (१) ज्ञानवंत, (२) महात्मवंत (३) यशश्वी. (४) वैरागी. (५) मुक्त, (६) रूपवंत. (७) अनंतबली, (८) तपश्वी. (९) श्रीमंत. (१०) धर्मात्मा. (११) सर्वपुज्य. (१२) परमेश्वर. इन बारह गुण युक्त हुवे जिससे 'भगवंत' कहलाये. ५ रागद्वेष रूप महा जोधे शत्रूओं को जीते इस लिये 'जिनेश्वर' कहलाये. ६ परम उत्कृष्ट पदको प्राप्त हुवे या सर्वके इष्ट-सुख के कर्ता हुवे जिससे 'परमेष्टी' कहलाये. ७ सर्व के रक्षक व सब के मालिक हुवे जिससे 'परमेश्वर' कहलाये. ८ गुरुके उपदेश बिन स्वयंमेव प्रतिबोध पाये इस लिये 'स्वयंबुद्ध' या 'सहस बुद्ध' कहलाये. ९ साधू-साध्वी-श्रावक-श्राविक रूप चार तीर्थकी स्थापना करी इस लिये 'तीर्थंकर' कहलाये. १० सर्व पुरुषोंसे आप अत्युत्तम होनेसे 'पुरुषोत्तम.' ११ शूर वीर धीर होने से 'पुरुष सिंह.' १२ सर्व देवों के पूज्य होने से 'देवाधीदेव.' १३ रागद्वेष के क्षय होने से 'वीतराग.' १४ सर्वोके रक्षक होने से 'लोक नाथ.' १५ जन्मतेही त्रिलोकमें प्रकाश करने से व ज्ञान करके सर्व लोक में प्रकाश करने से 'लोकप्रकाशिक.' १५ सातों भय के नाश करने से 'अभय.' १६ अनंत ज्ञानादि ऋद्धिके धारक होने से 'अनंत' कहलाये. १७ सर्व भव्यो ! का मर्यादमें चलानेवाले होने से 'महा ग्वाल.' १८ मोक्ष पूरीमें जाते अन्य भव्य गणोंको ज्ञानादि सबल देकर साथ रखने से 'सार्थवाही' १९ चारों दिशामें आज्ञा व धर्म प्रचार करने से 'धर्म चक्री.' २० संसार रूप समुद्रमें पडे जीवोंको आधार भूत होने से 'धर्मद्विप.' २१ अनेकान्त वादके स्थापक होने से 'स्याद्वादि.' २२ सर्व चराचर पदार्थों के जाण होने से 'सर्वज्ञ.' २३ सर्व

पदार्थ देखे सो 'सर्व दर्शी,' २४ संसार के पार हुवे अर्थात् पुनर्जन्म रहित हुवे. या सर्व कार्य की समाप्ती करी अर्थात् निरिछित हुवे. सो 'पारंगत' २५ हितोपदेश कर सर्व के रक्षक सो 'आप्त.' २६ जिनका श्वरुप आज्ञानियों के लक्षमें न आवे सो 'अलक्ष.' २७ चिद् कहीये ज्ञान और घन कहीये समोह अर्थात् संपूर्ण ज्ञान मय हो इसलिये 'चिद्-घन' २८ आपके आत्म प्रदेश पर कर्म रुप अंजन नहीं लगे सो 'निरंजन.' २९ अनंत दान आदि लब्धीके प्रगटने से सर्व करने सामर्थ्य हुवे इस लिये 'प्रभू.' ३० सर्व प्रकार कर्म आवरण दूर होने से खूद चैतन्य का निज स्वरूप प्रगट हुवा इस लिये 'केवली' ३१ परम उत्कृष्ट आत्म पद को प्राप्त हुवे सो 'परमात्मा.' एंसे २ गुण निष्पन्न एक सहश्र और आठ नाम का कथन तो जिन सहश्रीमें किया गया है. और आप तो अनंत गुणों के धारक हो इस लिये आपके अनंत ही नाम हैं. जिनका वरणन करते कौन पार पाने सामर्थ्य है ? अर्थात् कोइ नहीं.'

शिवो ऽथादि संख्यो ऽथ बुद्धः पुराणः
पुमानप्य लक्ष्यो ऽप्यनेको ऽप्य थैकः
प्रकृत्यात्म वृत्याप्यूपाधि स्वभावः
स एकः परात्मा गतिर्मे जिनेन्द्रः

अर्थात्–१ कर्मोके उपद्रव रहित होनेसे आप 'शिव' हो. २ अपने तीर्थ की आदि के कर्ता होनेसे आप 'आदि संख्य' हो ३ तत्व पदार्थों के जाननेवाले होनेसे आप 'बुद्ध' हो ४ अनादिसे हो इस लिये 'पुराण-वृद्ध' हो ५ सर्व जीवोंके रक्ष होनेसे 'पुमान' हो. ६ इन्द्रिय जनित ज्ञान के ग्राहाज में नहीं आनेसे 'अलक्ष्य' हो. ७ अनन्त पर्यायात्मक वस्तुओं के ज्ञाता होनेसे 'अनेक' हो, ८ द्रव्याश्रित निश्चय नय से 'एक हो' ९ श्रद्धा भासना और रमणता की प्रणति कर स्वसमय हो. ऐसीही अहो परमात्मा! मेरी गति होवो. ऐसे २ अनेक तरह कवीयोंने नामका कथन किया है,

अहो कृपानिधे ! धर्मकी आदीके कर्त्ता आपही हो, अर्थात् आपके पहेले धर्मोपदेशक कोइ भी नहीं हुवा; जो २ धर्मोपदेशको धर्मोंपदेशकरके अपना २ नाम चलाते हैं, परन्तू वो आपहीका दिया हुवा ज्ञान-दान का प्रसाद है, ऐसे ही सर्व जगजन्तू ओंको अभयके दाता, ज्ञान चक्षुके दाता, मुक्ति मार्गके वताने वाले, जन्म जरा मरण का व आधी व्याधी उपाधी का दुःख को मिटा सरण में रखने वाले. अनंत अक्षय तप संयम रूप जीवत्व (खरची) के देने वाले, पुनः किसीभी प्रकारके दुःखमें जीव नहीं पडे ऐसा सद्बोध के कर्ता, एक आपही हो ! अहो दानेश्वरी आपके परमोपकार का मैं कहां लग कथन करूं ! सर्व जगन्तूओं पर आपका अनंतानंत उपकार प्रवर्त रहा है.

अहो निरोपम ! में आपकी तुल्यना किसी के भी साथ करने सामर्थ्य नहीं हूं. क्यों कि अन्य जगत् में कहलाते हुवे देव कितनेक स्त्री यो के वशी भुतहो कोव्यानवन्ध तप किया हुवा हरगये, वनोवन उनके साथ नाचते फिरे, स्त्री योके वियोगसे रूदन किया. विषया सक्त हो पुत्री के साथ गमन किया, परस्त्रीको स्वस्त्रीके डरके मारे जटामें छिपारखी, स्त्री योके सन्मुख निर्लज्ज वने जिससे ऋषियों ने शाप दिया जिससे लिंग पतन हुवा, सव शरीर में सहश्रों भग पडे, लांछन लगा, केइक नाम धारी देव गांजा भङ्ग आदिके नशेमें गुंग रहे. कितनेक देव शत्रू ओंके डरके मारे चौतर्फ भगते जान छिपाते फिरे, कितनेक अन्धे लूले, लंगडे, काणे, कुष्टीवने. ऐसी२ अनेक कथाओं उन देवोके भक्तोनही उनके पुराणों में कथ कर वरोक्त कलङ्को की स्थापना करी है, परन्तू अहो निर्दोषी प्रभू ! आपको चौरी करने की भी कुछ जरुर नहीं है, क्यों आपके पास अनंत अक्षय ज्ञानादि ऋद्धिका खजाना है. जिससे आपकी तृष्णा का सर्वतः नाश हूवा है. और आप जैसे कल्पांत कालका

कोपा हुवा पवन भी मेरु पर्वतको नहीं हलासकते है, तैसे इन्द्रकी अपसरासी आपके चितको चालित नहीं करशक्ती है तो दूसरी का कहनाही क्या ? और ज्ञान वैराग्यमें आपकी आत्मा सदा तल्लीन है, इसलिये आपके मनको शांत करने नाशा, गायन, वाजिंत्र, नृत्य. वगैरा किसीकी भी आवश्यकता नहीं है. आपने शत्रूओं उत्पन्न होने का मूल जो राग द्वेष है उसका नाश कर दिया इसलिये आपका कोई भी शत्रू न रहा तो फिर आपको शस्त्रादि धारण करने की क्या जरुर है? अर्थात् कुछ नहीं. आप सर्वज्ञ हो इसलिये आपको याद दास्तिके लिये माला सगण्या रखने की कुछ जरुर नहीं. आप महा संतोषी—सदा त्रप्त हो इसलिये आपको धूप पुष्प फल नैवद (पूजापे) की कदापि इच्छा नहीं होती है. आपका मूल शरीरही १००८ उत्तम लक्षण और सर्व उत्तमोत्तम विभुती कर कर अत्यन्त ही सु-शोभित है. इसलिये आपको वस्त्र भुषणा आदि किसी भी प्रकारके श्रंगार सजने की जरुर नहीं. आप जगत् प्रकाशी हो इसलिये आपके आगे दिपक के प्रकाशकी कुछ जरुर नहीं आप महा दयाल हो इसलिये आप पृथवी-पाणी-अग्नी-हवा-विनास्पति और त्रस जीवों की हिंसा कर आप को खुशी करने वाले भी वडा जब्बर भुल करते हैं, अर्थात् आप हिंसा से कदापी संतुष्ट नहीं होते हो. इत्यादि अनेक आपके सद्गुणों का मेरे हृदयमें भास होने से आप सिवाय अन्य सब देवों फक्त नाम मात्र ही भलाही देव होवो, परन्तु गुणों से तो कृ देवही आप होते हैं. और सर्व देवाधी देव आपही हो, ऐसा मुजे निश्चय हुवा है.

अहो गुणागर देव ! आपके कितनेक गुणों अल्पज्ञ को बडाही आश्चर्य उत्पन्न करते हैं. जैसे—१ आप सर्वज्ञ हो कर जीवकी आदी और अलोक का अन्त नहीं बतया ! २ सर्व दर्शी हो कर आप स्वप्न कदापी

नहीं देखते हो! ३ वीतराग होकर भी आपकी आज्ञाका आराधन किये विन मोक्ष नहीं देते हो. ४ निर्द्वेषी होकर भी आपकी आज्ञा का भंग करने वालेको अनंत संसार परि भ्रमण करना पडता है. ४ स्त्रीके त्यागी होकर भी शिव (मोक्ष) की अभिलाषा है. ५ वज्र आदि आयूध (शस्त्र) रहित होकर भी 'मोह' नामक महा दैत्य-का संहार किया. ६ राज्यासनके त्यागी होकर भी जगत् नाथ वजते हो! ७ अनंत वलवंत होकर भी एक कुंथुवे की भी घात नहीं कर शक्ते हो. ८ अनंत ऋद्धिके धारक होकर भी भिक्षावृत्तीसे निर्वाह करते हो. ९ सर्व त्यागी होकर भी त्रिगडे की विभूती भोगवते दि-खते हो. १० समभावी होकर भी आपकी निंदा करने वाला दुःख पाता है, और वंदन करने वाला सुख पाता है. ११ सर्वको अभय दानके देने वाले होकर भी पाखान्डियों का मान मर्दन करने आपके आगे आकाशमें धर्म चक्कर गरणाट करता हुवा चलता है. १२ दया-लु होकर भी कर्म शत्रूओंका समूल नाश कर डाला. १३ तीर्थकी स्थापना करके भी गुप्त निध्यान व अनेक ऋद्धिसिद्धी जानते देखते हुवे भी आपके सेवकों को नहीं वताते हो. १४ विनयके सागर हो-कर भी किसीके आगे मस्तक नहीं झुकाते हो. दीनता नहीं वताते हो. १५ अप्रेमी होकर भी सेवकों को तारते हो. १६ अद्वेषी होकर भी निगुणोंका संग त्यागते हो, ऐसी २ अनेक वातों है, मैं कहां लग लिखु! अहो नाथ! आपका चारित्र तो वडाही आश्चर्य जनक है!!!

अहो जिनेश्वर! आपके नाम द्रविक और भाविक दोनों प्र-कारके गुणका प्रकाश दरशाते हैं. जैसे—१'ऋपति गच्छति परम पद मिति ऋषभ' अर्थात् जो परम पद (मोक्ष) को जाते हैं. सो ऋषभ-

देव. और आपकी माताने चउदह स्वपनकी आदिमे ऋषभ—वृषभ (बैल) का स्वपन देखा, या आपके चरण (पग) में बैल का लछन (चिन्ह) देखा, इस लिये आपका नाम ऋषभदेवजी रखा. २ 'परि सहादि भिर्नजितः इत्याजित' अर्थात् परिसह—उपसर्ग या कर्म आदि दुर्जय शत्रूओं का पराजय किया इस लिये अजित. और आप गर्भ में थे उस वक्त आपकी माता अपने पतीसे संवाद में जीत गइ, इस लिये आपका नाम अजित नाथजी रखा. ३ 'शं सुखं भव त्यस्मिन् स्तुतस शंभवः' जिनकी स्तुती करने से सुखकी प्राप्ती होवे सो संभव. और आप गर्भावास में थे उस वक्त श्रेष्टी में पडा हुवा दुष्काल मिट सुकाल हुवा. धान्य आदि की बहुत उत्पत्ती हुइ इस लिये आपको संभवनाथ कहे गये. ४ 'अभिनंद्यते देवेन्द्रादि भिरित्य भिनंदनः' देवेन्द्रादि ने जिनकी स्तुती करी सो अभिनंदन, और आप जब से गर्व मे पधारे तब से बहूत वक्त शक्रेन्द्र आये और आपकी स्तुती करी इस लिये आपको अभनिंदन कहे. ५ 'शोभना मतिरस्येति सुमति' श्रेष्टमति—बुद्धिके धारकसो सुमति. आप गर्भावास में आये पीछे आपकी माता की बुद्धि बहूत निर्मळ और प्रबल हूइ जिससे आपको सुमतिनाथ कहे. ६ 'निष्पंकता मंगी कृत्य पद्म स्येव प्रभाऽस्य पद्म प्रभः' विषय कषाय रूप कीचडसे पद्म कमलकी तरह अलग रहे सो पद्म प्रभू. और आपके शरीरकी पद्म कमल जैसी रक्त प्रभा, तथा आपकी माता को पद्म कमल की शय्या पर शयन कर ने का डोहला (वांछा) उत्पन्न हुवा सो इन्द्रने पूर्ण किया, इस लिये पद्म प्रभू नाम दिया. ७ 'शोभनौपार्श्व सुपार्श्वः' दोनों पासे शोभनीक होने से सुपार्श्व, और आपकी माता के दोनों बाजूके पासे (पांसालियें) वक्त (वाँकी) थी सो आपके गर्भ में

आने से सीधी होगइ इस लिये सुपार्श्वनाथ नाम दिया. ८ 'चन्द्रस्येव प्रभा ज्योत्स्ना सौम्य लेश्या विशेषाऽस्य चन्द्र प्रभः' चन्द्रमा के जैसी सौम्यलेश्या जिनकी है सो चन्द्र प्रभः, और आपके शरीर की चन्द्रमा के जैसी कान्ती तथा आप गर्भ में थे उस वक्त आपकी माताजी को चन्द्रमा घोल कर पी जाने का डोहल उत्पन्न हूवा सो बुद्धि के प्रभावसे पूर्ण किया इस लिये चन्द्र प्रभू नाम दिया. ९ 'शोभनो विधिर्विधानमस्य सुविधि' अच्छी विधी (क्रिया) से प्रवृते सो सुविधि. और आपके गर्भमें आये बाद आपकी माताजी अच्छी विधि-विशेष चतुराइसे रहने लगे इस लिये सुविधि नाथ नाम दिया. १० 'सकल सत्व संताप हरणात् शीतलः' सकल जीवोंके संताप का नाश कर शीतल-शांत बनाये जिससे शीतल. और आपके पिताजी को पित ज्वर होनेसे दहा हुवा था वो अनेक उपचार से भी शांत नहीं हुवा, और आप गर्भमें विराजमान हूवे बाद आपकी माता के हाथके स्पर्श से वो दहा शांत होगया-मिटगया. इस लिये शीतलनाथ. ११ 'श्रेयन् समस्त भुवन स्येव हितकरः प्राकृत शैल्याछान्द सत्वाच्च श्रेयांस इत्यूच्यत' सर्व जग जन्तूओ के एकांत हितही के कर्ता सो श्रेयांस. और आपके पिता के घरमें एक देव शय्याथी उस्पर शयन करने वाला असमाधी पाता था. परन्तु आप गर्भमें आये तब आपकी माताजी को उस शय्यापर शयन करने की वांछा हुइ और सयन किया, उन्हे किंचितही असमाधी न होते ज्यादा सुख प्राप्त हुवा इस लिये श्रेयांसनाथ नाम दिया. १२ 'तत्र वासूनां पूज्यः वासु पूज्यः' देवताओं कर पुज्य होय सो वासु पुज्य. (१) वास पूज्य राजाके पुत्र सो वासु पूज्य. (२) आप गर्भमें आये बाद आपकी माता की इन्द्रने पूजा करी इस लिये वासु पूज्य. (३)

वैश्रमण भन्डारी देव ने आपके पिता के घरमें वसु (लक्ष्मी–द्रव्य) की वृष्टी करी इस लिये वासु पूज्य नाम दिया. १३ 'विगतो मलोऽस्य विमलः विमल ज्ञानादि योगाद्वा विमलः' दूर हुवा अष्ट कर्म रूप मल (मैल) इस लिये विमल. तथा ज्ञानादि त्रिरत्न की निर्मळता होनेसे विमल. और आप गर्भवास में थे उस वक्त माताजीकी बुद्धि तथा शरीर निर्मळ हुवा इस लिये विमल नाथ, नाम दिया. १४ 'नविद्यते गुणानां मंतोऽस्य अनंत, अनंत कर्मांश जयाद्वाऽनंतः, अनंतानि वा ज्ञानादिनि यस्येत्यनंतः' (१) जिनांके गुण का अनंत नहीं सो अनंत, (२) अनंत कर्मों के अंशका नाश किया सो अनत, (३) अनंत ज्ञानादि चतुष्ट के धारक सो अनंत, और विचित्र रत्नों से जडी हुइ रत्नोंकी माला कि जिसके मौल्यका अंतही नहीं –ऐसा स्वप्न आप की माताने देखा इस लिये अनंत नाथ नाम दिया. १५ 'दुर्गतौ पतन्तं सत्वं संघातं धारयतिति धर्म्मः' दुर्गति में पडते जीव को धर (रोक) रखे सो धर्मः, और आप गर्भमें आये पीछे माताजीकी धर्म पर अधिक प्रीति हुइ, जिससे धर्म नाथ नाम दिया १६ "शांति योगात्रदात्मक त्वात्तत्कर्तृक त्वाच्चायं शांतिः" शांतस्वभावी, शांतस्वरुपी, और शांती के कर्ता होने से शांति और देशमें मृगीका रोग प्रचलित था उसवक्त आप गर्भ वासमें पधारे और आपकी माताने चारों दिशामें अवलोकन किया जिससे सर्व रोग का नाश हो शांती वरती इसलिये शांती नाथ नाम दिया. १७ "कुः पृथ्वी तस्यां स्थित वानिति कुंथु" कु नाम पृथवी का है और 'थु' नाम स्थिर होने का है, जो पृथवी में स्थिरी भूत हुवे सो कुंथु-और आप गर्भ में आये पीछे माताजी ने रत्नो के कुंथूवे की राशी देखी इसलिये कुंथु नाथ नाम दिया. १८ 'सर्वोत्तम महासत्वा कुले

य उपजायते तस्याभि वृद्ध ये वृद्धैर सावर उदाहृतः' सबसे अत्यूत्तम महा सात्विक कूल में जो उत्पन्न होवे, तथा कूलकी वृद्धी करे, सो अर और आप गर्भमें थे उसवक्त आपकी माता ने स्वप्नें रत्नो का अर (गाडी के चक्रके पइडा का आरा) देखा इसलिये अर नाथ नाम दिया. १९ 'परिसहादि मल्ल जयना निरुक्तान मल्लि' परि सहादि मल्लो को जीतने से माल्लि; और आप गर्भमें आये उसवक्त आपकी माता को मालती के फूलों की शय्यामें शयन करने का डोहला उत्पन्न हुवा वो देवता ने पूर्ण किया इसलिये माल्लि नाथ नाम दिया. २० मन्यते जगत् त्रि कालावस्था मित्ति मुनिः, शोभनानि भ्रतान्य स्येति सुव्रत, मुनि श्वासौ सुवृतश्च मुनि सूव्रतः तीन ही कालमें जो जगत् में माने जायसो मुनि, और जिनों के अच्छे वृत होवे सो सूव्रत इन दोनो अर्थ के मिलनेसे मुनिसूवृत, और आप गर्भ में थे उसवक्त आपकी माताजी ने मून सहित उत्तमोत्तम वृतों की आराधना करी इसलिये मूनि सुवृत नाम दिया. २१ 'परीसहोपसर्गादी नां नामनात् नमेस्तुवेति विकल्पे नो पांत्यस्ये कारा भाव पक्षे नमिः' परिसह उपसर्ग उत्पन्न हुये आप विलकुल ही क्षोभ नहीं पाते हुवे उनको नमाये सो नमि, और आपके पिता की आज्ञा सामान्य राजाओं नहीं मानते थे सो आपके गर्भ में आये पीछे सब शत्रूओं आपसे ही आकर नमगये, इसलिये नमीनाथ नाम दिया. २२ धर्म चक्रस्य नेमिवन्नेमि, धर्म चक्र की धारा प्रवृताइ सो नेमी, और आप गर्भमें पधारे तब माताजी ने अरिष्ट (श्याम) रत्नका धर्म चक्र आकाशमें गरणाट करता देखा इसलिये रिष्टनेमी नाम दिया. २३ 'स्पृशाति ज्ञानने सर्व भावनिती पार्श्व.' सर्व पदार्थों को ज्ञान करके स्पर्श्ये इस लिये पार्श्व और गर्भासयेंम थे उसवक्त आपकी माताजी ने

अन्धारे में जाते हुवे सर्व को पासा (देखा) इसलिये पार्श्व नाथ नाम दिया. २४ ' विशेषण इरयति प्रेरयति कर्माणीति वीर ' जो विषेश कर कर्मों का प्रेरे-त्रास देवे सो वीर और (१) जन्मते ही सुमेरू नामें जबर पहाड को अगुष्टके स्पर्श्य मात्रसे धूजाया, (२) बचपन में दैत्य रूप धारनकर छल करने आया था उसे आपने हराया. (३) या अति घोर परिसह उपसर्ग को समभाव से सहे इसलिये 'महा वीर' नाम दिया. और आप गर्भावास में पधारे पीछे आपके पिता के घरमें धन धान्य आदि संपती की बहुतही स्मृद्धि हूइ देख कर 'वृद्ध मान' नाम दिया.

जैसे इस वृतमान काल के चौवीस तिर्थंकरों के नामकी स्थापना गुण प्रमाणे हुइ है, तैसे ही गत कालमें जो अनंत तीर्थंकर हुवे उन के नामकी स्थापणा हुइथी. और आवते कालमें जो अनंत तीर्थंकर होंगे उनके नामकी स्थापना होगी, मतलबकी अहो तीर्थंकर प्रभू ! आपके नाम द्रव्य और भाव दोनो तरह शुभ गुणों से भरपूर होते हैं ! और इस बातको जरा दीर्घ द्रष्टी से विचारते मनेंम बडा आश्चर्यानन्द होता है कि-जिनों ने गर्भाशय में रहेही पुण्यकी प्रबलता का सब को सुखदाता ऐसा २ चमत्कार बताया, वो महान् प्राणी बाहिर आकर जन्म ले कर क्या नहीं करेंगे ? अर्थात् अच्छा सब ही करेंगे.

अहो परमात्मा ! आप अचिन्त्य शक्ति के धारक हो, महा दिव्य रुप के धारकहो, अलोकीक ऋद्धि कर विभुषित हो, गणधर आदि सहश्रों मुनिगण के से वनियहो. स्याद्वाद से सत्य-न्याय मोक्ष मार्ग के स्थापक हो, ज्ञान अतिशय, वाग [वाणी] अतिशय, अपाया पगमा अतिशय, और पुज्यातिशय, इन ४ अतिशय कर सर्व जगत्

के पुज्य हुये हो, आपकी जघन्य ७ हाथ की अवगहना होती है, और उत्कृष्ट ५०० धनुष्यकी अवगहना होती है, और जघन्य ७२ वर्षका, उत्कृष्ट ८४०००० पुर्व का आयुष्य होता है. जिसमें केइ पूर्व केइ वर्ष तक श्रमण पर्याय साधू पना पाल, केवल पर्याय पाल. ग्राम नगर आदि में उग्र विहार कर, सत्य धर्मका प्रकाशकर, अंतः अवसर द्वादशांग वाणी रुप रत्न करन्ड को गणधर आचार्य के सुपरत कर, अत्यन्त अत्यूत्तम भाव समाधी को प्राप्त होकर. बाकी रहे चार-अघातिक कर्माका सर्वथा नाश कर, आप परमपद-सिद्ध पदको प्राप्त होते हो, उस पदका वरणन् आगे दूसरे प्रकरणमें करने की अभीलापा रख, पहेले आप श्री जी के चरणमें त्रि-करण त्रि-योग कि विशुद्धी से अत्यन्त नम्राता युक्त वारम्वार वंदना नमस्कार करता हूं सो अवधारीयेजी.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के
बाल ब्रह्मचारी मुनिश्री अमोलख ऋषिजी महाराज
रचित परमात्म मार्ग दर्शक नामक ग्रन्थका
'अर्हन गुणानुवाद' नामक प्रथम प्रकरण
समाप्त.

प्रकरण—दूसरा.

" सिद्ध-गुणानुवाद."

अहो सिद्ध भगवंत! आपका पद वोही जीव प्राप्त कर शकता है कि जो पन्दरह कर्म भोमीयों के क्षेत्र में, आर्य देश में, मनुष्य पणे उत्पन्न हुवा हो; सो भी चरम (छेले) शरीरका धारक हो, वज्र वृषभ नाराच मंघयण, भव्य सिधिकता, पण्डित वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व, यथा ख्यात चरित्र परम शुक्ल लेशा, केवल ज्ञान और केवल दर्शन; इतने गुण की जोगवाइ जिस जीवको होती है वो जीव ही आपके पद तक पहोंच सकता है.

अहो सिद्ध प्रभू! आपका पद प्राप्त करने प्रवृत हुवे केवली भगवंत के जो आयुष्य कर्म तो अल्प होवे, और वेदनिय कर्म ज्यादा होवे तो दोनोंको बराबर करने स्वभाविकही आठ समय में समुत्वात (आत्म प्रदेश का मथन हो स्वभाव से अन्य भाव में प्रगमना) होती है, १ प्रथम समय नीचे निगोद (सातमी नर्क के नीचे) से लगाकर उपर लोकके अंत तक आत्म प्रदेश दंडवत् लम्बे होजाते हैं, २ दूसरे

समयमें वो दंडवत् प्रदेशों पूर्व पश्चिममें कपाट (पटिये) वत् हो जाते हैं, ३ तीसरे समयमें वो कपाट वत् प्रदेशोंका दक्षिण उत्तरमें मथन–चूरा हो जाता है. ४ चौथे समय में संपूर्ण लोकमें किंचित मात्र ही स्थान बाकी रहा हो सो उन प्रदेशों कर प्रति पूर्ण भरा जाता है. उसवक्त केवली भगवंत त्रिश्व व्यापी हो जाते है. * उसवक्त जिनका बदला देनेका होता है वो उन प्रदेशों कर चूका देते है. कितूर्त निवृती करण होता है, ५ पांचमें समय लोक पूर्णता से निवृते ६ छट्टे समय मथनतासे निवृते. ७ सातमें समय कपाट अवस्था से निवृते, और ८ में आठमें समय दंडत्वका उप संहार हो कर स्वभाव-मूल रूपको प्राप्त होते हैं. + यह समुत्घात होती वक्त पहेले और सातमें समयमें उदारिक काया योग प्रवृतता है, दूसरे और छट्टे समय में उदारिक मिश्र काया जोग प्रवृतता है, यह मिश्रता कारमाण जोग के साथ होती है, और चौथे पांचमें समय में फक्त एकही कारमाण जोग ही प्रवृतता है, इस वक्त अन अहारिक होते हैं. यह समुत्घात छः महीने से कमी आयुष्य होवे उसवक्त केवल ज्ञान उत्पन्न होवे उन ही के होती है, अन्यके नहीं.

अहो सिद्ध भगवंत! आपके पदको प्राप्त होनेके कामी वरोक्त समुत्घात से निवृते बाद अथवा जिनके समुत्घात न भी हो ऐसे केवली भगवंत जब अयोगी अवस्थाको प्राप्त होते हैं, तब मन वचन और काया के जोगोंको निरुंधन करने, शुक्ल ध्यानका तीसरा पाया

* जो ईश्वर को विश्व व्यापी कहते है. वो इसी कारण से कहते होवेंगे.

+ यह समुत्घात करने नहीं है, क्यों कि किसी भी काम करने असंख्यात समय लगते हैं. और यह तो फक्त ८ समय में ही होती है इस लिये यह विना की हुइ स्वभाव से ही होती है.

प्रकरण—दूसरा.

" सिद्ध–गुणानुवाद."

अहो सिद्ध भगवंत ! आपका पद वोही जीव प्राप्त कर शकता है कि जो पन्दरह कर्म भोमीयों के क्षेत्र में, आर्य देश में, मनुष्य पणे उत्पन्न हुवा हो; सो भी चरम (छेले) शरीरका धारक हो, वज्र वृषभ नाराच मंघयण, भव्य सिधिकता, पण्डित वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व, यथा ख्यात चरित्र परम शुक्ल लेशा, केवल ज्ञान और केवल दर्शन; इतने गुण की जोगवाइ जिस जीवको होती है वो जीव ही आपके पद तक पहोंच सकता है.

अहो सिद्ध प्रभू ! आपका पद प्राप्त करने प्रवृत हुव केवली भगवंत के जो आयुष्य कर्म तो अल्प होवे, और वेदनिय कर्म ज्यादा होवे तो दोनोंको बराबर करने स्वभाविकही आठ समय में समुत्घात (आत्म प्रदेश का मथन हो स्वभाव से अन्य भाव में प्रगमना) होती है, १ प्रथम समय नीचे निगोद (सातमी नर्क के नीचे) से लगाकर उपर लोकके अंत तक आत्म प्रदेश दंडवत् लम्बे होजाते हैं, २ दूसरे

होते हैं तब आत्मा उर्द्ध दिशा को स्वभावसे ही गमन करती है, जैसे (१) कुंभार का चक्र घुमा कर छोड देने से फिरता रहता है. तैसे हो कर्म धक्केसे छुटी हुइ आत्मा सिद्ध स्थान तक चलती है. २ जैसे मट्टी के और शण के लेप से भारी हुवा तुम्बा नामक फल पाणीमें डूवा था वो लेपका संग छूटने से उपरही आनेका स्वभाव है, तैसे आत्मा देही के असंग होने से उर्द्ध जानका स्वभाव है. ३ जैसे एरंड नामक वृक्ष के फल का वीज फलके बन्ध से मुक्त होतेही ऊंचा उछलता है, तैसे कर्म वन्ध से आत्म मुक्त होते ऊंची जाती है, और जैसे अग्नि शिखाका उर्द्ध गमन का स्वभाव है, तैसे आतमाका भी उर्द्ध गमन करने का स्वभाव है. इन चार द्रष्टांत के मुजव आत्मा लोकके अन्त तक जाता है. उसवक्त जितने आत्मा के प्रदेश हैं, उतने ही आकाश प्रदेशका अवलम्बन कर, विग्रह (बांकी) गती रहित, फक्त एक समय मात्रमें सातराजू जितना क्षेत्र का उलंघन करती है, आगे जीवको गती स्वभाव की प्रेरक धर्मास्तिकाय नहीं है. जिससे लोक के अन्तमें ही आत्मा स्थिरी भूत हो जाता है, और वोही आत्मा सिद्ध पद आपके पदको—आपके रूपको प्राप्त होती है. इस तरह से गये काल में अनंत सिद्ध हुवे हैं, और वर्तमान कालमें महा विदेह आदी क्षेत्र से संख्याते सिद्ध होते हैं. सव सिद्ध वनस्पति का दंडक छोड तेवीस दंडक से अनंत गुणे अधिक हो. और वनस्पतिसे (निगोद आश्रिय) अनंतमें भाग हो. ऐसे भिन्न २ जीव सिद्ध हुवे हैं, यों गिनें तो अनंत हो, और स्वरूप आश्रिय एक ही हो.

अहो सिद्ध परमात्मा! आप जहां विराजमान हो वहां नीचे पृथवी मय एक सिला पट है. उसे सिद्ध सिला कहते हैं; वह ४५०००० पेंतालीस लक्ष जोजन की लम्बी चोडी (गोळ) है. मध्य

बीचमें आठ जोजन की जाडी है, कम होती २ किनारपर मक्खीकी पांख से भी अधिक पतली है. तेलसे भरा हुवा दीवा, पतासा, तासा नामक वाजिंत्र, और सीधा (चित्ता) छत्र जिस आकारमें होता है वैसी हैं. अर्जुन (श्वेत) सुवर्ण की, घटारी मटारी. अत्यन्त सूहाली, सुगन्ध से मघमघाय मान, देदिप्य मान प्रकाश करती, अत्यन्त सुहामणी मनोहर है. परन्तु अहो सिद्ध भगवंत, आप को उस सिला से कुछ सम्बन्ध नहीं है. आप उसपर विराजते नहीं हो, आप को उसका किसी प्रकारका आधार नहीं है. फक्त उसके उपर सिद्धस्थान होनेसे, या सीधी अढाइ द्विपके उपर होनेसे, या सीधी-सुलटी होने से सिद्ध सिला नाम कर के बोलाइ जाती है. और आप तो उस से अलग हो, अर्थात् सिद्ध सिला के उपर एक जोजन ही लोक है. उस जोजन के पांच भाग तो नीचे छोडना और उपर का छट्टा भाग जो ३३३ धनुष्य और ३२ अंगु . जितनी जगह रही उतनी जगह में अनंतानंत सिद्ध भगवंत जो गये कालमें हुवे सो विराजते हैं. और आवते कालमें जो अनंतानंत सिद्ध होंगे उनका भी उतनी ही जगह में समावेश होजायगा, परन्तु वहां की किंचित् मात्र ही जगह रूकती नहीं है. यथा दृष्टान्त जैसे एक कोटडीमें एक दीपक के प्रकाश का भी समावेश होता है, और हजारों दीपक के प्रकाश का भी समावेश होता है; तो भी किंचित् मात्र जगह रूकती नहीं है अर्थात् उस प्रकाश स्थलमें अन्य भी वस्तु स्थापन कर सक्ते हैं. जैसे प्रकाश जगह रोकता नहीं है. तैसेही अनन्तान्त सिद्ध एकत्र रहने से भी किंचित् मात्र ही जगह रूकती नहीं है. क्यों कि आप का स्वरूप ही 'ज्ञान स्वरूप ममलं प्रवन्दती संतः' संत महात्मा ने ज्ञान जैसा बताया है. अर्थात् जैसे किसीने बहुत विद्या का अभ्यास

किया है वो सब विद्या का समावेश उसकी आत्मा में हुवा है, उसे विद्याको वो करामलवत् (हाथमें अवले नामक फल की माफिक) बता नहीं सक्ता है, तैसे है सिद्ध प्रमातमा आपका स्वरूप वरिष्ट विद्वरों, आत्म ज्ञानीयों-परोक्ष प्रमाणसे और केवल ज्ञानीयों प्रत्यक्ष प्रमाण से जानते है, परन्तु अज्ञ जनो को बता नहीं शक्ते हैं. ऐसे आप हो, अर्थात् छद्मस्थों (आवरण यूक्त [ढके हुवे] ज्ञान वाले) के अपेक्षा से अरूपी-दृष्टी गोचर नहीं होते हो. और केवली (निराभरण ज्ञान वाले) की अपेक्षा से आप रूपी भी हो. क्यों कि जीव द्रव्य आत्मा वंत हो, ऐसा विचित्र आपके स्वरूप का विचार करते मनमें वडाही आश्चर्यानंन्द उत्पन्न होता हैं ! और उमंग जगती है कि 'सिद्धा सिद्धी मम दिसंतू ' अहो भगवंत यह आपके सिद्ध स्थान या सिद्ध स्वरूप के जैसे परोक्ष ज्ञान द्वारा दर्शन दिये, तैसे प्रतक्ष ज्ञान द्वारा भी फक्त एकही वक्त दर्शन देकर मुझे कृतार्थ की जीय !

यह तो द्रव्यात्मक विचार किया, अब गुणात्मक विचार द्वारा विचार करते हैं; अहो भगवंत! आप आन्तान्त गुणोंके और अतिशयों के धारक हो ! यथा आप अनादी संयोगी अष्ट कर्मोका समूल नाश किया जिससे अष्ट गुणों की प्राप्ती हुइ, १ ज्ञाना वरणिय कर्म के क्षय होने से केवल ज्ञानकी प्राप्ती हुइ, जिससे सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, और भवोंकी प्रवृती को युगपत (एकही समय में) जान रहे हो. २ दर्शना वरणिय कर्मके क्षय होने से केवल दर्शन की प्राप्ती हुइ, जिससे सर्व द्रव्यादि की प्रवृती को युगपद देख रहे हो. ३ वेदानिय कर्म के क्षय होने से अव्याबाध हुवे, जिससे अनंत निराबाध शिवसुखी हो. ४ दर्शन मोहनिय कर्म के क्षय होने से अ-

नंत शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वी हो, जिससे आत्म भाव में ही रमण है, और चारित्र मोहनिकर्म के क्षय होने से निष्कषायि हो, जिससे अनंत शांत स्वभावी हो. ५ आयूष्य कर्म के क्षय होने से अजरामर हुवे, जिससे पुनरावर्ती रहित हो. ६ नाम कर्म के क्षय होने से असुर्ती हुवे, जिससे सर्व उपद्रव रहित शिव हो, ७ गौत्र कर्म के क्षय होने से सर्व अव लक्षण (दोष) रहित हुवे. जिससे सर्व मान्य हो. और ८ अंत्तराय कर्म के क्षय होने से अनंत वीर्य वन्तहो जिससे अनंत शाक्ति वंत हो.

और भी आपके ३१ गुण अतिशय हैं—कृष्ण, नील, रक्त, पित, श्वेत यह पांचोही वरण रहित हो. सुर्भीगन्ध, दुर्भीगन्ध यह दोनों गन्ध रहित हो. कटु, तिक्त, मधु, आंबिल, क्षारा यह पांचोही रस रहित हो. गुरु, लहू, कर्कश, मद्दू, सीत, उष्ण, स्निग्ध, लुख यह आठोंही स्पर्श्य रहित हो. वट्ट, त्रस, चौरंस, परिमन्डल, आइतंस यह पांचोही संठाण रहित हो. स्त्री पुरूष, नपुंशक, इन तीनोंही वेद रहित हो. जन्म, जरा, मरण इन तीनोंही दुःख रहित हो. यह आपके इकतीस अतिशय हैं.

और भी आप ३१ दोष रहित हो—१ क्रोध. २ मान. ३ माया, ४ लोभ, ५ राग, ६ द्वेष, ७ रति, ८ अराति, ९ हाँस, १० मोह, ११ मिथ्यात्व, १२ निद्रा, १३ काम, १४ अज्ञान, १५ मन, १६ वचन, १७ काया, १८ संसार, १९ इन्द्रि, २० कंदर्प, २१ शब्द, २२ रूप, २३ गन्ध, २४ रस, ०५ स्पर्श्य, २६ अहार, २७ निहार, २८ रोग, २९ शोग, ३० भय, ३१ जुगुप्सा, यह एकतीसही दोष आपमें किंचित मात्र नहीं हैं.

और भी आप अनेक गुण गणोंके सागर हो. जैसे—निराकार,

निरालम्ब, निरासी, निरूपाधी, निरविकारी, अक्षय, अनादी, अनंत, अखन्ड, अक्षर, अनक्षर, अचल, अकल, अंमल, अगम, अरुपी, अकर्मी, अबन्धक, अनुदय, अनाद्रिक, अवेदी, अभेदी, अछेदी, अखेदी, असखायी, अलेशी, अभोगी, अव्यावाध, अनंत, अनावगाही, अगुरुलघु, अपरिणामी, अनिंद्रिय, अविकारी, अयोनी, अव्यापी, अनाश्रयी, अकम्प, अविरोधी, अखान्डित, अनाश्रव, अलख, अशोक, अलोक ज्ञायक, स्वद्रव्यवंत, स्वक्षेत्रवंत, स्वकालवंत, स्वभाववंत, द्रव्यास्तिक से नित्य, पर्यायास्तिक से अनित्य, गुण पर्याय पणे नित्यानित्य-सिद्धस्वरूपी, स्वसत्तावंत, पर सत्तारहित, स्वक्षेत्र, अनावगाही, पर क्षेत्र स्वपणे अनावगाही, धर्मास्ति-अधर्मास्ति-आकास्ति-पुद्गलास्ति-और काल इन के स्वभावसे भिन्न, स्वभाव के कर्ता, पर भाव के अकर्ता, शुद्ध, अमर, अपर, अपरापर, स्वभावरमणि, सहजानन्दी, पूर्णानन्दी, अजर, अविनासी, एक, असंख्य, अनंत, यों अनंतानंत गुणों कर आप सयुंक्त हो. मैं अल्पज्ञ महा प्रमादी कहांसे वरणव कर सकूं.

अहो सिद्ध भगवंत! आप अतुल्य सुख सागर में विराजमान हो, इस संसार में ऐसा किसी का भी सुख नहीं है, कि जिसकी आप को औपमा देवें, यहां सामान्य सुख शेठ लोकों के गिने जाते हैं, जिससे शैन्यपातिके अधिक, जिससे मंत्री श्वरके अधिक जिससे मंडलिक राजाके, जिससे बल देव के, जिससे वासूदेव के, जिससे चक्रवर्ती के, जिससे जुगलिये के, जिससे देवताके जिससे इन्द्रके जिससे अहेमद्रके सुख अधिक हैं, जिनसे सामान्य साधुके जिनसे तपश्वीजी के, जिनसे बहु सूत्री जी के. जिनसे आचार्यजी के, जिनसे गणधरजी के और जिनसे अर्हन भगवंत के सुख अधिक देखे जाते हैं, और तीर्थंकर भगवान से सिद्ध भगवंतके सुख अनंत गुण अधिक हैं.

यथा द्रष्टांत—जैसे किसी जंगली मनुष्यको पकड राजा निजस्थान में ले जाकर अत्युत्तम भोजन करा कर पीछा उसके स्थानको पहोंचा दिया, तब वो जंगली निज कुटम्बके सन्मुख राजभोजन की परसंशा कर ने लगा, पन्तु उस भोजन की स्वादकी तुल्यता करने वाला जंगल में कोइ भी पदार्थ बता सका नहीं. तैस ही अहो सिद्ध प्रभू! आपके सुख की तुल्यता करने योग इस श्रेष्टी में कोइ भी पदार्थ नहीं है. वस्तुका स्वाद तो उस को भोगनेवाला ही जानता हैं, परन्तू स्वाद का वरणव शब्द द्वारा हो सकता नहीं है. *

तो अहो सिद्ध भगवंत! पकपरे सुख यतो अतेन्द्रिय हैं. अर्थात इन्द्रि गोचर होवे. (इन्द्रियों से जान नेमें आवें) ऐसे नहीं है, और अनोपम हैं, अर्थात् किसी वस्तू की औपगा देनेमें आवें ऐसे नहीं हैं. इस लिये आपके सुख अनुभवी सिवाय अन्य नहीं जान सक्ते हैं. ऐसे अनंत अक्षय सुखमें आप सदा विराजमान हो.

अहो सिद्ध प्रभु! आपके सुख का वरणन कितनेक मन्तान्तरीयों अन्य २ प्रकार मन भानी कल्पना कर कहते हैं, जैसे—बौध मति अत्यंत अभावको प्राप्त होना उसेही मोक्ष बताते हैं. परन्तु वो यों नहीं विचारते हैं कि—जहां अत्यंत अभाव हुवा, आत्माही नहीं रही, तो फिर मुक्ति के सुखका अनुभव किसको होवे? नेयायिक, वैशिषिक मतावलम्बी ज्ञान के अभाव से जडता प्राप्त होवे उसे मुक्ति

* द्रष्टन्त—किसी कृपण शेठ ने कहां अरे हलवाई? तेरी मिठाइ बहूत लोक परसंशा करते हैं इस लिये कह देना कि तेरी मिठाइ कैसी अच्छी है? हलवाइ बोला शेठ! मिठाइ का स्वाद कहकर नहीं बताया जाता है, दाम खरच कर चखनेसे ही जाना जाता है? तैसेही मोक्ष के सुख करणी कर प्राप्त किये हैं वोही जानते हैं

मानते हैं. परन्तु वो यों नहीं विचारत्ते हैं कि ज्ञान का अभाव सो जड-पाषण रुप अपनी आत्मा को वनाने से कौन खुशी होगा ? कितनेक वेदान्तियों और पुराणि यों मुक्ति में गये जीवों की भी पुनरावर्ती (पीछे संसार में अवतर ना) वताते हैं. सो भी वे विचार की वात है. क्यों कि- संसार शब्द का अर्थ होता है कि-" संसृतिति संसारा " वारम्वार परि भ्रमण करना ऐसा होता है. और ऐसे संसार से छूटना उसे मुक्त कहते हैं. और जो मुक्त में गये पीछे भी जन्म ना वाकी रहा तो फिर संसार से विशेष मुक्ति में क्या है ? ईशाइयो, मोमीनो वगैरा कितनेक मुक्ति में अपत्सरा परीयों के भोग अमृत भोजन वगैरा वताते हैं. सो तो प्रत्यक्षही विषय लम्पटी दिखते हैं, जैमनिय के मताव लम्वी मुक्ति का नाशही वताते हैं. उनके अज्ञान की तो कहनाही क्या ? ऐसे २ अनेक मतन्तरी यों अनेक तरह से मुक्ति का कथन करते हैं. परन्तु जो कुछ मुक्ति मोक्ष का सत्त्य स्वरुप अर्हत भगवंत ने कैवल्य ज्ञान रुपी दुर्वीन से प्रत्यक्ष देखकर फरमाया है, वोही सत्या है, उनके वचाना नुसार ही अहो सिद्ध भगवंत मैने आपको पहचान कर आपके सत्य श्वरुप में श्रधा सील वनाहूं-और चहताहूं कि इस ही श्वरुप को मेरी आत्मा प्राप्त हो वो!

अहो सिद्ध पर मात्मा ! अव आपका श्वरुप सद्वाद-सप्त भंग कर विचार ताहूं:-१प्रथम स्यादास्ति भंग सो-स्यात् अनेकान्त ता से व सत् अपेक्षा से आस्ति-होना. उसे स्या दास्ति भंग कहते हैं. सो सिद्ध भगवंत् स्वद्रव्य सो अपने गुण पर्याय का समुदाय. स्वक्षेत्र सो अपने आत्मिक असंख्यात प्रदेश रुप क्षेत्र उसे अव गहा रहे हैं, स्व-काल सो इस विश्वालय में समय २ उत्पात. (उपज ना) व्यय (क्षय होने.) की वर्तना हो रही है उसे जानना. और स्वभाव सो अनंत

ज्ञान पर्याय, अनंत दर्शन पर्याय, अनंत चारित्र पर्याय, और अनं
अगुरु लघू पर्याय इन कर के सिद्ध भगवंत आपका आस्तित्वता
२ द्वितीया स्याद् नास्ति भंग सो-आप में पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भा
का नास्ति पना है. ३ तृतीय भंग स्यादास्ति नास्ति भंग सो-जिस स
मय में प्रथम भंग में कहे मुजब सिद्ध प्रभू आप में स्वगुणो कि अ
स्ति है, उसही समय में द्वितीय भंग मे कहे मुजब पर गुणों की न
स्ति होने से एकही समय में तृतीय भंग स्यादास्ति स्याद नास्ति क
आप में पाता है. ४ चतुर्थ भंग स्याद वक्तव्यं जो जो सिद्ध भगवंत
के गुण केवल ज्ञानी पूरुषों ने जाने हैं. और जितने वागर ने (कहने
जोग थे उतने वागरे हैं, सो वक्तव्यं. ५ पंचम भंग-अवक्तव्यं-पुर्वोक्त
स्यादास्ति स्याद नास्ति यों दोनो भंग सिद्ध भगवंत में एकही वक्त मे
पाते हैं, और स्यादस्ति इतना गव्द मात्र उचार ने में असंख्यात स
मय व्यतीत हो जाते हैं, तब फिर स्याद् नास्ति शब्द कहा जावे
इस लिये आस्ति कहे उसहीवक्त नास्ति नही कह सके, और नास्ति
कहे तब आस्ति नहीं कह सके, क्यों कि शव्द् कर्म वर्ती है, एक समय में
दो बचन उचार ने समर्थ कोइ भी नहीं होने से स्याद् अवक्तव्यं. ६
षष्टम भंग स्याद् वक्तव्य मवक्तव्य सो-चौथे भांगे मे कहे मुजब वक्त-
व्य है, और पंचम भांगे मे कहे मुजब अवक्तव्य है, यह दोनों भांगे
एकही समय में पाने से साद् वक्तव्य अवक्तव्य दोनो कहे जावें. और
७ सप्तम भंग स्यादास्ति नास्ति युगपत अवक्तव्य सो आस्ति नास्ति
दोना भांग एकही समय में सिद्ध भगवंत में पावे परन्तु वचन से
उच्चारन नहीं किया जाय. इस लिये सिद्ध भगवंत में सप्तम भंग जा-
नना. अहो प्रभू! यों सप्त भंग से आप के श्वरुप का चिन्तवन करते
अपुर्व अनुभव रस आता है.

अहो सिद्ध भगवंत! आप का श्वरुप षट कारको से विचार ता-हूं:– १ 'कर्ता–' ज्ञानादि गुणों जो आत्मा में गुप्त रहेथे उनको सर्व रुप से आप ने प्रगट किये इस लिये ज्ञानादि गुणों के प्रकट कर्ता आपही हो. २ 'कारण'- ज्ञानादि गुणों को प्रगट करने में ज्ञानादि गुण ही कारण रुप हैं. ३ कार्य'– ज्ञान गुण से अनंत ज्ञेय (जानने जोग) पदार्थ को जान ने का कार्य करते हो. दर्शन गुण से अनंत दर्श पदार्थ को देखने का कार्य करतेहो. चारित्र गुण से अनंत आत्मिक गुण में रमण ता करते हो. और वीर्य गुण से अनंत गुणों में सहाय कता रुप कार्य करते हो. ४ संप्रदान–समय २ में अनंत पर्याय ज्ञान से जान ना–दर्शन से देखना–चारित्र से अभि नव दयार्थ में रमण ता, और वीर्य से समय २ में अभि नव पर्याय सें सहाय कता. ५ अपा दान सो ज्ञानादि पर्याय में पुर्व पर्याय का व्यय होना. अर्थात् जो पर्याय नवीन उत्पन्न हुइथी उसे भी ज्ञान से जाणी थी, और उस पर्याय का व्यय-नाश हुवा सो ज्ञान से जाना. और ६ आधार ज्ञा-नादि गुण कीसदा ध्रुवता निश्चल ता जान ना. यह छा कार को कर आप का स्वरुप सहित है.

एसेही-१ अहो सिद्ध प्रमात्मा! आप नाम रुप एक हो, क्यों कि स-वको एक सिद्ध ही नाम से वो लाये जाते हैं. क्षेत्र से असंख्या हो. क्योंकि असंख्यात प्रदेशी क्षेत्र स्पर्श्य रहे हो: ७ गुण रुप असंख्या

* यह क्षेत्र से असंख्यात प्रदेशी क्षेत्र स्पर्श्य रहे हो. ऐसा कहा सो व्यवहारिक वचन है. परन्तु निश्चय से तो सिद्ध प्रभु स्वक्षेत्री हैं पर क्षेत्री नहीं हैं. क्यों कि जिस आकाश प्रदेश में सिद्ध कि अवग-हना हैं. उसही क्षेत्र में अजीव पुद्गल खंध. तथा निगोद राशी शरीर वगैरा अनेक द्रव्य हैं. इस लिये सिद्ध की अवगहना से क्षेत्र गाकाना नहीं हैं. दीपक प्रकाश वत्.

और अनंत हो क्यों कि एकेक प्रदेश पर अनंत २ गुण प्रगटे है, और प्रदेश असंख्याते हैं. पर्याय रुप अनंत हो, क्यों कि एकेक गुण की अनन्तन्त पर्याय की वर्तना है. और एकेक पर्याय पर अन्तान्त धर्म प्रगटे हैं. ऐसे पांच भंग से आप के स्वरुप का चिन्तन होता है. (२)आप अभोगी हो, क्योंकि आप शुभाशुभ इन्द्रियों के विकार से निर्वृते हो. और उप भोगी भी हो, क्यों कि अनंत ज्ञानादि गुण का भोग वाम्वार करते हो. (३) आप नित्य हो, क्यों कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र यह तीन गुण और अव्याबाध, अमूर्तिक, अनव गहाक, यह तीन पर्याय, नित्य है. और एक अगुरु लघु पर्याय, आपके सर्व गुणों में उपजने विनशने रुप हानी वृद्धि को प्राप्त होती है, इस लिये अनित्य भी हो. (४) आप योगी हो, क्यों कि आप के ज्ञानादि गुणों का संयोग है, और आप अयोगी भी हो, क्यों कि मन वचन काय के योग रहित हो, (५) आप अभव्य हो * क्यों कि आपका ज्ञानादि गुण रुप जो स्वभाव है, उसका पलटा कदापि नही होता है. और भव्य भी हो क्योंकि अगुरु लघू पर्याय कर के अनंत गुण में हानी वृद्धि रुप कार्य समय २ में उत्पाद व्यय रुप हो रहा है—पलट रहा है. और नो भव्य अभव्य भी हो क्योंकि मोक्ष स्थान प्राप्त कर लिया है. (६) आप स्थिर स्वभावी हो, क्योंकि सर्व कर्मों का क्षय कर-अपने निजात्म रुप को प्रगट किया जिससे लोकाग्र में जो सिद्ध स्थान है वहां सादी अनन्त में भांगे विराज मान हुवे हो, जिन आकाश प्रदेश को अवगहा कर के वीराजे हो वहां से कोइ भी वक्त चालित हो अन्य आकाश प्रदेश की स्पर्श्यना कदापि नहीं होगी. इस लिये स्थिर हो. और अस्थिर भीहो क्योंकि अगुरु लघू पर्याय का पलटा समय २ होता है. इस पर्यायों से हानी वृद्धि

* अभव्य उसे कहते है, कि जिसके स्वभावका पलटा कदापि नहीं होवे.

होती है. (७) आप रमणिक हो, क्योंकि आप ने शुक्ल ध्यान रुप अग्नि कर कर घातीये अघातीये सर्व कर्मों का आवरण जला कर नाश किया, जिससे अनंत ज्ञानादि समय आपका रुप प्रगट हुवा है, उसमें आप की रमणता सो रमणिक पणा है. ओर इन्द्रियों के सुख के हेतू जो पर स्वभाव रुप विभाव दिशा है उस से आप सदाही अ-रमनिक हो. इत्यादि अनेक युक्तियों कर आपका श्वरुप का चिन्तनव करते हुवे आत्मा में अद्वितीयानन्द उत्पन्न होता है.

अहो सिद्ध भगवन्त ! इस जगत् में सिद्ध नाम धारण करने वाले अनेक हैं, जैसे-नय सिद्ध, स्थापना सिद्ध, द्रव्य सिद्ध, शरीर द्रव्य सिद्ध, भव्य शरिर द्रव्य सिद्ध, यात्रा सिद्ध, विद्या सिद्ध, मंत्र सि-द्ध, जंत्र सिद्ध, तंत्र सिद्ध, अंजन सिद्ध, पादूका सिद्ध, गुटिका सिद्ध, खड्ग सिद्ध, माया सिद्ध, बुद्धी सिद्ध, सिल्प सिद्ध, तप सिद्ध, ज्ञान-सिद्ध, इत्यादि. परन्तु आपकी तुल्यता कोइ भी सिद्ध नही कर श-के हैं. क्योंकि वरोक्त सर्व प्रकार के सिद्ध-स-कर्मी हैं, और आप स-च्चे भाव सिद्ध सर्व कर्मों के क्षय होने से ही हुवे हो इसलिये सर्व सि-द्धों से वरीष्ट सिद्ध आपही हो. ऐसा मुझे भास होने से सर्व प्रकार के सिद्धों से रुची-भाव हट कर एक आपही मे लगा हैं.

अहो सिद्ध निरंजन ! आप के ज्ञान वर्ण आदी कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतीयों का विनाश होने से अष्ट कर्म रहित आप हुवे हो, जिससे—ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सम्यक्त्व, सुक्ष्म अवगाहन, अ-गुरूलघू और अव्यावाध; यह अष्ट गुण आपके प्रगट होने से आप सर्व उत्तमोत्तम गुण के स्थान हो, जैसे—१ पूर्व कालमें छद्मस्त अव-स्थामें भावना गौचर किये हुवे विकार रहित स्वानुभव रुप ज्ञानका फल भूत एकही समयमें लोक तथा अलोक के संपूर्ण पदार्थों में प्राप्त

हुवे. विशेषों को जानने वाला प्रथम केवल ज्ञान नामका गूण है. २ संपूर्ण विकल्पों से शुन्य निज शूद्ध आत्म सत्ताका अवलोकन, (दर्शन) रुप जो पहिले दर्शन भवित किया था, उसी दर्शन के फल भूत एकही कालमें लोकालोक के संपूर्ण पदार्थोंमें प्राप्त हुवे सामान्य को ग्रहण करने वाला केवल दर्शन नामा द्वितीया गूण है. ३ अतिही घोर परिसह तथा उपसर्गादि आनेके समय जो पाहिले आपने निरंजन परमात्माके ध्यानमें धैर्यका अवलम्बन कियाथा, उसही के फल भूत अनन्त पदार्थों के ज्ञानमें खेदके अभाव रूप लक्षण का धारक तृतिय अनन्त वीर्य नामक गूण है, ४ केवल ज्ञान आदि गूणोंका स्थान रूप जो निजशुद्ध आत्मा है, वाही ग्राह्य है. इस प्रकारकी रुची रूप निश्चय सम्यक्त्व जो कि पाहिले तप श्चरण करने कि अवस्थामें उत्पादित किया था, उसही के फल भूत समस्त जीव आदि तत्वों के विपय विप्रित अभी निवेश (जो पदार्थ जिस रूप है उस के विप्रित अग्रह) से शून्य प्रणाम रूप परम क्षायिक सम्यक्त्व नामक चौथे गुण के धारक हो. ५ सुक्ष्म अतीन्द्रिय केवल ज्ञानका विपय होने से आपके स्वरूपका सुक्ष्म कहा जाता है, सो सुक्षमत्व पंचम गुण है. ६ एक दीपक के प्रकाश में जैसे अनेक दिपकके प्रकाशका समावेश हो जाता है, उसही प्रकार एक सिद्ध भगवंत रहे हैं. उस क्षेत्र में संकर तथा व्यतिकर दोष के प्रहार पूर्वक जो अनन्त सिद्धों को अवकाश देनेका समर्थ है, वोही छट्टा अवगहान गूण है. ७ यदि सिद्ध स्वरूप सर्वथा गुरु (भारी) हो तो लोह पिन्ड के समान उनका अधः (नीचा) पड़ना (गिरना) होवे. और यदि सर्वथा लघु हलका हो तो वायुसे ताडित अर्क (आकडे के) वृक्षकी रुइ के समान उनका निरन्तर भ्रमण ही होता रहे. परन्तु सिद्ध स्वरूप एसा नहीं है, इस लिये

सातवा अगुरू लघू गूण कहा जाता है. ८ स्वभावसे उत्पन्न और शुद्ध जो आत्म श्वरूप है उस से उत्पन्न तथा रागादि विभावों से रहित; ऐसे सुख रूपी अमृतका जो एक देश अनुभव पहिले किया उसीके फल रूप अव्याबाध अनन्त सुख नामक अष्टम गुण के धारक आपहो?

यह जो सम्यक्त्वादि आठ गुण कहे सो मध्यम रूची के धारको के लिये हैं, और विस्तारमें मध्यम रूची के धारक प्राति तो विशेष भेद नय का अवलम्बन करने से-गाति रहितता, इन्द्रिय रहितता शरीर रहितत्व, योग रहितत्व, वेद रहितत्व, कषाय रहितत्व, नाम रहितत्व, गौत्र राहितत्व और आयूष्य रहितत्वादि विशेष गुण. और इसी प्रकार आस्तित्व, वस्तूत्व, प्रमेयत्वादि सामान्य गूण ऐसे अनन्तान्त गुणोंका कथन जैनागम में किया है. उन जैनागम का श्वरुप दर्शाने पहिले वरोक्तादि अनन्तान्त गुण गणों के धारक श्री सिद्ध परमात्माको मेंति-करण त्रि-योगकी विशूद्धि से वारम्वार नमस्कार करताहुं. सो अहो परमात्म प्रभु वधारिये जी ?

परम पुज्यश्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदायके
बाल ब्रह्मचारी मुनिश्री अमोलख ऋषिजी रचित
परमात्म मार्ग दर्शक नामक ग्रन्थका सिद्ध गुणा-
नुवाद नामक द्वितिय प्रकरणम् समाप्तम्.

प्रकरण—तीसरा.

प्रवचन [शास्त्र] गुणानुवाद.

पर वचन को ऽ प्रत्यय लगने से अपर वचन ऐसा शब्द होता है. अर्थात् अन्य कोइ भी प्रकाश कर सके नहीं, ऐसे आतिशयआदि गुण यूक्त वचन—वाणी का प्रकाश श्री अर्हंत भगवत ने किया है. इसलिये अर्हंत के वचनों कों ही पर वचन व सुत्र शास्त्र कहे जाते हैं, यह शास्त्र जगत् में दो प्रकारके हैं:-१ लोकोतर सो धर्म सम्बन्धी और २ लोकीक सो संसार व्यवहार सम्बन्धी इन दोनो की मूल उत्पतीका वयान यहां संक्षेपमे दर्शाया जाता है:—

इस श्रेष्टीमें अनादी कालसें वीस क्रोडा क्रोडी सागरके वारह आरों कर के काल चक्र सदा स्वभाव से फिर रहा है, जिसमें दश क्रोडा क्रोडी सागर को अव सर्पणी काल कहते हैं, इस अव सर्पणी कालमें पहला अरा चार क्रोडा क्रोडी सागरका, दूसरा आरा तीन क्रोडा क्रोडी सागरका तीसरा अरा दो क्रोडा कोडी सागरका, चौथा आरा ४२ हजार बर्ष कम एक क्रोडा क्रोडी सागरका और पांचवा छट्टा आरा इकीस २ हजार बर्ष का; इनमें आयुष्य अवगहणा और पुण्याइ

दिनोदिन घटती जाती है, इसे अव सर्पणी काल कहते हैं, ऐसा ही दश क्रोडा क्रोडी सागर का उत्सर्पणी काल इस से उलट तरह का होता है, अवसर्पणी कालके पहिले के तीन आरे (कुछ कम में) जूगलिये मनुष्य होते हैं. वो धर्मा धर्म पुण्य पापमें विलकुल नहीं समजते हैं, उस वक्त पुस्तक व उपदेशक कोइ नहीं होता है. तीसरे आरे के चौरासी लक्ष पूर्व * तीन वर्ष साडे आठ महीने बाकी रहते हैं, तव तीर्थंकर भगवान् का जन्म होता है, वह विद्या ज्ञान शास्त्रकी प्रवृती करते हैं. जिनसे ही आगे धर्म कर्म विद्या शास्त्रका प्रचार होता है, यह रिती अनादी कालसे चली आती है और चली जायगी. ×

इस वर्तमान अव सर्पणी कालके तीसरे आरेमें प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ देव भगवान् हुवे, वो अवधी ज्ञान सहित थे, इस लिये कृत कर्म की भविष्यता का सर्व कारण जाणते थे. जिसवक्त कल्प वृक्ष मनुष्यो की इच्छा पूर्ण करने वन्द हो गये, तव वो जुगलिये आपस में लडने लगे उनका समाधान करने शक्रेन्द्रजी के कहनेसे ऋषभ देवजी राज धारण कर, पंच मूळ शिल्प कर्मों की स्थापना करी- कुम्भकार, लोहकार, चित्रकार, वस्त्रकार, नाविक, इन एकेकके २०-२० प्रकार होने से सर्व १०० प्रकार के शिल्प कार स्थापे. भरतजी प्रमुख १०० पुत्रों को पुरुष की ७२ कला पढाइ, ब्राह्मी सुंदरी दोनो

* ७० लक्ष ५६ हजारको एक क्रोडसे गुणाकार करने से ७०५६ ०००००० ०००० इतने वर्षका १ पूर्व होता है

× उत्सर्पणी के तीसरे आरे के ३ वर्ष ८॥ महिने व्यतीत होते हैं तव प्रथम तिर्थंकर होते हैं. वो अवसर्पणी के २४ मे तिर्थंकर जैसे ही होते हैं.

पुत्रीयों को स्त्री की ६४ कला पढाइ, और ब्राम्ही जी को १८ प्रकार की लिपी पढाइ, सुन्दरीजी को १९४ अंक तक गणित शास्त्र पढाया. यहां से व्यवहारिक विद्या शास्त्र प्रचालित हुवे.

श्री ऋषभ देवजी ८३ लक्ष पूर्व संसार में रहे, फिर भरतजीके ५०० पुत्र वगैरा ४००० पुरुषों साथ दिक्षा (संयम) धारण किया, एक हजार वर्ष दुष्कर तप कर घन घातिक कर्मोंका नाश कर केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त किया. सर्वज्ञ सर्व दर्शी हुवे × तब सब

+ कितनेक मतावलम्बो यों गद्धे के श्रृंगकी तरह सर्वज्ञकी सर्वथा नास्ति बताते हैं. तो उनसे पूछा जाता है. कि तुम सर्वज्ञकी नास्ति इस देश और इस काल आश्रिय कहते हो या सर्व देश सर्व काल आश्रिय कहते हो? जो इस देश इस काल आश्रिय कहते होतो यह बात हमभी कबूल करते हैं, कि इस भरत क्षेत्र में इस पचम कालमें कोइ सर्वज्ञ नहीं होता है. और सर्व देश सर्व काल आश्रिय जो नास्ति करते हो तो हम पूछते हैं. तुमने यह कैसे जाना कि सर्व देश में सर्व कालमें कोइ सर्वज्ञ नहीं हैं, और नहीं हुवे? यदि तुम कहोगे की हम ने जानही लिया, तो हम तुमको ही सर्वज्ञ कहेंगे, क्योंकि उर्ध अधो, त्रिक, और भूत भविष्य वर्तमान के जानने वाले कोही हम सर्वज्ञ कहते हैं.

और जो तुम तीन लोक तीन कालको नहीं जानते हो, तो फिर सर्वज्ञ है ही नहीं, ऐसा हट किस आधारसे करते हो? क्योंकि जानने देखने वोला ना कहे तो बात कबूल करी जाय, परन्तू अन जानकी बात कौन कबूल करेगा? अर्थात् कोइ नहीं. क्योंकि तीन लोक और तीन कालका जानने वाला वह खुद ही सर्वज्ञ है और वह कदापि सर्वज्ञ की नास्ति नहीं करेगा, क्योंकि खुदही सर्वज्ञ है और अन जानकी यह बात कोई भी नहीं मानेगा, क्योंकि अज्ञानी है; व अल्पज्ञ है और वो जो सर्वज्ञ की नास्ति के लिये, गर्धव श्रंग का द्रष्टांत देते हैं, सो भी अयोग्य है, क्योंकि गदर्भ के श्रंग नहीं होता है, परन्तु गोवृष आदि के तो होता है, श्रंगका तो अभाव नहीं है. जो कभी नास्ति

द्रव्य सर्व जगत् के सुक्ष्म–बादर–त्रस–स्थावर–चर–अचर पदार्थोंका सर्व क्षेत्र लोक अलोक या उर्द्ध अधो तिरछा को, सर्व काल भूत भविष्य वृतमान, और सर्व भाव जीवों की प्रणती प्रणाम और अजीवों के वर्णादि पर्याय का उत्पाद व्यय ध्रुवता को जानने देखने लगे किंचित मात्र कुछ भी गुप्त न रहा !

गत तीसरे भवमे तीर्थंकर नाम कर्म की उपार्जना करीथी उसकी निर्जरार्थ अर्थात् वह शुभ कर्मोंका क्षय करने. उस परम ज्ञान

को को सर्वज्ञता न हो तो मत हो, परन्तु अन्य अनेक प्राणीयो श्रुत केवली हुवे हैं. और जिनोंने दृष्टी गत न आवे ऐसे दूर देशी मेरु पर्वत व स्वर्ग नरकादिक का वरणन व सुक्ष्म प्रमानुओं का वरनन किया है. और इनके वचनो से ही हम उन अदृश्य बातों को अनुमान प्रमाण आगम प्रमाणादि द्वारा सिद्ध कर सक्ते हैं. जो प्रत्यक्ष वस्तु किसी के भी दृष्ट होगा सोही अनुमान प्रमाण से सिद्ध हो शक्ति है, अन्य नहीं, क्योंकि राम रावणादि की अभी जो कथा ग्रन्थ लिख हैं, तो राम रावणादि हुवे हैं. तब ही उनकी कथाका कथन हुवा है. तैसे ही सुक्ष्म प्रमाणुओं व स्वर्ग नरकादि है. तबही उनकी कथनी शास्त्रोंमें चलती है. और अनुमान से सिद्ध होता है. ऐसी २ सुक्ष्म अदृश्य अलोकीक त्रिकाल वर्ती व त्रिलोक वर्ती जो पदार्थ अन्यके जानने में नहीं आते हैं. वो जिनके जाननें में आते हैं वोही सर्वज्ञ सर्व दर्शी है, उनकी नास्ति कदापि नहीं होती है. जैसे तुम दूसरे के मन के भाव व सुक्ष्म प्रमाणु नहीं जानते हो. तो उनकी नास्ति नहीं है. ऐसेही तुमने नहीं जान लेने नहीं मानने से सर्वज्ञ की नास्ति नहीं है. गये कालमें अनंत सर्वज्ञ हुवे है. कि जो दूर देशी अदृश्यी पदार्थोंका कथन कर गये हैं. कि जैसा अन्य नहीं कर सके. वर्तमान में महा विदेह क्षेत्रमे सर्वज्ञ है. और आगे कालमें अनंत सर्वज्ञ हो कर धर्म मार्ग को प्रदिप्त करेंगे.

के प्रभाव से जो सर्व पदार्थ जाने देखे थे. उसमें से फक्त सारांश तत्व रुप वाणीका ३५ गुण कर संयुक्त प्रकाश हुवा. सो ३५ गुण का यहां संक्षेप में वर्णन् किया जाता है:—

१ संस्कार युक्त (मिलते) वचन प्रकाशे, ऐसे उंच्चश्वरसे वाणी का प्रकाश होता है, कि एक जोजन में रही हुइ प्रषदा बरोबर श्रवण कर शक्ति है, २ बहुत मान पूर्वक वचन उचारते हुवे भी सादी भाषाकें माफिक प्रगमते हैं. ४ प्रभू की वाणी उचार ने की गम्भिर्यता महा मेघ के गर्जाव से भी अधिक्य है. ५ जैसे गुफामें वा शिखर बन्ध प्रशाद में शब्दों चार करने से प्रती ध्वनी उठती है, तैसे प्रभू के बचन की भी प्रति ध्वनी उठती है. ६ प्रभू की वाणी छःराग और तीस रागणी से भरी हुइ स्वभाविक ही होती है. जिसे सुनने हुवे श्रोतागण तल्लीन हो जाते है. जैसे वीणासे मृग, व पुगी से सर्प तल्लीन होता है. ७ सरस, स्निग्ध, चीगटी, दूसरे की मींजी यो में प्रगम जाय ऐसी वाणी वागरते हैं (यह ७ गुण उच्चार आश्रिय कहे. अब अर्थ आश्रिय कहते हैं.) ८ शब्द थोडे और बहुत अर्थके भरे हुवे होते हैं. इसलिये प्रभूके बचनो को सूत्र कहे जाते हैं. ९ एक वक्त अहिंशा परमो धर्म कह कर धर्मके निमित हिंशा करने में दोष नहीं, ऐसा विरोध बचन कदापि नहीं, प्रकाशत हैं, पहेला ओर छेला बचन सदा मिलता हुवा रहेता है. १० बचन की गडबड बिलकुल नहीं होती हैं, अर्थात् चलते हुवे सम्मासको पूरा करके ही दूसरा सम्मास सुरू करते हैं, जिससे श्रोतागणों को अलग २ अर्थ की समज हो जाती है, ११ ऐसा खुलासे की साथ फरमाते हैं, कि सुनने वाले को बिलकुल ही संशय उत्पन्न नहीं होता है, तथा एक बात को दूसरी वक्त कहने की जरूरु नहीं पढती है. १२ सर्व दोष रहित

व्याकरण के नियम सहित अत्यन्त शुद्ध वचन प्रकाशते हैं, कि जिन वचनो में स्वमति अन्य मति बड़े २ विद्वान भी किंचित मात्र दोष नहीं निकाल शक्ते हैं, १३ ऐसा मनोज्ञ वचन उच्चार होता है. कि जिसको सुणते श्रोतागणों का मन एकाग्र हो जाता है, दूसरी तरफ़ जाताही नहीं है. १४ ऐसी विचक्षणता के साथ वाणी का उच्चार होता है कि जो देशके और कालके बिलकूल ही विरुद्ध नहो अर्थात् सर्व देशमें और सर्व कालमें प्रभूके वचन शोभनियही होते हैं. १५ अर्थका विस्तार तो करते हैं. परन्तू पिष्ट पेषण (कहे हुवे को दूसरी वक्त कहना) व अगडं बगडं कह कर वक्त पूरा नहीं करते हैं. १६ सार सार तत्व मय जो सद्बोध दायक वचन है, उत्नेही कहे; व नवतत्व पदार्थ जो है, उसीका उपदेश करते हैं. असार निर्थक, आरंभादिका वृद्धि का जो बौध है उसे छोड देते हैं. १७ जो संसारीक क्रिया व चार विकथा और आरंभ का कार्य प्रकाश ने का कोइ मौका आजाय तो उसका विस्तार नहीं करते संक्षेप में ही पूरा कर देते है, १८ ऐसे खुलासे के साथ फरमाते है कि छोटासा बचा भी मतलबमें समझ जाय. १९ वाख्यानमें अपनी स्तूती और परकी निंदा हो ऐसा वचन नहीं प्रकाशते हैं. पाप की निंदा करते हे, परन्तू पापी की नहीं. २० भगवंतकी वाणी दूध मिश्री व अमृत से भी अधिक मिष्ट लगती है; श्रोताओं को तृप्ती अतीही नहीं है, वाख्यान छोड कर जानेका विचार ही नही होता है. २१ किसीकी गुप्त (छिपी) बात केवल ज्ञानसे जानते हूवे भी कदापी प्रकाश नही करते हैं. २२ सुरेन्द्र नरेन्द्रादि बड़े प्रतापी यों प्रभुके दर्शन को आते है, परन्तू प्रभुकिसी की भी खुशामदी नहीं करते हैं. जैसी जिसकी योग्यता देखते है. उतने ही गुण का प्रकाश करते हैं. २३ भगवंतकी

देशना सार्थक होती है अर्थात् उपकार व आत्मार्थकी सिद्धी करने वाली होती है, परन्तू निर्थक कदापि नही जाती हैं. २४ अर्थकी तुच्छता तथा छिन्न भिन्नता कदापि नहीं होती है, २५ नियमित प्रमाणिक स्वर–व्यजन–सन्धी–विभक्ति–काल क्रिया आदि संयुक्त शुद्ध वाक्यों का उच्चार होता है. २६ वहुत जोर से भी नहीं बहूत धीरप से भी नहीं, वहुत जल्दी से भी नहीं, आस्ते भी नहीं, ऐसी तरह मध्यस्त वचन का प्रकाश करते हैं. २७ श्रोतागणों भगवंत की वाणी का श्रवण कर वडा चमत्कार पाते हे. कि अह अहा! यह बचन प्रकाश ने की क्या आद्वितीय चातूरी है ? २८ भगवंत के वाक्य पूर्ण हर्षित हृदय से भरे हूवे निकलते हैं, जिससे सुणने वाले को हूवहू रस प्रगमता है. २९ अनंत वली प्रभुको विचमें विश्राम लेने का कुछ कारणही नहीं है. कितने भी लम्बे काल तक व्याख्यान चला तो भी थकते नहीं है. ३० अनेक श्रोतागणों अनेक तरह के प्रश्न मनमें धर कर आते है, परन्तू उनको पूछ ने की कूछ जरूर नहीं पडती है. वाख्यन सुनते २ सबको उत्तर मिलजाता है, ३१ एकेक से मिलता हुवा बचन प्रकाशते है. जो श्रोताके हृदयमें बराबर ठसते जाते हैं, ३२ अर्थ-पद वर्ण वाक्य सब अलग २ स्फुटता से फरमाते हैं. ३३ सात्विक वचन प्रकाशते है अर्थात् बडे २ नरेन्द्र सुरेन्द्र बृहस्पती यम दैत्य आदिकोइ भी भगवंत के हृदयमें क्षोभ नहीं उपजा सक्ते हैं. ३४ एक बातको पकी पूरी द्रढ कर फिर दूसरी बात फरमाते है, अर्थात् जो अधिकार फरमाते है, उसकी सिद्धी जहां तक न हो वहां तक दूसरा अर्थ नहीं निकालते हैं ३५ भगवंत को वाख्यान फरमाते कितना भी समय व्यतीत हो जावे तो भी उत्सहा वडता ही रहता है, अधिक से अधिक रस प्राप्त होता ही जाता है.

ऐस उत्तमोत्तम ३५ वाणी के गुण युक्त वाणी का प्रकाश होता है. जैसे वगीचे में झाडो अनेक प्रकार के पुष्पों की वृष्टी होती है. और वगीचे का माली उन फूलों को करन्ड (छाव) में ग्रहण कर हार गजरे तूरे आदी अनेक प्रकार के भूषण वनाता है जिस में यथा योग स्थान सुशोभित अनेक रंग के पुष्प पत्र जमाता हैं. तैसेही श्री ऋषभ देवजी तीर्थंकर भगवंत रुप वृक्ष से वाणी रुप फूलों की वृष्टी हुइ. उसे श्री उसभषेण जी आदी ८४ गण धरो ने द्वादश विभाग कर. जिस २ स्थान जो जो समास योग्य देखा वैसा २ सम्मास उसमें संहग्र कर शास्त्र वनाये. वो द्वा दशांग इस प्रकार हैः—

१ प्रथम (१) अपने घरका शुद्धारा करने मुनियों का निज कृतव्य वताकर उसमें चलाने. (२) व अपने अपने घरकी शुद्धता का श्वरुप अन्य भव्यों को वता कर वो आचार रुप अत्युत्तम रंग उनकी आत्मा पर चडा ने या (३) शुद्धा चार से श्रेष्टी को शुद्ध वनाने "श्री आचारांगजी" शास्त्रकाप्रति पादन किया. जिसके १८००० पदमें * आत्म ज्ञान से लगा कर साधूत्वके उंच पद तक की क्या क्या रिती भांती है उसका यथार्थ स्वरुप वताया.

२ जिनका आचार का सुधारा होवे उनके विचार का सुधारा होवे यह वात स्वभाविकही है. और शुद्ध विचार वाला तत्वातत्व, धर्माधर्म, का निर्णय चहावे. यह भी स्वभाविही है, इसलिये उन शुधात्मियों के हृदय में शुद्ध तत्व का प्रकाश करने दूसरा "श्री सुयगडागजी सूत्र का प्रति पादन किया. जिसके ३६००० पद में जगत् में प्रचलित्त होने वाले चारवाकादि अनेक मत मतान्तरों के आचार

* ३२ अक्षर का श्लोक ऐसे ५१०८८६८४० इतने श्लोकका एक पद होता हैं.

विचार का श्वरुप बता कर सत्यासत्य का निर्णय कर सत्य पक्ष से समा धान किया है.

३ जिनका हृदय तत्वातत्व के विचार से निर्णय आत्मक बना है वो स्वभाविकही सकल्प विकल्प से मुक्त हो स्वस्थान आत्मा को स्थापन करें. इसलिये तीसरा "ठाणांगजी" सूत्र का प्रति पादन किया जिसके ४२००० पदों में एकेक बोल से लगा कर दश बोलों में बडी रमुजिक बातों तत्व ज्ञान से भरी हुइ द्विभंगी, त्रीभंगी चौभंगी षडभंगी. सप्तभंगी. अष्टभंगी वगैरा गहन ज्ञान की बावतो में आत्मार्थी को कलोल कराने जैसा सम्मास का समावेश किया.

४ जिनकी आत्मा तत्व ज्ञानमें स्थिर भूत हो कर रमण करे, उनकी आत्मामें अनेक ज्ञानादि गुणोंका समावेश होवे, या वृद्धि होवे यह स्वभाविक है, इसलिये चौथा ' समवायंगजी ' सूत्रका प्रति पादन किया. जिसके ६४००० पदोंमें इस संपूर्ण विश्वमें रहीं हुइ एक वस्तूसें लगाकर संख्याती असंख्याती और अनंती वस्तू ओंके नाम गुण रूप का कथन है. तथा ५४ उत्तम पुरुषोंका जरूरी हालतों का वरणन और भी ज्योतिषी यादि बहुत वर्णन किया.

५ जिनकी आत्मामें ज्ञानादि गुणोका समावेश हुवा हो उन्हे उन गुणोंमें रमण करते अनेक प्रकारकी तर्क वीतर्क उत्पन्न होवे, यह स्वभाविक है, इस लिये पंचम विवहा पन्नती जी सूत्रकी स्थापनाकरी जिसके २८८००० पदमें सुक्ष्म बादर पदार्थोंका व चरणानुयोग करणानुजोग, धर्म कथानु योग, गणितानुयोग, इन चार अनुयोग, मय पदार्थोंका बहुत छटाके साथ प्रती पादन किया. और भी इस शास्त्र का दूसरा नाम ' भगवती जी सूत्र भी है. साक्षात् भगवंत की वाणी भगवती ही है.

६ जिनको विविध ज्ञानका बोध हुवा उनकी परोपकार वृती स्वभाविकही होती है. और वो प्राप्त किये ज्ञान का दान अन्य को देने प्रवृत होते हैं. इसलिये छट्ठा " ज्ञाता धर्म कथांगजी " सूत्र का प्रतिपादन किया. जिसके ५०१५००० पदो में त्याग, वैराग्य, नीति, आत्मज्ञान वगैरा उत्पन्न करने वाली ३५०००००० धर्म कथा ओं का समावेश किया. जिसके श्रवण, पठन, मनन से आत्मोन्नती, उन्नती आदि अनेक गुणों की प्राप्ती होसके.

७ जो आत्म ज्ञानी. त्यागी. वैरागी परोपकार वृती से धर्मोपदेश कर सत्धर्मका प्रसार करेंगे. और श्रोतागण उस सद्बोध को एकान्त आत्म हितार्थ महा उपकार की वृती से स्वीकारेंगे, वो उन ज्ञान दाता के उपाशक-भक्त स्वभाविक ही बनेंगे. इस हेतूने सप्तम " उपासक दशांगजी " सूत्रका प्रति पादन किया. जिसके ११७०००० पद में श्रमणोपासक अर्थात् धर्मोपदेश दाता श्रमण=साधु ओंके=उपासक=भक्त श्रावक का आचार विचार धर्म में प्रवृती करने की विधी. उपसर्गोंदिमे अडग रहकर आत्मार्थ सिद्ध करने का उपाय का प्रति पादन किया.

८ जो धर्मार्थ अपना तन मन समर्पण कर शुद्ध वृति सह चित्तसे उद्यमी बनेंगे. जिनाज्ञा मुजब करणी करेंगे तो उनके [illegible] उनका संसार का अंत सहज स्वभाविक होवे इस हेतूने अष्टम " अंतगडदशांगजी " सूत्र का प्रति पादन किया. जिसके २३२८००० पद में संसार मार्ग का अंत कर मोक्ष पद [illegible] की प्राप्ती करने का उपाय [illegible] करने का व महान् [illegible] आत्मार्थ सिद्धी करने की विधि दृष्टांत युक्त कथन किया.

९ मोक्षमार्ग की करणी करने [illegible]

डालते हैं, और कितनेकोंका आयूष्य कमी होने से व शुभ परिणामों द्वारा पुण्य की वृद्धि होने से संपुर्ण कर्मका नाश नहीं भी होवे तो उनकी उस उत्कृष्ट करणी के फलदूरुप संसारि सुखमें सर्वोत्कृष्ट सुखका स्थान प्राप्त होता है, यह अधिकार दर्शाने नवमां 'अनुत्तरोववाइजी' सूत्रका प्रति पादन किया, जिसके ९२०४००० पदों में ८४९७०२३ स्वर्गके विमाणों में जो वरिष्ट ५ अनूत्र विमान हैं जिसमें उत्कृष्ट संमय तप के पालने वालेही पुण्य वृद्धि के कारण से उत्पन्न होते हैं. वहां ३३ सागरोपम का उत्कृष्ट आयूष्य है, ३३ हजार वर्षमें भूख लगती है, उसवक्त ही अत्यूत्तम पुद्गलों का अहार रोम २ से खेंच लेते हैं. ३३ पक्ष में श्वास लेते हैं देवों के सिर पर चन्द्रवे में २५६ मोतीका झूबका है, इत्यादि द्रविक सुख और वो देव निरंत्र १४ पूर्वके पठन मननमें मशगुल हो आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य ही होते हैं, और एक तथा दो भवके अंतर से कर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्त करते हैं. इत्यादि कथन किया.

१० मोक्ष तक नहीं पहोंचते जो जीव अनुत्तर विमान मे अटक गये जिसका मुख्य हेतू शुभाश्रवही है. जहां तक किंचितही आश्रव जीवके रहता है, वहां तक मोक्ष कदापि नहीं मिलती है, और इन आश्रव को रोकने का मुख्य उपाय संवर है, संपूर्ण संवर प्राप्त होते ही पंच लघु अक्षर उच्चार के काल में मोक्ष प्राप्त करले ते हैं, इस लिये दश मांग 'प्रश्न व्याकरण जी' सुत्र का प्राति पादन किया. जिसके ९३११६००० पदमें हिंशा, झूट चोरी, मैथुन, परिग्रह, इन पंच आश्रवोंका और दया, सत्य, अदत्त, ब्रम्हचर्य, अममत्व इन पंच सम्वरोंकी उत्पती का व फलका तत्व ज्ञान से भरा हुवा, विवेचन किया.

११ आश्रव (पाप) और संवर (धर्म) इन दोनों का क्या फल होता है? जिसका स्वरूप दर्शाने एका दश मांग 'विपाकजी'

सूत्र का प्रती पादन किया, जिसके १८४०००००० पदमें गुरू (भारी) कर्मी पापिष्ट जीव, पाप कैसीतरह उपार्जन करते हैं, और उसका फल नरक तिर्यंचादि गतीमे कैसी विटम्बनासे भुक्तते हैं, और धार्मिष्ट जीव धर्म व पुण्य कैसी तरह करते हैं, और उसका फल इस भव-पर भव में कैसा सुख दाता होता है, जिसका श्वरुप द्रष्टांत कर के समजाया.

१२ और जव यहां तक ज्ञानकी प्राप्ती होगइ तो फिर पूर्ण श्रूत ज्ञानीं वने उनके लिये पुर्ण श्रुत ज्ञानका श्वरुप वताने वाला वारहमां 'द्राष्टिवादांग' सूत्रका प्राति पादन किया. जिसकी जव्वर २ पांच वस्तु वनाइ, पहिली वस्तुके ८८००००पद, दूसरी के १८१०५०००पद वनाये. तीसरी वस्तुमें चउदह पूर्व की विद्याका समावेश किया:- १ 'उत्पाद पूर्व' में धर्मा स्तिआदि छः कायाका श्वरुप दर्शाया. जिसकी १० वस्तू के ११०००००० पद. २ 'अगाणिय पुर्व' जिसमें द्रव्य गुण पर्याय का श्वरूप जिसकी ४ वस्तु के २२०००००० पद. ३ वीर्य प्रवाद पुर्व' जिसमें सव जीवोंके वल वीर्य पुरुषाकार प्राक्रम का वयान इसकी ८ वस्तु के ४४०००००० पद. ४ 'आस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व इसमें शाश्वती अशाश्वती वस्तू का कथन. इन की १६ वस्तू के ८८००००० पद. ५ 'ज्ञान प्रवाद पूर्व' इसमें ५ ज्ञानका वरणव. इसकी १२ वस्तु के १७६००००० पद. ६ 'सत्य प्रवाद पुर्व' इसमें १० प्रकार के सत्य का वर्णन. इसकी १२ वस्तु के २५२००००० पद. ७ 'आत्म प्रवाद पूर्व' इसमें ८ आत्मा का वर्ण इसकी १६ वस्तु के २०४००००० पद. ८ 'कर्म प्रवाद पूर्व' इसमें ८ कर्मकी प्रकृती उदय उदिरणा सत्ता वगैराका वरणन, इसकी १६ वस्तू के ६०८००००००पद. ९ 'प्रत्याख्यान प्रवाद पुर्व' इसमें १० पच्चखाण के ९०००००००० भेद का वरणव. इसकी २० वस्तू के १२१६००००० पद. १० विद्या प्रवाद

पुर्व इसमें रोहिणी प्रज्ञप्ति आदि विद्या का व मंत्रादि का विधी युक्त वरणव इसकी १४ वस्थू के २५२०००००० पद. ११ ' कल्यान प्रवाद पूर्व ' इसमें आत्मा के कल्याण करने वाले ज्ञान संयम तपका वर्णन इसकी १० वस्थु के ४८६४००००० पद. १२ ' प्राण प्रवाद पुर्व ' इस में चार प्राण से लगाकर दश प्राण के धरणहार प्राणी का वर्णन इस की १० वस्थू के ९७२८००००० पद. १३ ' क्रिया विशाल पूर्व ' इस में साधु श्रावक का आचार तथा २५ क्रिया का वर्णन इसकी १० वस्थू के एक क्रोडाक्रोडी और एक क्रोड पद. और १४ मां ' लोक विन्दू सार पुर्व ' इसमें सर्व अक्षरों का सन्नी पात (उत्पती का रूप) और सर्व लोकमें रहे हुवे पदार्थों का वरणव. इसकी १० वस्थू और दो क्रोडा क्रोडी पद. यह १४ पूर्व की विद्या जो कदापि कोइ लिखे तो पहिला पूर्व लिखने में एक हाथी डूबे जितनी स्याइ लगे, दूसरेमें दो हाथी डूबे जितनी स्याइ लगे. तीसरेमें चार हाथी डूबे जितनी यों दुगुने करतें चउदही पूर्व लिखने में १६३८३ हाथी डूबे जितनी स्याइ लगे. इतनी वडी द्रष्टी वाद अंग की तीसरी वस्थू रची. चौथी वस्थू में ६ बातों, पहिली बात के ५०० पद, बाकी पांच बातों के अलग २ २०९८९०२०० पद. द्रष्टी वादांग कीपांचवी वस्थू का नाम चूलीका रखा जिसके १०५९४६००० पद रचे. इत्ना वडा ज्ञान का सागर द्रष्टी वादंग वनाया.

ऐसी तरह द्वादशांग मय जिनेश्वर की वाणी की रचना रच कर गणधर महाराज ने मुमुक्षोंपर अगाध उपकार किया है.

यह द्वादशांग वाणी फक्त श्री ऋषभ देवजी भगवंत ने फर-माइ. और ऋषभ सेनजी गणधरने रची, ऐसा नहीं जानना. यह तो प्रवाह अनादी कालसे चले आता है. और अनंत काल तक चला

जायगा. जो २ तीर्थंकर भगवंत गये कालमें हुवे और अनागत(आवते) कालमें होंगे सो सब एसी ही तरह वाणी वागरी है.और वागरेंगे और उन के गणधरों ने रची है; और रचेंगे; फक्त फरक चरितानुवाद कथा (इति हांसिक) जो कथन होता है उसमें फरक पडता है; जैसा २ जिस कथानुयोग में सम्मास होता है, वैसा २ उसवक्त में या थोडे कालमें वना हूवा वनाव का समावेश उसमें तीर्थंकर व गणधर महा राज कर देते है. वो कथानुभाग उनका सासन प्रवर्ते वहां तक या उस सर्पणी आदि विशेष काल तक चलता है. अवसर सिर वदला भी जाता है. परन्तु परमार्थ–मतलव तो वोही वना रहता है, अर्थात् उसही मतलव जैसा उस समय में हुवा हुवा वर्णन वहां करने में आता है. जिससे विशेष असर कारक होता है. जैसे उपाशक दशांग-जी में भगवंत श्री महावीर स्वामी के वारे में हुवे हुवे दश श्रावकोंका कथन है. और श्री रिठनेमीनाथ भगवंत के वक्त की उपाशक द-शांग का दूसरा अध्याय 'झूटलजी नामक श्रावक' का मेरे देखने में आया है, एसे ही जिन २ तीर्थंकरो की जिस २ वक्त प्रवृती हो ती है उसवक्त के वनाव का कथन चरितानुवाद में कथा जाता है. इसलिये यह प्रवचन शास्त्र आदशांग में प्रवृती हुइ जिनेश्वर भगवंत की वाणी अनादी अनंत है.

यह तो प्रवचन –जैन शास्त्र–जैनागम की उत्पती कही.

अव त्रेसठ शलका पुरुष चरित्रके ८में पर्वके २ सर्ग के अनुसार चार वेद आदी अन्य मतावलम्बियों के शास्त्रों की उत्पती कहते हैं.

श्री ऋषभ देवजीके जेष्ट पुत्र भरत नामे चक्रवर्ती पद प्राप्त में आज्ञा प्रवर्तीकर पीछे [illegible] आये परन्तु चक्ररत्न आयुध शा-ला में प्रवेश नहीं करने [illegible] [illegible] [illegible]

इयों को आज्ञा मनाइये! भरतजीने बाहूबलजी शिवाय ९८ भाइयों को बुलाकर कहने लगे तुम स्वस्थान सुखे राज करो, परन्तु इतनाही कहोकि "हम तुह्मारी आज्ञामें है." यह बात उन ९८ भाइयों को पसंद नहीं आइ, और अपने पिता श्री ऋषभ देवजी के पास आये, और कहने लगे कि-आपतो सबको अलग २ राजदे दिक्षाली, अब भरत राजके गरुर में आकर जबर दस्ती से हमारे को आज्ञा मनाता है. आप फरमावोसो करें? तब भगवंतने फरमाया किः "संबुझ किंनबुझह संबोही खलु पेच दुलहा" अर्थात् अहो मग्धादि राजपुत्रों! बूजो २ प्रति बोध पावो! क्यों नहीं चेतते हो? इससे अधिक राज इस जीव को अनंत वक्त प्राप्त होगया परन्तु कुछ गरज सरी नहीं! गरज सारने वालातो एक बोध बीज सम्यक्त्व रत्नही है, उसलिये उसीका श्विकार करो! वो तुह्मारेको ऐसा राजदेवेगा की जिसपर भरतका तो क्या परन्तु काल जैसे दूर्दन्तका भी वहां जोर चलने वाला नहीं.! इत्यादि सद्बोध श्रवण कर ९८ ही भाइयोंने दिक्षा धारण करी. यह-समाचार भरतजी श्रवण कर बडे दिलगीर हुवे. और लोकीक अपवाद मिटाने भाइयों को खुश करने पक्कान गाडीमें भर वहां लाये * और भगवंत से प्रार्थना करी कि मेरे भाइयों-मुनीवरों को यह अहार ग्रहण करने की आज्ञा दीजीये, भगवंतने फरमाया सन्मुख लाया हुवा ... साधूको नहीं कल्पता है. तब भरतजी बडे विचारमें पडे, और ... कि अहो प्रभू! अब इस आहार का क्या करुं? तब शक्रेन्द्रजी ने काहा कि तुह्मारेसे जो गुणाधिक होवे उन्हे देनेमे भी नफाही है. यह सुण भरतजीने विचारा की मेरे से गुणाधिक तो पंचम गुणस्थान

* उसवक्त तूर्तही धर्म की प्रवृती हुइथी जिससे लोक साधु के आचार से बहूत कम वाकेफ थे.

वृती श्रावक हैं. श्रावकों को भोजन कराया; और उन्ह श्रावको से कहा कि आप सब मेरे मेहल के नीचे की धर्म शाळामें विराजे रहो धर्म ध्यान करो और हर वक्त 'जीतो भंगवान वद्धते भयं तस्मान्मा हान माहनेति ' + यह शब्द उच्चारन करते रहो, अहार वस्त्र आदि यथा उचित भक्ति में करुंगा. श्रावको ने यह बात कबूल करी, और भरतजी भोगमें मशगुल होते थै उसवक्त वरोक्त श्रावकों का शब्द सुन लुख वृती वैरागी बन जाते. उन श्रावको के मुख से महान् २ शब्द श्रावण कर सर्व लोक उनको ' महान् ' नामसे बोलाने लगे (यह ब्राम्हण § की उत्पती हुइ) भरतेजी के वहां सीधा भोजन मिलता देख बहुत लोकश्रावक होगये. तब भरतजी परिक्षा कर ‡ जो सच्चे श्रावक थे उनको रखे, उनको पहचाने के लिये कांगणी रत्नसे कपाल पर तीन लकीर खेंचदी (यह तिलक की उत्पती) और उनको पढने के लिये श्री ऋषभ देवजी के वचनानूसार श्री ऋषभ देवजी की स्तुती व श्रावक का आचार गर्भित चार वेद रचे, जिनके नाम १ संसार दर्शन वेद. २ संस्थापन परामर्शन वेद ३ तत्व बौध वेद. ४

+ अर्थात् क्रोधादि कषाय जगत को जीतरही है और उससेही भयकी वृद्धी होती है

§ महाण शब्द मागधी भाषाका है इसका अर्थ ब्राम्हण होता है.

‡ जीव सहित जगह पर श्वेत तम्बू बान्धाया और निर्जीव जगह पर काला तम्बू बन्धाकर ढंढेरा पिटाया कि श्रावकहो वो सो श्वेत तम्बू नीचे खडेरहो और काले तम्बू निचे खडेरहो. ऐसा सुन कर बहुत लोक श्वेत तम्बू नीचे भराये, और थोडेसे श्रावक काले तम्बू नीचे खडेरहे भरतजीने वहां आकर पूछा तो श्वेत तम्बू वाले सब बक उठे कि हम श्रावक है! काले तम्बू वाले बोले हमारे में श्रावक के गुण हैं या नहीं सो परमेश्वर जाने, हमतो वहां जीवो का घमसान देख यहां आकर खडे हैं. भरत जीने इन कोही सच्चे श्रावक जान भक्ति करी.

विद्या प्रबोध वेद. (यह वेदोत्पती) ❀ यह चार ही वेद नवमें सुविधी नाथ भगवान तक तो वैसे ही रहे. फिर हूंडा सर्पणी के काल प्रभावसे चारों तीर्थका विछेद होगया, और ब्रम्हणों से श्रावकों का

---

* इसही वक्त सांख्य मत की उत्पती हुइ सो कहते हैं —जिस वक्त श्री ऋषभ देवजी ने दिक्षाली उनके साथ भरतजी के १०० पुत्रों ने दिक्षा लिथी उनमे से एक का नाम मरीचि था. उससे दिक्षाका निर्वाह नहीं हूवा, और पीछा संसार में जानेकी शरम आइ, तब मन कल्पित एक मत खडा किया, साधु तो मन आदि त्रीदंड से निर्वृते हैं, मेरे त्रीयोग पाप में प्रव्रत ते हैं इस लिये त्रिदंड (ती खोनी लकडी) रखा. साधू तो वृतादि कर शुद्ध है, और में मलीन हुवा इस लिये भगवेरंग के वस्त्र धारण किये, साधू ओंके शिर पर तो जिनाज्ञा रुप छत्र है, और मैने जिनाज्ञा का भंग किया इस लिये काष्ट—पत्ते का छत्र धारण किया. इत्यादि मन काल्पित रुप धारण कर, महावृतों का भंग कर फक्त अनुवृती रहा स्थूल प्रणाती पात आदि वृत पालने लगा, और श्री ऋषभ देवजी के साथ विचरने लगा. समव सरणके बाहिर रहे (यहां से त्रिदंडी के मत की स्थापना हुइ) यह उपदेश करे किसी को वैराग्य आवे तो आप दिक्षा लेने श्री ऋषभ देवजी के पास भेज दे. एक वक्त बिमार पडे तब किसी साधू श्रावक ने इनकी भक्ति करी नहीं, तब एक शिष्य बनाने की इच्छा हुइ, एक कपिल नामक ग्रहस्थ को वैराग्य आया, उससे कहा कि श्री ऋषभ देवजी के पास दिक्षालो मेरे मे तो साधु के गुण नहीं है, कपिल बोला मे तो आपही का शिष्य होवूं गा. अपना अनुरागी जान चेला बनाया, और मरीयंच आयुष्य पूर्ण कर पंचम ब्रह्म देव लोक में गये, फिर कपिल के असूरी नामक शिष्य हुवे बाद कपिल भी आयूष्य पूर्ण कर ब्रह्म देव लोकमें गया, और अवधी ज्ञान से अपने शिष्य को अज्ञ जान यहां आया, और 'षष्टि तंत्र शास्त्र' की रचना कराइ. उसमें अव्यक्त से व्यक्त और प्रकृती से महान, महानसे अहंकार, अहंकार से गण षोडश, गण षोडशसे पच तन्य मात्र, और पंच तन मात्रसे पंच भूत उत्पन्न होते, हैं इत्यादि रचना रची. यह अव्वल जैन से विरुद्ध सांख्य मत के शास्त्र की उत्पती हुइ.

आचार नहीं पलनेसे उन वेदोंका अर्थ पलटाया तैसे नाम भी पलटा कर रुग, यजुर, साम, और अथर्व वेद स्थापन कर दिया आगे प्रर्वत नामक आचार्य ने अज शब्दका जो जूनी शाली धान अर्थ होता है, उसे भूल कर अज नाम बकरे * का स्थापन किया, और मान

* सुक्ती मती नगरी में खीर कंदबका चार्य पास इनका पुत्र 'पर्वत' और राजा का पुत्र 'वसु' और ब्राम्हण का पुत्र 'नारद' विद्या भ्यास करते थे उस वक्त आकाश में जाते हुवे जंघा चारण मुनी दूसरे मुनी से बोले की इन आचार्य के तीन शिष्यों में से दो नरक गामी और एक स्वर्ग गामी है, यह शब्द आचार्य के कान में पडने से परिक्षा निमित आटेके तीन मुरगे (कुकडे) बना कर तीनो को दिये. और कहा कि जहां कोइ भी नहीं देखता हो वहां इने मार लावो. दोनो को एकान्त में जाकर मार लाये. और नारदने विचार किया कि कोइ नहीं तो सर्वज्ञ तथा खुद में तो देख रहा हुं. यों विचार बिन मारेही गुरुजीको पीछा लादिया और पुछने से उपजा हुवा विचार कह दिया यह देख अपने पुत्र और राज पुत्र को नरक गामी जान वैराग्य प्राप्त हुवा दिक्षा ली प्रर्वत गुरुजी की गादी पर बैठा. वसु राजा गादी पर बैठा और नारद ब्रह्मचारी बन देशाटन करने लगा एकवक्त पर्वत अपने शिष्यो को विद्याभ्यास करा रहे थे, उसवक्त नारदजी वहां थे 'अजयेष्टव्यमिति' इस श्रूती का अर्थ पर्वत ने बकरा होमनेका करा. तब नारदने कहा गुरु जी ने तो निर्जीव तीन वर्ष का शाली इसका अर्थ किया था, तुम ऐसा खोटा अर्थ मत करो. यह बात पर्वत ने कबूल नहीं करी, और वसु राजा के पास निर्णय कर जो झूटा होवे उसकी जबान काट डालनी, ऐसा ठगहव किया यह बात पर्वतकी माताने जानी और अपने पुत्रकी रक्षा के लिये तुर्त वसू राजा पास गइ. और पुत्रकी भिक्षा मांग सब हाल कह दिया. वसूराजा गुरु पत्नीकी शरम में आ अभय वचन दिया. इतनेमें दोनो आये. सब बात कही. वसू राजा मिश्र भाषा बोलाकी गुरुजीने बकरी और शाली दोनो ही अर्थ किये थे. इतना बोलते ही देव योग से वसू राजा अधर सिंहासण से नीचे गिरा, और मरकर नरक में गया!

का मरोडा फिर उस अर्थ को नही पलटाते 'अज्जा मेध यज्ञ' की स्थापना करी और फिर पर्वत को 'महाकाला सूर' परमाधामी देवका सहाय्य मिला उस देवने पूर्व भव का वैर लेने सागर नामक राजाको नरक में डालने भरमा कर हिंशक यज्ञकी खूबही वृद्धि कराइ, और इन के देखादेखी राजपुत्रका मारूकत राजा यज्ञमें अनक पशू होमने सुरू किये उसको नारदजीने हिंशक यज्ञ से बचाकर धर्म यज्ञ बताया कि-जो स्वर्ग चहता हो तो तप अग्नि, ज्ञान घृत, कर्म इंधन, से कषाय रूप पशूओंका आत्म रूप यष्टा के पास यज्ञ कर. यह सुन हिंशक गुरूओं के आतुर हो नारद को मार ने एक दम उलट आये. तब नारदजी

नारद दुशासन को चले गया, और पर्वत ने अपना कूमत बडाना सूरू रखा. उसवक्त चरणयुगल नगर के अयोधन राजा की दिती नामक कन्या का मन अपनी माताका भतीजा मधू पिंगल को पाणी ग्रहण करने का था परन्तु दितीको ग्रहण करने एक सागर नामक राजा उत्सुक हुवा अपने पुरोहित पास से खोटी संहिता रचाइ और दितीके सवरा मंडप में सागर राजाने ठराव किया कि 'जो अप लक्षणी होवे उसे सवरा मंडप के बाहिर निकाल देना.' फिर पुरोहितजीने अपनी कल्पित संहिना सबको सुनाइ जिसे श्रवण कर मधू पिंगल अपन को अपलक्षणी समज मंडप से निकल गया. और संन्यासी बन अज्ञान तप कर मर गया. और महा काल सुर नामक परमाधामी देव हुवा. विभंग ज्ञानसे दितीके साथ सागरको सुख भोगवता देखा और सब कपट जान गया क्रोधमें धम धमाय मान हो सागरको नरक में डालने पर्वत के पास आकर कहने लगा, तुमने हिंशामय यज्ञकी स्थापना करी सो अच्छा किया. मे भी तेरा सहायक हूं. अपन सागर राजाको भी इस धर्ममें बनावें यो कह सागर के शरीरमें अत्यन्त वेदना प्रक्षेप करी और ग्राम मे भी विमारी चलाइ जिससे राजा प्रजा सब घबराये तब पर्वत ने सौत्रामणी यज्ञ अज्जामेध यज्ञ कराया. जिससे शांती हुइ यहां से यज्ञ कर्मकी अधिकाधिक वृद्धी होने लगी

भगकर जैन धर्मी राजा रावणके पास गये. और सब हाल दरशाये. रावण तुर्त राजपुर आया और यज्ञ करना बंध कराया, जिससे वेदांती यों ने रावण को वेदो का खन्डन करने वाला राक्षस ठेराया. ऐसे २ कित्नेक कारणों से अन्य मतावलम्बियों के शास्त्र में हिंशा घुसगइ है. नहीं तो सर्व मतान्तरों के शास्त्रोंकी उत्पती का मुख्य हेतू श्री जिनेश्वर की वाणी है. *

यह संक्षेपमें अन्य मतावलम्बियों के शास्त्रकी उत्पती विषय कुछ इतिहाँसीक सम्बन्ध कहा. ऐसे पुराणों वगैरा की उत्पती सम्बन्धी भी कितनीक वातों मिलती है. परन्तू व्यर्थ ग्रन्थ गौरव के सबब से यहां नहीं लिखा. मुख्य हेतू सर्व शास्त्रों की उत्पती सम्बन्धी इस काल में श्री ऋषभ देव भगवंतकी वाणी ही है. इसी वाणीको सरस्वती वगैरा सोलह § नाम करके मानू परसंस्या करी होय ऐसा

---

* इसी तरह का वरणव श्रीमद्भागवत के ७वे स्कन्धके १४ मे अध्यायके ७-८ वे श्लोक मे प्राचीन वर्ही नामक राजाको सहबोध कर हिंसक यज्ञसे पच लेने का बोध किया हैं, तैसा ही बोध यहां मरुत राजाको किया है

इसवक्त में हुवे दयानन्द सरस्वती जीने वेदोंकी श्रुती पाँका जो हिंशामय अर्थथा उसे फिरा कर सुधारा किया है सो प्रसिद्ध है.

§ १ कंठसे जिसकी उत्पती सो सरस्वती. २ सार २ पदार्थको दर्शावे सो शारदा. ३ सर्वोत्तम गुणसे भरी हुई सो भारती. ४ हंस चैतन्य का निज गुण को धारण करने वाली सो हंस वाहनी ५ सर्व जगत् मे मानी जाय सो जगविख्याता ६ सर्व वचनोंमें उत्तमता की धारक सो वागेश्वरी ७ सदा कौमार ब्रम्हचर्य अवस्था धारने करने वाली सो कौमारी ८ ब्रम्ह निर्विकल्प समाधी पदको स्थापन करने वाली सो ब्रम्हचारिनी ९ सर्व दोष रहित सो विदुषी १० ब्रम्ह-निज रुपको प्रगट करने वालीसो ब्रम्हदायनी. ११ ब्रम्हरुपसे प्रगटीसो ब्राम्हणी. १२ इच्छित पदार्थको दरसावे सो वरदायनी १३ शुद्ध वाणी सो वाणी १४ सर्व भाषा में उत्तम सो भाषा. १५ बुद्धि उत्पन्न करनी सो श्रुत देवी. और १६ सर्व द्वन्द्व विच्छेद करनी सो निर्मोहनी. यह १६ नाम.

भाष होता है.

जैसी तरह वाणी श्री ऋषभ देवजीने प्रकाशी और उसभसेण गणधरजी ने द्वादशांग में कथन करी, वैसीही तरह अजित नाथ भगवंतने प्रकासी और उनके गणधरोने कथी. यों यह जिनवाणी रूप गंगका प्रवहा आगे बढता २, चौवीसवे तीर्थंकर श्री महा वीर श्वामी तक चला आया, श्रष्टीका अनादीसे नियम है कि एक सर्पणी या उत्सर्पणी कालमें चौवीस से ज्यादा तीर्थंकर नहीं होते हैं. इस नियमानुसार आगे तीर्थंकर नहीं होने परभी गौतम श्वामी सुधर्माश्वामी आदि आचार्यों ने जिनवाणीका प्रवह आगे चालु रखा, तो भी कालके दोष के प्रभाव से स्मृती की नुन्यता सुन्यता होती गइ. त्यों त्यों ज्ञान भी घटता गया. यों आचार्योंने गणधरोने यों बारह वा द्रष्टीवादांगका विछेद होता देख. तदनुसार इग्यारे अंगके बारह उपांग की रचना करी.

१ आचारांगजी का उपांग 'उववाइजी' आचारांगजी में साधु के आचार गौचार का वरणव है, वैसे अचार वंत साधु तप संयम में सदा उद्यमवंत रहें, इसलिये उववाइजी में भगवंत श्री महा वीर श्वामी के समीप्प रहने वाले चउदह हजार साधु ओंने ३५४ प्रकारका तप किया सो. कौनसी करणी से जीव विराधीक (भववंतकी आज्ञा का उल्लंघन करने वाला) होता है, और कौनसी करनी से आराधिक होता है, जिसके २१ प्रश्न. वा करणी का आगे क्या फल होता है, मोक्षका श्वरूप, वगैरा अधिकारों का कथन किया.

२ सुयगडांगजी का उपांग 'रायपसेणी' सुयगडांगजी मे नास्तिकादि मतान्तरोंका अधिकार चला है. उसका खुला श्वरुप बताने रायपसेणी मे नास्तिक मती प्रदेशी राजाने कैसी श्रमण से

संवाद कर नास्तिक मतका त्याग कर जैनी वना, और करणी कर आगे परम सुख पाया वगैरे कथन किया.

३ ठाणांगजी का उपांग 'जीवा भिगमजी' ठाणांगजी के दशठाणे में जीवोंकी प्रवृती का अधिकार कहा, इसही का विशेष विस्तार के लिये जीवा भिगमजी में चौवीस दंडक में रहे हूवे जीवों में शरीर अवगहना आदिका विस्तार से कथन किया.

४ समवायांगजी का उपांग 'पन्नवणाजी' समवायंगजी में एकेक वोल से लगाकर अनंत वोलकी कथनी में जीव व कर्म प्रकृती यों वगैरा का संक्षेप मे श्वरूप वताया है, जिसकाही विशेष खुलासा वरणन् पन्नवणाजी के ३६ पद मे कथन किया.

५ विवहा पन्नती (भगवती) जी का उपांग 'जवुद्वीप प्रज्ञाप्ती भगवती जी मे कहे हुये छः आरे चक्रवृती की ऋद्धि ज्योतिप चक्र वगैरा कितनीक अवश्यकिय वातोंका द्रष्टांत युक्त विशेप खुलासा करने के लिये जम्बू द्विप प्रज्ञाप्ती की रचना करी.

६ ज्ञाता धर्म कथांगजीका पहिला उपांग 'चन्द्र प्रज्ञाप्ती जी' ज्ञानातःजी के पाहिले श्रुतस्कंध के दशमां अध्याय चन्द्रमा देवका है, और दूसरे श्रुस्कंध में कही हूइ २१६ पासत्थी साध्वी यों में से कितनीक साध्वीयों चद्रमा देवके विमान में उपजी है, वगैरा खूलासे के लिये चन्द्र प्रज्ञाप्ती में चन्द्रमाकी ऋद्धीगती मंडल नक्षेत्र योग्य ग्रह राहु व पांच चन्द्र संवत्सर वगैरा रचना करी.

७ ज्ञाता धर्म कथांग का दूसरा उपांग 'सूर्य प्रज्ञाप्ती' उन२१६ साध्वी यों में से कितनीक साध्वीयों सूर्य देव के विमान में उत्पन्न हूइ है. वगैरा मतलवसे सूर्य प्रज्ञाप्ती में सूर्यकी १८४ मंडल दक्षिणाय, उत्तरायण, पर्व राहू, सूर्य के ५ संवत्सर और १९४ अंक तककी

गिनती वगैरा रचना रची.

८ उपाशक दशांगजीका उपांग 'निरियावलिकाजी' उपाशक दशांगजी में तो जो ग्रहस्था वास में रहकर धर्म करणी करते हैं. उनकी स्वर्ग गति होती है, और जो ग्रहस्थ, पाप कर्म में जन्म पुरा करते हैं उनकी तीर्यंच या नरक गती होती हैं. और पापके स्थानही जो विनायक नागनतुवा तथा उनके मित्र की तरह धर्म निपजा लेते हैं उनका भी सुधारा हो जाता है, वगैरा रचन निरियाव लिकाजी में रची.

९ अंतगड दशांगजी का उपांग, कप्पवडि सियाजी' अंतगड जीमें कर्म क्षय कर मोक्ष गये जिसका बयान है, और कप्प वडि सियाजी में करणी करते पूरे कर्म नहीं खपे वो देव लोकमें ही रह गये उनका आधिकार रचा.

१० अनुत्तरो ववाइजी का उपांग 'पुप्फियाजी' जिन महान् पुरूषोंने संयम धर्मकी पूर्ण आराधना करी वो सर्वोत्कृष्ट सुखका स्थान जो अनुत्तर विमान है उनमें उपजे. यह अधिकार अनुत्तरो ववाइमें, और जिननें संयम धर्म अंगीकार कर पूर्ण आराधा नहीं वो जोतिषिआदि सामान्य देवता चन्द्र शूक्र, मणी भद्र, पूर्णभद्र आदिमें उपजे यह अधिकार पुप्फियाजी में रचा.

११ प्रश्न व्याकरणजी का उपांग 'पुप्फचुलिया जी' आश्रव और संवर रूप करणी का श्वरुप प्रश्न व्याकरणजी में कहा, और आश्रव संवर दोनो की मिश्रित करणी होने से स्त्री पर्याय की प्राप्ती होती है, वगैरा खुलासे के लिये श्री ही, धृती कीर्ति आदि देवीयों जिस करणी से हुइ है यह अधिकार का पुप्फ चुलियाजी में कथन किया है.

१२ विपाकजी का उपांग 'वन्हिदशाजी' विपाकजी में शुभाशुभ कर्मों के फल वताये, और शुभकर्मोंकी विशेष अधिक्यता होने से वल भद्रजी के निषढादि कुँवार देवलोक के सूख भुक्त मुक्त पधारेंगे यह वान्हि दशामें कथा.

इन सिवाय और भी भगवंत श्री महावीर श्वामी मोक्ष पधारते वक्त सुक्ष्म और वादर सम्मासो मे तत्व ज्ञान से भरपूर रत्न करन्ड समान 'श्री उत्तराध्यानजी सूत्र' फरमाया सो तथा सयं भवाचार्यने अपने संसारिक पुत्र मनक मुनी के लिये संक्षेपमें साधूका आचार वताने वाला 'दशवैकालिक सूत्र' ऐसेही ज्ञानका और वुद्धिका श्वरुप वताने वाला 'नंदीजी सुत्र' वनय निक्षेपोंके सुक्ष्म ज्ञानका वताने वाला 'अनुयोगह द्वार सुत्र' तथा साधू ओके आचार को शुद्ध वनाने वाले व्यवहार, वेद कल्प आदी छेद सुत्र, पइने, वगैरा वहुत विभागो कर के सुत्रकी विद्या कंठाग्र रखने का प्रयास चला. सो प्रयास भगवंत श्री महा वीर श्वामी मोक्ष पधारे पीछे ९७५ वर्ष कुछ अधिक चालू रहा. उसवक्त २७ में पाटेश्वर श्री देवर्द्धीगणी क्षमा श्रमवण विराज मान थे तव घटते २ फक्त एक पूर्व जितनाही ज्ञान कंठाग्र रह गया था. और एक वक्त ऐसा जोग वनाकी आचार्य महाराज किसी व्याधी निवारन के लिय सूंठका गाठीया लाये थे, वो श्याम को पाणी चूकाये वाद खालेंवेंगे ऐसे विचार से कान में रख लिया, और स्याम को उसे खाना भूल गये. प्राति क्रमण करती वक्त वंदना नमस्कार करने नीचे झुके तव वो सूंठ का गांठीया सन्मुख आपडा, उसे देख आचार्य महाराजको विचार हुवा की अवी एक पूर्वका ज्ञान होते भी स्मृतीमें इतना फरक पडगया है. तो आगे तो वहुत फरक पड जायगा फिर कंठाग्र ज्ञान रहना मुशकिल हो जायगा; और ज्ञान का अभाव

होने से, इस भारत वर्ष में, अज्ञान मिथ्यात्व रूप अन्धकार में फस कर विचारे धर्मार्थी जीवों कालीधार डूब जावेंगे, ऐसी करूणा लाकर लेखित ज्ञानकी जरूरत समज शास्त्र लिखने सुरू किये.

☞ पाठक गणों ! जो उपर द्वादशांगी ज्ञानका पदों कर प्रमाण वताया है उसमे की फक्त वारह मा द्रष्टी वादांग की एकही वत्थू की जिसमें १४ पुर्व के ज्ञानका समावेश हुवा है, उतनाही लेख करने में १६३८३ हाथी डूवे जाय इतनी स्याइ लगती है, तो द्वादशांग का संपुर्ण ज्ञान लिखने में कितनी स्याइ कागद कलमो और वक्त का व्यय होवे सो, उसका प्रमाण आपही आपकी बुद्धि कर कर लीजीये ! इतना लेख गत काल में किसी ने लिखा नहीं. वर्तमान कालमें कोइ लिख सके नहीं. और आगामिक, कालमें कोइ लिखेगा भी नहीं. यह तो महा प्रबल बुद्धिके धारी लब्धीवंत मुनिराज महाराज थे, वोही कंठाग्र कर शक्ते थे, अन्यकी क्या ताकत् जो इतना ज्ञान याद रख. परन्तू परम उपकारी श्री देवढी गणी क्षमाश्रमण महाराजने उस द्वादशांग में से सार २ लिखना सुरू किया. और दूसरे पास लिखाया भी और उनके देखा देख अन्य आचार्य ने भी लिखा. यों अलग २ लेख होने से कितनेक स्थान पाठान्तर होगया है.(पाठमें फरक पडता है.)

उसवक्त द्वादशांग आदि शास्त्रों के मूल के जितने श्लोक लिखेगये सो कहते हैः— १ आचारांगजी के मूल श्लोक २५००, सुयगडांगजी के २१००, ३ ठाणांगजी के ३७७०, ४ समवायंगजी के १६६७, ५ भगवतीजी के १५७७२, ६ ज्ञाता धर्म कथांग के ५५००, ७ उपशक दशांगगे ८१२, ८ अंतगड दशांगके ७९०, ९ अणुत्तरो ववाइ के १९२, १० प्रश्न व्याकरण के १२५०, ११ विपाकके १२१६, इस मुजव इग्यार अंग लिखाय, और १ उववाइजी के ११६७

२ राय पेसणीजी के २०७८, ३ जीवाभी गमजी के ४७००, ४ पन्नवणाजी के ७७८५, ५ जंबूद्विप प्रज्ञप्तीजी के ४१४६, ६ चन्द्र प्रज्ञप्ती के २२००, ७ सूर्य प्रज्ञाप्तीजी के २३००, ८–१२ निरयावलिका कप्पिया, पुप्फिया, पुप्फ चूलिया और वन्ही दशा. इन पांचोका एक ही ग्रुथ है सबके ११०९, यह बारह उपांग. १ व्यवहार के ६००. २ वृहत्कल्प के ४७३, ३ निशीथ के ८१५, ४ दशा श्रुतस्कन्ध १८३० यह ४ छेद. १ दशवैकालिक के ७००, २ उतराध्ययनजीके २०००, नंदीजी के ७००, ४ अनूयोगद्वारके १८९९. यह ४ मूलसूत्र. और अवश्यक के १००श्लोक. इन सिवाय और भी सूत्र लिखे जिन के नाम मात्रः—१ दशा कल्प, २ महा निशाथ ३ ऋषि भाषित ४ द्विप सागर प्रज्ञप्ती ५ खूडिया विमाण विभती. ६ महा लिया विमाण विभती ७ अंग चूलिया. ८ वंग चूलिया ९ विविहार चूलिया १० अरूणोववाए ११ वरूणोववाए. १२ गरुडो ववाए. १३ धरणोववाए १४ वेसमणो ववाए. १५ वेलंधरोववाए. १६ देविंदोववाए. १७ उठाणसुय १८ समुठाणसुए. १९ नाग परिया वलिया २० कप्पवडि सिया. २१ कथिआ काप्पिया. २२ चूलकप्य सुयं. २३ महा कप्प सुयं. २४ महपन्नवणा. २५ पम्माय पमायं. २६ देविन्द्रस्तव. २७ तंदुल विया लिया. २८ चंदग विझयं. २९ पोरसी मंडल. ३० मंडल प्रवेश. ३१ विद्याचारण विणछ्उ. ३२ गणिविज्जा. ३३ ज्ञाण विभती. ३४ मरण विभती. ३५ आय विसोही. ३६ वियरायसुयं ३७ सलेहना सुयं. ३८ विहार कप्पो. ३९ चरण विसोही. ४० आवुरपच्चखाण ४१ महा पच्चखाण. ४२ दृष्टिवाद * इन मुजब ७२ शास्त्र का निर्माण हुवा. ऐसा

---

* यह बारमे अंगके नामवाही का कोइ दूसरे शास्त्रकी रचना हुइ देखाती है

नंदजी शास्त्रसे विदित होता है, क्यों कि नंदजी में बहात्तर ही नाम है. यह सूत्रों लिखकर भन्डार में बहुत जापते के साथ रखे गये. उस पीछे इस हूंडा सर्पणी के भारी कर्म जीवोके पापोदय कर बारह २ वर्ष के दो वक्त जब्बर २ दुष्काल पडे, जिसमें संयमी यों का संयम का निर्वाहोना मुशकिल होगया. ७८४ साधु तो संथारा करके स्वर्ग पधार गये, बाकी रहे हुवे साधू ओं पेटार्थ भेष बदल कर यंत्र मंत्र आदि कर निर्वाह कर ने लगे, उनेने ज्ञान भन्डारके संभालकी बिलकुलही रदकार रखी नहीं. और फिर अनार्यो अन्य धर्मीयों का जोरा वधने से उनोने अनेक जैन शास्त्रों का नाश किया, पाणीमें डुबा दिये, वगैरा अनेक विघ्नो उत्पन्न होने से जैन ज्ञानको बडा जबर धक्का लगा, बहूत ज्ञान का नाश हुवा. फिर कल्प सूत्र मे कहे मूजब भगवंत श्री महावीर श्वामी के नाम पर बैठा हुवा २००० वर्षके भश्म ग्रह का जोर कमी हुवा, तब नाम मंत्र रहे हुवे जैन साधु ओंकी धुन्धी उडी और जैन शास्त्र के भन्डार याद आये, उनको खोलकर देखा तो बहुत से शास्त्रों को तो ऊणी खागइ, कित्नेक के पाने जीर्ण होगये. वगैरा कारणों से नाश हुवे शास्त्रमें उपर कहे हुवे बतीस शास्त्र तो पुर्ण निकले, बाकी के पीछे कहे हुये ४० शास्त्रोंका बहुत भाग नाश होगया. तब कितनेक आचार्यो ने पुर्वापर सम्मास मिला कर पुरे कर दिये, और कित्नेक पूर्वोक्त नाम कायम रखकर दूसरा मन माना सन्मास उसमे लिख दिया, जैसे महा नशीत आठ आचार्यो ने मिलकर बनाइ है, यह खुलासा उसही में है. इस लियेही अवश्यक सूत्रकी वृती में कहा है कि इस कालमें कालिक सूत्र २१ और उत्कालिक सूत्र १५, यों ३६ सुत्र नहीं है बाकी के सुत्र है.

देखिये भव्यों! इस पंचम कालके मनुष्यों के पुण्य की हीनता

इसवक्त तीर्थंकर भगवंत, केवल ज्ञानी, गणधर महाराज, मन पर्यव ज्ञानी, अवधी ज्ञानी, श्रुत केवली, पूर्वधारी वगैरा महान ज्ञानके सागर पुरूषों में से एकही द्रष्टी गत नहीं होते हैं, और जो कुछ लिखित सूत्रों का आधार था वो भी इतना कमी होगया है, इतना थोडेसे ज्ञान के अधार से भी इस वक्त में साधु–साध्वी–श्रावक–श्राविका यह चारही तीर्थ अपने २ तप संयम का निर्वाह कर रहे हैं, त्रिनाथणी कर्मोंके साथ युद्ध कर रहे हैं, सिंह समान गजार्व कर पाखन्ड वनचरों को भगा रहे हैं. समय माफिक श्री जिनेश्वर भगवानके मार्ग का प्रकाश चौतरफ फैला रहे हैं. ज्ञानमें अपनी और अन्य की आत्मा को तल्लीन करते हैं. वो जीव भी परमात्म पद प्राप्त करने के अधिकारी हैं. कहा है तद्यथाः—

एक मपि तु जिन वचनाद्यी स्मानिर्वाह कं पदं भवति।

श्रुयन्ते चानन्ताः सामायिक मात्र पद सिद्धा ॥ २७ ॥

अर्थात्—श्री जिनेश्वर भगवंत के मुख से प्रकासित किया हुवा एक भी पदका अभ्यास करने से उतरोतर ज्ञान की प्राप्ती द्वारा संसार सागरसे पार उतार देता है, क्यों कि केवल सामायिक मात्र पदसे अनेक सिद्ध होगये, ऐसा अनेक स्थान श्रवण किया है.

ऐसे परम उपकारी श्री जिनेश्वर भगवंत इस पंचम काल में 'अजिणा जिण संकासा' अर्थात्–इस वक्त तिर्थंकर तो नहीं हैं, परन्तु उनके वचन भी तीर्थंकर जैसा उपकार करते प्रवृत रहे हैं. मुमुक्षु जीवोंको पूर्ण अधार भूत हैं. की जिनको भगवती सूत्रकी आदीमें श्री गणधर महाराज ने भी 'नमो बिंबीए लिवीए' अर्थात्–नम-

स्कार हो. अहो परमेश्वर ! आपके बचनों को यों कहे नमस्कार किया है. उनही को मैं त्रिकरण त्रियोगकी पुर्ण विशुद्धता पुर्वक नमस्कार करता हुं. और इन प्रवचनो का गहन ज्ञानका यथार्थ बौध श्री सद्गुरु द्वारा होता है, उनके गुण आगे के प्रकरण में दर्शानेकी इच्छा रख इस प्रकरणकी यहां ही समाप्ती करता हुं.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के बाल ब्रम्हचारी मुनी श्री अमोलख ऋषिजी रचित परमात्म मार्ग दर्शक ग्रन्थका प्रवचन गुणानुवाद नामक तृतीय प्रकरण समाप्तं.

श्री परत्माय:नमः

प्रकरण—चौथा.

गुरु—गुणानुवाद.

श्री गुरु दयालजी महाराज के गुणोंका कथन और उत्तमता तो जो अनादी सिद्ध सर्व मान्य श्री नवकार महा मंत्रही दर्शा रहा है, कि अष्ट कर्म के नाश कर्ता श्री-जिनेन्द्र के ही वंदनीय सर्व से अत्युत्तम और सर्व के वरिष्ट जो श्री सिद्ध परमात्मा हैं, जिनका नाम नवकार महा मंत्र के दूसरे पदमें स्थापन किया. और जगत् गुरु श्री अर्हंत भगवंत कि-जिनोने केवल ज्ञान के प्रभाव से जाना हुवा द्रव्यादि पदार्थोंका स्वरूप ३५ गुण युक्त वाणी द्वारा वागरके जगत् वासी भव्यों को वताया, या परमात्म सिद्ध भगवंत का स्वरुप वताया, ऐसे सद् ज्ञान के दाता गुरु महाराज श्री अर्हंत भगवंत को नवकार महा मंत्र के पहिले पदमें 'नमो अरिहंताणं' कह कर नमस्कार किया, इस से जाना जाता है कि मुमुक्षुओं को देव से भी अधिक गुरुकी भक्ति विनय करने की जरुर है, ७ क्यों कि गुरु हैं सोही देवका स्वरुप समजाने वाले हैं.

दुहा – गुरु गोविंद दोनो खडे. । किसके लागू पाय ॥
बली हारी गुरु देवकी । गोविंद दिये बताय ॥

गुरु शब्द का अर्थ भारी बजनदार ऐसा होता है, परन्तु जो शरीर में या कर्मों कर भारी होवें उनको देव से अधिक जानने का यहां बोध नहीं है, यहां तो जो गुणाधिक होवें अर्थात् ज्ञानादि गुनों में भारी होवें उन गुरुओंको ही देवसे अधिक मानने का दर्शाय है.

ऐसे गुरुजी ३६ गुन के धारक चाहीये.

गुरुजी के ३६ गुण.

पंचिन्दिय संवरणो, तह नव विह बंभ चेर गुत्तीधरो ।
चउविह कस्साय मुक्को, ए ए अठारस्स गुणेहि संथुतो ॥ १ ॥
पंच महव्वय जुत्तो, पंच विहायार पालण समत्थो ।
पंच समिइ तिगुत्तो, एण छतीस गुण गुरू मज्झं ॥ २ ॥

अर्थात—१ 'अहिंशा' स्वात्म, परातम; जीव, अजीव; त्रस स्थावर सबका रक्षण, करे. २ 'अमृषा' झूट नहीं बोले, ३ 'अदतवृत' चोरी नहीं करे. किसीकी विनादी हुइ वस्तु ग्रहण करे नहीं. ४ 'ब्रह्मवृत' स्त्री पुरुष नपुंशकके साथ या किसी प्रकार ब्रम्हचार्यका खन्डन करे नहीं ५ 'अपरिगृह' सचित आचित मिश्र वस्तु पर ममत्व रखे नहीं. (यह पंच महा व्रत धारी) ६ 'श्रोतेन्द्रिय निग्रह' कान से विषयानुराग जागृत होवे ऐसा शब्द सुने नहीं. ७ 'चक्षु इन्द्रिय निग्रह' आँख से विषयानुराग जागृत होवे ऐसा रूप देखे नहीं. ८ 'घ्रणेन्द्रिय निग्रह' नाक से विषयानुराग जागृत होवे ऐसा गंध सूंघे नहीं. ९ 'रसेन्द्रिय निग्रह' जिभ्यासे विषयानुराग जगे ऐसा रस (अहार) भोगवे (खावे) नहीं. १० 'स्पर्शेन्द्रिय निग्रह' शरीर से विषयानुराग जगे ऐसा सयनासन वस्त्रादि भोगवे नहीं. और इन पांचो इन्द्रिक शब्दादि विषय सहज स्वभावसे इन्द्रियों में प्रगम जावे तो उनपर

राग द्वेश करे नहीं, (यह पांच इन्द्रियों का निग्रह करे) ११ ' ज्ञानाचार ' ज्ञानका अभ्यास आप करे. दूसरे को करावे. १२ ' दर्शनाचार ' सम्यक्त्व निर्मल आप पाले दूसरे के पास पलावे. १३ ' चारित्राचार ' संयम आप निर्मल पाले दूसरे के पास पलावे. १४ ' तपाचार ' तपश्चर्या आपकरे दुसरे के पास करावे. १५ ' विर्याचार ' धर्मोन्नती के कार्य में आप प्राक्रम फोडे दूसरे पास फोडावे. [यह पंआचचार पाले पलावे] १६ ' इर्यासमिती,' चलती वक्त दिन को आँखो से जमीन को देख कर और अप्रकाशिक जगह में तथा रात्री को रजुहरणसे पूंजकर चले. १७ ' भाषा समिती ' कारणसिर सत्य तथ्य पथ्य वचन वोले. १८ ' एषणा समिती ' अहार वस्त्र—पत्र—स्थान निर्दोष होवे वो याचना (मालिका दिसे मांग) कर भोगवे. १९ ' अदान निक्षेपणा समिती ' वस्त्र पात्र आदि संयम जोग उपाधी यत्ना से ग्रहण करे और भोगवे. २० ' परिठावणिया समिती ' अयोग्य अकल्पनिय वस्तु निर्वद्य स्थान में परिठावे, (न्हाख देवे) यह पांच समिती पाले २१ ' मनगुप्ती ' पाप कार्यमें मनको नहीं प्रवृतने देवे. २२ ' वचन गुप्ती ' सावद्य वचन नहीं बोले. २३ ' काया गुप्ती ' पाप के काम करे नहीं. (यह तीन गुप्ती पाले) २४ ' क्रोध निग्रह ' प्रकृतीयों को क्रुर (निर्दय) प्रणती ने निवार कर शांत (क्षमा) भाव धारण करे. २५ ' मान निग्रह ' प्रकृतीयोंको कठिन वृतीको निवार. नम्र भाव धारन करे. २६ ' माया निग्रह ' प्रकृतीयों को वक्र (बांके कपट) पने को निवार सरल करे. २७ ' लोभ निग्रह ' प्रकृतीयों विस्तार पाती हुइ को रोक कर संकोच अल्प इच्छा धारी होवे. (इन चार कषाय को जीते) २८ विकार उत्पन्न होवे ऐसी जगह में रहे नहीं. २९ विकार पैदा होवे ऐसी कथा वार्ता करे नहीं. ३० वि-

कार उत्पन्न होवे ऐसे आसन से या आसनपर बैठे नहीं ३१ विकारी क शब्द कानमे पडे वहां रहे नहीं. ३२ पूर्व करी हुइ विकारीक वृती का चिन्तवण करे नहीं. ३३ विकारीक वस्तूका अवलोकन करे नहीं. ३४ विकार उत्पन्न होवे ऐसा आहार करे नहीं. ३५ विकार उत्पन्न होवे उतना अहार करे नहीं. और ३६ विकार उत्पन्न होवे ऐसा शरीर का श्रृंगार सजे नहीं. (यह नव बाड विशुद्ध ब्रह्मचार्य पाले) ऐसे ३६ गुण के धारक गुरु महाराज होते हैं.

ऐसे गुण युक्त गुरू महाराज को तीन प्रकार से वंदना–नमस्कार करते हैंः–१ जघन्य वंदना–मुखको वस्त्रका उत्तरासन कर, दोनो हाथ खूनी तक जोड, गुरु महाराज के सन्मुख रहा हुवा, अवर्तन करता हुवा (जैसे अन्य मती आरती को घुमाते हैं तैसे जोडे हुवे दोनो हाथ को घूमाता हुवा) नीचा नमकर कहे कि ' मथयण वंदामी, सुख साता है पूज्य ' इत्यादि शब्द से गुणानुवाद करे सो जघन्य वंदना.

२ मध्यम वंदना–उपर कही विधी युक्त तिखुता के पाठ से वंदना करे, तिखुतो–दोनो हाथ जोडे हुवे मस्तक और दोनो घूटने यह पांच ही अंग तीन वक्त उठ बैठ कर जमीन को लगावे. ' आयाहीणं ' दोनो हाथ जोडे हुवे, ' पयाहीणं ' प्रदक्षिणावर्त हाथोंको फिरा कर. 'वंदामी' गुणानुवाद युक्त ' नमंसामी ' नमस्कार, करे. ' सकारमी ' सत्कार देवे, ' सम्माणेमी ' सन्मान देवे ' कल्लाणं ' (ऐसा मनमें पक्का समजे की) ये ही मेरी आत्मा के कल्याण के कर्ता हैं ' मंगलं ' परम मङ्गल (पापका नाश) के कर्ता ये ही हैं, ' देवयं ' धर्म देव येही हैं, ' चेइयं ' ज्ञानादी गुनोंके आगर ये ही हैं. ' पज्जुवासामी ' पर्युपासना ' सेवा भक्ति करने योग्य ये ही हैं. ऐसे

उत्कृष्ट भावसे ' मथ्येण वंदामी ' मस्तक (मुख) करके गुणानुवाद युक्त जो नमस्कार करे. सो मध्यम वंदना.

३ और उत्कृष्ट वंदनाका विस्तार युक्त वरणन आगे वारमें प्रकरण के तीसरे वंदना नामक आवश्यक में देखिये जी.

ऐसी तरह वंदना करने से जीवों को बडे बडे ६ गुणोंकी प्राप्ती होती है.

१ 'विनयोपचार ' विनय का आराधिक पणा. २ ' मान भंग' मिथ्याभिमान नामक महा शत्रुका नाश. ३ ' पूज्य भक्ति ' पूज्य पुरुषों की भक्ति का महालाभ. ४ ' जिनाज्ञाराधन ' जिनेश्वर भगवंत की अनुज्ञा का पालन. ५ ' धर्म वृद्धि ' गुरुकी कृपासे सूत्र धर्म और चारित्र धर्म की वृद्धि. और ६ 'आक्रिय ' यों धर्मकी आराधना से सकल कर्म का नाश होकर जो अक्रिम क्रिया पाप रहित सिद्ध रूप जो परमपद हैं उसकी प्राप्ती.

परन्तु जो बतीस दोष वंदना के हैं उन्हे टाल कर जो वंदना करते हैं उनको इत्यादि गुणों की प्राप्ती होती है. सो दोष कहते हैं.

वंदना के बत्तीस दोष.

१ ' अणाढा दोष ' अर्थात्— वंदना करने से जो कर्मों की निर्जरा रूप फल होना है. उसे नहीं जानता. फक्त अपने कुल परंपरा से यह अपने गुरु हैं इसलिये वंदना करनी ही चाहिये वगैरा विचार से आदर भाव रहित वंदना करे तो दोष लगे. २ 'स्तब्धदोष' यह दोष दो प्रकार से लगे. एक तो शरीर में शूल आदि रोगों की पीडासे दुःखित हुवा वंदना करती वक्त प्रफुल्लित चितन होवे. सो द्रव्यस्तब्ध दोष. और दुसरा स्वभाविक ही शुन्यता से हुल्लास भाव नहीं

आवे सो भाव स्तब्धदोष. ३ 'परविध दोष' जैसे मजूर को मजूरी देकर कोइ काम कराया, वो जैसा तैसा कर कर चला जावे. तैसेही विचार से यथा विधी वंदन नहीं करे सो दोष. ४ 'सपिन्ड दोष' आचार्यजी, उपाध्याजी और साधूजी सबको भेली एकही वक्त वंदना करे, अलग २ नहीं करे, तो दोष. ५ 'टोल दोष' वंदना करती वक्त शरीर को एक स्थान स्थिर नहीं रखता, तीड पक्षी की तरह हलता हुवा वंदना करे तो दोष. ६ 'अकुशदोष' जैसे हाथी अंकुश के डरसे मावत की इच्छा मुजब चले, तैसे गुरूजी के कोपके डरसे वंदना करे, परन्तु स्वइच्छासे नहीं करे सो दोष. ७ 'कच्छप दोष' काछवे की तरह चारोंही तरफ देखता जाय और वंदना करता जाय सो दोष. ८ 'मच्छ दोष' मच्छी जैसे पाणी के आश्रय से रहे त्यों किसी भी प्रकार का आश्रय के लिये वंदना करे तो दोष. ९ 'मन प्रदुष्ट दोष' अपने मन प्रमाणें गुरुजी ने कार्य न किया इसलिये मनमें द्वेष भाव रख कर वंदे तो दोष. १० 'वंदीका वंदन दोष' (१) दोनो हाथ गोडे उपर रखकर वंदना करे. (२) दोनो हाथो के वीच दोनो गोडे रखकर, (३) दोनो हाथ के बीच एक गोडा रखकर, (४) खोले में एक हाथ रख, (५) दोनो हाथ खोले मे रखकर. यों ५ तरह वंदन करे तो दोष, ११ 'भय दोष' लोकमें अपयश के डरसे या गुरू महाराजके कोप (घूसे) के डरसे वंदे सो दोष. १२ 'भंजन दोष' और सब जनो ने वंदना करी तो मुझे भी करना चाहीये, इस विचारसे वंदे तो दोष. १३ 'मित्र दोष' गुरू महाराज के साथ मित्रता करने वंदे, अर्थात्-पुज्य बुद्धि न रखे तो दोष. १४ 'गारवदोष' में यथा विधी वंदना करूंगा तो लोक मुझे पंडित कहेंगे, विनीत कहेंगे. वगैरा अभीमान भावसे वंदे तो दोष, १५ 'कारण दोष' में गुरू महाराज

को यथा विधि वंदना करूंगा तो गुरु महाराज मुझे इच्छित वस्तु देवेंगे. १६ 'स्तैन्य दोष' लोक देखेंगे तो मुझे छोटा समजेंगे इसालिये कोइ देखे नहीं ऐसी तरह छिपकर वंदना करे. १७ 'प्रत्यनीक दोष' गुरु महाराज स्वध्याय या अहार वगैरा अन्य कार्य में लगें होवें उस वक्त उनको खिजाने वैर भावसे वंदना करे सो दोष. १८ 'रूष्ट दोष' आप क्रोध में रुष्ट हो कर तथा गुरूजी को रुष्ट कर कर वंदे सो दोष १९ 'तार्जित दोष' तर्जन (अगुष्ट के पास की) अंगुली से गुरुजीको बताकर कहे कि यह क्या कामके, कुछ देते तो है ही नहीं, फक्त यों ही वंदना करनी पडती है, ऐसा कहे या चिन्तवे तो दोष. २० 'शठ दोष' मूर्खकी तरह गून अवगून कूछ नहीं समजता अन्य की देखा देख दंडवत वगैरे करे सो दोष. २१ 'हीलना दोष' गुरूजी से कहे तुम वंदने योग्यतो नहीं हो, परन्तू तुम्हारा गौरव रखने में वंदना करता हूं इत्यादि निंदाके वचन कहे सो दोष. २२ 'कुचितदोष' वाताभी करता जाय और वंदना भी करता जाय तो दोष. २३ 'अंतरित दोष' बहुत दूरसे, जाने नहीं जाने जैसे वंदन करलेवे तो दोष. २४ 'व्यंग दोष' सन्मुख रहकर वंदना नहीं करे, आजु वाजू रहकर करे तो दोष २५ 'कर दोष' ज्यों राजाजी का हासल दिये विन छुटका नहीं, त्यों गुरूजी को वंदना किये विन भी छुटका नहीं होने का, इत्यादि विचारसे वंदे तो दोष. २६ 'मोचन दोष' चलो, वंदना कर आवें, पाप काट आवें, फिर सब दिनकी नचीताइ ! इत्यादि विचार से वंदे सो दोष. २७ 'आश्लिष्ट' दोष वंदना करती वक्त जो अपना मस्तक व हाथ गुरू के चरण को लगाना है सो नहीं लगाता हूवा, फक्त ऊंटकी तरह गरदन झुका कर चला जावे तो दोष. २८ 'न्यून दोष' वंदना करता पुरा पाठ नहीं पडे. पुरी विधी नहीं साचे

जलदी २ कर डाले, सो दोष. २९ 'चुलिका दोष' वंदना का पाठ बहूत जोर से हाक मार कर उच्चारे की ' मथयन वंदामी महाराज' !! तो दोष. ३० 'मूक दोष' चुप चाप कूछ भी बोले विगर वंदना करे तो दोष. ३१ 'ढढर दोष' लक्कड के ठूंठ जैसा कग्डा खडह् रहकर फक्त मुखसे शब्दोच्चार करे सो दोष. और ३२ 'आंवली दोष' (१) बड़े छोटे को अनुक्रमें नही वंदे, (२) सब साधु ओं को वंदना नहीं करे. (३) अपने स्नेही मुनी को ज्यादा वंदे दूसरे को थोडे वंदे ४ कभी वंदना करे कभी नहीं करे. (५) किसीको यथा विधी करे किसी को विनाविधी करे. इत्यादि तरह से वंदना करे सो आवली दोष. यह ३२ दोष टालकर हर्ष हुल्लास भाव युक्त कि मेरे अहो भाग्य हैं एसे सद्गुरु मुजे मिले हैं, यह जोग वार वार नहीं मिलता है, मेरी जब्बर पुण्याइ से यह कर्मों की निर्जरा करने की दुलभ्य वक्त प्राप्त हुइ है. इसवक्त लाभो पार्जन कर लिया सो मेरा है. यह तो महात्मा पूरुष सर्व जगत् के वंदनिय हैं. इनको किसी की वंदना की गर्ज नहीं हैं जो इनको वंदन करे है सो अपने नफे के वास्ते ही करे है. इत्यादि विचार से परम भक्ति भाव पुर्वक यथा विधी त्रि-करण त्रियोग की विशुद्धी से वंदना करे सो वरोक्त ७ लाभ उपार्जे.

और वरोक्त गुण युक्त गूरु महाराज की ३३ अशातना कि जो ज्ञानादि गूणों को आच्छादन करने वाली होती है. उन्हे वरजनी चाहिये सो सम्यवायांगजी सूत्र प्रमाणे यहां लिखते हैं:-

गुरुजी की ३३ अशातना.

१- गुरु माहाराज के आगे चले नहीं. २ बरोबर चले नहीं. ३ पीछे अडकर चले नहीं. ४ आगे खडारहे नहीं. ५ बरोबर खडारहे

नहीं ६ पीछे अडकर खडारहे नहीं. ७ आगे बेठे नहीं. ८ बरोबर बेठे नहीं. ९ पीछे अडकर बेठे नहीं. १० गुरु माहाराज के पहिले शुची करे नहीं. ११ गुरु माहाराज के पहिले इर्यावही (आवागमन के पाप से निवृत्तने की पाटी) पडिकमे नहीं. १२ कोइभी दर्शन आदि कार्यार्थ आवे तो गुरु माहाराज के पहिले आप उस बोलावे नहीं १३ आप सूता होवे और गुरुजी बोलावे तो सुनतेही तुर्त उठकर उनके प्रश्नका उत्तर नम्रतासे देवे. १४ किसी कार्यार्थ कंही जाकर पीछा आया उसके मध्यमें जो कुछ हुवा हो सो सब निष्कपटतासे गुरुजीके आगे प्रकाशदे. १५ अहार. वस्त्र. पुस्तक. आदि कोइ भी वस्तु किसीके पाससे गृहण करीहो. तो पहिले गुरुजीको बताकर फिर आप ग्रहण करे. १६ कोइ भी वस्तु दूसरेके पाससे गृहण कर पहिले गुरुजीको आमंत्रे कि इसे आप गृहण करमुझे कृतार्थ कीजीये! जो गुरुजी उस वस्तुका स्विकार करे तो और बहुत खुशहोवे. १७ जोगुरु माहाराज उस वस्तुको ग्रहण नहीं करेंतो गुरुजीकी आज्ञाते वहां विराजते हुवे अपने स्वधर्मीयोंको आमंत्रण करे कि हे महानुभाव! मेरेपर अनुग्रहकर इस वस्तुका गृहण करो! जोकोइ भी गृहण नहीं करेंतो फिर आप गुरुजीकी आज्ञासे उस वस्तुको भोगवे. १८ गुरु और शिष्य एकही मंडल पर आहार करने बेठे होवें तो सरस मनोज्ञ आहार गुरुजीके भागमें आवे एसा करे. १९ गुरुजी जो आदेश (हुकम) फरमावे उसे सुना अनसुना नहीं करे. परन्तु बहुत आदर भावसे गृहण करे. २० गुरुजीका हुकम सुनतेहि तुर्त आसन छोड खडा होकर हाथ जोडकर उत्तरदेवे. २१ गुरुजी के साथ वारता लाप करती वक्त जी! तहेत! प्रमान! वगैरे उच्च शब्दों कर वचन सुने. वा प्रत्युत्तर देवे. २२ परन्तु रे! तू क्या कहता है. वगैरा हलके शब्दों कर नहीं बोले. २३ गुरु माहाराज

कृपाकरके जो जो हित शिक्षा देवें, उसे आप बहुतही उत्सुकता से गृहण करे. और उस प्रमाने वृताव करनेकी इच्छा दरसावे. यथा शक्ती वृताव भी करे. २४ गुरुजी फरमावें की वृद्ध-ज्ञानी-रोगी-तपश्वी-नवी दिक्षित इनकी वैयावच्च (सेवा-भक्ति) करो ! तथा अमुक कार्य करो ! तो तुर्त अपना सब काम छोड कर गुरुजी कहेसो करे, परन्तु यों नहीं कहेकि सब काम मैं अलकेही करुं क्या ? कुछ तो तुम भी करो ! २५ छद्मस्त आदी प्रसंगसे व्याख्यान आदी किसी भी कार्य में गुरु माहाराज भूल गये, या काम विगड गया हो तो शिष्य गुरुजी की भूल प्रगट करे नहीं, पूछ तो, अति मान पूर्वक वचनो से नम्रता से यथातथ्य कहे. २६ गूरुजी से कोइ भी प्रश्नादि पूछे तो पहिल आप उत्तर नहीं देवे. गूरुजी खुशी से आज्ञादेव तो आप गूरुका उपकार दर्शाता उत्तर देवे. २७ गूरुजी की महिमा सुण कर आप बिलकुलही नाराज नहोता, विशेष खुशी होवे. २८ साधू-साध्वी-श्रावक-श्राविका में भेद नहीं करे, कि यह मेरे और यह गूरुजी के. २९ गुरु माहाराज को धर्मोपदेश व संवाद करते विशेष वक्त होजाय तो गोचरी आदिक का काल उलंघता हो तो भी आप यों नहीं केह कि अब कहां लग इसे घसीटोगे ! अमुक कामका भी कुछ ध्यान है ? वगैरा कह कर अंत्तराय नहीं देवे. ३० गुरू महाराज के वस्त्र पात्र विछाना आदि उपकरण को आप पग आदि अपंग नहीं लगावे. और कदाचित् भूल कर लग जाय तो उस ही वक्त गुरू महाराज को वंदना कर अपराधको क्षमावे. ३१ जो अधिकार गुरुजी ने वाख्यानमें फरमाया हो उस ही अधिकारको आप विशेप विस्तारसे उसही प्रषदा में अपनी परसंस्या निमित पीछा नहीं कहे. ३२ गुरुजी के वस्त्र पाट प्रमुख उपकरण अपने काममे नहीं लगावे. और कदापि ऐसाही प-

योजन पडजाय कि वापर विन चले नहीं, तव गुरु महाराज की आज्ञा लेकर यत्ना सहित वापरं. ३३ गुरुजी से सदा नीचा रहे (१) द्रव्ये तो आसन नीचा रखे, हाथ जोडे ऊंचे वचनो से वारता लाप करे, आज्ञा प्रमाणे काम करे, इत्यादि. और (२) भावसे निरभिमान, निष्कपटता, नम्रता, दासानुदास वृतीसे सदा रहे. गुरु महाराज का सदा भला चहावे. यह ३३ अशातना को टालने जो जो गुण उपर वताये हैं. उस मुजव प्रवर्ती कर गुरु भक्ति सदा करन वाले जीवों परमात्म मार्ग में प्रवृतने वाले होते हैं.

गुरु अशातनाका फल.

दशवैकालिक सूत्र में फरमाया है कि—१ जो कोइ मूर्ख जाज्वल मान अग्नि को पांव मे दवाकर वुजाना चहाता है, उनके पांव जरुर ही जलते हैं. २ द्रष्टी विष सर्प की जो द्रष्टी मात्रसे अन्यको जला डाले एसे सर्प को कोपाय मान कर सुख चहावे, वो अवस्यही मरता हैं. ३ हलाहल विष (जेहर) खाकर अमरत्व चहाता है, वो अवश्य ही मरता है. ४ मस्तक कर पहाड को तोडा चहावे, उसका मस्तक अवश्यही फूटता है ५ जो कोइ मुष्टि प्रहारसे भाला वरछी नामक शास्त्र को मोचना चहावे. उसका हाथ जरुर ही कटता है. इत्यादि अन होने के काम कदापि मंत्र प्रयोग से या, पूर्व पुण्याइ के जोगसे सुख दाता भी होजावें. परन्तु गुरु महाराजकी अशातना कर कोइ किसी भी तरहका सुख चहावे तो कदापि नहीं होने का, और दुःखतो जरुर ही होगा ! गुरुजी की अशातना करने से ज्ञान आदि सर्व गुणोका नाश होता है, और 'गुरु हीलणाए नया वि मोक्खो' अर्थात गुरु महाराज के निंदक को मोक्ष त्रिकाल में कदापि नहीं मिलती है.

गुरु भक्ती की विधी.

ऐसा जान कर जैसे अग्नि होत्री ब्राह्मण अग्निको घृत मधू आदि अनेक द्रब्यों से और अनेक मंत्रो से सेवना पूजना करता है, तैसे ही श्री केवल ज्ञानी भगवंत भी आसेवणा (ज्ञानकी) और ग्रहण (आचारकी) हित शिक्षा देने वाले गुरू महाराज का मन कर सदा भला चहाते हैं, बचन कर सदा गूणानुवाद करते हैं. और काया कर ऊभे होना, सन्मुख जाना, आसन विछाना, अहार पाणी वस्त्र औषधी वगैरा चहीये सो लादेना, और जावत पंच अंग से नम्र भूत हो नमस्कार करना * वगैरा यथा योग्य भक्ति भाव करते हैं, तो छद्मस्त करे इसमें विशेषत्व ही क्या ? ऐसा जान परमात्म मार्ग में प्रवृतक को गुरु महाराज की अहो निश विनय भक्ति करनी चहीये.

श्री सूयगडांगजी सूत्रके दुसरे श्रुतस्कन्ध के ७ मे अध्यायमें कहा है

सूत्र—भगवंचंण उदाहु आउसंतो उदगा ? जे खलु तहा भूतस्स समणस्सवा महाणस्सवा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चानिसम्म अप्पणो चेव सुहुम्माए पडिलहीए अणुत्तरं जोग खेम पयं लंभिए समाणे सोवितावतं अढाइ परिजाणेति वंदंति नमंसंति सक्कारेइ जाव कल्याणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेत ३७

अर्थ—श्री गौतम स्वामी भगवंत उदक पेढाल पुत्र श्रावकसे कहते हैं कि—अहो आयुष्यवंत उदक ! 'खलु' कहीये निश्चय कर के समण साधू जी के पास से और महाण श्रावक के पाप से धर्म-सम्बन्धी व शास्त्र सम्बन्धी फक्त एकही अक्षर व पद श्रवण कर हृदय में धारन कर, अपनी सुक्ष्म बुद्धि से अलोचन-विचार कर मनमें

* केवली भगवंत गुरुको नमस्कार करने जाते है. परन्तु गुरू करने नहीं देते है.

समजे कि इन महात्माके सद्बोध के प्रशाद से मूझे ज्ञान प्राप्त हुवा' जिस ज्ञान के प्रशादसे मे परम कल्याण क्षेम कूशल रूप जो मोक्ष पद है, उसको प्राप्त करने समर्थ हुवा हूं, रसते लगा हूं, उन एकही अक्षर के दातार गुरु महाराज का आदर सत्कार करे, उन्हे पूज्यनिय जाने उनके साथ हाथ जोड नम्र भूतहो वारतालाप करे, मस्तक नमा कर नमस्कार करे, जावत् आप कल्याण करता हो; मंगल के कर्ता हो, धर्म देवहो, ज्ञानवंत हो, इत्यादि औपमा से स्तुती करे, और यथा शक्ति यथा योग्य पर्युपासना—सेवा भक्ति करे.

ऐसाही गुरू महाराजकी परसंस्या सर्व मतान्तरो के शास्त्रों में है, गुरू महाराज के भक्त को गुरू की ज्ञान संयम और लोकीक शुद्धता यह तो जरुर देखना; परन्तु यह मेरे से वय में छोटे हैं, या कम पडे हुवे है, या क्षमादि गुण नुन्य है, इत्यादि की तरफ लक्ष लगाने की कुछ जरुर नहीं * अपने को तो उन्के उपकार के तरफ ही लक्ष विन्दू रखने की जरुर है, गुरु महाराज के तुल्य उपकार का कर्ता इस विश्वमें दूसरा कोइ भी नहीं है, माता पिता कलाचार्य सेठ भाइ कुटंब चन्द्र सूर्य इन्द्र आदि सब से अधिक उपकार के कर्ता गुरु महाराज ही है. क्यों कि अन्य जो कुछ उपकार करते हैं उनके मन में सेवा भक्ति का, धन, वस्त्र, आहार, प्रमुख प्राप्ती का [illegible] कुछ भी मतलब रहा हुवा है. और इन की तरफ से जो कुछ सुख प्राप्त होगा वो अपनी पुण्याइ प्रमाणे परन्तु अधिक सुख देने समर्थ वो

* साधू-साध्वी—श्रावक श्राविका यह चारों तीर्थोंने जिनको यह पद आचार्य पद पर स्थापन किये, वो वय [illegible] में कम [illegible] होवे तो भी उन को तीर्थ का [illegible] पूजनीक मानना चाहिये.

गुरु भक्ती की विधी.

ऐसा जान कर जैसे अग्नि होत्री ब्राह्मण अग्निको घृत मधु आदि अनेक द्रव्यों से और अनेक मंत्रो से सेवना पूजना करता है, तैसे ही श्री केवल ज्ञानी भगवंत भी आसेवणा (ज्ञानकी) और ग्रहण (आचारकी) हित शिक्षा देने वाले गुरु महाराज का मन कर सदा भला चहाते हैं, वचन कर सदा गूणानुवाद करते हैं. और काया कर ऊभे होना, सन्मुख जाना, आसन बिछाना, अहार पाणी वस्त्र औषधी वगैरा चहीये सो लादेना, और जावत पंच अंग से नम्र भूत हो नमस्कार करना * वगैरा यथा योग्य भक्ति भाव करते हैं, तो छद्मस्त करे इसमें विशेषत्व ही क्या ? ऐसा जान परमात्म मार्ग में प्रवृतक को गुरु महाराज की अहो निश विनय भक्ति करनी चहीये.

श्री सूयगडांगजी सूत्रके दुसरे श्रुतस्कन्ध के ७ मे अध्यायमें कहा है

सूत्र—भगवंचंण उदाहु आउसंतो उदगा ? जे खलु तहा भूतस्स समणस्सवा महाणस्सवा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चानिसम्म अप्पणो चेव सुहुम्माए पडिलेहीए अणुत्तरं जोग खेम पयं लंभिए समाणे सोवितावतं अढाइ परिजाणेति वंदेति नमंसंति सक्कारेइ जाव कल्याणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेत ३७

अर्थ—श्री गौतम स्वामी भगवंत उदक पेढाल पुत्र श्रावकसे कहते हैं कि—अहो आयुष्यवंत उदक ! 'खलु' कहीं ये निश्चय कर के समण साधू जी के पास से और महाण श्रावक के पाप से धर्म-सम्बन्धी व शास्त्र सम्बन्धी फक्त एकही अक्षर व पद श्रवण कर हृदय में धारन कर, अपनी सुक्ष्म बुद्धि से अलोचन-विचार कर मनमें

* केवली भगवंत गुरुको नमस्कार करने जाते है. परन्तु गुरु करने नहीं देते है.

समजे कि इन महात्माके सद्बोध के प्रशाद से मूजे ज्ञान प्राप्त हुवा' जिस ज्ञान के प्रशादसे मे परम कल्याण क्षेम कूशल रूप जो मोक्ष पद है, उसको प्राप्त करने समर्थ हुवा हूं, रसते लगा हूं, उन एकही अक्षर के दातार गुरु महाराज का आदर सत्कार करे, उन्हे पूज्यनिय जाने उनके साथ हाथ जोड नम्र भृतहो वारतालाप करे, मस्तक नमा कर नमस्कार करे, जावत् आप कल्याण करता हो; मंगल के कर्ता हो, धर्म देवहो, ज्ञानवंत हो, इत्यादि औपमा से स्तूती करे, और यथा शक्ति यथा योग्य पर्युपासना—सेवा भक्ति करे.

ऐसाही गुरु महाराजकी परसंस्या सर्व मतान्तरो के शास्त्रों में है, गुरू महाराज के भक्त को गुरू की ज्ञान संयम और लोकीक शुद्धता यह तो जरुर देखना; परन्तु यह मेरे से वय में छोटे हैं. या कम पडे हुवे है, या क्षमादि गुण न्युन्य है, इत्यादि की तरफ लक्ष लगाने की कुछ जरुर नहीं * अपने को तो उन्के उपकार के तरफ ही लक्ष विन्दू रखने की जरुर है. गुरु महाराज के तूल्य उपकार का कर्ता इस विश्वमें दूसरा कोइ भी नहीं है. माता पिता कलाचार्य सेट भाइ कुटंव चन्द्र सूर्य इन्द्र आदि सब से अधिक उपकार के कर्ता गुरु महाराज ही है. क्यों कि अन्य जो कुछ उपकार करते हैं उनके मन में सेवा भक्ति का, धन, वस्त्र, अहार, मनुष्य मानी का वगैरा कुछ भी मतलब रहा हुवा है. और इन की तरफ से जो कुछ सुख प्राप्त होगा वो अपनी पुण्याइ प्रमाणे परन्तु अधिक सुख देने समर्थ वो

---

* साधु-साध्वी—श्रावक श्राविका यह चारों तीर्थोंने जिनको गुरु आचार्य पद पर स्थापन किये, वो वय बुद्धि में कम भी होवे तो चारों ही तीर्थ को उन के हुकममें चलना चाहिये.

नहीं हैं. और वो जो अपनी पुण्याइ प्रमाणे अपने को सुख देते हैं, सो फक्त इसही लोक समबन्धी, परन्तू आगेके जन्म में सुखी करने समर्थ नहीं हैं, और गुरु महाराज तो विन मतलव फक्त जीवोंके उद्धारार्थ आहार वस्त्र पात्र वगैरा का साता उपजाकर पुस्तक लेखनी दि साहीत्यों का संयोग मिलाकर यथा उचित रिती से ज्ञान दर्शन चारित्र रूप दान देते हैं. कि जिसके प्रशाद से आनडी पशु तुल्य शिष्य भी पण्डित पद को प्राप्त हो. वडे २ इन्द्र नरेन्द्र राजा सेठ वगैरा का पूज्य हो सर्व प्रकारसे सुख समाधी से आयुष्य पूर्ण कर आपणे को स्वर्ग मुक्त के सुख के भुक्ता वना देते हैं. इसी लिये कवी राज पूज्य पाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराजने फरमाया है कि.

मनहर छंद— गुरू मित्र गुरु मात, गुरू सगा गुरु तात,
गुरू भूप गुरु भ्रात, गुरु हित कारी हैं.
गुरु रवी गुरु चन्द्र, गुरू पती गुरु इन्द्र.
गुरू देत आनन्द, गुरू पद भारी है.
गुरु देत ज्ञान ध्यान, गुरू देत दान मान.
गुरू देत मोक्ष स्थान, सदा उपकारी है,
कहत है, तिलोक ऋषि, हित कारी देत शिक्षा.
पल २ गुरूजी को, वंदना हमारी है.

अर्थात्—संकट समय मित्र समान सहायता के कर्ता, माता समान ज्ञानादि से पोपण के कर्ता, सगे—सम्वन्धी समान मदत के कर्ता, पिता के समान विध्याधन के दाता, राजा के समान अन्याय से वचाने वाल, भाइ समान साहायताके कर्ता, सूर्य के समान प्रकाश के कर्ता, चन्द्र समान शीतलता के कर्ता, पती समान शोभा के क-

र्ता, इन्द्र के समान आधार भूत, सर्व जीवों को एकान्त आनन्द दाता श्री गुरू देवजी महाराजही हैं, वल्के इनसे भी अधिक उपकारक कर्ता हैं यह तो फक्त औपमा वाचक शब्द, है क्यों कि ज्ञान रुप परमदान को देते हैं, कि जिस ज्ञान के प्रभाव से सामान्य मनुष्य भी संपुर्ण जगत् में मान निय हो जाता है, और आगे को शिव अनंत अ-क्षय सुख का स्थान मोक्ष है उसकी प्राप्ती होती है. ऐसे उपकार के कर्ता और कौन है ? अर्थात्—कोइ भी नहीं !

श्री गुरू देवने शिष्य को सुधारने की अलौकिक—अनोखी युक्तीयों की योजना की है, उन यूक्तियों में की कितनीक युक्तीयों वरोक्त महात्माने वताइ है सो यहां कहते हैः—

मनहरछन्द्— जैसे कपडा को थान, दरजी वेंतत आन,
खन्ड २ करे जान, देत सो सुधारी है,
काष्ट को ज्यों सूत्र धार, हेम को करो सुनार.
मृतीको को कुंभार, पात्र करे त्यारी है.
धरती को जो कृपान, लोह को लोहार जान.
सिल्लावट सिल्ला आन, घाट घडे भारी है.
कहत है तिलोक ऋषि, सुधारे यों गुरू शिष्य.
गूरू उपकारी नित्य लीजे वली हारी है.

अर्थात्—जैसे दरजी, सूतार, कुंभार, लुहार, कृपीकार, और सिलावट; वस्त्र, काष्ट, सुवर्ण मट्टी, लोहा, पृथवी और सिला को अ-व्वल तो फाड काट तोड टूकडे २ कर जाने विगाड डाली हो ऐसी वना देता हैं, और उन्ही को जोड सांध मनहर सर्व मान्य वस्तू व-ना देते हैं, कि जो अनेक गूणी कीमत पाने लगजाती है. अजी

एक ठोकरों में ठूकराते हुवे पत्थरको घडकर मुर्ती रूप बना देते हैं. वो लखों भोलीयों के मन को भरमाने वाली हो जाती है, और उसका वंदन पुजन होने लगता हैं. लाला रणाजित सिंहजी ने कहा हैः-कि

दोहा—गूरु कारीगर सारीखा, टांची वचन विचार ॥
पत्थर से प्रतिमां करे, पूजा लेत अपार ॥ १ ॥

ऐसे गुरु महाराज अनघड टोल जैसे मनुष्य को बचन रुप टांची से घड कर सुधारा करने बादम फळके जैसी बृती धारन करते हैं. वदाम उपरसे तो कठिण दिखता है परन्तु अन्दर से कौमल और मधुर होता है, तैसेही गुरु महाराज शिष्य को अनेक कटुबचनसे व आयंविल उपवास आदि तप करा कर. ऐकान्त वास, मौनवृती, वगैरा धारन करा अभ्यास कराते हैं, तव अलपज्ञ शिष्य को यह गुरुकी वृती खराव लगती है, और जिससे घवराकर कभी अमर्यादित विचार उचार और आचार करने लगता है. तब अन्यको याउस शिष्य यों मालुम पडने लगता है कि विगडगया. परन्तु सद्गुरु शिष्य की यह वृती देख बिल कुलही नहीं घबराते हैं. अपने कर्तव्य से बिलकुल पीछे नहीं हटते हैं, वो तो जानते हैं कि बिगाडे बादही सुधारा होता है. और ज्ञानामृत रुप औषधी, शुद्ध आचार विचार रूप पथ्य पालन के साथ देतेही रहते हैं, जिससे वो थोडेही समय में जैसा कि नवीन जन्मा हुवा हो ऐसा बन जाता है. मूर्खका-विद्वान जडका पण्डित. अपुज्य का-परम पुज्य बनकर लोकीकानन्द और आत्मा नन्द में लीन बनता है, तब अंतरिक चक्षु खुलनेसे गुरू महाराज का परम उपकार हृदय में दिग दर्श करता हुवा आशिर वादों का अजपा जाप लगाता है, कि अहो गुरू दयाल ! मेरे जैसे नर रूप पशू को सच्चे नर पदपर स्थापन करने वाले, अन्धेको नेत्र देने वाले, भूलेको

मार्ग बताने वाले. ज्ञान विजियाके मधुर २ घुटके पिलाकर अद्वैतानन्दमें रमाण कराने वाले आपहीहो, भला होवे गुरु महाराज आपका सदाही भला हो ! !

ऐसे परम पूज्य गुरुजी स्थिविर होते हैं व शिष्य को स्थिविर पद में स्थापन करते हैं, उन स्थिविर भगवंतके गुणानुवाद करे, पहले श्री गुरु महाराज को नव कोटी विशुद्ध नमस्कार करता हूं.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के
बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी रचित् पर
मात्म मार्ग दर्शक ग्रन्थका " गुरु गुणानुवाद " नामक
चतुर्थ प्रकरणम् समाप्त.

प्रकरण पांचवा.

"स्थिविर गुणानुवाद."

न महात्माओं की आत्मा ज्ञान आदि सद्गुणों में स्थिरी भूत हो कर जो चिरस्थायी पद भोगवती होवे, या जो माहात्मा ओं अपने सद्गुण रूप जादूइ विद्या के जोर से अन्य अज्ञ अल्पज्ञ जीवों की आत्मा अस्थिर हो सद्गुणों से चलित हो अ सद्गुणों की तरफ जाती हो, उसे आकर्षणकर–खेंच कर पुनः सद्गुणों मे स्थापन कर निश्चल करे उन महात्मा ओं को स्थिविर भगवंत शास्त्र में कहे हैं.

ग्रन्थ कार उन स्थिविरों के दो विभाग करते हैः–१ लोकीक स्थिविर, और २ लोकोतर स्थाविर.

१ लोकीक स्थिविर–अर्थात्–संसार मार्ग में प्रवृतते हुये जीवों आधी (चिन्ता) व्याधी (रोग) उपाधी (दुःख) से व्याकुल हो चल विचल वने, उनको व्यवहारमें स्थिर करने वाले, माता, पिता, गुरु, पाति, स्वजन, मित्र, वगैरा, जो वयोवृद्ध गुणोंवृद्ध होवे उनकी सेवा भाक्ति करना सो लोकिक स्थिविर भाक्ति.

श्री ठाणांगजी सुत्र के तिसरे ठाणे में फरमाया है कि गुरु गुराणी

माता–पिता, और सेठ सेठाणी इन के उपकार से ऊरण होना मुशकिल है.

इस जगत् में माताका उपकार सब से अधिक गिनाजाता है, क्यों कि गर्भासय से लगाकर प्रसुत काल तक और जन्में पीछे पुत्र योग उम्मर को प्राप्त होवे वहां तक, व तावे उम्मर तक आप अनेक दुःख संकट सहन कर, अपने तन, धन, का खरावा कर, पुत्रकी प्रवस्ती व सुख की वृद्धि की तरफ ही लक्ष रखती है. ऐसी माताका भक्तिवंत पुत्र सब जन्म किंकर बनरहे, उस के मुखसे केह पहिले अभिप्राय को समज कार्य व वर्ताव करे, जो जो उसकी इच्छा हो सो यथा शक्ती पूर्ण करे. चरण पखाले, पग चंपी करे, देश काल प्रकृती उचित भोजन करावे, वस्त्र पहनावे, वगैरा सर्व कार्य उत्सहा युक्त करे, और उसकी तरफ से उपजती हुइ ताडन तर्जन कटुवाक्य सवको हित कारी जान नम्र भावसे सहे, परन्तू कदापि कटु वाक्यादि किसी प्रकार उसका मन नहीं दुःखावे. ऐसी भक्ति उम्मर भर करे तो भी ऊरण नहीं होवे. परन्तू माता को धर्म मार्ग दर्शाकर, वृत नियम धारण करा कर, आयुष्य के अंत आलोयणा निंदना करा कर, धर्म भाता बंधा कर परभव पहोंचावे तो ऊरण होवे.

२ ऐसे ही पिताभी उपकारी होते हैं कि जो पुत्र को जन्मसे लगा कर योग्य वय को प्राप्त होवे, वहां तक औषध उपचार भोजन, वस्त्र, आदि सामग्रीका संयोग मिलाकर पोषते हैं. वक्तो वक्त हित शिक्षा देते रहते हैं, और विज्ञान वय प्राप्त होते कालाचार्य के मनको पसंद कर, गणित, लिखित, आदि अनेक लोकीक विद्याभ्यास कराते है, धर्म ज्ञान भी पढाते हैं, और सामर्थ्य जान अनाचार से बचाने वय रूप और विद्या में सामान्य ऐसी कन्या के साथ पाणी ग्रहण कराते हैं. आखिर अनेक कष्ट सहन कर उपार्जन करी हुइ प्राणसे प्यारी

संपती का मालक उसे बनाते हैं, ऐसे उपकारीक पिता का सुपुत्र माता की भक्ति कही वैसीही तरह करे, तावे उम्मर दास बनकर रहे, तो भी उरण नहीं होवे. परन्तू माताकी तरह पिता का भी अंत अवसर धर्म रूप साता वंधा समाधी मरणकरा कर पहोंचावे तो उरण होवे.

३ ऐसे ही कलाचार्य का भी उपकार अपार है. क्योंकी जिसका चित क्रिडामें रमण कर रहाथा ऐसे शिशुओं को भी अनेक योग्य युक्ति यों से, व इनाम इकाम आदि के लालचसे, व गरमी नर्मी से उसके मनको विद्यामें स्थिर कर, लेखित, गणित, आदि अनेक लौकीक विद्या का अभ्यास कराया जिससे वो अपने शरीर का ओर कुटुम्ब आदि का पोषण कर सुखे आयुष्य व्यतीत करे, ऐसा बना देते है. ऐसे कलाचार्य को भी वो विद्यार्थी वस्त्र, भूषण, द्रव्य से वा सत्कार सन्मान सेवा भक्ति कर संतोषे, ओर उम्मर भर उनका उपकार नहीं भूले तो भी ऊरण न होवे. परन्तु अन्य धर्म में होवे तो ओर समज मे आगे पीछे (धर्म ज्ञान पाये पीछे) उन्हे स्वधर्मी बनावे. ओर जो वो स्वधर्मी होवे तो उनके आयुष्य के अंत में धर्म रूप साता वंधावे समाधी मरण करावे तो ऊरण होवे.

४ ऐसाही सेठजी का भी उपकार गिना जाता है, क्यों कि जिनोने भूखे मरते दुःखी दरिद्री प्राणी को द्रव्य, वस्त्र, अहार आदि अनेक सहायता कर संतोष उपजाया, द्रव्योपार्जन करने की अनेक कला कौशल्यता व्यापार निती सिखवाइ, ओर अपने प्राण से प्यारा द्रव्य का भन्डार उसके सुपुर्द कर उसको अपने जैसा तावे उम्मर का सुखी बना दिया. परन्तु कर्म गति विचित्र है, जिसके चक्कर मे आकर सेठजी कभी हिनस्थिती दारिद्र अवस्था को प्राप्त हुवे, उनको दे[illegible] कुछ [illegible] नहीं [illegible] ओर उनके [illegible]

ति उपजे ऐसे वचनो से संतोष, नम्रतासे विज्ञती कर अपने घरमें लाकर कहे कि—यह घर द्रव्य सब आपही का है, मै तो आपका ऋणी दास हूं. यह सब आप संभालिये, और दास लायक काम फरमा मुझे पोपीये. इत्यादि कह सब घरके मालक उनको बनावे आप गुमास्ता (चाकर) हो कर रहे, तोभी ऊरण नहीं होवे. हां जो वो सेठ अन्य धर्मी होवें तो स्वधर्मी बनावे, और अंतिम अवस्था में समाधी मरण करा कर उनको धर्म रुप संबल (भाता) बन्धावे तो ऊरण होवे.

यह वरोक्त उपकारसे उरण (अदा) होने की रीती श्री ठाणांगजी सूत्र मे फरमाइ है. इस सिवाय और भी व्यवहारिक रीती प्रवृती कर विचार कर देखेंतो—

५ जेष्ट बन्धव को, तथा मित्रो को भी उपकारी कहे जाते है, क्योंकि वो भी आपदा आकर पडे, व उत्सव आदि कार्य में यथा शक्ति हरेक तरहकी सहयता करते हैं. अच्छी सला दे धैर्य बन्धाते हैं कार्य साधने का सू-मार्ग से सुचित करते है, और वक्तपर अपना तन धन अर्पण कर स्नेहीका कार्य सुधारते हैं. इज्जत रखते हैं, तथा प्राण भी झोंक देते हैं, ऐसे स्वजन मित्र के उपकार के बदले में कृतज्ञ मित्र अपना सर्वस्वय अर्पण कर उनका तावे उम्मर का दास भी बन जाय तो ऊरण नही हो; परन्तु अन्य धर्मी हो तो स्वधर्मी बनावे, व समाधी मरण करा उनका अंत अवसर सुधारे तो ऊरण होवे.

तैसे स्त्री के भाव पति भी बडे गिने जाते हैं. क्यों कि स्त्री के चंचल स्वभाव को स्थिर करने वाले होते हैं. योग्य और मधुर वचनो से संलाप कर, साधू सतीयों के दर्शन करा, धर्म ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरना कर, धर्मम लगावे. क्यों कि धर्म की जान स्त्री कुलीन लजालु व विनीत होकर कुटम्बको सुख दाइ होती है. और भी भरतारने स्त्री

संपती का मालक उसे बनाते हैं, ऐसे उपकारीक पिता का सुपुत्र माता की भक्ति कही वैसीही तरह करे, तावे उम्मर दास बनकर रहे, तो भी उरण नहीं होवे. परन्तू माताकी तरह पिता का भी अंत अवसर धर्म रूप भाता बंधा समाधी मरणकरा कर पहोंचावे तो उरण होवे.

३ ऐसे ही कलाचार्य का भी उपकार अपार है. क्योंकी जिसका चित क्रिडामें रमण कर रहाथा ऐसे शिशुओं को भी अनेक योग्य युक्ति यों से, व इनाम इकाम आदि के लालचसे, व गरमी नरमी से उसके मनको विद्यामें स्थिर कर, लेखित, गणित, आदि अनेक लोकीक विद्या का अभ्यास कराया जिससे वो अपने शरीर का और कुटुम्ब आदि का पोषण कर सुखे आयूष्य व्यतीत करे, ऐसा बना देते हैं. ऐसे कलाचार्य को भी वो विद्यार्थी वस्त्र, भूषण, द्रव्य से वा सत्कार सन्मान सेवा भक्ति कर संतोषे, और उम्मर भर उनका उपकार नहीं भुले तो भी ऊरण न होवे. परन्तू अन्य धर्म में होवे तो आप समज मे आये पीछे (धर्म ज्ञान पाये पीछे) उन्हे स्वधर्मी बनावे, और जो वो स्वधर्मी होवे तो उनके आयुष्य के अंनत में धर्म रूप भाता बंधावे समाधी मरण करावे तो ऊरण होवे.

४ ऐसाही सेठजी का भी उपकार गिना जाता है, क्यों कि जिनोंने भूले भटके दुःखी दरिद्री प्राणी को द्रव्य, वस्त्र, अहार आदि अनेक सहायता कर संतोष उपजाया, द्रव्योपार्जन करने की अनेका कला कौशल्यता न्याय निती सिखवाइ, और अपने प्राण से प्यारा द्रव्यका भन्डार उसके सुपुरत कर उसको अपने जैसा तावे उम्मर का सुखी बनादिया. परन्तू कर्म गति विचित्र है, जिसके चक्कर मे आकर सेठजी कभी हिनस्थिती दारिद्र अवस्था को प्राप्त हुवे, उनको देख वो कृतज्ञ गुमास्ता तूर्त सर्व कार्य छोड उनके सन्मुखजा सुख शां-

ति उपजे ऐसे वचनो से संतोष, नम्रतासे विज्ञनी कर अपने घरमें ला-
कर कहे कि—यह घर द्रव्य सब आपही का है, मैं तो आपका ऋणी
दास हूं. यह सब आप संभालिये, और दास लायक काम फरमा मुझे-
पोषीये. इत्यादि कह सब घरके मालक उनको बनावे आप गुमास्ता
(चाकर) हो कर रहे, तोभी ऊरण नहीं होवे. हां जो वो सेठ अन्य ध-
र्मी होवें तो स्वधर्मी बनावे, और अंतिम अवस्था में समाधी मरण
करा कर उनको धर्म रुप संबल (भाता) बन्धावे तो ऊरण होवे.

यह वरोक्त उपकारसे उरण (अदा) होने की रीती श्री ठाणा-
गजी सूत्र मे फरमाइ है. इस सिवाय और भी व्यवहारिक रीती प्रवृ-
ती कर विचार कर देखेंतो—

५ जेष्ट बन्धव को, तथा मित्रो को भी उपकारी कहे जाते है,
क्योंकि वो भी आपदा आकर पडे, व उत्सव आदि कार्य में यथा श-
क्ति हरेक तरहकी सहयता करते हैं. अच्छी सला दे धैर्य बन्धाते हैं
कार्य साधने का सू-मार्ग से सुचित करते है, और वक्तपर अपना
तन धन अर्पण कर स्नेहीका कार्य सुधारते हैं. इज्जत रखते है, तथा
प्राण भी झोंक देते हैं, ऐसे स्वजन मित्र के उपकार के बदले में कृतज्ञ
मित्र अपना सर्वस्वय अर्पण कर उनका तावे उम्मर का दास भी बन
जाय तो ऊरण नही हो, परन्तु अन्य धर्मी हो तो स्वधर्मी बनावे, व
समाधी मरण करा उनका अंत अवसर सुधारे तो ऊरण होवे.

तैसे स्त्री के भाव पति भी बडे गिने जाते है. क्यों कि स्त्री के
चंचल स्वभाव को स्थिर करने वाले होते हैं. योग्य और मधुर वचनो
से संलाप कर, साधू सतीयों के दर्शन करा, धर्म ज्ञान प्राप्त करने की
प्रेरना कर, धर्ममे लगावे. क्यों कि धर्म की जान स्त्री कुलीन लज्जालु
व विनीत होकर कुटम्बको सुख दाइ होती है. और भी भगवानने स्त्री

का अहार वस्त्र भूषण आदि उपभोग परीभोग कि वस्तू (जिससे जिसकी लज्जा का निर्वाह हो, परन्तु उद्धत (नंगा) पणा मालुम नहीं पडे ऐसे) देकर संतोषी है, और एकली कंही बहिर गमन करनेसे व अ-योग्य कार्यसे अटका, सदा घरके और धर्म के कार्यों में लगा रखी है, कि जिससे मन विगृह न होवे. ऐसे प्रेमालुवती का उपकार फेड-ने उनकी जन्म पर्यंत दासी बन स्नान मंजन वस्त्र भूपणादि से वि-भूषित कर ,मनोज्ञ भोजन पान मधुरालाप भाव भक्ति आदि सेवा कर संतोषे, आपने पतिके पिता (स्वसुर) माता (सासु) भ्रात (जेठ-देवर-मित्र) बहिन (नणंद) वगैरा कुटम्बका भी अहार वस्त्रादि सा-मुग्री से, और लज्जा युक्त मधुरालाप से संतोपे, तथा यथा उचित य-था शक्ति गृह कार्य करे. और भरतार के कुटम्ब के तरफसे होते हुवे सर्व परिसह-दुःख कटुवाक्य आदि समभाव (क्षमा) से सहे, इत्यादि पति भक्ति करे. तो भी उरण न होवे. परन्तु पती को धर्म मार्ग में प्रवृता अंत अवसर समाधी मरण करावे तो ऊरण होवे.

इन स्वजनो व मित्र सिवाय और कोइ भी अपने से वय में विद्यामें, गुणों में अधिक होवे, और उनके प्रसङ्गसे अपने को सद्बोध आदि किसी भी सद्गुन की प्राप्ती होती हो, अपने कार्य में किसी भी प्रकारकी मदत मिलती हो, तो उनको भी व्यवहार पक्षमें स्थविर समजे जाते हैं, मित्रता भी जगत् में एक अत्युतम पदार्थ गिना जाता है, इसलिये जो मित्रता रखते हैं, उनके साथ कृतज्ञ मित्र अंतः करण की विशुद्धि युक्त प्रवृते. योग्य ऊंच मधुर वचन से सत्कार करे, अहार वस्त्र आदि जो उनको वस्तू खपती हो वो दे कर उन्हे संतोषे हिल मिल रहे, परस्पर एकेक की संकट समय सहायता करे; जावत् जन्म पर्यंत उनका दास बना रहे तो भी वो ऊरण नहीं होते हैं. प-

रन्तू सच्ची मित्रता तो यह है, कि—वो सत्य धर्मसे अ वाकेफ होवे तो उन्हे वाकेफ कर. सत् गुरूकी संगत करावे, व्याख्यानादि श्रवण का उनको संयोग मिलाकर उन के अतः करण में धर्म की रूची जगावे, और प्रसंगानुपेत उनको सम्यक्त्वी वृती वनावे. समाधी मरण करावे तो ऊरण होवे.

अपने कुटम्ब मै से या हर कोइ को जो वैराग्यप्राप्त होवे वो संयम लेना चहावे. तो आप अज्ञा देकर तथा धर्म दलाली कर उनके कुटम्बको समजा कर आज्ञा दिलावे, उत्सव के साथ दिक्षा दिलावे. तो कृष्ण महाराज व श्रेणिक राजावत् तिर्थंकर गौत्र उपार्जे.

यह व्यवहारिक स्थिविरोंकी भक्ति का वरणन् ग्रन्थानुसार किया. उववाइ जी सूत्र में फरमाया है, कि माता पिता का भक्त देवता में ६४००० वर्ष का आयुष्य पाता है. इस से जाना जाता है, कि व्यवहारिक भक्ति भी पुण्य फल की उपार्जन करने वाली होती है. और ऐसी उत्तम जान कर ही खुद श्री तीर्थंकर भगवान आदि जो सलका (उत्तम) पुरुप हुवें, उनोने भी अपने स्थिविरों का सन्मान भक्ति कर मन पसंद रखा है. अर्थात् यथा उचित व्यवहार का साधन किया है. यह तो सच समजीयें की जो व्यवहार सुधारेगा वोही निश्चय सुधारेगा. इस लिये व्यवहार नहीं विगाडना चाहिये.

अव जो स्थानांग सूत्र में तीन प्रकारके स्थिविर भगवंत फरमाये हैं, उन के आश्रिय कुछ विवेचना किया जाता है:— १ वय स्थिविर, २ दिक्षा स्थिविर. और ३ सूत्र स्थिविर.

१ वय स्थैवर इस वर्तमान काल के अनुसार जिनकी ६० वर्ष के ऊपर वय होगइ हो, उनको वय स्थिविर कहे जाते हैं. मनुष्य जन्म में सुखी प्राणी की जो ज्यादा उम्मर होती है, उसे पुण्यवंत गिनते हैं.

और नंदीजी सूत्र में चार प्रकारकी बुद्धि कही है, उसमें प्रणामी यां बुद्धि चौथी कही है उसका अर्थ किया है कि ज्यों ज्यों वय प्रणमती जाय त्यों त्यों कितनेक पुरूषों की बुद्धि भी ज्यास्ती होती जाती है, और यह प्रसंग भी वहुत स्थान द्रष्टी गोचर होता हैं, क्यों कि उनको इस श्रेष्टी में जन्म धारण किये वहुत वर्ष होगये हैं. उन की द्रष्टी नीचे केइ वातो गुजर गइ है. उन ने केइ तरह से सुख दुःख का अनुभव कर रखा है, वगैरा कारणों से जिनकी आत्मा स्थिरीभूत होगइ है, वो ज्यूनी २ केइवातों सुनाकर अनेक चमत्कार वताकर, दूसरे की आत्मा को स्थिविर कर शक्ते हैं, इस लिये उनको स्थिविर कहे जाते हैं, और कितनेक स्थान इस से उलट भी भास होता है, परन्तू उलठ प्रसंग देख कर अर्थात् वृद्ध अवस्था में बुद्धि की स्थिलता–मंदता देख कर. उनका किसी भी तरह अपमान करना या 'साठी बुद्ध नाठी' वगैरा बचन कह कर उनका मन दुःखना लाजम नहीं है, क्यों कि नाक कितनाभी उंचा हो परन्तु मस्तक के तो नीचे ही गिना जायगा. तैसे ही अपन कितनेही बुद्धि के सागर हुवे तो भी जेष्ट पुरुषों के तो नीचे ही रहेंगे. ऐसा जान वृद्ध पुरूषों अवज्ञा कदापि नहीं करना चाहिये. जो पुरूष वय में वृद्ध होवें. और जाती, दिक्षा आदि दरजे में कभी कम भी होवे उन का भी यथा योग्य विनय करना यही उत्तम पुरूषोंका कर्तव्य है, जो दिक्षा में वडे होवे उनको तो गुरू तुल्य समज पिछले प्रकरण में कहे माफिक उनकी भक्ति करना और दिक्षा में सामान्य या न्युन होवे तो उनको भी आइये विराजीये वगैरा ऊंच वचनो से संलाप करना और उनकी प्रकृती को सानुकुल (अच्छा) लगे ऐसा नरम स्निग्ध उष्ण आहार, व ऊंन आदि के वस्त्र, साता कारी स्थान, पराल आदि योग्य वस्तुका नरम

विछाने पर सयन कराना, व हस्त पाद पृष्टदिका चांपना उंनके वस्त्रादि उपधी का प्रातिलेखन, या परिठावणिया, आदि जो कार्य होवे वो करना. कारणिक शरीर होवे तो औषध पथ्य आदि का संयोग मिला देना, इत्यादि वैया वृतकर उनको साता उपजाना सो भी परमात्म पदका मार्ग है.

२ दिक्षा स्थिविर जिनकी वीस वर्षके ऊपर दिक्षा हो उन्हे दिक्षा स्थिविर कहे जाते हैं, क्यों कि उनको वहुत वर्ष संयम पालते होगये हैं, जिससे जिनकी आत्मा संयम में रमण कर स्थिरी भूत होगइ है, और उन्होने अनेक देशों में परियट्टन कर अनेक विद्वानो गुणज्ञो की संगत कर. असेवना (ज्ञानकी) ग्रहण (आचारकी) शिक्षा की अनेक युक्ति यों के जान हुवे हैं, जिस कर अन्य धर्मात्मा ओं की धर्म मार्ग से चलित हूइ आत्माको सद्बोध आदि प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रमाण से पीछी स्थिर कर शक्ते हैं, इत्यादि गुणो से उन्हे स्थिविर कहे जाते हैं, इन दिक्षा स्थिविरों में कितनेक ज्ञानावरणी कर्मोंकी प्रवलता व हिनतासे, कितनेक ज्ञानादि गुण प्राप्त कर शक्ते है, और कितनेक नहीं भी कर शक्ते हैं. जिनको विशेष ज्ञानादि गुणकी प्राप्ती नहीं हूइ है वो फक्त आठ प्रवचन माता (५ समिती ३ गुप्ती आदि प्राति क्रमण) के ही जान हो कर उत्नेही ज्ञान के जोर से तप संयम में अपनी आत्मा को रमाते हुवे विचरते हैं. तो अधिक ज्ञानी को तथा अन्य चारही तीर्थों को उनका किसी प्रकारका अपमान करना, व कम समजना उचित नहीं हैं, तैसे ही कित्नेक कमी वय में दिक्षा धारन करने से तरूण पने में ही स्थिविर पदको प्राप्त हो जाते हैं, तो उनको भी स्थिविर ही समजना चाहीये. परन्तु अधिक वय वंत को उनका किसी भी तरह अपमान करना उचित नहीं

है. जो दिक्षा में एक समय मात्र भी अधिक होवें तो उनका व्यवहार पिछले प्रकरण में कहे मुजब गुरूकी तरह ही साधना चाहिये. और दिक्षामें व ज्ञानादि गुणों में सामान्य व कमी होवे तो उनके भी साथ ऊंच द्विवचनो से वारता लाप करना, व अहार वस्त्र आदि से वैया वृत कर साता उपजाना, यह दिक्षा स्थिविर की भक्ति भी परमात्माका मार्ग है.

२ सूत्र स्थिविर—सूत्र—भगवंत की फरमाइ हुइ वाणी कि जिसे गणधर महाराजने द्वादशांग में विविक्षित की है, जिसका विस्तार यूक्त वरणव तीसरे प्रकरण में किया है, उस में का अवी जो कुछ हिस्सा रहा है सो दिखने में तो थोडा दिखता है, परन्तू तात्विक ज्ञान, मंय गहन अर्थ कर के भरा हुवा है, विन गीतार्थों के उनके अर्थ की समज होनी, ग्रहाज में आने, या सन्धी यूक्ती मिलाकर दुसरे के हृदय में प्रगमाने वहुत ही कठिण हैं. जिनो के पूर्व संचित ज्ञाना वरनी कर्म पतले होगये हैं, और गीतार्थ पाण्डित मुनिवरों का संयोग वना है, उन की यथा उचित विनय भक्ति से उनका चित प्रसन्न कर. चोयणा प्राति चोयणा कर, शास्त्रों के गुढार्थ के जो जान हूवे हैं, उन्हे सूत्र स्थिविर कहे जाते हैं, क्यों कि स्थिर आत्म हुवे विन तो शास्त्र का गहन अर्थ आत्मा में ठसता नहीं है, जैसे हलते हुवे पाणी में सूर्य का प्राति विंव स्थिर नहीं रहता है. इसलिये सुत्र का गहन ज्ञान जिनकी आत्मामें टिका है, जिससे जिनकी आत्मा स्थिर हुइ है, इस लिये उन्हे स्थिविर कहे जाते हैं.

और ऐसे सूत्रोंके गहन ज्ञानके पारगामी महात्माने जव ज्ञान दान की वकसीस करने अर्थात् धर्मोपदेश करने प्रवृतमान हो कर तात्विक ज्ञान के सुधारससे भरपूर विद्या विनोद उपजाने वाली, अनेक तर्क वितर्क आप ही उत्पन्न कर आपही उसका समाधान कर ते

श्री परमात्मायनमः

प्रकरण छट्ठा.

'बहू सूत्री-गुणानुवाद.'

जिन महा पुरुषों ने गुरु आदि गीतार्थों की तहमन से भक्ति कर श्री जिनेश्वर प्राणित गणधरो रचित द्वादशांग रूप शास्त्रों का व अन्य आचार्यों कृत अनेक तत्वमय अनेक भाषामय अनेक ग्रन्थों का अभ्यास किया हो, और उनको ज्ञान के सागर जान उन के पास बहुत धर्म ज्ञानार्थी आकर ज्ञानका अभ्यास श्रवण पठन करना चहाते हों, उनको वो यथा उचित यथा योग्य ज्ञानका अभ्यास कराते हैं, सुत्र आदि पढाते संशयोका छेद न करते हैं, और चरण करणादि गुण सहित होते हैं, उनको बहू सूत्री जी व उपाध्यायजी भगवंत कहे जाते हैं.

द्वादशांग सुत्र व उन के लगते सुत्रों का वरणन तो तीसरे प्रवचन गुणानुवाद नामक प्रकरणमें किया है, उनमे से जिसकालमें जितने प्रवचन मोजुद होवें उनका पूर्ण पणे अभ्यास करे, और उनका तत्व ज्ञान थोडे से में समजे तथा अन्य को समजा सके सर्व सूत्रोंमे

मुख्यता से ७ प्रकारके सन्मास हैं सोः—

१ 'विधी सूत्र' जिसमे साधु श्रावकके आचार गौचारका व-रणव होवे सो विधि सुत्र, जैसे दशवैकालिक जी आचारांगजी वगैरा.

२ 'उद्यम सूत्र' जिस के श्रवण पठण से जीवों को वै-राग्य का जुस्सा प्राप्त हो कर वो अतः करण से धर्म मार्ग में उद्यमी वने, तन तोड प्रयास करें, जैसे उत्तराधेयन जी, सुयगडांगजी, वगैरा.

३ "वर्णक सूत्र" जिसमें वस्तुओंका या नगर, पहाड, न-दी, क्षेत्र, द्विप, समुद्र, स्वर्ग, नरक, इनका वर्णन होवे, व 'रिद्धित्थी-मीए' वगैरा शब्द से ओपमा दर्शाइ होवे सो, जैसे उववाइजी, जम्बू द्विप प्रज्ञाप्ती वगैरा.

४ 'भयसूत्र' जिसके श्रवण से भय-डर की प्राप्ती होवे ऐसा नरक तीर्यंच आदि दुर्गती में कृत कर्मोदय से परमाधामी (यम) सम्वधी पीडा का, व कर्म विपाक के वोलों का वरणव होवे, जैसे दुःख विपाकजी. प्रश्न व्याकरण का आश्रव द्वार वगैरा.

५ 'उत्सर्ग सूत्र' जिसमे एकान्त निश्चय मार्ग में सर्वथा निर्दोष वृती से प्रवृत ने का वोध होवे, जैसे ३२ जोग संग्रह, १८ स्थानक वगैरा.

६ 'अपवाद सूत्र' जिसमें द्रव्य क्षेत्र काल भाव की प्रतोकुल ताके कारण से, या विकट उपगर्स आदि संयम का नाश होवे ऐसा प्रसंग प्राप्त होने से. अपने संयम वृतकी रक्षा निमित यत्ना और प-श्चाताप यूक्त कोइक वक्त किंचित दोष का जान कर सेवन कर उ-सका प्रायश्चित ले शुद्ध होने का उपदेश होवे, जैसे ४ छेद वगैरा.

७ 'तदुभय सूत्र' जिसमे उत्सर्ग और अपवाद दोनो का मिश्रित वरणव होवे, जैसे रोग आदि असमाधी उत्पन्न हुवे आर्त ध्यान

की प्राप्ति जो न होती हो तो औषध उपचार करने की कुछ जरूर नहीं, और जो आर्त ध्यान-चिन्ता उत्पन्न होने लगे, ज्ञान ध्यानमें विघन पडने लगे तो योग्य निर्वद्य उपचार कर दुःख निवारन करना, शांत बनना, वगैरा वरणव होवे जैसे आचांराग का द्वितिय सुत्स्कंध वगैरा.

आप स्वतः शास्त्राभ्यास करते, व दूसरे को कराते वरोक्त सात प्रकार के सम्मास में से जो सम्मास जिस स्थान जिस तरह जमता हो उसे उसी तरह प्रगामावे, जमावे.

और भी बहू सूत्री भगवंत शास्त्रों के ज्ञान को नय निक्षेपे प्रमाण अनुयोग और निश्चय व्यवहार करके जानते हैं,, तथा समजाते हैं.

अवल नय का स्वरुप कहते हैं.

मुख्यता में नय दो है? निश्चय और व्यवहार १ जो पदार्थ के निज स्वरुप को मुख्य करे सो निश्चय नय है, और दूसरी व्यवहार नय है सो उपनय है, क्यों कि यह अन्य पदार्थ के भवको अन्य (दूसरे) में आरोपण करे है. पर निमित से हुवा जो नैमितिक भाव उसको वस्तुका निज भाव कहे है, एक देशमें सबका सर्व देशका उपचार करे, ❋ और कारण में कार्य का उपचार कर, इत्यादि कारण से व्यवहार नय है.

परन्तु व्यवहार नय को सर्वथा असत्य कहना योग्य नहीं

❋ उपचार उसे कहते हैं जो मुख्य वस्तु तो नहीं है, परन्तू निमितके वश हो कर अन्य द्रव्य गुण पर्याय को अन्य द्रव्य गुण पर्याय में आरोपण करे, जैसे किसी की क्रूरता या शूरत्व वीरत्व देख कर कहे कि यह मनुष्य क्या है सिंह है, परन्तु उस मनुष्य के सिंह कि माफक तिक्षण नख, पित नेत्र, वगैरा अंग मे लक्षण न होते, फक्त शुर विरता देख कर ही सिंह कहा! इसे उपचार तथा व्यवहार कहते हैं.

है, क्यों कि एकेन्द्रिआदि जीवों को व्यवहार नय से जीव कहे हैं. जो व्यवहार नहीं माने तो उनकी हिंशा का पाप भी नहीं मानना पढे, क्यों कि निश्चय नय से जीव नित्य है, अविन्यासी है. यों सब व्यवहार का लोप हो जाय; इस लिये निश्चय व्यवहार दोनो मान्य निय है, कहा है किः—

जइ जिण मय पवज्जह। तामा ववहारणिच्छयं मुयह ॥
एक्केण विणाछिज्जइ। तित्थ अण्णेण पुण तच्च ॥

अर्थात्—अहो ज्ञानी जनो! जो तुम जिनेश्वर के मार्गमें प्रवृर्ते हो तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों में से एक को भी छोडना योग्य नहीं है, क्यों कि व्यवहार को छोडने से रत्न त्रय का स्वरूप जौ धर्म तीर्थ है, उसका नाश होवे, और निश्चय को छोडने से तत्व के शुद्ध स्वरूप का अभाव होता है.

जैसे दंड और चक्र वगैरा निमित कारण विगर उपादान कारण रूप मट्टी के पिन्ड से घठ वनाने का कार्य सिद्ध होता नहीं है. तैसे व्यवहार रूप वाह्य कियाका त्याग करने से, सर्व निमित कारणों का नाश होणे से, फक्त इकेले उपादान कारण से मोक्ष रूप कार्यकी सिद्धी होती नहीं है, इसलिये अवार्चिन जमानेके आध्यतम ज्ञानी यों को इस वात को ध्यान में लेकर पहिले निश्चय और व्यवहार इन दोनों का जान पना कर पीछे यथा योग्य स्थान निश्चमें निश्चय रूप और व्यवहारमें व्यवहार रूप श्रद्धा करना योग्य है, पक्ष पाती कदापि नहीं होना चाहीये. क्यों कि एकान्त पक्षी को मिथ्यात्वी गिने जाते हैं, जैन सिद्धान्त के वेता ओ हठ ग्राही नहीं होते हैं, क्यों कि जैन मतका कथन अनेक प्रकारका अविरोध रूप है.

अव गौणता पक्ष करके नय के सात भेद किये हैं, सो कहते हैं,

१ 'नैगम नय' 'नएको गमो यस्य नैगमो' अर्थात् जिसके एक गम (विकल्प) नहीं. जो बहुत विकल्प भेद कर युक्त होवे सो नैगम नय. इस नय वाला सामान्य * और विशेष दोनो को ग्रहण करता है, वस्तू अनन्त धर्मात्मक है, परन्तु यहां फक्त जीव काही उदाहरण लेते हैं, जैसे जीव गुण पर्याय वन्त है, अर्थात् जीवमें सामान्य धर्म जीवत्व है, जीव सदा काल जीवताही रहता है, यह सामान्य, और जीवकी पर्याय का पलटा होता है, अर्थात नरक तिर्यच मनुष्य देव इत्यादि गति जाति से भिन्न भिन्न भेद होते हैं. तैसे ही जो अजीव पर लीये तो-यह घट है, यह सामान्य धर्म. और यह रक्त है, पित है, छोटा है, वडा है, यह विशेष. न्याय और वैशेषिक मत वाले इस नय को ग्रहण करते हैं.

२ 'संग्रह नय' 'संग्रहणाति इति संग्रह' अर्थात्-जो संग्रह एक त्रित करे सो संग्रह नय. इस नय वाला विशेष धर्मको सामान्य सत्ता रूप मुख्यत्व करके स्वीकरता है, जैसे जीवका नाम लेने से सब जीवों का व जीवोंके असंख्य प्रदेश का समावेश होगया, तैसे

* सामान्य जाति वगैरे को कहते हैं. जैसे-मनुष्य; हजारो मनुष्य अलग २ हैं तो भी सब की एक ही जाति मनुष्यत्वता है. और २ विशेष सो भिन्न २ व्यक्ति, जैसे सर्व मनुष्य एक रूप होकर भी अलग २ गुणसे अलग २ पहचाने जाते हैं, यह उंचा है, यह नीचा है, ऐसे ही गौरा है, काला है, ऐसा प्रत्येक मनुष्य में कुछ न कूछ भेद तो अवश्य ही होता है, कहते भी है कि-

दुहा—"पाग भाग सुरत सिकल। वाणी चाल विवेक ॥
एता मिलाया नहीं मिले। देखे नर अनेक ॥ १ ॥"

इससे जाना जाता है कि सामान्य विना विशेष नहीं, और विशेष विन सामान्य नहीं. वस्तू मात्र में सामान्य और विशेष दोनों धर्म पाते हैं, परन्तू नय भेद से इनके मानने में फरक पडता है.

ही जगत् का नाम लेनेसे जगत् के सर्व पदार्थोंका वगीचेका नाम लेनेसे उसमें के सर्व पदार्थोंका बोध होजाता है. अद्वैत (वेदांत) और सांख्य मतवाले इस नय को मानते हैं.

३ " व्यवहारनय " ' वि=विशेषत्व×अवहरति=माने ' अर्थात् जो विशेष को अंतर्गत कर सामान्यकाही स्वीकार करे, सो व्यवहार नय. इस नय वाला मुख्यता में विशेष धर्म कोही ग्रहण करता है. जैसे जीव विषय वासना सहित कर्म वान है. इसमें शरिर और विषय इच्छा यह दोनों कर्म है. सो सिद्ध के नहीं है. इसलिये कर्म है सो जीवकी पर्याय है. परन्तु सत्तारुप नहीं हैं. क्योंकि कर्म से वदलता जाता है. जैसे जीव के दो भेद १ ग्रंथी अभेदी सो अभव्य, और २ ग्रन्थी भेदी सो भव्य. भव्यजीव के दो भेद–१ मिथ्यात्वी और २ सम्यक्त्वी. सम्यक्त्वी जीवके दो भेद-१ देशविरति, और २ सर्व विरति (पंचमहाव्रत धारी.) सर्व विरति जीव के दो भेद-१ प्रतम और २ अप्रतम. (७ में गुणस्थान वाले). अप्रतम के दो भेद-१ श्रेणि अप्रतिपन्न और २ श्रेणिप्रतिपन्न. श्रेणिप्रतिपन्नके दो भेदः–१ सवेदी और२ अवेदी. अवेदी जीव के दो भेद १ सकषाइ और अकषाइ. अकषाइ के दो भेद. १ उपशांत मोही, और २ क्षिण मोही के दो भेद १ छद्मस्त और २ केवली. केवली के दो भेदः–१ सयोगी और २ अयोगी अयोगी के दो भेदः१–संसारी और २ सिद्ध. ऐसी तरह से सग्रह नय वाला ग्रहण करी हुइ वस्तु के भेदान्तर करते हैं चार्वक मताव लम्बी इस नय को मानते हैं.

४ ' ऋजुसुत्रनय ' ऋजु=सरल + सूत्र बोध, अर्थात्–सरल–वर्तता हुवा उसे ऋजु सूत्र नय कहते हैं. इस नय वाला फक्त वर्तमान काल की बात को ही मानता है, क्यों कि वस्तुके अतीत पर्याय का

नाश हुवा है, और अनागत पर्याय की उत्पति न हुइ जैसे कोइ वस्तु गत काल मे काले रंग की, वर्तमान में लाल है. और आवते काल में पीली होवेगा. वो भूत भविष्य की पर्याय का त्याग कर, फक्त वर्तमान में लाल दिखती हुइ पर्याय को ही ग्रहण करता है. बौध दर्शन वाले इस नय को मानते हैं.

५ 'शब्दनय' श्प्यते आहूयते वस्तु अनेन इति शब्दः-अर्थात् जिससे वस्तू बोलनेमे आवे सो शब्द, और एक वस्तू के अनेक नाम के शब्दो का एक ही अर्थ समजे सो शब्द नय; जैसे कुंभ, कलश, घट, इत्यादि शब्दों का अर्थ एक घडाही समजता है, सो भी पृथु (पहोला) बुध्न (गोल) संकोचित उदर मट्टीका बना हुवा और प्रवाही पदार्थ को संग्रह ने समर्थ ऐसा जो भाव (गुण) संयुक्त उसेही घट मानता है, मतलबकी शब्दके वच्चार्थ पर्यायको यह नय लागुहै.

६ 'समभि रुढ नय' सं सम्यक् प्रकारेण पर्याय शब्देषु निरुक्ति भेदेन अर्थ अभिरोहन् समभिरुढ' अर्थात-जो जो पर्याय जिस २ अर्थके योग्य होवे उस पर्याय को उसही अर्थ में अलग २ माने शब्दके अर्थकी उत्पती में लक्ष रखे सो समभिरूढनय * जैसे जिसमें घट् घट् शब्दका उच्चार होता होगा उसेही घट कहेगा. खालीको नहीं.

७ 'एवं भूत नय' एवं=इसही प्रकार + भूत= जैसा अर्थात् जो पदार्थ अपने गुण करके पूर्ण होय, और जिस क्रियाके योग्य जो पदार्थ है, उस ही क्रिया में लगाहो-वोही क्रिया करता होवे और उस ही क्रिया में उस के परिणाम होवे उसे एवं भूत नय कहते हैं,

* शब्द नय वाला शब्द पर्याय भिन्न होते ही शब्द को एकही अर्थ वाचक समजता है, और समभिरुढ नय वाला प्रत्येक शब्दका अलग २ अर्थ करता है. इतना ही इन दोनो नय में भेद है.

जैसे घडा पाणी से भरा, स्त्री के सिर पर धरा, मार्ग क्रमता, घट २ शब्द करता उसेही एवंभूत नयवाला घडा कहेगा नकी घरमें पडेको पंचामी छठी, सातमी, इन तीनो नयको वैयाकरणीओ मानेते हैं.

इन सातों नयका दो नयमें भी समावेश होता है, अव्वलकी चार नयको द्रव्यार्थिक नय कहते है, क्यों कि यह द्रव्य के आस्तित्वका ही मुख्यतामें ग्रहण करते हैं, जैसे १ नैगम नय वाले जीवको गुण पर्याय नन्त कहे, २ संग्रह नय वाले असंख्यात प्रदेशात्मक को जीव कहे, ३ व्यवहार नय वाले यह संसारी. यह सिद्ध यों विविक्षा करे. और ४ ऋजु सुत्र नय वाले स उपयोगी जीव कहे. इस तरहइन चारों ने द्रव्यकी मुख्यता करी. और पीछे की तीन नय को पर्यायार्थिक नय कहते है, क्योंकि यह पर्याय भावके आस्तित्वको हीमुख्यता में ग्रहण करे है, इस लिये यह फक भाव निक्षेपेका ही स्वीकार करतीहै. और पहिली नयसे दुसरी नय अधिक शुद्ध दूसरीसे तीसरी नयअधिकशुद्ध यांसातोंही नय एकेक से उत्तरोतर अधिक शुद्धहै. और पहिली नय दूसरी नयसे अधिक विषय वाली, दूसरी नय तीसरी नयसे अधिक विषयवाली यों पहिली नय आगे की नय से अधिक विषय वाली है, जैसे-१ संग्रह नय फक्त सामान्य कोही ग्रहण करती है, और नैगम नय सामान्य विशेष दोनों कोही ग्रहण करे है. २ व्यवहार नय एक आकृती यूक्त वस्तू कोही ग्रहण करती है, और संग्रह नय जिस आकृती निपजने की सता है, उसे भी ग्रहण करे है, जैसे व्यवह वाला मृतीका ने घट की आकृती धारण करी है, उसेही घट कहेगा और संग्रह नय वाला मृति का के पिंडका घट बनताहै उसे भी कहे देताहै. ३ ऋज्जुसूत्र नय एक फक्त वर्तनान कालकोही माने है. और व्यवहार

नय तीनही काल को माने है. ४ शब्द नय बचनके लिंगमें भेद नहीं माने है और ऋज्जुत्र नय बचन के लिंग आदिका भिन्न २ भेद करेहै ५ सम भी रूढ नय अर्थ वाचक पर्याय काही ग्रहण करेहै. और शब्द नय एक पर्याय का ग्रहण कर इंद्र शक्र आदि शब्दो को ग्रहण करे है. ६ एवंभूत नय प्रति समय क्रिया करने के भाव कोही ग्रहण करे है. और समभी रूढ नय सक्रिय को गृहण करे हैं. ऐसे सतोंही नय एकेक से अल्प विषयी है.

और भी यह सातोंही नय अपने २ स्वरुप का आस्तित्व कायम करती है और दूसरी नयका नास्तित्व दर्शाती है. ऐसे सब नय अलग २ भिन्न अर्थ के वर्तने वाली है. क्यों कि एंव भुत नयेंम जो समभी रूढ'नयका नास्तितत्व न होवे तो एवंभुत नय भी समभीरूढ नय कही जाय, अलग नाम धरने का कुछ जरूर न रहे इस दोषकी प्राप्ती होवे. इस लिये जिस २ के आस्तित्व से नय की सिद्धी होती है. और सब नय अपना २ आस्तित्व कायम करती हूइ दूसरी नय का निषेध न करे तो दुर्नय तथा तथा नयाभास कहा जाय.

नयाभास के लक्षण 'स्वाभी प्रेतात अंशात इतरांशापलापि नयाभास' अर्थात्—अपने इछित पदार्थ के अंशसे दूसरे अंशका निषेध करे और नय के जैसा द्रष्टी आवे उसे नयाभास कहते हैं, इस लिये जो एकांत नय का ग्रहण करते हैं वो दुराग्रही व ज्ञानमुढ कहे जाते हैं, ऐसा जान ज्ञानिको एकांत नयका ग्रहण न ही करना.

तब कोइ प्रश्न करे कि सातो नय अलग २ अभिप्राय वाले है तो सातो का एक ही वस्तु में समावेश किस तरह से होवे ? यहां उनका समाधान एक द्रष्टान्तद्वारा करते हैः— जैसे एकही पुरुष पिता की अपेक्षा से पुत्र है पुत्रकी अपेक्षासे पिता है दादा (पिताका पिता)

की अपेक्षा से पोत्रा है, मामा की अपेक्षा से भाणेज है. भाणेज की अपेक्षा से मामा है. काकी अपेक्षा से भतीजा है, भतीजा की अपेक्षा से काका है, और स्त्रीकी अपेक्षा से भरतार है. यों सातोंही पक्ष एक पुरुष पर अपेक्षा से लागू होते हैं. परन्तु ऐसा नहीं समजीये कि पिता की अपेक्षा से पुत्र कहा तो सबहीं का पुत्र समजा जाय. ऐसेही एकेक से एकेक नय भिन्न होकर भी सातोंही एक वस्तु पर लागू होती है, और इसही सापेक्षा व्यवहार कहते हैं. येही सम्यक ज्ञानका कारणिक है. वरोक्त दृष्टान्त से विचारते सातों नय का भिन्न २ स्वरुप आर सातों नय का एकही पदार्थ पर लागू होना खुला दिखता है, किसी भी प्रकार का विवाद उत्पन्न होने का कारणही नहीं रहता है. और प्रत्यक्ष दिखता है कि एक नय के ज्ञान से अधिक नय का ज्ञान वाला अधिक प्रज्ञा शील होता है. ज्ञान में उत्तरोत्तर वृद्धी होतीही जाती है.

यह नय का ज्ञान वडाही गहन है. सर्वज्ञ सिवाय कोइ भी पार नहीं पा सक्ते हैं. वडे विद्वान आचार्यों ने नय ज्ञान के अनेक ग्रन्थ की रचना रची और अन्त में लिखा है किः—

इति नयवादाश्चित्राः क्वचिद्विरूद्धा इवाथ चविशुद्धाः
लौकिक विषयातीता स्तत्व ज्ञानार्थ मधिगम्याः ॥

इत्यादि नय वाद विचित्र है, अनेक प्रकारका है, कोइ वक्त विरूद्ध जैसा भी दिखता है, परन्तु वस्तुतः विशुद्ध-निर्मळ होता है. यह नयों का ज्ञान लोकीक विषय से तो वहीर है परन्तु तत्व ज्ञानियों को तो वहुतही जानने लायक है.

श्लोक—नैकान्त संगतदृशा स्वय मेव वस्तु ।
तत्व व्यवस्थिति मिति प्रविःलोक यन्तः ॥
स्याद वाद शुद्धि मधिका मधिगम्य सन्तो ।

ज्ञानी भवन्ति जिन नीति मलन्ध यन्त्ः॥१॥

अर्थात्—सत्पुरुषों जिन भाषित स्याद्वाद न्याय रूप द्रष्टी कर के सर्व वस्तुओं को सहज से अनेकान्त आत्मक देखते हैं, जिससे ही वो परम विशुद्ध निर्मळ ज्ञान के धारक होते हैं.

ऐसी तरह बहु सूत्रीजी नयों कर के सत्रार्थ जानते हैं, और श्रोताओं को यथाथ्य प्रगमाते हैं.

निक्षेप का स्वरूप.

किसी भी वस्तु का चार प्रकार से निक्षेप-आरोप किया जाय सो निक्षेप.

१. आकार और गुण आदिक की अपेक्षाविन, फक्त किसभी नाम से किसी वस्तु को बोलावे सो 'नाम निक्षेपा' जैसे ज्ञानचंद, जीवराज, साधूराम, वगैरा.

२ किसीभी वस्तु का किसी भी प्रकार का आकार होवे या बनावे सो 'स्थापना निक्षेपा' जैसे जीवका चित्र, सोजीव की स्थापना पुस्तक सोज्ञान की, और साधूका वाह्य रूप सो साधू की स्थापना.

३ भूत और भविष्य कार्य होने के जो कारण रूप होवे सो 'द्रव्य निक्षेपा' जेसे जहांतक निजात्म ज्ञान नहो वहांतक द्रव्यजीव. समज रहित सो द्रव्य ज्ञान और गुण रहित सो या वैराग्य रहित सो द्रव्य साधू वगैरा.

☞ यह तीनों निक्षेपे को अनुयोगद्वार शास्त्रमें 'अवत्थू' निक्म्में कहे हैं.

४. तद्रूप-तादृश्य यथानाम तथा गुण होवे सो 'भाव निक्षेपा' जैसे-निजात्म स्वरूप का जिसे ज्ञान-भान होवे सो भाव जीव. अर्थ-परमार्थके समजने ज्ञान होवेसो भाव ज्ञान, और विभाव त्याग स्वभाव

में रमण करे सो भाव-साधू.

☞ नाम निक्षेपा और स्थापना निक्षेपा तो भाव निक्षेपे का निमित्त कारण है, और द्रव्य निक्षेपा भाव निक्षेया का उपादान कारण है.❁

प्रमाण का स्वरूप.

जिसकर वस्तुकी वस्तुत्वता की समज होवे सो प्रमाण ४ प्रकार के हैं:—१ शास्त्रद्वारा जिसकी समज होवे सो 'आगमप्रमाण' २ किसी अन्यकी औपमा देने से जाना जाय सो 'औपमा प्रमाण' ३ अनुमान कर वस्तु को जाना जाय सो 'अनुमान प्रमाण.' और ४ प्रत्यक्ष वस्तु को देख कर जाने सो प्रत्यक्ष प्रमान.

अनुयोग का स्वरूप.

हेय(छोडने योग्य) ज्ञेय (जाणने योग्य) और उपादेय(आदरने योग्य) का जिससे पूर्ण ज्ञान होवे सो अनुयोग ४ प्रकार के:—१ परम पुण्यात्म त्रेसठ शलाका पुरूषों आदि सत्पुरूषों के भवान्तर वगैरा का कथन सो 'धर्म कथानुयोग' २ लोका लोक का आकार और उसमें रहे पदार्थों का कथन सो करणानुयोग. ३ स्वमती अन्यमती की व साधू श्रावक की क्रिया का कथन सो चरणानुयोग. ४ और तत्व नय निक्षेपे प्रमाण आदि द्वारा संशय और विपर्याय रहित सत् जैन मतका स्वरूप का कथन होवे सो द्रव्यानुयोग.

व्यवहार और निश्चय का स्वरूप.

व्यवहार के दो भेद:—१ अशुद्ध व्यवहार और २ शुद्ध व्यवहार. अशुद्ध व्यवहार के ५ भेद:—१ अशुद्ध. २ उपचरित. ३

इस अशुद्ध व्यवहार नय में जो पांच तरह से काम करने का कहा, वो काम गये काल में किये, वर्तमान काल में करे, और आवते काल में करेगा सो नेगम नय. २ शुभ व्यवहार और शुद्ध उपचरित व्यवहार तो शुभ कर्म के दलिये का संचय करे, और अशुद्ध अशुभ, उपचरित, अशुभ, और अनुपचरित इन की प्रगती में प्रणम कर अशुभ कर्म के दलिये का संचय करे सो संग्रह नय. ३ शुभाशुभ कर्मों का वन्धन हुवा सो व्यवहार नय. ४ गये काल में ग्रहण किये दलिये का वन्ध वर्तमानमें सत्ता रुप रहे, उनको आवेत कालमें भोगवेगा सो नैगम नय के मतसे व्यवहार. और स्थिती परिपक्व हुवे कर्म उदय होते सम्यक्त्वी उदासीनत्ता भाव से भोगवे, और मिथ्यात्वी लुब्धत्ता से भोगवे सो बाधक व्यवहार. यों अशुद्ध व्यवहार पर १ नैगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार और ४ ऋजुसूत्र. यह चार नय लागू होती हैं.

अव शुद्ध व्यवहार नय का स्वरुप कहते हैं—शब्दनय के मत से सम्यक्त्व से लगा कर प्रमत अप्रमत्त गुण स्थान वृती जीव साधू साध्वी श्रावक श्राविका जो शुद्ध व्यवहार नय से प्रवृतत्ते हैं उन में पांच नय मिलती है. १ अठोंही रुचक प्रदेश त्रिकालमें सिद्ध जैसीनिर्मळ अवस्था को धारन कर रहे हैं सो नैगम नय. २ सिद्ध जैसी आत्म सत्ता असंख्यात प्रदेशी है सो संग्रह नय. ३ गुण स्थान के गुण आचार प्रमाणें प्रवृती सो व्यवहार नय. ४ संसार से उदासीनता वैराग्य रुप प्रणाम की धारा प्रवृर्ते सो ऋजुसूत्र नय. ५ जीव द्रव्य अजीव द्रव्य रुप अपना पराया अलग २ जानने का भेद विज्ञान सो शब्द नय. ऐसे व्यवहार द्रष्टी से देखते तो एक शब्द नय है, और अंतर द्रष्टी से देखते पांच नय मिले हैं, यह शुद्ध व्यवहार

डा वेग (अनेक प्रकार की चाल) करके शोभता है. तैसे बहू सूत्री जी उत्तम जातीमे उत्पन्न हूवे और उत्तम आचार्य के पाससे शास्त्रोचारकी अनेक रितीसीखे जैसे अनुष्टुब, उपजाती, आर्या, वगैरा जिसके मधूर सध्यायोचार करशोभते हैं, (२) जैसे जातिवंत घोडा सुशीलवंत सुलक्षण वंत होता है तैसे बहु सूत्री जी शुद्ध आचार वंत और सुलक्षण कर तेजश्वी होते हैं. (३) जातिवंत तुरी सवार की आज्ञा मुजब चलता है और अपने उत्कृष्ट गती के वेगसे श्वामीको महा संग्राम में से अखन्ड बचालेता है तैसे बहू सूत्री जी गुरुकी आज्ञामें चलते है, और पाखंडियो के समोह में भी जैन मार्ग की फते करते हैं. ४ जैसे जातिवंत केकाण तोपादिक के भयंकर अवाज से और शस्त्र के प्रहार से भी त्रास नहीं पाता हुवा अचल स्थिर रह कर शत्रू से श्वामी की जय करता है, तैसे बहुसुत्री पांखंडियोके आडंम्बरसे व उपसर्ग से बिलकुलही त्रास नहीं पाते नहीं घबराते हुवे स्थिर रह कर उनका परांजय कर ते हैं. ५ जैसे उत्तम हय महाराजाओं का माननिय पुज्य निय होता है तैसे बहु सूत्री जी नररेन्द्र सूरेन्द्र के माननिय पुज्य निय होते हैं.

३ 'सुभट' १ जैसे पालण (खोगीर) आदि अनेक भुषणो कर श्रंगारे हुवे अश्वपर बेठा हुवा सुर-सुभट (सीपाइ) दोनों तरफ बाजित्रों के नाद और वंदीजनो की वरुदावली कर शाभता है तैसे बहू सुत्री जी विचित्र अधिकार कर श्रंगारे हूवे शास्त्र रुप अश्वारुढ हुवे पंचप्रकारकी स्वध्याय रुप बाजिंत्रो और शिष्यों के आशिर्वाद रुप शुभ वरू दावलीयों कर शोभते हैं. २ जैसे शुर सुभट अनेक शस्त्र संयूक्त वैरियों के फंदमें फसकर भी अपनी हिम्मतसे निडर पने रह फते करता है, तैसे बहू सुत्री जी अनेक नियागम रूप

शस्त्र वकर कर संयुक्त अन्य मतियों के किये हुवे अनेक परिसह उपसर्ग से अडग रह कर उनका परांजय करते हैं अर्थात् उनका भी सुधारकर सन्मार्ग में लगाते हैं.

४ 'हाथी' १ जैसे साठ वर्ष की युक्त यौवन अवस्था को प्राप्त हूवा बलवंत हाथी अनेक हाथणियों के परिवार से परिवरा हुवा शोभता है, तैसे वहू सुत्री जी शास्त्र का पूर्ण परिचय कर युक्त अवस्था जैसे प्रबल बुद्धि को प्राप्त हुये अनेक विद्यार्थि पाठको से परिवरे शोभते हैं, २ जैसे हाथी शरीर आदि संपदाकर चतुरंगणी शैन्यामें आगेवानी होता है, तैसे वहू सूत्री जी सूत्र ज्ञान आदि संपदा कर चारोंतीर्थ शैन्य में आगेवानी भाग ले कर शोभते हैं, ३ जैसे हाथी दोनों तिक्षग दाँतो कर पर चक्री की शैन्य का प्राभव करता है. तैसे वहु सूत्री जी निश्चय व्यवहार रूप तिक्षग दंता सूलक पाखंडीयों का पराभव कर शोभते हैं.

५ 'वृषभ' १ जैसे बेल-सांड तिक्षण श्रृंग युगल और पुष्ट स्कन्ध कर गाइयों के परिवारसे परिवरा हूवा शोभता है, तैसे वह सूत्री जी रूप बेल निश्चय व्यवहार रूप श्रृंग युगल और द्वादशांगी के ज्ञान की पूर्णता रूप पुष्ट स्कन्ध कर साधू साध्वियों के परिवार से परिवरे पाखन्डिया का मानका मर्दन करते शोभते हैं. २ जैसे धोरीबेल लिये हुवे भार को प्राणान्त शंकट से भी अचलित हो पार पहो चाता है, तैसे वहु सुत्री संयम रूप भार या प्रतिज्ञा रूप भार को परिसह उपसर्गसे अचलित हो पार पहोंचाते हैं.

६ 'सिंह' जैसे केशरी सिंह तिक्षण दाढों और तिक्षन नख आदि कर के किसी से भी परानव नहीं पाता है, और मृग आदि वनचर पशु ओं के अधिपती मालकी पने कर शोभता है, तैसे

बहु सुत्री जी रूप सिंह सातनय रूप तिक्षण दाढों और तर्क वितर्क रूप तिक्षण नखों कर किसी भी परवादी से पराभव नहीं पाते हुवे वितन्ड (मिथ्यावादी) रूप पशुओंका पराभव करत शोभते हैं.

७ ' वासुदेव ' जैसे वासुदेव महारथ में आरुढ (विराजे) हुवे शंख चक्र गदा आदि शस्त्र कर वैरीयोंसे अप्रीत हत रहते हैं. और अपने प्राक्रम कर शोभते हैं, तैसे बहू सूत्री जी रूप वासुदेव ज्ञान दर्शन चारित्र रूप शस्त्रों से सज हूवे सील रूप रथमें विराजे, क्षमा रूप वक्कर सजे अपने प्राक्रम से कर्म शत्रू ओंका नाश करते हूवे शोभते हैं.

८ ' चक्रवृती ' जैसे चक्रवृती महाराजा; चउदह रत्न नवनि-धान् आदिऋद्धि कर तीन दिशामें समुद्र पर्यंत और उत्तर दिशामें चूल हेमवंत प्रर्वत पर्यंत संपूर्ण भरत क्षेत्र के छः ही खन्डों में एक छत्र राज करते हूवे शोभते हैं. तैसे बहू सुत्री जी रूप चक्रवृती च-उदह पूर्व के ज्ञान रूप चउदह रत्न नव वाड बृम्हचार्य रुप नव नि-धी आदि ऋद्धिकर बहू सुत्रीके ज्ञान रुप चक्रके प्रभावसे संपुर्ण धर्म रुप भर्तक्षेत्र में या लोकके अंत तक धर्म राज प्रवृताते शोभते हैं.

९ ' शक्रेन्द्र जैसे पहिले स्वर्गके देवन्द्र शक्रेन्द्रजी हजार * आँखो के मालिक वज्र रूप आयुध कर सर्व देवताओं पर अपनी आज्ञा प्रवृताते हूवे शोभते हैं, तैसे बहू सुत्री जी रुप इन्द्र श्रुत ज्ञान रूप सहश्र आँखोकर दयारूप वज्रयुध से छः ही काय जीवों का स्व रक्षण करते, चारों तीर्थमें आज्ञा प्रवृताते शोभते हैं.

१० ' सुर्य ' जैसे सुर्य जाज्वल मान तेज प्रकाश की वृद्धि

---

* सक्रेन्द्रजी के ५०० सामानीक देव सदा काममें आते हैं इस लिये उनकी १००० आँखो गिनी ने से सहश्र चक्षु कहे जाते है

कर अन्धकार का नाश करता हुवा शोभता है, तैसे वहुसूत्रीजी रूप सूर्य तप संयममें चडते प्रणाम रूप तेज प्रताप से उत्तम लेशा रूप जाज्वल मान पणे से मिथ्यात्व रूप अन्धकार का नाश करते, भव्य जीवों के हृदय कमलका विकाश करते विशुद्ध मार्ग का प्रकाश करते शोभते हैं.

११ ' चन्द्र ' जैसे शर्द पुर्णिमा का चन्द्रमा ग्रह नक्षेत्र तारा ओंके परिवार से परिवरा सौम्य (शीतल) लेशाकर शोभता है, तैसे वहू सुत्री जी रूप चन्द्रमा मूल गुण उत्तर गुण की अखन्डना रूप पुर्ण कलाकर क्षमा दया रुप सौम्य लेशाकर चार तीर्थ के परिवार से परिवरे, जैन धर्म का प्रकाश कर हुवे शोभते हैं.

१२ ' कोठार ' जैसे धान्य अनाज भरेन का कोठार चारोंइ तरफ से पुक्त वंदोवस्त किया हूवा मजवुत कमाडोकर अन्दर भरे हुवे मालको ऊंदर चोर आदि उपद्रवों से वचाकर रक्षण करता है तैसे उपाध्याय जी रुप कोठार में श्रुत ज्ञान रुप अखूट माल भरा हुवा; मद विषय कषाय निंद्रा विकथा आदि प्रमाद चोरों और ऊंदरों से वचा कर, सदा स्वरक्षण कर ते हुवे शोभते हैं.

१३ ' जंबू वृक्ष ' जैसे उत्तार कुरु क्षेत्र में रहा हुवा रत्नों का जंबू सुदर्शन नामक वृक्ष सर्व वृक्षोमें प्रधान, जंबू द्विपका मालिक अणाढीय देवका स्थान, पत्र पुष्प फल आदि कर शोभता है, तैसे वहू सुत्री जी रुप जंबूवृक्ष सर्व साधू ओंमे प्रधान उत्तम है, दर्शन जिनोंका इसलिये सुदर्शन, अणाढी देव समान तीर्थ कर भगवंत का फरमाया हूवा ज्ञान जिनकी आत्मा में निवास कर रहा है जिससे और दया रुप पत्र यशः रुप पुष्प, अनुभव ज्ञान रुप अमृत फलों का स्वाद भव्यों का चखाते हुवे शोभते है.

१४ 'सीता नदी' जैसे नीलवंत प्रवंत की केशरी द्रहमें से निकली हूइ सीता नामा महा नदी पूर्व महा विदेह के मध्य भागसे वहती हुइ पांच लाख वतीस हजार नदीयो के परिवार से परवरी हुइ समुद्रमें मिलती हुइ शोभती है, तैसे वहू सुत्री जी रुप सीता नदी उत्तम कुल रुप नीलवंत पर्वत से निकल कर, श्रुत ज्ञान रुप अनेक नदीयों के पानीसे भरे हुवे संसार के भव्य जीवों का उदार करते मोक्ष रुप समुद्र में जाकर मिलते हैं.

१५ 'मेरु' जैसे सर्व प्रवतो से ऊंचा और प्रधान मेरु नामक प्रर्वत चार वन और सल्य विसल्य संरोहनी चित्रावेल संजवती इत्यादि अनेक औषधीयों कर शोभता है, तैसे वहू सूत्री जी रुप मेरु प्रर्वत सर्व साधू ओंमें उंचे और प्रधान, और अनेक लब्धी रूप ओषधीयों ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप रूप चार बन कर के शोभते हैं.

१६ 'सयं भूरमण समुद्र' जैसे सब द्विप समुद्रों से छेला (छेवटका) और सबसे बडा * अखूट पाणी से भरा हुवा अनेक रत्नो कर संयंभू रमण समुद्र शोभता है, तैसे वहू सूत्री जी रूप सयं भूरमण समुद्र सर्व विद्याके पारंगामी ज्ञान रूप अखूट पाणी कर भरे हुवे चारित्र के गुण रूप अनेक रत्नो कर भरे हुवे शोभते है, ऐसी २ अनेक शुभ ओपमा युक्त श्री वहू सूत्री जी भगवंत जैन शासन को दिपाते है.

यह वहू सूत्री जी की आसवना शिक्षा अर्थात् ज्ञान गुण आश्रित गुणानुवाद किया, अव ग्रहणा शिक्षा कुछ चारित्र के गुण आश्रित गुणानुवाद किया जाता है. श्री वहू सूत्री जी भगवंत करण

* अर्धराजू क्षेत्र में असंख्यात द्विप समुद्र और अर्धराजू में फक्त एक सयंभु रमण समुद्र है.

सित्तरी अर्थात् जो वक्तो वक्त (अवसर सिर) क्रिया करनी पडे उस के ७० गुण, और चरण सित्तरी जो सदा करनी पडे ऐसी क्रिया के ७० गुण यों १४० गुण संयुक्त होते हैं जिसका यहां संक्षेप में वरणव करते हैं

(१-४) अहार, वस्त्र, पात्र, और स्थानक यह ४ निर्दोष भोगवे सो पिण्ड विशुद्धी. (५—१६) 'अनित्य भावना' असरण भावना, संसार भावना, एकत्व भावना, अन्यत्व भावना, अशुची भावना, आश्रव भावना, संवर भावना, निर्जरा भावना, लोक संठाण भावना, बौध दुर्लभ भावना धर्म भावना, यह बारह भावना (१७-२८) पहली एक मासकी प्रतिमा, दूसरी दो मास की जावत् सातमी सात मासकी. आठमी नवमी दशमी सात अहोरात्रीकी. एग्यारमी दोदिनकी, बारह मी तीन दिनकी. यह साधू की १२ प्रतिमा (२९-३३) श्रोत—चक्षु—घ्राण—रस—स्पर्श यह पांच इन्द्रिय वश करे. (३४-५८) वस्त्र,—उंचारखे, मजबूत पकडे, जलदी २ नहीं करे, आदि से अंत तक देखे. (यह चार देखे ने आश्रिय कही, फिर जीव दिखेतो) वस्त्र थोडा झटके, ६ पूंजे ७ वस्त्र शरीर नचावे नहीं ८ वस्त्र मसले नहीं ९ विन पडिलेहे नहीं रखे. १० ऊंचा-नीचा तिरछा लगावे नहीं. ११ जोरसे झटके नहीं. १२ जीव हो तो यत्ना से अलग धरे. (यह १२ प्रशस्त अच्छी) १३ 'आरंभडा' सो जलदी २ करे, या विपरित करे. १४ 'समद' सो वस्त्र मशले. १५ 'मोसली' सो उपर नीचे तिरछा लगावे. १६ 'फफोडन' सो जोरसे झटके १७ 'विखिता' सो वस्त्र विखेरे तथा देखे विन मिलावे. १८ 'वेदीका' सो

पांच * प्रकरे विप्रित करे. १९ वस्त्र मजबूत नहीं पकडे, २० वस्त्र लम्बा रख देखे. २१ वस्त्र धरतीपे रुलावे, २२ एक ही वक्त पूरा वस्त्र देख लेवे. २३ शरीर को और २४ वस्त्रको हलावे. २५ पांच प्रमादका सेवन करे (यह १३ अप्रसस्त प्रतिलेखन) सर्व २५ प्रकारकी पडिलेहणा हुइ. (५९–६१) मन वचन–काय–इन तीनो जोगो का निग्रह करे. (६२–६५) द्रव्यसे वस्तुका क्षेत्र, से स्थानका, कालसे वक्तका, भावसे परिणामका कि अमुक तरह से जोग बनेगा तो ग्रहण करुंगा. यह ४ अभिग्रह. (६६–७०) इर्या, भाषा, ऐषणा; अदान निक्षेपना, परिठावणिया, यह ५ समिती सहित. यह ७० गुण करण सत्तरि के. ॥ (१–५) अहिंशा सत्य, दत्त, ब्रह्मचार्य, निर्ममत्व, यह पंच महाव्रत पाले. (६–१५ खंती, मुत्ती, अज्जव, मद्दव, लाघव; सच्च, संयम, तव, चेइय ब्रह्मचर्य. यह दश यति धर्म आराधे, (१६–३२) पृथवी पाणी–अग्नि–हवा–विनस्पति–बेंद्री–तेंद्री-चौरिन्द्री–पंचेन्द्री और अजीव (वस्त्रादि) इन का रक्षण करे, पिय, उपेहा, पूजणिया, मन निग्रह, वचन निग्रह, काय निग्रह. यह १७ प्रकार संयम पाले, (३३–४२) आचार्य, उपाध्याय, तपस्वि, नविदिक्षित, रोगी, स्थिविर, स्वधर्मी, कुल, गण, संघ इन दश की वैयावृत्य सेवा करे. (४३–५१) नव वाड विशुद्ध ब्रम्हचर्य पाले (देखो १२ प्रकरण) वा (५२–५४) ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन को आराधे. (५५-६६) बारह प्रकारका तप करे (देखो

---

* एक गोडे पर दोनो हाथ रख पडिलेवे सो उंच वेदीका. २ दोनो हाथ गोडेसे नीचे रख पडिलेवेसो नीची वेदीका ३ दोनो हाथ के बीच दोनो गोडे रख पडिलेवेसो तिरछी वेदीका. ४ दोनो गोडे के बीच दोनो हाथ रख पडिलेवे सो पासा वेदिका. ५ दोनो हाथ बीच एक गोडा रख पडिलेहे सो एक वेदीका.

प्रकरण ७ वा) (६७–७०) क्रोध, मान माया, लोभ, इन चारों कषाय को जीते. यह ७० गुण चरण सित्तरी के धारक वहु सूत्री जी होते हैं.

और भी वहु सूत्री जी भगवंत १ स्वमत अन्य मत के शास्त्रों के ज्ञान होते हैं, २ अक्षेपी-विक्षेपनी-संवेगनी, निर्वेगनी, यह ४ प्रकारकी धर्म कथा मोटे मन्डान से कर ते हैं. ३ धर्म पर कोइ अपवाद आ-पडे तो उसे दूर करते हैं. श्रुत ज्ञानकी प्रबलता से त्रि-कालज्ञ होते हैं, ५ उग्रह तप करते हैं, ६ आचार गौचार की कठिण वृती रखते हैं. ७ सर्व विद्या के पारगामी होते हैं. और ज्ञान गर्वित रसीली कवीता कर जैन मार्ग दीपाते हैं. यह आठ प्रकार से जैन मार्ग की प्रभावना कर ने वाले होते हैं.

और भी वहू सूत्री जी भगवंत महा वनीत होते हैं गुरु आदिक सर्व जेष्टो के अवरण वाद कदापि नहीं बोलते हैं. परन्तु विनय साधते है, भक्ति करते हैं. चपलता, कपटता, कुतुहल, इत्यादि अपलच्छन रहित होते हैं. इनको प्रश्नोत्र में कितना भी परिश्रम हुवा तो कदापि संतप्त-क्रोधी नहीं होते हैं. श्रुत ज्ञानादि अनेक गुण के सागर होकर. और सुरेन्द्र नरेन्द्रके पुज्य होकर कदापि किंचित् मात्र अभीमान नहीं कर ते हैं, धर्मोपदेश वगैरा वार्तालाप में कम सवाली और मधुर भाषी होते हैं, निंदकको द्वेपीयोंके साथ भी मिष्ट वचनसे बोलते हैं. क्लेश कदाग्रह घटाने काही प्रयत्न करते हैं, शांत दांत आदि अनेक गुण गणोंके सागर सद्बोध से धर्म वृद्धि व तप वृध्दि कर ते हैं, जिस तपका वरणन् करने की उम्मेद रख प्रथम श्री वहू सूत्री जी

प्रकरण--सातवा.

"तपस्वी-गुणानुवाद."

शास्त्र में मुक्ति प्राप्त करने के चार (ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप) साधन फरमाये हैं, जिसमें का चौथा सर्वोपरि साधन 'तप' नामक है, तप यह आत्मा का निजगुन है, अर्थात् आत्मा अनादी काल से तपश्वी है, और आगे अनन्त काल तक तपश्वि रहेगा, जो कुछ भोगोप भोग भोगवते हुवे अपने जीवों को देखते हैं, परन्तु वो भोगोप भोग आत्मा (जीव) नहीं भोगवता है, जीवात्मा तो सदा अन अहारिक-अभोगी है, अरूपी आत्मा रूपी पुद्गलों का भोग कदापि नहीं कर शक्ति है. यह तो पुद्गलों का भोग पुद्गलही करते हैं, परन्तु जगत् वासी आत्मा अज्ञानता से या अनादी सम्बन्ध के सबब से उन पुद्गलों के भोगको अपना ही भोग समज सुख दुःख वेदता है, अर्थात् इच्छित मन्योग पदार्थ भोगवनेमें आये तब हा, हा, कर खुशी होता है कि क्या मजाह आइ,

परन्तु यह मजाह नहीं है, दुःही है. क्यो कि भोगके पदार्थ निपजाती वक्त में महा मुशीबत भोगवनी पडती हैं, खेती में पडें वहां से लगा कर अपने सन्मुख आवे वहा तक उसके लिये कितना परिश्रम सहना पडता है उसे जरा अन्तर द्रष्टी से विचारिये, और भोगवती वक्त में उसके स्वादका कितनी देर सुख रहता है, और भोगवे पीछे वो शरीर में परगम कर बिकार उत्पन्न कर शरीर की और उन भोगवे हुवे पुद्गलें की क्या दिशा होती है, इत्यादि विचार कर ने से मालुम पड जायगा कि भोगोप भोग में जो अज्ञानी सुख मानते हें सो झूट है, अर्थात् सुख नहीं हैं. और उन इच्छित वस्तु का जोग नहीं वने तो भी दुःख ही होता है. कि हाय ? भूखलगी, प्यासलगी इत्यादि किसी भी प्रकारे इच्छाकी अपूर्णता रहने से अनेक प्रकारे संक्लेश प्रणाम होनेसे दुःखी बनता है. यह भोगोप भोग की इच्छा है सो अष्ट कर्म में से तीसरे वेदनी कर्म की प्रबलता का मुख्य कारण है. अहारकी इच्छा को क्षुद्या वेदनी कही जाती है. इस वेदनी से सर्व संसारी जीव पिडित हो रहे हैं, कितने नर्क तिर्यंच मनुष्य के पापी जीवों को वेमर्याद-निरंत्र अहार की इच्छा होती है, वो कितना भी भोगवलेवें तो भी उनकी इच्छा त्रप्त नहीं होती है, और उन के पापोदय से तेंतीस २ सागरोपम पर्यंत उनको किंचित् भी इच्छित भोगका पदार्थ भोगवने को नहीं मिलाता है. और कितनेक पुन्यात्मा मनुष्य तिर्यंचको तीन २ दिन के अंतर से अहार की इच्छा होती है, कि तुर्त कल्पवृक्ष वो इच्छा इच्छित पदार्थ दे पूर्ण कर देते हैं, तथा सर्वार्थसिद्ध के देवों को तेतीस हजार वर्ष में अहार की इच्छा होती है. और तुर्त रोम २ से रत्नों के शुभ पुद्गल ग्रहन कर इच्छा पूर्ण होती है. परन्तु इच्छा है सो ही दुःख है.

मनहर—दीयो भोग भारी पे अघातू पाप कारी ।
याते इच्छा चारी पेट चेट का करारी है ॥
यामे चीज डारी तेते कामहीते टारी ।
ऐसी कीसन निहारी यह कोटरी अन्धारी है ॥
कहा नर नारी सिद्धी साधक धर्म धारी ।
पेट के भिखारी प्रीती पेटही ते टारी है ॥
पेट वारी थारी न्यारी । न्यारी हे गुन्हे गारी ॥
पेटही वीगारी सारी । पेट ही वीगारी है ॥ ४१ ॥

इश जवर दुःख से निर्वृतने का जो उपाव करें सोही तपश्वी-जी कहालाते हैं. वो तपश्वीजी अवलतो इस दुःख की उत्पती के कारन से वाकिफ होतो हैं सोः—१ मुख्य कारण तो पुद्गलों पुद्गलों का भक्षण कर रहे हैं जिसे मेंही भक्षण करताहूं ऐसा मानने का अ-नादी काल से आत्मा का स्वभाव पड रहाहै. वो स्वभावही हर वक्त आत्मा को सताता है.

सो नत्थिइद्य सवणो । परमाणु पमाण मेतओणिलओ ॥
तत्थ न जाओ न मड । तिल लोय पमाणिउसच्चो ॥ ३३ ॥
तेयाला तिणिसया रज्जूणय लोए खेत परी माण ॥
मुतुनठ पएसा । जत्थणदु रुढुलिओ जीव भाव पाहूड.॥ ३६ ॥

अर्थ—यह संपूर्ण लोक ३४३ राजु का है इसमें फक्त ८ रुचक प्रदेश जितनी जगह छोडकर वाकी का सर्व लोक यह जीव जन्म मरण कर स्फर्श आयाहै. एक प्रमाणू भी एसा नही है कि जो जीव के भोगोप भोगमें नही आयहो. अर्थात् सब ही का भोग कर

आया है!

२ जक्त के सर्व पदार्थों का भोग यह आत्मा अनंत वक्त कर आया तो भी तृप्ती आइ नहीं, तथा रागद्वेष की प्रणती में प्रणम कर किसी भव में किसी पदार्थ को पवित्र मनोज्ञ पथ्य समज कर भोगवे और किसी भव में ऊनही पदार्थों को अपवित्र-अमनोज्ञ, अपथ्य समज कर छोडदिये, और उनके प्रतिपक्षीयों को मनोज्ञ जान भोगव लिये. ऐसेही यहां भी जीव अच्छे बुरे पदार्थों को देख राग द्वेष की प्रणती में प्रणम प्रेमभाव कलुष भाव कर सुखी दुःखी होता है.

३ पुद्गलों के मोहसे या अज्ञानता के भर्म से पुद्गलिक सुख में लीन हुवा जीव, जो पुद्गलिक सुख का त्याग कर विरक्त हो तपस्वी वने हैं उनको खोटे-खराब जान ने लगता है, उनकी निन्दा करता है कि क्या भूखे मरने से भगवान् मिलते हैं? नरकी देह (शरीर) है सो नारायण की देह हैं. इसे त्रसाते हैं, सताते हैं, इसलिये यह महा पातकी हैं. वगैरा अयुक्त शब्दोच्चार कर ने वाले उस जन्म में या जन्मान्तर में तप नहीं कर सकें ऐसे तपन्तराय कर्म बान्धते हैं.

४ स्वकुटम्ब स्वजन और मित्र के मोह के वश में हो, या कूपक्षके वशहो स्वमतानुयायीयों को तपश्चर्या करने की अन्तरायदे-मना करे कि तप करने से गरमी आदि रोग होता है, सत्व-शक्ति हीन शरीर होता है इत्यादि तप से दुर्गुण वता कर; तथा कहेकि नरक स्वर्ग यह सब झूटी बात है, विन काम तप कर क्यो दुःखी होना, इत्यादि कु-बौधकर तप नहीं करनेदे या दूसरे के किये हुवे तप का भङ्ग-करावे, तो तपान्तराय कर्म का बन्धन करे, जिससे आगे को तप करने की शक्ति नहीं पावे.

५ किसीको वेदनिय कर्मोदय किसी प्रकार का रोग-असाता

का उदय हुवा हो तो उसे कहै कि-तेने अमुक तप किया जिससे यह रोग उत्पन्न हुवा, या अमुक नुकसान हुवा, या अमुक मरगया वगैरा तप पर कलङ्क चडावे तो तपन्तराय कर्म बांधे.

६ तपका नाम धरा कर अहार करे, या लोको में तपश्वी वजकर गुप्त अहार करे, अथवा कहे कि ' गद्धे की तरह चर परन्तु एकादशी कर ' यों कह एकादशी वृत का नाम धारन कर कंद मूल मेवा, मिष्टान, आदि भक्षण करे तो तपन्तराय कर्म बंधे.

७ धन के लालच से, यशः के लालच से सुख के लालच से, तप करे; तप के वदले में द्रव्य वस्त्र या इच्छित भोजन आदि ग्रहण करे तो तपन्तराय बान्धे.

श्लोक—आहारोपधि पूजाद्धि, प्रभृत्या शंसया कृतं,
शीघ्रं सचित्त हन्तृत्वा, द्विपानुष्टान मुच्यते ॥ १ ॥

अर्थात्—जो मिष्टान अहार (भोजन) की, वस्त्रादि उपकरणों की पूजा श्लाघा (कीर्ती) की, और रिद्धि की इत्यादि पुद्गलिक पदार्थोंकी इस लोक में प्राप्ती होवो ! ऐसी इच्छा-ललच से जो तपश्चर्या आदि क्रिया करी जाती है, उसे विष (जहर) जैसा अनुष्टान (क्रिया) किया जाता है. क्यों कि ऐसे अनुष्टान करने वाले की चितवृती मलीन रहती है.

८ तपश्चर्या कर अहंकार करे कि में वडा तपश्वी हुं मेने अमुक २ प्रकार के तप किये हैं. और जिनसे तपस्या न होवे उनकी निंदा हाँसी करे तो तपन्तर बान्धे.

९ तप कर गिल्यानता कायरता लावे कि क्या करना संवत्सरी का उपवास किये विन तो छूटकाही नहीं. वगैरा विचार लाने से, या कब वक्त पूरा होवे और खावूं ऐसी उत्कृष्ट अभिलाषा तपमें

करने से तप अन्तराय कर्म वंधे.

१० निर्मळ तपश्वी यों के शिर कलङ्क चडावे, इर्षा करे, निंदा करे, या आप सशक्त होकर तपश्वियों की वेया वृत नहीं करे, साता नहीं उपजावे. और कोइ दूसरा साता उपजाता होवे उसे अन्तराय देवे तो तपन्तराय कर्म बान्धे.

इत्यादि तप अन्तराय कर्म वन्धने के कारण जान जिनको तप नामक धर्म निपजाना होवे वो इन कर्मों से अपनी आत्मा व-चाते हैं. सो तप कर ने शक्ति वंत होते हैं, और तपश्वीजी कह-लाते हैं,

१ पुर्वोक्त रिती कर जिनोंने तपन्तराय कर्मका वन्धन कियाहे। और उन से तप नहीं बनता हो तो, उन कर्मों को तोड ने का मु-ख्यता में उपाय तो निश्रय नय की अपेक्षा उन कर्मों की स्थिती की परि पक्कता होने से उन कर्मों का क्षय होवे, व क्षयोपशम होवे तथा विर्यान्तराय कर्म क्षय होवे, तव अतःरिक विर्य शक्ति हुल सायमान होती है, और तव आत्मा कर्मों के सन्मुख हो अनादी कर्मोंका सम्बन्ध तोडने प्रयत्न शील होता है. और इच्छाका निरूंधन करता है, इच्छा का निरुंधन करना है सो ही मुख्य तप है.

२ तपस्वी जी विचारते हैं कि-यह जीव अनादि काल से खा खा कर जगत् के सर्व खाद्य पदार्थों को भोगव लिये, अंनत मेरु प्र. र्वत जितनी मिश्री (सकर) और अनंत सयंभूरमण समुद्र के पा-णी जितना दूध, कल्पवृक्षों से प्राप्त होते इच्छित भोजन और चक्रव-र्ती के यहां निपजती रस वातियों का भुक्ता भी अनंत वक्त हुवा तो भी इच्छा तृप्त न हुइ ? तो अव इन तूच्छ वस्तू ओं के भोगवने से क्या होना है ! ऐसे विचार से त्रष्णा घटावे.

३ जो तपश्चर्या करते विशेष जोर लगे तो, तपश्चर्या करणा दुक्कर लगेतो विचार करते हैं कि नरक में रहाथा तब रे जीव! तूझे ऐसी क्षुधा जागृत हुइ थी की सर्व जगत् के खाद्य पदार्थ एकही व-क्त में खिला देवे तो भी क्षुधा शांत नहीं होवे, और अनाज का दाना वा खाने जैसा किंचित भी पदार्थ वहां तूझे नहीं मिला? और सर्व समुद्रों का पाणी एकही वक्त में पिला देवे तो तृषा शांत न होवे और एक बुन्द पानी पीने को नहीं मिला? ऐसी वेदना एक दो दि-न या वर्ष दो वर्ष नहीं परन्तु तेंतीस २ सागरोपम तक अन्तानन्त व-क्त सही है! अब यहां कित्ना काल निकलता है!

४ रे जीव! और भी तूं इस जगत में तेरे सन्मुख वृत ते हुवे वृ-तान्तो की तरफ देख कि गौ, वृषभ, अश्व गजादि अनेक पशुओं बे-चारे पराधीनता में फसकर रात दिन तन तोड परिश्रम करते है, तो भी उनको पेटभर कर निर्माल्य घांस और मफत में मिलता हुवा वक्त सिर पाणी भी पूरा नहीं मिलता है! और इस से भी बुरे हाल विचारे वन वासी पशुओं के होते हैं! जब उष्ण ऋतु के प्रचन्ड ता-पसे वन में का घास आदि उनका खाद्य पदार्थ और सरोवरों का पाणी सुक जाता है, तब वो विचारे भुख और प्यासकी प्रबल पीडा-से व्याकुल हुवे भटक २ (फिर २) मुर्छा खाकर पडजा ते हैं, और तडफ २ कर प्राण मुक्त हो जाते है ऐसे हाल तो तेरे नहीं होते हैं.

रे जीव? उन सब को जान दे, परन्तु तूं तेरे जाती भाइयो मनुष्यों की तरफ ही जरा दया द्रष्टी कर देख गरीबों और कुलीनों का जो हाल यह कली काल कर रहा है! गरीबो तो बेचारे द्रव्य की अछत्तता से अनेको की गुलामी करते हैं, मट्टी पत्थरों के टोपले सब दिन डाल ते हैं. काष्ट भारी लाकर बेंचते हैं वगैरा महा मेहनत

से थोडा द्रव्य प्राप्तकर प्रहर दो प्रहर रात्री गये लुखी फीकी रावडी बना कर सब कूटम्ब वांट कर पीकर पडे रहते है. ऐसे कष्ट में सर्व जिन्दगानी पूरी कर ते हें, और इन से भी बूरे हाल कुलीनो के होते हैं वो तंग हालत में आकर न गुलामी कर शक्ते हैं, और न मांग शक्ते हैं. शरम के मारे घर में ही भूख से टलवल-तडफड मरजाते है. ऐसे हालतो तेरे नहीं है !!

५ अरे प्राणीन् ? इनको देख तूं सखेदाश्चर्य क्या होता है ? परन्तु तेरे भी ऐसे हाल चारों गति के परिभ्रमण में अनन्त वक्त हुवे हैं, परवश पड महा संकट सहा है, परन्तु उस से कुछ सकाम निर्जरा न हुइ, अर्थात् धर्म निपजना नहीं. कष्ट वहुत और नफा थोडा? ऐसे २ महा कष्ट अनेक वक्त सहे, कूछ कर्मों की निर्जरा होने से धीरे २ ऊंचा चड यह सामग्री पाया है.

६ अहो मेरे प्यारे प्राणी ? तेरे अनन्तान्त पुण्यानूवन्ध के संयोग से मनुष्य जन्म आर्य क्षेत्र, उत्तमकुल, दीर्घायु, पुर्ण इन्द्रीय, निरोगी शरीर, सत्पूरूसङ्ग, शास्त्र श्रवण, सत्श्रद्धान और तप करने की शक्ति, यह दश साधन प्राप्त भये हैं, सो तेरा इष्ठ कार्य की सिद्धी करने तुं समर्थ हुवा, है धारे सो कर शक्ता है.

श्लोक—सदनुष्ठान रागेण, तद्धेतु मार्ग गामिना।
एतच्च चरमावर्तेनो भोगादे र्विनाभ वेत ॥
धर्म यौवन कालोंयं, भव बालदशापरा।
अत्रस्यात सत् क्रिया रागोन्यत्र चासत क्रियादरः ॥

अर्थात्—जिसका चर्म पुद्गल प्रावर्त हो. बाल (अज्ञान) दिशा का अभाव होने से जो सम्यक द्रष्टी रूप योवन अवस्थाको प्राप्त हुवा हो, धर्म मार्गानू सारी हो. शुद्ध धर्म पर अनुराग भाव युक्त हो

यथा शक्त शुद्ध क्रिया करताहो उसे हेतु अनुष्ठान कहना अर्थात् इस अनुष्ठान से आत्माका हित–सुधारा होता है.

अब इश प्राप्त हुइ शक्ति को व्यर्थ मत गमा. कुछ तो भी लेखे–अर्थे लगा, अर्थात् कर्म वृंद तोड भव भ्रमाण के संकट से या क्षुधा वेदनी के तापसे बचने के उपाय करने का अलभ्य मौका-वक्त मिला है, तो अब तह मन तह चित से अलग रह कर क्षुधा आदि परिसह के सन्मुख हो शुर वीर धीर बन सम भाव से सहे, और घोर तप मे प्राक्रम फोड कि जिस से अनागत कालमें तूं ऐसा बन जाय कि फिर क्षुधा वेदनी कदापि प्रगटे ही नहीं, तुझे संताप उपजा सके ही नहीं, ऐसा जो सर्व कर्म सर्व दुःख दोहग रहित निरिच्छित निरावाध अनंत अक्षय सुख रूप सिद्ध स्वरुप की प्राप्ती होवे.

७ परन्तु सिद्ध श्वरूप की प्राप्ती होवे ऐसी तपश्चर्या होनी सहज नहीं है, वहूतही मूशकिल है. ऐसी दुःसाध्य सिद्धगति को प्राप्त करने वहूत जन खप करते हैं. कितनेक अन्नका त्याग कर कन्द, मुल, फल, फूल, पत्र, सेवाल आदि भक्षण कर रहते हैं, कि जिसमें जैन शास्त्र में संख्याते असंख्याते अनंते जीवों का पिंड फरमाया है, कितनेक पंचाग्नि ताप तप ते हैं, जिसमें छाने लकडी के आश्रय रहे अनेक त्रस जीम और प्रत्यक्ष अनेक पतंगिये झम्पापात कर उसमें पड मरते हैं. ऐसेही कितनेक जटा वढाते हैं. नखवढाते है भभूती रमाते हैं, हाथ पांव सुखाते हैं. उलटे झूलते हैं, नग्न रहते हैं, पाणी में पडे रहते हैं, स्मशान में पडे रहते हैं खीलोंपर सोते है और कितनेक मृगादि पशुका मांस भी खाते है, इत्यादि अनेक कष्ट सह ने से वो तपस्वी वजते हैं, फिर धन की स्त्री की स्थान की अनेक कामना धारण कर कोडी २ के लिये मारे २ फिर ते हैं, और पुछो तो कहते है हम

साधू हैं अर्थात मोक्ष मार्ग के साधक तपस्वी हैं, परन्तू उनसे मोक्ष सदैव दुर है.

श्लोक—प्राणि धानद्य भावेन, कर्म्मान व्यवसायिनः

संमूर्छिम प्रवृत्याभ, मननुष्टान मुच्येत ॥ १ ॥

अर्थात—सूत्र कथित रिती से विरूद्ध अन्य के देखा देखी उपयोग शुन्य असज्ञी की तरह क्रिया करने में आवे, उसे अन्योन्य अनुष्टान कहते हैं, इस से सकाम निर्जरा तो नहीं होती है, परन्तू पुण्य उपार्जन करले ते हैं

८ मोक्ष के अधिकारि तो वोही होंगे कि सम्यक-ज्ञान-दर्शन चारित्र-दया-क्षमा-त्याग-वैराग्य शील संतोष युक्त तप करेंगे, औ-घोर तप कर के भी जिसके फल की किंचित मात्र कदापि इच्छा नहीं कर ते हैं. यशः को अप यशः समजते है, और अपयशः निंद्य को यशः (कर्म हलके कर ने कासहज में प्राप्त हुवा उपाव) समज ते हैं. सुख को दुःख और दुःख को सुख जितना तप में ज्यादा लगे उतनाही ज्यादा निर्जरा रूप लाभ का कारण, समजते हैं. विषय भोगको सच्चाही विष भोग (जेहर के भक्षण जैसा) समजते हैं. धर नको धूल, स्वर्ग को कारागृह (केदी खाना) इत्यादि जगत् दर्शीसे जिनका विप्रित श्रधान हो तप कर ते है, क्या तपमें प्रवृती हो रही है ऐसा किसी को भी मालुम नहीं पडने देते हैं. ऐसी तरह जोतप कर ने वाले महान् तपश्वी ही मोक्ष प्राप्त कर सक्के हैं.

९ और अन्य तपस्वी यों की महीमा सुन उनका कदापि ई-र्षा नहीं करते उलटा गुन गान करते हैं. अन्य तपस्वियों को वैया वच्च कर साता उपजाते हैं, अर्थात् उनके सयन के लिये सुख स्थान

(जगह) और सुख शय्या (विछोने) का जोग वना देते हैं, तेल आदिका शरीर को मर्दन करते हैं, लघू नीत पित आदि की परिठा वणिया सामिती करते हैं. और पारणाके लिये प्रकृती के अनुकुल यथा इच्छित मिष्ट स्निग्ध उष्ण अहारका जोग वना देते है, वगैरा विधीसे साता उपजाते है जिससे जिनके तपकी वृद्धी होती हैं ऐसे वैया वृतीजीवों तपन्तराय कर्म तोड तपस्विवन मोक्ष प्राप्त करते हैं.

१० तप धर्म की वृद्धि करने पुद्गलानन्दियों और नास्तिको को तप का गुन वतावे कि प्रत्यक्ष ही देखिये! कालेशाहा कोयले अन्या किसी भी उपाय से श्वेत नही होते हैं, वो ताप (अग्नि) में देने से-जलाने से उसकी श्वेतरंग की राख होजाती है, तैसे ही घोर पातकी जो सच्चा तप वरोक्त रिती से करते हैं वो घोर पाप से मुक्त हो जाते हैं. उसकी अन्तरात्मा पवित्र हो जाती है.

११ और तपश्चर्या कर ने का सत्वोध प्रायः सभी मतावलम्वियों के किये शास्त्रो में हैं. प्राचीन काल में भी उनके वडे महात्मा औने जव्वर २ तप किये हैं, जैसे विश्वा मित्र ऋषि ६०००० वर्ष तक फक्त लोह कीटकाही भक्षण कर के रहे. पारासर ऋषि सेवाल (पाणी परकी कांजी) खाकर रहे, नव नाथो ने वारह २ वर्ष तक काँटो पर खडे रहे तप किया. ध्रुवजी ने वचपन से ही विकट तप कर ध्रुव-निश्चल पद प्राप्त किया, वृह्माजी ने ३॥ कोटी तप कर इन्द्रासण धुजा दिया, ऐसे २ केइ द्रष्टांत हैं. वर्तमान में एकादशी चन्द्रायण वगैरा तप भी केइ करते हैं.

१२ तैसे ही मोमीनो (मुशल मानो) के नवी महमद फक्त थोडे से दूध चांवलो खाकर ही गुजरान किया है. और भी वडे २

पयगम्बरों औलीया औं मुरशदो बहुत वर्षों तक जंगल में पत्ते खा-कर निर्वाह कर ने के केइ दाखले मिलते हैं, और अवि भी रमज़ान का पूरा महीना रोजा रखते हैं, दिन भर थूक भी नहीं निगलते हैं, वोभी किसी तरह का तपही है.

१३ तैसे ही इशाइ यों (क्रिश्चियों) के खुद इशु पयगम्बरने खुद अपने शरीर को परोपकार के लिये सूलीपर चडा प्राण त्यागने का खूंद उन्ही के बाइबल शास्त्र में लिखा है, और अवि भी बडे २ डाक्तरों अनेक बीमारों को निरोग्य कर ने अनेक दिन तक साफ भुखे रखते हैं, और निरोगीयों को भी उपवास करने से फायदा कितनेक बताते हैं.

१४ ऐसे २ अन्य मतान्तरो के अनेक द्रष्टांत मिलते हैं और प्रत्यक्ष तप करते हुवे भी द्रष्टी आते हैं. ऐसा अज्ञान और वांच्छा सहित तप करने से भी जो लाभ होता है, तो फिर ज्ञान यूक्त निर्वा-छक तप करने से लाभ की प्राप्ती क्यों नहीं होगी ? अर्थात् ज-रूर ही होगी.

१६ जैसे अन्य मतान्तरो में तप विषह के दाखले हैं, उस से भी अधिक अशर कारक और विधी युक्त तप करने के जैन धर्म में भी अनेक प्रमाण हैं (सो थोडे आगे कहगें) प्राचीन् काल में बडे २ तपस्वियों हुवे हैं जिनोने कन्कावली. रत्नावली. मुक्तावली, गुण रत्न संवत्सर वगैरा अनेक प्रकार के तप किये हैं, जिससे अनागत तो मोक्ष प्राप्त करी है, और वर्तमान में जैसे कृषान लोक गहू उत्पन्न कर ने ही गंहू बावते है परन्तु गहूं के साथ सूखला-भूसा-घास स्वभा से ही उत्पन्न होता है, तैसे उस तप के प्रभाव से उन पास्वियों को

अनेक प्रकार की लब्धियों उपजती थी.

१६ जैन शास्त्र में लब्धियों (आत्म शक्ति यों २८ प्रकार से उत्पन्न होती हैं ऐसा फरमान है सो—(१) ' आमोसही ' पगकी धुल लगने सें. (२) ' खेलोसही ' श्लेषमः थूक आदि लगने (३) ' विप्पोसही ' मल मूत्र के स्पर्श्य से, (४) ' जलोसही ' श्वेद–पसीना लगने से, (५) ' सव्वोसही ' सर्व शरीर में से किसी भी अंगोपांग का स्पर्श्य होने से, (लब्धिवंत तपस्विय की यह पांच वस्तु कुष्ठ आदिक रोगी के शरीर को लगने से वो रोग नष्ट होजाता है.) (६) ' सभिन्नश्रुत ' पांचो ही इन्द्रिके विषय को एकही वक्त में ग्रहण कर उसका अलग २ मतलब समज जावे. (७) अवधी ज्ञान की प्राप्ती होवे. (८) ऋजुमती (थोडा) मन पर्यव ज्ञान की प्राप्ती होवे. (९) विपुलमती (पूरा) मन पर्यव ज्ञान की प्राप्ती होवे. (१०) केवल ज्ञान की प्राप्ती होवे. (११) ' चरण ' आकाश मार्ग उडकर इच्छित स्थान जाने की शक्ति प्राप्त होवे. (१२) 'अस्सिविष ' [अ] जेहर भी उन के अमृत जैसे प्रगमें. [इ] वचन मात्रसे विष विरलायजाय [उ] कोपवंत हुवे द्रष्टी से या वचन से दूसरे का नाश कर दे. (१३) गणधर का पद प्राप्त करे. (१४) ' पुव्वधारी ' चउदह पुर्वका ज्ञान एक महुर्त में कंठाग्रह कर लें. (१५) ' अर्हत ' अर्हंत भगवंत जैसे अतिशय आदि संपदा वना लेवें. (१६) ' चक्कवट्टी ' चक्रवर्ती महाराज जैसी शैन्य रत्न आदि सव ऋद्धि वना लेवें. (१७) ' वल देव ' वल देवकी ऋद्धि वना लेवें. (१८) ' वासुदेव ' वासुदेवकी ऋद्धि वना लेवें. (१९) ' खीरासव श्रव ' निरस अहार को हाथ के स्पर्श्य मात्र से खीर जैसा सरस वना देवें. (२०) ' महुगसव श्रव ' तैसे ही कडुवे अहारको मिष्ट–मीठा, देवे.

२१ 'सप्पीरासव' तैसे ही लुक्खे अहार को चौपडा चीकटा बना देवे. (२२) 'कोठग बूद्धि' [अ] ज्यों कोठार में अनाज का नाश नहीं होवे त्यों उनको कितना भी ज्ञान दिया वो सब याद रखलें भुलें नहीं [इ] ज्यों कोठार में से वस्तू निकालते नहीं खुटे, त्यों उनका ज्ञान भी कभी नहीं खुटे. २३ 'बीयबुद्धि' ज्यों खेत में बाया हुवा बीज एकका अनेक होता है, त्यों उन्हो का ग्रहण किया एक पद सहेंश्र पद होकर प्रगमता हैं. (२४) 'व्यजन लधी' आपकी अनपढी विद्या में का दूसरा कोइ अक्षर भूल जाय तो आप बता देवें. (२५) 'पदानुसारणी' एक पद के अनुसार से सब ग्रन्थ समज जाय, या प्रकाश देवें. (२६)'विक्रय' एक रूपके अनेकरूप मन चाये बना लेवें. (२७) 'अखिण' अल्प वस्तु को स्पर्श्य मात्र से अखू बना देवें. और (२८) 'पुलाकलब्धी' कोपे हुवे चक्रवर्ती महाराजाकी शैन्या को जला कर भस्म कर देवें ज्ञान-दया-क्षमा-निर्वछिकता युक्त तप करने से यह लब्धियों प्राप्त होती है.

१७ परन्तु वो महात्माओं इन लब्धियों को फोडते [प्रगट कर ते] नहीं थे, दूसरे को बताते नहीं थे की में ऐसा प्राक्रमी हुं. कदापि जैन धर्म पर व धर्मात्मापर जबर विपती आपडे, धर्म का या तीर्थ का विच्छेद होने जैसा माल्दुम पडे, तब छद्मस्त की लेहर नहीं रुकने से इन लब्धि यों मेसे किसी लब्धी को परज्युज ते, वो कार्य फते कर अपवाद निवारण कर. जिनाज्ञा उल्लंघन करी उसका प्रायश्चित ले शुद्ध होते थे. ऐसे निर्भीमानी ओर पवित्र ह्रदयी थे

१८ इस पंचम कालमें बहुतसी लब्धियों का विच्छेद हुवा द्रष्टी आता है इस वक्त इक मासी द्विमासी आदि तप कर ने वाले व छाछ आदि एक दो द्रव्य पर ही सर्व उमर पुरी कर ने वाले

वगैरा वडे २ जवर तपाश्वराजि विराजमान हैं. परन्तु उन्हो मे भी लब्धिका प्रभाव क्वचित् द्रष्टी आता है, इस का मुख्य हेतू मूझे ये ही दिखता है कि–इस वक्त निर्वांछिक अर्थात् यशः वगैरा किसी भी प्रकार के फलकी अभिलाषा विन तप होना मुशकिल है, तैसे ही लब्धी यो भी प्राप्त होना मुशकिल है ! और कितनेक महात्माओं को कचित किसी प्रकार की लब्धी या आत्म शक्ति प्रगट हुइ ऐसी कितनीक वातों सुनी है. परन्तू अपसोस के साथ कहता हुं कि अपने मे एतिहासिक लेख कर ने का रिवाज वहुत कम होने से वो सुनी हुइ वातों में निश्चय के साथ लिख शक्ता नहीं हूं.

१९ सच्चे तपास्वियों को कदापि छद्मस्त की लेहर आभिमान आजावे तो वो विचार ते है कि—जो शक्ति तप कर ने की चतूर्थ काल में थी और वो जीवीत की आसा छोड जैसा तप करते थे, वैसा तप मेरे से थोडा ही होता है, वैसे शुद्ध और स्थिविर परिणाम मेरे थोडे ही रहते हैं जो में यह किंचित् तप कर इसका आभिमान करूं और फलको गमावूं.

२० देखिये अत्मान्! प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ देव भगवंतको कि जिनोको १२ मांस तक अहार पाणी का विलकुल ही जोग नहीं वना. परन्तू किंचितही प्रणाम नहीं डोलाये. और इन्हीके पुत्र श्री वाहूवल मूनिराज एकसे १२ महीने तक ध्यानेप ही खडे रहे. और चौवीस में तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीने वारह वर्ष और छः महीने में फक्त छुटक २ इग्यारे महीने और १९ दिन अहार किया ! तैसे ही और भी वहोत से मुनिराज्यों छः मासी, पांच मासी, चौमासी, त्रिमासी, द्वि_मासी, व निरंत्र मांस २ क्षमन के पारने पक्ष २ अंतर पारणे, वगैरा तप करते थे और वो सव वक्त एकान्त ज्ञान ध्यान में लीन हो

गुजार ते थे.

२१ देखिये काकन्दी नगरी के धन्ना सेठ ३२ क्रोड सोनैय का धन और ३२ मनोरमा (स्त्रीयों) को त्याग साधू बने, और निरंत्तर छट २ (बेले) पार ने सूरू किये, पारने में ऐसा अहार लिया कि जिसकी कोइ भिख्यारी भी इच्छा नहीं करे. ऐसे दुक्कर तप से ८ महीने मे जिनके शरीर का रक्त मांस सर्व सुख गया, और पांव सूखे वृक्षकी छाल जसै, पगकी अंगुली सूखी हुइ मुंग मशुर की फली जैसी, पगकी पीदी काग पक्षी की जंघा जैसी, गोड (ढीचण) काग जंघा वनस्पति की गाठ जैसे. साथल बोरी वृक्ष की कूंपलो जैसी कमर बूढे बैल के पग जैसी, पेट चमडे की सूखी मशख जैसा, पांसलियों आरीसे-कॉच के ढग जैसी अलग दिखे. पृष्ट घडे जैसी, छाती पत्ते क पङ्ख जैसी, वहां अगथिये की सूखी फली जैसी, हथेली सुखे हुव वड पिंपल के पत्ते जैसी, हस्तागुली सुखी मुंग उडदकी फली जैसी. ग्रिवा (गरदन) घडे व कमन्डल के गले जैसी. हणू (दढी-स्थान) सुखी हूइ आम्बी की कतली जैसी, होट सूखी इमली जैसे. जिभ्या पालस [खांकरे] के पत्ते जैसी, नाक सूखी आम्ब की गुठली जैसी, आंख विणा के छिद्र जैसी, कान प्याज [कांदे] के सूखे पत्ते जैसी. मस्तक सुखे हुवे तुम्बे के फल जैसा, ऐसी तरह का सब शरीर सूख कर होगया था, फक्त हडीका पिंजर नशो चमडे कर के वींटा हुवा था. ज्यों कोयले का भरा हुवा गाडा चलती वक्त खड २ अवाज करता है, त्यों चलते उन के शरीर में से हडीयोंका अवाज निकलता था, शारिक शक्ति तो विलकुल कम होगइ थी. फक्त मन वल से ही संयम का कार्य कर तेथे, और तब ही भगवंत श्री महावीर स्वामी ने श्रेणिक राजा के सन्मुख चउदह हजार साधुओं में दुक्कर

करणी और महा निर्जरा के कर ने वाले कहे हैं. यह मुनी एकमांस का संथारा कर स्वार्थ सिद्ध विमान में धारे हैं.

२२ जैसी तपश्चर्या कर धन्नाजी ने शरीर लेखे लगाया, तैसा ही और नव मुनिवरों का अधिकार अनुतरोववाइसूत्र में है और दुक्कर तपश्चर्या करने वाले खन्धक मूनीवर वगैरा का अधिकार भगवती जी प्रमुख सूत्रो में चला है, उन महात्माओ ने इस शरीर को एक उधारा लाया हुवा भाजन समज लिया था ? जैसे कोइ सीरा प्रमुख पक्वान वनावे कडाइ नामक भाजन लाते हैं, और जिस काम वास्ते उसे लाते हैं वो काम उससे निपजा लेते हैं तो पीछे देती वक्त बिलकुलही पश्चाताप नहीं करना पडता है, और जो उस कडाइ को मांज धो साफ कर रख ते हैं. और रखे कडाइ जल जायगी इस डरसे भट्टी पर नहीं चडाते है वो कडाइ उसके मालक को देती वक्त पश्चाताप करते हैं, इस द्रष्टान्त मुजवही यह शरीर तो धर्म कामार्थ उदारी लाइ हुइ कडाइ है, इसे खिला पिला पोपते हैं, और तप धर्म निपजाते हूवे जो दुर्बल हो जाउंगा वगैरा विचार कर ते हैं, वो मरती वक्त पश्चाताप करते हैं कि कुछ नहीं किया! परन्तु फिर पश्चाताप किया क्या काम आवे ! ऐसा जान वो मुनिवर इस शरीर रूप कडाइ को. निश्चय व्यवहार रूप दोनो ठिये (भींत) वाली भटी पर चडा, तप रूप अग्नि कर्म रूप इंधन में लगाकर धर्म संयम रूप पक्वान निपजा लेते हैं, उनको मरती वक्त बिलकूलही पश्चाताप नहीं होता है, समाधी मरण कर स्वर्ग मोक्ष प्राप्त करते हैं.

२३ ऐसे महान तपेश्वरीयों देह होनेही विदेह अवस्था को प्राप्त होजाते हैं अर्थात् जैसे पक्वान बनाने वाला कडाइ जलने की तरफ नहीं देखता है, परन्तु अन्दर के मालके सुधारने की तरफ उनकी द्र-

ष्टी रहती है, क्यों कि कढाइ जले विन पकान होता ही नहीं है. तैसे ही देहको कष्ट दिये विन तप निपजताही नहीं है, दशवैकालिक सूत्र के अष्टम अध्यायका फरमान है कि—' देह दुख्खं महा फलं ' अर्थात् धर्मार्थ देहको दुःख–कष्ट देने में महालाभ होता है, ऐसे वचनो को अवलम्बन कर वो महात्मा तपेश्वरीयों शरीरिक निर्वलतासे मनको निर्बल नहीं होने देते थे. ज्यों ज्यों ज्यादा कष्ट पडता त्यों त्यों ज्यादा २ लाभ का कारण जान उत्सह बढाते ही रह ते थे.

२४ जैसे लोभी बनिये की दुकान पर ग्राहाको का विशेष आगम होता है, गरदी मचती है, तब वो बनिया भूख प्यास शीत ताप थाक आदि सब दुःख को भूल, ग्राहको की तरफ से होते हुवे वाक्य प्रहार समभाव से सहन करता, उनको उंच मधूर, बचनो से संतोषता, इच्छित नफेको ग्रहण कर, माल दे, उन्हे रवाना करता है; तैसे ही तपेश्वर जी शरीर रूप दुकान में उदय में आये हुवे कर्म ग्रहको की तरफ से उत्पन्न होते परिसह को समभाव से सहते क्षुधा, त्रषा आदि तपसे होते हुवे दुःख की तरफ बिलकूलही लक्ष नहीं रखते, संवर निर्जरा रूप महा नफे के साथ आयुष्य रूप माल उनको दे रवाने कर ते हूवे परमानन्द परम सुख मानते हैं.

२५ ऐसे समभाव से उत्सुकता युक्त किया हूवा थोडाही तप महा निर्जरा का कर्ता होता है. ग्रन्थकारका फरमान है कि–जितने कर्म नरक वासी जी वों सो वर्ष दुःख भुक्त कर खपाते हैं, उतने कर्म ज्ञान सहित एक पोरसी का तप कर ने वाले खपा देते हैं. चउत्थ भक्त एक उपवास से एक हजार वर्ष जितने. छट भक्त बेला करने से लक्ष वर्ष जितने. अष्टमभक्त—तेला करने से क्रोड जितने, दशम भक्त-चौला कर ने से कोडा कोड वर्ष जितने कर्म क्षयकर ते

है * यों आगे भी तप का फल का प्रमाण जाणना.

२६ यह तो द्रव्य निर्जरा का श्वरूप फल तप के तरफ मनको आकर्षण करने कहा है, परन्तु उत्तरा ध्ययनजी शास्त्र के नवमें अ-ध्यायमें श्री नमीरायऋषि ने सक्रेन्द्रसे फरमाया है. तद्यथाः—

मासे मासे तु जो बाले, कुसग्गेणं तु भुञ्जए;
नसो सुयक्खाय स्स धम्मस्स, कलं अग्घइ सोल सिं ॥४४॥

अर्थात् मिथ्यात्वी अज्ञानी निरंत्र मास २ तप कर पारणे में कुसाग्र (डाभ त्रग की अणी उपर) आवे जितना ही अहार करे, वो ज्ञान युक्त एक नवकार सी (दोघडीके) तप के सोल में हिस्से में भी फल का दाता नहीं होता है. देखिये! ज्ञान युक्त किंचित ही तप से कैसा नफा होता है!!

२७ और भी ग्रन्थकार फरमाते हैं कि—

साठि वास सहस्सा, तिसत्त खुतो दयणं धोएणं.
अणुचिन्नं तामलीणा, अनाण तवुति अप्पफलो ॥ १ ॥
तामालित्तण इतवेणं, जिणमइ सिझेइ अन्न सत्तजणं,
ए अन्नाण वसेणं, तामालि ईसाणिंद गओ ॥ २ ॥

अर्थात् तामली नामे तापस ने साठ हजार वर्ष में सेंतीस २७ वक्त मुख धोकर अन्नपाणी लिया ऐसे अज्ञान तप के प्रभावे फक्त दूसरे देवलोक का इन्द्रही हुवा. जितना तप तामली तापस ने किया,

* अठम भक्त कोडी, कोडा कोडीये दशम भत्ते मि
अओपरं बहु निज्झरे हेउ नूणं तवो भणिओ ॥ १ ॥
जिन हर्षजी कृत वीस स्थान के रास में यह गाथा। है.

इतना तप जो कभी जिनाज्ञा सहित करें तो सात जीव मोक्ष प्राप्त करें! देखिये! सज्ञान और अज्ञान तप में कितना अंतर है सो? अज्ञान तपतो जीवने अनंत वक्त किया, और उसके प्रभाव से जीव नवग्री वेक तक हो आया परन्तू कूछ गरज सरी नहीं. ज्ञान युक्त तप करनेका मौका हाथ लगना बहूत मूशकिल है इसलिये इस मौकेको प्राप्त होकर के अहो आत्मा! अब तप करने में प्रमाद नहीं करना चाहिये, ऐसा जान तपस्विजी महात्मा यथाशक्ति तप कर लावा लेते हैं.

२८ यथा तथ्य संपुर्ण तपका फल तो तबही प्राप्त होता है कि जो तप कर के नियाणा (उसके फल की वांछा) नहीं करते हैं. अनुयोग द्वार सुत्र में नियाणें नव प्रकार के फरमाये हैः—१ 'तपेश्वरी सो राजेश्वरी' इस कहवत मुजव कोइ तपके फल के बदल में नियाणा करे (निश्चय आत्मक बनेकी) मूजे राज मिलो. २ कोइ बिचारे कि राजाको राज के निर्वाह करने की वगैरा विपी भुक्त नी पडती है, इस लिये मूझे ऋद्धिवंत सेठ का पद मिलो ३ कोइ बिचारे कि–सेठ को तो वैपार आदि मे महा कष्ट उठाना पडता है, इसलिये स्त्रि का पद मिलो कि घरमें बेठी २ मजाह करुं. ४ कोइ विचारे कि स्त्री के जन्म में तो पराधीनता भुक्तनी पडती है, मूझे तो पुरुष पना मिलो. ५ कोइ बिचारे कि मनुष्यका शरीर तो अपवित्र है, इसलिये मुझे बहूरत्ता * देवताका पद मिलो ६ कोइ बिचारे कि देवता ओंमे अभोगिक

* बहूरत्ता के तीन भेद– १ देवता और देवांगना आपस में विषय लूब्ध हो भोग भोगवे. २ देवता ओं या दो देवियों एक स्त्री का और एक पूरूष का रूप बनाकर आपस में भोग भोगवे. ३ एक ही देवता या देवी अपने दो रूप (स्त्री और पुरूष के) बनाकर भोग भोगवे! सो बहु रत्ता देवता या देवी कहे जाते हैं.

पना ❀ वगैर केइ दुःख हैं मुझे तो बहु रत्तो देवीका पद मिलो (यह ६ प्रकार के नियाणे कर ने वाले दुर्लभ्भ बौधी होते हैं) ७ कोइ विचारे कि विषय भोग तो महा दुःख के देने वाले हैं, इसलिये अरत्ता (जहां भोगकी इच्छा नहीं होवे ऐसे नव ग्रैवेक आदि स्थान में) देवता होवुं. ८ कोइ विचारे कि देवता ओंमें तो वृत प्रत्याख्यान या साधुजी को दान देने का जोग नहीं बनता है, इसलिये किसी श्रीमंत धर्मात्मा श्रावक के घर जन्म धारण करूं कि जिससे व्रत ग्रहण कर, व सू-पात्र को खुब दान दे कर लाभ लुटुं. ९ कोइ विचारे की श्रीमंत धनेश्वरी के घर जन्म लिया तो विषय भोग में गर्क हो कुटम्ब आदि के मोह में पड साधु पणा नहीं ले सकूंगा ! इस लिये दारिद्री श्रावक के घर जन्म लेवूं कि जिसने मुझे चारित्र धर्म की प्राप्ती होवे. [यह पीछे कहे हुवे तीन प्रकारके नियाणे करने वाले को सम्यक्त्व श्रावक पना और साधू पने की तो प्राप्ती हो जायगी, परन्तु मोक्ष नहीं मिलेगी] और भी नियाणा दो प्रकार का होता हैः—१ भव प्रत्येक सो संपुर्ण जन्म तक चले ऐसी वस्तुका नियाणा करे, उसको सम्यक्त्व की प्राप्ती होवे, परन्तु संयम नहीं आवे. जैसे गये जन्म में कृष्ण जी ने वासुदेवकी पदवी प्राप्त होने का कियाथा वो वासुदेव हुवे उनको सम्कत्व की भी प्राप्ती हुइ परन्तु चारित्र नहीं ले सके. और २ वस्तू प्रत्येक सो सुख अनुवन्त मिलो उसे वो वस्तुका संयोग नहीं बने वहां तक सम्यक्त्व की प्राप्ती नहीं होवे जैसे द्रोपदी जी को पांच भरतार वरे पीछे सम्यक्त्वकी प्राप्ती हुइ.

श्लोक—दिव्य भोगाभिलाषेण. कालांतर परिक्षयात् ।

---

* आगे को बहुत काल तक सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होवे सो दुर्लभ्य बोधी

स्वादिष्ट फल संपूर्ते गरानुष्टान मुच्यते ॥ १ ॥

अर्थात्–जो परभव में देवेंद्रादि दिव्य भोगो की प्राप्ती होवो ऐसी इच्छा से तपर्श्चया आदि क्रिया की जाती है उसे गरल अनुष्ठान कहते हैं अर्थात् जैसे सर्प नामक जहरी जानवर की गरल (मुखकी लाल थूक) का भक्षण करने से बहुत दिनों तक कष्ट भोगव कर मरना पडता है, तैसे ही वरोक्त अनुष्ठान दुःख दाता होता है

सारांश यह है कि–नियाणा मात्र अच्छाही नहीं. तीर्थंकर पद की प्राप्ती का व चरम शरीर होने का भी नियाणा नहीं करना ? अजीशास्त्र तो मोक्ष की भी अभिलाषा करने की मना करता है, परन्तु भावना बलकी कचास वाले से यह होना मुशकिल है, ओर मोक्ष की इच्छा है सो निरामय निष पुद्गलिक है. इस लिये निर्दोष गिनी जाती है. ऐसा नियाणा रहित निर्वांछिक तपही निर्जरा रूप महा फल का दाता होता हैं.

२९ भव्यों ! कुछ अहार का त्याग कर भुखे मरने को ही भगवंतने तप नहीं फरमाया है, शास्त्र में तो दो प्रकार के तप फरमाये हैं:–१ बाह्य तप सो नित्य नैमितिक क्रिया यों में इच्छा के निरोधसे साधन किया जावे और बाहिर में प्रत्यक्ष प्रति भाषित होवे. इसके छः भेदः– (१) अनपाणी स्वादिम खादिम इन चारों ही आहारकी स्वल्प काल या विशेष काल जाव जीव त्याग करनो सो अनसन तप. इस से रागादि शत्रू जीते जाते हैं, कर्मों का क्षय होता है, ध्यान की प्राप्ती होती है. (२) भुख (खप) होय उस से कमी अहार करे, और उपाधी कमी करे सो. उणोदरी तप. इस से निद्रा आदि दोषों का नाश होतो है, संतोष और स्वध्याय आदि गुणो की वृद्धि होती है. (३) चहाती वस्तु निर्दोष वृतीसे अन्य की

दी हुइ ग्रहण करना सो भिक्षाचरी तप. इससे व्याधी से बचाव होता है, और निरारंभादि वृत का पालन होता है. (४) दूध, दही, घृत, तेल, मिष्टान, क्षार, इत्यादि रस के त्याग को रस परित्याग तप कहते है. इस से इन्द्रियों का दमन आलस आदि दोषो का शमन व स्वाध्याय आदि क्रिया सुख से होती है. (५) शरीरको शीत ताप आदि दुःखों के सन्मुख कर समभाव रख सहना सो काया क्लेश तप. इस से अभिलाषा कृष होती है, राग भाव का अभाव होता है. और कष्ट से अडग रह सहन करने का अभ्यास होता है, और (६) इन्द्रीयों कषायों और योगोंकी वृती को संक्षेपना सो प्रति सलीनता तप. इसे आशाका विनाश हो परमानन्दी बनता है. (यह ६ बाह्य तप हुवे) और दूसरा अंतरङ्ग मन के निग्रह से साधा जावे और दूसरे की द्रष्टी में नहीं आवे सो अभ्यन्तर तप इस के भी छः भेदः— (१) जो दो प्रकार से विनय करे, एकतो ' मुख्य ' जो सम्यक ज्ञान आदि त्रिरत्न को बहोत मान पुर्वक धारन करे. और दूसरा "उप चरित्र" जो त्रिरत्न के धारक आचार्य उपध्याय साधू आदिक होवें उनके बहूमान पूर्वक गुणानूवाद व नमस्कार करे, सो विनय तप, इस से मान कषाय नष्ट हो ज्ञानादि गुण की प्राप्ती होती हैं. (२) जो दो प्रकारे वैयावृत करे, एक तो ' कायिक भक्ति ' हाथ पाद पृष्ट आदि चांपन करे, और दूसरी ' परवस्तु भक्ति ' अहार. वस्त्र, औषध आदि निर्दोष ला देना सो वैया वृत तप. इससे धर्मादि सद्गुणों के सद्गुग की वृद्धि होती है, और मान कषायका नाश होता है. (३) दोषित हूये आत्माको प्रति क्रमण आदि क्रिया कर पवित्र करना सो प्रायश्चित तप. इस से वृतो की शुद्धि होती है, आत्मा निशल्य होती, कषाय कृषता धारग करती है. (४) सर्व उपाधीका

त्याग कर निश्चितवृती धारन करे सो ध्यान तप. इस से मन वशी भूत हो प्रणामों की अनुकूलता होने से अक्षय आत्मानन्द की प्राप्ती होती है, (५) ज्ञान प्रभाव से प्रमाद का त्याग कर श्रधा युक्त जैन सिद्धन्तो का पठन करना सो स्वध्याय तप इस से बुद्धि की स्फूरतो हो प्रणाम की उज्वलता होती है, (६) बाह्य द्रविक पदार्थ और अभ्यान्तर कषाय वृति से निवृतना सो विउत्सर्ग कायुत्सर्ग तप इस से निर्भय पदकी प्राप्ती होने से मोहका क्षय होता है, जिससे परमानन्द की प्राप्ती होती है. यह ६ प्रकारे बाह्य और ६ प्रकारे अभ्यन्तर दोनो मिल बारह प्रकारका तप हुवा सो तपश्वीजी करते हैं.

३० वरोक्त प्रकारे दो तरह या बारह प्रकारे तप करने वाले तपश्वी राज महाराजा धीराज कर्म बृन्द को जडा मूलसे क्षय कर परमात्म मार्ग पर गमन करते हैं. और श्वल्प कालमें परमात्म पद प्राप्त करते हैं.

श्लोक जिनाज्ञा पुरस्कृत्य, प्रवृतं चित्त शुद्धितः ॥
संवेग गर्भ मत्यन्त ममृतं तद्धिदो विदुः ॥१॥

अर्थात् श्री जिनेश्वर की आज्ञा के अनुसार त्रिशल रहित निर्मल मनसे संवग वेराग्य में अत्यन्त लीन हुवा जो क्रिया करते हैं उसे अमृत अनुष्टन कहते हैं, अर्थात् यह अनुश्टान ही मोह आदि कर्म रुप जेहरका नाशकर शिव सुखरुप अमृतका दाता होता हैं

३१ और एसे तपस्वी माहात्मा ओंका गुणानुवाद करने वाले भी सद्गुणों के अनुरागी होने से महन् पुण्य फलकी प्राप्ती होती है जिससे परमात्म पद प्राप्त कर ते हे, ऐसे तपश्वी जी के गुणानुवाद फल दायक हैं.

ऐसे तपश्वी भगवंत चतुर्विद संघ के पुज्यनिय होते है उन्ह चतुर्विध संघ का गुणानुवाद किये पहिले तपश्वी जी भगवंत को त्रि-करण त्रियोग की विशुद्धि से नमस्कार करता हूं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के बाल
ब्रम्ह चारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी महाराज रचित
परमातम मार्ग दर्शक ग्रन्थका तपस्वी गुणा
नुवाद नामक सप्तम् प्रकरणम्.

समाप्तम्.

प्रकरण-आठवा.

" संघ--की-वत्सलता ',

घ नाम समोह का है, अर्थात् बहूत जन एकत्र होवे उसे संघ कह ते हैं, सो यहां साधू साध्वी श्रावक श्राविका इन को संघ कर के बोला ये हैं और वत्स नाम गौ के पुत्र का है. अर्थात् जैसे गाय अपनी बच्चेपर पुर्ण प्रिती रख उसकी पोषणा करती है, तैसे ही जो महान् प्राणी वरोक्त चतुर्विध संघ की भक्ती करे. उसे संघ वत्सलता कही जाती है.

और भी संघ का दूसरा नाम तीर्थ भी है तीर-किनारा स्य=र है अर्थात् जो संसार रूप समुद्र के किनारे पर रहे है ऐसे साधू सा ध्वी श्रावक श्राविका इनको तीर्थ भी कहे जाते है.

ऐसे जो उत्तम प्राणी हैं कि जो संसार समुद्र का पार पाये किनारे आकर रहे, थोडे ही काल में मोक्ष प्राप्त करने वाले ऐसो की वत्सलता अर्थात् सेवा भक्ति करना सो संसार का किनार (पर) प्राप्त

कर ने वाला जो परमात्म पद है उसकी प्राती का मुख्य हेतू हैं. इस लिये संसार पारार्थी जीवो को इन चारों ही संघ तीर्थ के अवल गुण के जान होना, और उन गुणोंझो की भक्ति करना " अपने तो गुण वंत की पूजा, निगुनो को पूजे वो पंथही दूजा " इस लिये अवल चारही तीर्थ के गुण दर्शा कर फिर उनकी भक्ति करने की विधी दर्शना चहाता हूं.

१ ' साधू ' साधू शब्द के पर्याय वाचिक शब्द शास्त्र में अनेक हैं, जैसे समण, महाण, भिखवू, निग्रन्थ, मूणी, प्रवर्जिक संयाति ऋषि, अणगार अतीथ वगैरा. तैसे अन्य मतावलम्बियों भी साधू को अनेक नाम कर के संबोधते है, जैसे संन्यासी, वेरागी, अतीत, गौसाइ, तैसे दरवेश, फकीर, वगैरा. परन्तू कुछ कोरे (गुण विन) नाम धारण करने से कुछ गरज नहीं सरती है, पूरी होती है. नाम जैसे गुण भी चहाइ ये ! जो क्रोध मान माया लोभ आदि दुर्गुणो को समावे अर्थात् ढांके उन्ह को समण कहे जाते हैं. २ पृथव्यादि छःही काय के जीवों को जो स्वतः हणते मारते नहीं हैं और दूसरे को उपदेश करते हैं कि ' माहणो २ ' अर्थात् मतमारो २ उन को महाण कहे जाते हैं, जो कर्मों को डरावे या निर्वद्य (किसीको भी किंचित मात्र दुःख न होवे ऐसी विधी से) भिक्षा वृती अहार वस्त्र. आदि ग्रहण कर अपना निर्वाहा करते है सों भिख्खु-भिक्षु कहे जाते हैं. ४ जो द्रव्य तो धातु रूप परिग्रहकी और भाव ममत्व रूप परिग्रह की ग्रन्थी (गांठ) वान्धनेसे निर्वते हैं सो निग्रन्थ कहेजाते हैं. ५ जो पाप कार्य निपजे ऐसी भाषा नहीं बोलते मून (चुप) धारण कर ते हैं और मतलब से ज्यादा नहीं बोले सो मुनि, ६ जो संसार के सर्व कार्य से निवृते धर्मार्थ शरीर अर्पण किया सो प्रव-

जिक. ७ जो स्ववस से यम अहिंशादि वृत को आचरण कर पाले सो मा इन्द्रियों के बिकार को जीते सो संयती ८ जो स्वात्मा और परात्मा का रक्षण करे सो ऋषि. ९ जो घर रहित अनियत वासी सो अनगार. १० जो अचिन्त्य तिथी के नियम विगर भिक्षा को जावे सो अतीथी. ११ सब से श्रेष्ट वृत धारी व आत्माका मोक्षार्थ साधन करे सो साधु, तैसे ही जो काम क्रोध मद मोह लोभ और मत्सर इन छः वैरीयौ को मारे सो न्यशी. राग द्वेष विषय कषाय से निव्रत सो वैरागी. तैसे ही दुनिया के काम से दूर रहे सो दुर्वेश. और फिकर के फाके करे अर्थात् दुनियाकी जंजाल में नहीं फसे सो फकीर इत्यादि नाम प्रमाणे गुण होवे उन्हे साधू जानना.

साधूजी महाराज २७ गुन के धारक होते हैः—पांच महावृत पाले. पांच इन्द्रिजी ते. चार कषाय टाले, इन १४ गून का बयान तो गुरुगुणानुवाद नामक चौथे प्रकरण में होगया. और १५ मनका स्वभाव अतिचंचल है, कूमार्ग में अधिक प्रवर्ती करता है, जिससे रोककर सु-मार्ग में लगावे, धर्म ध्यान में रमावे. सो मन समाधारणिया १६ वचन को पाप मार्ग मे प्रवर्तते हुवे को रोक कर धर्मोपदेश वगैरे शुभ कार्य में प्रवर्तावे सो वय समाधारणा. १७ काया धर्मार्थ साधन की मुख्य साहायक है, इसे तप संयम परोप कार आदि शुभ कार्य में लगावे सो काय समाधारणिया (यह तीन समाधी युक्त) १८ अंतःकरण के परिणाम सदा सरल धर्म वृद्धी के कार्य में वीरवता लिये रखे सो भाव सचे. १९ शरीर आदि सम्बन्ध के सबब स क्रिया अवश्य करनी पडती है. जिसका नियम शास्त्र में कहा है, उस मुजब कालोकल जो धर्म क्रिया समाचरे सो 'करण सचे' २० मन वचन कायाके जोगोका निग्रह कर सत्य मार्ग में रमावे

सो ज़ोग सच्च २१ माति वुद्धि और श्रूती-उपयोग यह दोनो ज्ञान जिनके निर्मल होवें, और वने वहांतक षड मतके शास्त्रोंको जाने नहीं तो स्वमतके अभ्यासी होवे सो 'नाण संपन्न.' २२ ज्ञान कर के जाने हूवे पदार्थ को यथार्थ जैसे है वैसे ही श्रद्धे शंका आदि दोष रहित प्रवर्ते सो 'दर्शन संपन्न.' २३ जो यथार्थ श्रधान किया है उस में त्यागने जोग को त्यागे, और आदरनें जोग को आदरे. चार गती या चार कषाय से तिरने का उपाव करे सो 'चारित्र संपन्न' २४ प्राप्त होते उपसर्गों को समभाव कर सहे. संतप्त होवे नहीं, किसी वक्त क्रोधका उदय होजाय तो तुर्त आप उसे शांत करे सो 'क्षमावंत' २५ शुद्ध सीधे न्याय मार्गमें प्रवर्ते, सदा वैराग्य भाव रखे सो 'वैराग्यवंत' २६ पूर्व कर्मोदय कर वेदनिय (दुःख या रोग) की प्राप्ती होवे उसे कर्म निर्जराका मौका मिला जान समभावसे सहे सो वेदनिय समअहिया सनिया. २७ और 'मरणांति सम आहिया सणिया' जगत की कहवत है कि 'मरने से नहीं डरे सो दिल चहाय सो करे' साधू जी जानते हैं कि जो मृत्यूका नियमित समय है वो कदापि टलने का नहीं. फिर डरने से फायदा ही क्या! और डरतो पापी प्राणी यों को होवे, क्यों कि उनको पापका वदला देना पडेगा, धर्मी जीव को तो हर्ष * होता है, क्यों कि इस शरीर से जो कुछ अपना मतलब करना था सो कर लिया. अव यह निसार शरीर क्या काम का ऐसा जान मरणांत में समाधी मरण कर आयुष्य पुर्ण करे.

२ यह संक्षेप में साधूजी के गुनो का वरणव कहा, इसी मुजब साध्वी जी के गुन जानना. फक्त स्त्रि लिंग की परवशता के सबब से

* दोहा-मरने से जग डरत है, मुष मन अधिक आनन्द.
कब मरेंगे कब भेटेंगे, पूर्ण परमानन्द.

कितनेक आचार बिवहार में फरक पडता हैं जैसे कि—साधू तो विना कारण एक ग्राम में शीत उष्ण काल में एक महीने से ज्यादा नहीं रहे, और साध्वीजी को दो महीने रहना कल्पता है. ऐसे ही साधू जी को तो ७२ हाथ से ज्यादा वस्त्र रखना नहीं कल्पे, और साध्वी जी को ९६ हाथ वस्त्र कल्पता है. ऐसे ही साधु तो अप्रतिबन्ध विहारी होते हैं और साध्वी जी विहार आदि प्रसङ्ग में ग्रस्थ की सयहायता की जरुर पडती है. वगैरा फरक है. परन्तू जो २७ गुन कहे उन में कुछ फरक नहीं समजना. यह दो संघ—तीर्थ के गुन कहे.

३ 'श्रावक' श्रावक शब्द की श्रुधातू है, जिसका अर्थ श्रावण करना सुनना ऐसा होता है अथार्त् जो धर्म शास्त्र का श्रवण करे सो श्रावक, और भी श्रवक शब्द के तीन अक्षरों का अर्थ ऐस भी होता है. श्र कहतां श्रद्धावंत अर्थात् निग्रन्थ प्रवचन जो शास्त्र के बचन हैं उन पर पूर्ण आस्ता रखे, तहा मेव सत्य श्रद्धे, वा दानव मानव किसी का भी चलाया धर्म मार्ग से चले नहीं. अधर्म मार्ग अंगीकार करे नहीं, जैन धर्म के मन, तन, धन, अर्पण कर प्रवृतें 'वे' कहतां विवेक वंत अर्थात् वैपारी लोक ग्राहाको की गर्दी में भी अपना नफा उपार्जन करने का अवशान भूलते नहीं है. तैसे श्रावक भी संसार के हरेक कार्य करते हुवे पापसे आपनी आतमा बचाने रूप नफे के काम को भूल ते नहीं हैं. थोडे पाप से काम निकलता होतो ज्यास्ती करते नहीं हैं. 'कं' कहते कियावंत अर्थात् जो नित्य नियमित किया कर ने की है वो टैमो टैम सदा करते हैं, जैसे निंद्रा आदि प्रमाद घटाने एक महोर्त रात्री बाकी रहे तब जाग्रत हो दूसरा कोइ पापी जीव जाग्रत नहीं होवे ऐसी तरह चूप चाप सामायिक वृत धारन कर, प्रतिक्रमण का काल (लाल दीशा) न

होवे वहांतक मनमें विचार करे कि मैं कौन हुं? मेरी जात कूल क्या है? मेरे देव गुरू कौन है? मेरा धर्म क्या है? मेरा कृत्या कृत्य (करने योग्य नहीं करने योग्य) क्या है? आज के दिन में कौन २ से धर्म कृत्य कर सक्ता हूं? जो २ धर्म कृत्य उस दिन में होने जैसे होवे उसका अभिग्रह निश्चय कर ते हैं फिर वक्त हुवे यथा विधी प्रतिक्रमण करते हैं, नियम धारण करते हैं * विशेष नहीं वने तो धर्म पुस्तक का एक पृष्ट नित्य नवा जरूर ही पढते है, व्याख्यान वंचता हो श्रवण करते तो हैं. सामायिक पूर्ण हुवे माता, पिता, वडे भाइ भोजाइ (भाभी) आदि जो वयोवृद्ध व गुनोवृद्ध होवे उनको यथा उचित नमस्कार करते हैं पांव लगेते हैं. सुख शांती पूछेते हैं. फिर अन्य कूटम्वादि को मधूर वचन से संतोष उपजाते हैं. लघुनीती (पेशाव.) वडी नीत (दिशा—झाडे) के कारण से निवृत होना होतो फासुक निर्जीव जगह मिले वहांतक पाखेने में मोरी पर नहीं जाते है. हरी लकडी से व सचित वस्तु से दाँतन नहीं करते हैं, स्नानभी पोली फटी जमीन पर व नाली मे मोरी में पानी जावे ऐसे स्थान- नहीं करते हैं. ज्यादा पाणी नहीं ढोलते हैं. तेल चंदन आदि विशेप नहीं लगाते हैं. चहा कापी चिलम वीडी भंग ठंन्डाइ आदि

---

* १ सजीव वस्तू. २ निर्जीव वस्तू. ३ विगय. ४ पगरखी. ५ तंबोल. ६ सूंघणे की वस्तु. ७ वस्त्र. ८ वाहन. ९ सेजा—विछोने. १० विलेपन. ११ कूसील. १२ दिशामें गमन. १३ स्नान. १४ अहार पाणी. १५ मट्टी. १६ पाणी. १७ अग्नि. १८ हवा. १९ लिलोतरी. २० हथीयार. २१ वैपार. २२ खेती कर्म. इन २२ बोलमें आज अमुक काम नकरूंगा. या करे तो इतने उप्रांत नहीं करूंगा! ऐसा सदा नियम करते हैं.

किसी भी प्रकार का व्यश्न लगाते नहीं है, क्यों कि यह शरीर की और बुद्धि की हानी करता होते हैं. प्रहर दिन आये पहिले भोजन नहीं करें. ३२ अनंत काय २२ अभक्ष व विद्रुप निन्दानिय वस्तुका भोजन नहीं करे ते है. भोजन निपजाती वक्त त्रस जीव की घात न होवे इसलिये कोइ भी वस्तु विना देखी उपयोगमें वापरनेमें नहीं लेते हैं. भोजन तैयार हुवे साधु साध्वी का जोग होवे तो अत्यन्त उत्सहा भावसे यथा विधी प्रतिलाभते हैं, और शक्ति वंत होवे तो स्वधर्मी श्रावक को भक्ति भाव पूर्वक अपने बरोबर भोजन कराते हैं और भी अनाथ अंग हीन गरीबो को यथा शक्त साता उपजाते हैं विशेष तंबोल सुपारी आदिका सेवन नहीं करते हैं, और वैपार में भी बहुत यत्ना रखते हैं, अयोग्य बहूत हिंशक निन्दनिय जाती विरूद्ध राज विरूद्ध वैपार नहीं करते है. वैपार में लाभ की मर्याद वान्ध ते हैं कि रूपे अनी उपरांत नफा नहीं लेवूगा. इस से पेठ पर तीत जमती है. नियमित लाभ हूवे त्रष्णा नहीं बडाते हैं, वैपार के लाभ में धर्म का भी हिस्सा रखते हैं, धर्म भाग, पंच भाग, राज भाग गोपवते नहीं है, दगाबाजी ठगाइ नही करते हैं. और कषाइ आदिक हिंशक लोको के साथ लेन देन नही करते हैं. पर्व आदि तीर्थीको वैपार व आरंभ का काम छोड पोषा व दया करते हैं, पिछला पहर दिन रहे वैपार वन्ध कर भोजन पान से निवृत होते हैं, को बनेतो चारही आहार त्याग ते हैं, नहीं तो पाणी उपरान्त भोगवते नही हैं. रात्री भोजन महा पाप का कारण है, सन्ध्या सामायिक प्रतिक्रमण करते हैं. फिर दिवस में किये कार्य का चिन्तवन (हिंशाव आदि कर) निवृत होते हैं. सयन स्थानको विकार उत्पन्न करें ऐसे चित्र आदि से नहीं श्रृंगार ते हैं. परन्तु हित

शिक्षण के संक्षेपित शब्दो के लेख के तखते लगा रखते हैं. कि जो मन विशेष कुमार्गमें जाते हुवे को रोक रखे. स्वस्त्री के साथ भी विशेष अमर्यादित और विशेष विषयाशक्त होना वडा हानी कारक समजते हैं वीर्य का जितना रक्षण हो उतनाही सुखदाइ समजते हैं. ज्यादा इच्छा नहीं रुके तो छः परवी वगैरा धर्म पर्वों में अवश्य ब्रह्मचर्य पालते हैं, और अन्य रात्री को भी एक वक्त से ज्यादा विषय सेवन नहीं करते हैं, स्त्री की सेजा में निद्रित्त नहीं होते हैं निद्रा के पहिले जिनस्तवन मंगलिक वगैरा स्मरण कर सोते हैं कि जिससे शांत निद्रा आती हैं. इत्यादि जो नित्य नियमित क्रिया जो करते हैं सो श्रावक कहे जाते हैं.

ऐसे श्रावकजी २१ गुन के धारी होते हैं सो कहते हैं:-

१ 'अखुद्दो' क्षुद्र पणे रहित होवें. अवल गुन तो जिनेश्वर भगवंत ने प्रकृतियो को मोड सरल बनाने का ही फरमाया हैं, अन्तानबन्धी आदि प्रकृती का क्षय व क्षयोपशम होने से जिनके स्वभावमें से क्षुद्र पणा. तुच्छपणा, नीचपणा, स्वभाविक ही निकल गया हो, अपराधी का भी बूरा नहीं चिन्तवे तो दूसरे की कहनाही क्या? सब के हित कर्ता होवे, और हरेक कार्य दीर्घ विचार से करने वाले होवे.

२ 'रूववं' रूपवंत होवे. यह बात किसी के स्वाधीन की नहीं हैं, परन्तु जो जीव पुण्य का संचय कर आते है वोही श्रावक के घर अवतार लेते हैं, वो स्वभाविक रूपवंत होते हैं. कहा है कि-'यत्रा कृति स्तत्र गुण वसन्ति' अर्थात् जिनका रूप सुन्दर होता है उन के गुण भी बहुत कर अच्छे ही होते हैं, परन्तु यहां ऐसा नहीं समजना कि रूप हीन को धर्म ग्रहन नहीं करना, धर्म को तो सबही ग्रहण कर सकते हैं. और धर्म तत्व को ही रूप का कर्ता होता है.

फक्त यहां तो व्यवहारीक शोभा के लिये कहा है.

३ 'पगइ सो मो' प्रकृती का शीतल होवे. अर्थात् 'रूपे रूडा गुण बाइडा, रोइडा का फूल' इस मारवाडी कहवत मुजब गुण विन रूपवंत शोभता नहीं है. इसलिये जैसा रूप सौम्य होवे वैसा अंतः करण भी स्वभाव से ही (कृत्री नहीं) शीतल चाहीये. क्यों कि क्षमा गुण ही सब सद्गुणों को धारण कर सक्ता है, शीतल स्वभावसे सब जीव निडर रहते हैं विश्वास निय होता हैं, और उन के सम्बन्ध में अनेक प्राणी सद्बोध आदी प्रसंग को प्राप्त हो धर्मात्मा बन शक्ते हैं.

४ 'लोगपियाओं' जो शीतल स्वभावी होते हैं वो सबके प्रिय करी लगते है. यह स्वभावीकही है. और श्रावक जन इसलोक परलोक और उभय लोक के विरुद्ध कोइ कृतव्य नहीं करते हैं. (१) गूणवंत की या किसी की भी निंदा, सरल, भोला दुर्गुणी, इत्यादि की हँसी ठट्ठा. जनेश्वरी, धनेश्वरी. गुणवंत. प्रख्यातीवंत, इत्यादि महाजनो का ईर्षा-मत्सरभाव; सामर्थ्य हो कर स्वधर्मीयो, जाती बन्धवो अनाथो आश्रितो की सहाता नहीं करना; इत्यादि कर्तव्य इस लोक विरुद्ध गिने जाते हैं; सो श्रावक नहीं करते हैं. २ खेती वाडी, सडक, पुल, गिरनी, बनकटाइ, आदि महा आरंभ कर्म करना, तथा इनका ठेका इजारा लेना. कोटवाल आदि की लोकोको त्रास दायक पद्वियों. इत्यादि महा हिंशाके कर्म से इस लोक में तो द्रव्यकी मान महत्व की प्राप्ती होती है. परन्तू आगे के जन्म में नर्कादि दुर्गती में रौरव दुःख भुक्त ने पडते हैं इसलिये यह परलोक विरूध्द कर्म गिने जाते हैं. सो भी श्रावक नहीं करते हैं और (३) दोनो लोक विरुध्द कर्म सो-सात दुर्व्यश्नका सेवन. जैसे [१] 'जुवा' सट्टेका अंक लगाने

रा, नक्की हुवा, तास गंजफे, सेतरंज, आदि खेलः वगैरा जितने हार जीतने काम हैं सो जुवा की गिनतीमें हैं, इस विश्न में पडा हुवा प्राणी घरका धनका सत्यानाश कर दिवाला निकाल, चौरी आदिक कु-कर्म कर इज्जत गमा राजा ओर पंचोंका गुन्हेगार हो नर्क आदि दुर्गतिमें चले जाता है. [२] जूवा जैसे कू-कर्म से उपार्जन किया हूवा (हरामका) धन सुकृत्य मे लगना तो मुशकिल है, इस लिये जूगारी वहुत कर मांस अहारी होता है, सो जलचर-मच्छादि, थलचर गौ आदि पशु खेचर पक्षी यों इनका मांसका भक्षण कर ने वाले निर्दय वन ते २ मनुष्यों को मार ते भी नहीं अचकाते है, धर्म विरूद्ध जाती विरुद्ध कर्मकर इस लोकमें इज्जत ओर विश्वास गमाकर कुष्ट भंगदर आदि भयंकर रोगों के ग्रास होकर मरकर नर्कादि दुर्गती में जाता हैं [३] मांस का पचन मदिरा विना होना मुशकिल है इस लिये मांस अहारी दारूडी वनाता हैं, और नशेमे वेशुद्ध हो अशुची में लोटता है, माता भगि पुत्री से विक्रम कर लेता है, और मिष्ट भोजन का लुब्ध हो धनका नाश कर कंगालवन जाता है, घर में सदा क्लेश मचा रखता है, ऐसे कर्म से इस भव में इज्जत गमा महा दुःख से मर नर्कादि कूगति में चला जाता है. [४] मद मस्त हुवा स्वस्त्री से ऋप्त हो भंगी आदि नीचों का एंठ वडा जो वेश्या नामक दाडे की जोरू के गुलाम वनते हैं, वो जाती धर्म धन बुद्धि और मिय शरीर का भी गरमी के रोग से सत्या नाश कर, नरक में जा पोलाद (लोह) की गरम पुतली से आलिंगन कर ते हैं. [५] ऐसे दुष्टों वेशा के घर खा पाय खाने की मजहा से संतुष्ट नहीं हो अपने नीच मनको रमाने निर्दय कामों मे शुरुव वनाते है. निर्जन वन पहाडों में, धूप कांटे पथरोंमें अथडाते, निर्माल्य दीन हिरन खाकर

अपनी उम्मर तेर करने वाले अनाथ जीवो अपने कुटम्बमें अमन चमन कर ते हिरण ससले आदि जीवों को बाण गोली आदि शस्त्रों से मार आक्रन्द करते देख आनन्द मान ने वाले इस लोकमें कुष्ट आदि भयंकर बिमारी योंके ग्रासित हो नरक में जाते हैं. वहां यम देव वैसी तरह उनकी शीकार खेलते हैं. [६] चोरी और जारी (परस्त्रीगमन) इन दोनो कामो की तो प्रायःसबी लोक निन्दा करते है, परन्तु वो दुर्व्यश्नी तो इन ही काममें मजह मानते, अपने धनका नाश कर, प्रणान्त संकट सह कर जिनोने द्रव्ह का संग्रह किया, और प्राण से भी अधिक प्यारा कर रखा है, उन के घर अचिन्त्य जाकर उनकी गफलती में या धोके बाजी कर धनको हरण कर लाते हैं, जिससे वो धनेश्वरी बेचारे अक्रान्द बिलापात करते हैं. कितनक धसत के मारे प्राण भी छोड देते हैं. और वो चोरों भी उस धन से सुख नहीं भोगव सक्ते हैं. कहां है कि-' चोर की माका कोठा में मुढा ' अर्थात् चोर के सब, कुटम्ब सदा चिंता में ही रहता हैं कि रखे कर्म प्रगटे मारा जावे और पाप प्रगट ने से कारागृह (कद खाने) के अनेक दुःख भुक्त अकाले मृत्यु पा कर नर्क में जा यमो की अनेक त्रास भुक्तता है. [७] चोर लोक जार कर्म करने वाले भी होते हैं. जार का सदा दूर्ध्यान रहता है, कार्य साधन उपकारियों की वगेरा जबर हिंशा करता अचकाता नहीं है, उस कामान्ध को इतना भी बिचार नहीं होता है कि जो स्त्री अपने पती की नहीं हुइ वो मेरी कब होगी, और प्यारी यों के हाथों से प्यारो के कतल होने के कइ दाखले मोजुद होते भी वो कर्म नहीं त्यागते सुजाकादि कू बिमारी यों से सडकर मर नर्क में वैश्या विलासी की तरह विस भोगवता है, यह सातों विश्न दोनो लोक विरुद्ध कर्म जान श्रावक कदापि नहीं कर

ते हैं वो सर्व लोक के प्रिये होते हैं, और भी दान मान से लोकोका चित अपने तावे में कर जगत् की प्रीती संपादन करते हैं.

५ 'अक्रूरो' लोककी प्रीती वोही संपादन करेगाकी जिसका चित अकरूर-निर्मळ होगा. क्यों कि जिनका मन निर्मळ होता है, वो सब को निर्मल समजते हैं. जिससे वो छिद्री नहीं होते हैं, छिद्री का सदा दुर्ध्यान रहता है, वो अनेक सद्गुणों पर पाणी फिरा दुर्गुणों के तरफही लक्ष रखता है, जिसेस वड २ संत महात्मा त्यागी वैरागी यों का भी द्रोही हो जाता है, दोनो लोक में अनेक आपदा भुक्तता है, ऐसा जान श्रावकजी हरेक सद्गुणों के ही ग्राही होते हैं गुण और औगुण प्रायः सभी वस्तू ओमें हैं, जो एकेक वस्तू के अवगुण धारण करे तो वो अवगुण का भन्डार हो जावे, और गुण धारण करे तो गुणका भन्डार हो जावे, जिससे दोनों लोक में अनेक सुखका भुक्ता बने, ऐसा जान श्रावक जी गुणानुरागी होते हैं. गुण ही गुण ग्रहण करते हैं.

६ 'भीरू' जो गुण ग्राही होवेंगे वे गुण के भन्डार बनेंगे, और गुण रूप खजाना जिनके पास भरा होगा, वो उन रत्नों को हरण करने वाले, व मलीन करने वाले चोरोंसे जरूर ही डरेंगे. रखे मेरे गुनका नाश न होवे. या किसी प्रकार कलंकित नहीं होवे. इस डरसे डरते हुवे वो (१) द्रविक चोर तो-अधर्मी, पापी, दुर्व्यश्नी, अनाचारी पाखन्डी, म्लेछ, कृत्घनी, विश्वास घातिक, चोर जार इत्यादि आश्रय का सेव नहीं करेंगे. और (२) भाविक चोर-मद, मत्सर, दगा निन्दा, चुगली, व्यभिचार, हिंसा आदि दुर्गुनों को अपने गुन रत्नो के खजाने में प्रवेश नहीं कर ने देते हैं, सदा सावधान रहते हैं. इन दोनो चोरोंका प्रसंग ही बडा भयङ्कर होता है, इन चोरों ने बडे २

ने पशु वध के यंत्रोकी योजन की है, जिससे एकही वक्त में अनेक पशुका कट्टा होजाता है. ऐसे ही त्रस व स्थावर प्राणी की हिंशामें बुद्धि का व्यय करते हैं. उसे कु—दक्षिणता कह ते हैं, ऐसी दक्षिणता चतुराइ को श्रावक मन कर के भी अच्छी नहीं जानते है,तो करना दूर रहा. और कितनेक वैपारी लोक वैपार के कामो में दगावाजी कर चतुरता समजते हैं, तत्परती रूप वस्तु वना कर, मिलाकर, झोल चडाकर, सच्ची वस्तू के भाव वेंच देते हैं, वैसे ही व्याजमें मांस तिथीं का फरक डाल अधिक ले लेते हैं, तोल मापमें कम देना, ज्यादा लेना वकील वरिष्टर वन झूटे के सच्चा और सच्चेको झूठा वनाना. इत्यादि कू कृतव्य मे चतूरता समजते हैं, परन्तू श्रावक जन ऐसा करने में जवर पाप समजते हैं, वो अपने लाभ के लिये ही नहीं करते हैं, तो करना और भला जानना तो दूर रहा ऐसी. कुदक्षिणता का त्याग कर सु-दक्षिणी होते हैं अर्थात् धर्म वृद्धि के, दया की वृद्धी के, ज्ञान वृद्धि के, देव गूरू धर्मकी प्रभावना के काममें इत्यादि सू कार्य में दक्षिणता वापर ते हैं; नवी २ युक्ती यों निकालते हैं, ज्ञान की चमत्कारिक वातों रचते हैं ऐसी चातुरतासे लोकोको चकित कर धर्म की वृद्धि कर ते है. धर्म कार्य में चतूराइ का प्रसार करने से इस लोक में यशःस्वी होते हैं. प्रख्याती पाते हैं, और न्याय से उपार्जन की ऊइ लक्ष्मी वहूत काल टिक सुख दाता होती है. और सबको सुख दाता होने से अगे के भवमें भी सुखी होते हैं.

९ 'लजालु' विचक्षण जनोके नेत्रो में लज्जा स्वभाविक ही होती है, कहा है 'लज्जा गुणोघ जननी' लज्जा अनेक सद्गुणों की जनीता—जन्म देने वाली माता है, अर्थात् लज्जा गुण होने से सील, संतोष, दया. क्षमा, आदि अनेक गुण अकर्षाकर चले आते हैं,

उत्तम पुरुषों के नेत्र स्वभाविक ही लज्जा से ढलते हूवे होते हैं,
सदा अकार्य से संकित रहते हैं, लज्जावंत से झगडे टंटे होते न
हैं, व्यभिचार होता नहीं हैं, दगा फट के से वचे रहते हैं, इस स
से वो सब को प्यारे लगते हैं सत्कार पाते हैं, मनवारो-आग्रह से
को आसन वस्त्र, अहार आदिक देते हैं. इत्यादि अनेक गुणोंव
धारक लज्जा को श्रावकजी अपने अंगमें धारन करते हैं.

१० 'दयालु' दया यह तो सर्व सत्गुणों का और धर्म का मुल
हैं, जिनके घटमें दया होती है वोही धर्मात्मा साधू श्रावक कहे जा
है. दया २ का पोकार करने से दयालु नहीं वजते हैं, परन्तू दया
कृत्य निस्वार्थ बुद्धि से कर वताने वाले ही दयालु होते हैं. दया
अपनी आत्मा समान सव आत्मा को जानते हैं अपने दुःख से
तना उसका अंतः करण दुःखता हैं, उतनाही दुःख दूसरे का दुःख दे
उने होता है, धर्म का और उपकार का करण जाण अपने से
ज्यादा दुसरे की हिपाजत कर ते हैं, परोपकार के लिये प्राण झों
देते हैं, धनकी तो कहना ही क्या? जितना समय परोपकार के का
में लगे, उतनाही आयूष्य; और जितना द्रव्य परोपकार में लगे, उ
दाही धन अपना समजते हैं. और हरेक कार्य में किसी जीवका उ
कसान नहीं होवे ऐसे प्रवृते हैं, जैसे उठते, बठते, लेते, देते यत्ना र
ते हैं. पाणी, घी, तेल, आदिक पतली वस्तु, व दीवा चूला आदि जि
समें जीव पड कर मर जावें ऐसी वस्तू उघाडी नहीं रखते है. झाडन
लीपना, छापना, भोजन बनाना, वस्त्रादि धोना, स्नान, रस्ते चलना इ
त्यादि काम रात्री को करने से स्वात्म परात्म के घात निपजती ऐस
जाज नही करते हैं. पायखानेमें दिशा जाने से, मोरी पर पेशाव करने से
या स्नान करने से असंख्य समोर्छिम जीव मर ते जान यह भी टल

वहां तक टालते हैं. त्रस जीव युक्त अनाज, फल, भाजी, आटा दाल, सूखे शाख, मकान वापरते नहीं हैं, धूप मे या गरम पाणी धुम्रादि प्रयोग कर उनको दुःख उपजाते नहीं हैं. चतुर्मास आदिक जीव उत्पती के काल में बहुतसी गरना महिन मङ्गत हैं, किराणे वगैरा का हिंसक वैपार भी नहीं करते हैं, खीले नालवाले जुते नहीं पहने, मिथ्यात्वी यों की देखा देख मुरदो की राख पाणी में नहीं डाले, ग्रहण में पाणी नहीं ढोले, लग्न आदि शुभ प्रसंग में वन में आग नहीं लगावे अर्थात् दारू के ख्याल नहीं छोडे, धूप दीप आदि हिंसा कार्य में धर्म नहीं श्रद्धे, पशु व मनुष्यको कारण उाने मजबूत बन्धन से नहीं बान्धे, मारे नहीं, अधिक भार भरे नहीं. अंगोपांग छेदे नहीं, वृद्धा नोकर को व पशु को छोड नहीं. दुष्काल आदि विकट प्रसंग में अनाथो की यथा शक्ति सहायता करें. तन धन से जितनी दया की वृद्धि होवे उतनी करें.

११ ' मझत्थ ' मध्यस्त प्रणामी होवे, अर्थात् राग द्वेष की प्रणती पतली करी न किसी पर ज्यादा प्रेम है. और न किसी पर द्वेष छद्मस्तना के जोगसे कदापि मनोज्ञ अमनोज्ञ वस्तु देखकर राग द्वेष मय प्रमाण प्रणामें तो उससे अपने मनको तुर्त घेर लेते हैं, वो जानते हैं पुद्गल (वस्तु) का स्वभाव सदा पलटनाही रहता है, अच्छे के बुरे और बुरे के अच्छे हो जाते है. जिसके स्भावमें फरक पडे उसपर राग द्वेष करना निर्थक है, यह शरीर भी पोषते २ रोगी, वृद्ध और मृत्यु रूप बन जाता है, कुटंबभी पोषते २ बदल जाता है. लक्ष्मी भी क्षिण भंगुर है ऐसा जानते हुवे भी कर्मा धीन हो त्याग नहीं सक्ते हैं. और धाय मात अन्य के बच्चके लाड कोड करती हुइ जानती है कि यह मेरा नहीं है. तैसे ही श्रावक जी भी अंतःरिक दृष्टी से अलग रहते हैं, मध्यस्त

वृतीसे निबड कर्मोका बन्ध नहीं होता है, और मध्यस्त गुन धारी श्रावक किसभी मत मतान्तर की खेंचा तानीमें नहीं पडते हैं, न्याय को स्विकार लेते हैं, दोषों को त्याग देते हैं.

१२ 'सुदिठी' सुद्रष्टी होवे, द्रष्टी नाम अंतर चक्षु से अवलोकन करने का है' सो अवलोकन (देखना) दो तरह का है, जैसे पिलिये के रोग वाला बाह्य चक्षुकर श्वेत वस्तू को भी पित (पिली) अवलोकन करता है, तैंसे अतःरिक कु द्रष्टी वाला मिथ्यात्वी सत्य को असत्य, असत्य को सत्य; धर्म को अधर्म २ को धर्म; साधू को असाधू, असाधुको साधू वगैरा उलटाही देखता है, और कु कर्म कर सुख की अभिलाषा करता है, परन्तु उन कु कर्मोके फल वही भोगवते दुःख पाता है, और सुद्रष्टी के अंतर चक्षु निर्मल होने से यथार्थ देखते हैं.

हिंस्सा रहि ए धम्म । अठरह दोस विवज्जिए देवें ॥
णिगांथे पव्वयणे । सद्दहेण हवइ सम्मतं ॥ ९० ॥

मोक्ष पाहूड.

अर्थात् जो १८ दोष रहित होवे उन्हे देव मानते हैं, १८ पाप के त्यागी को गुरू मान ते हैं और जिनेश्वर की आज्ञा युक्त दया में धर्म मान ते हैं, वो बिकारद्रष्टी रहित सौम्य शांन्त शीतल सम्यक द्रष्टी वाले श्रावक जी होते हैं.

१३ 'गुणानुरागी' गुणवंत होने को गुणानुराग यह अवल दरजेका उपाय है, गुणानुराग यह सम्यक द्रष्टी का मुख्य लक्षण है, गुणानुराग ही अनेक गुणों के समोह को व गुणी जनों को खेंच कर गुणानुरागी के पास लाता है, इस विश्वालय में अनेक पदार्थ हैं उन

की पहचान गुणानुरागी कोही होती है कहा है, 'भाग्य हीनं नापस्यंती, बहु रत्ना सुंधरा' अर्थात् यह पृथवी बहुत रत्नो से गुणीजनो कर के भरी है, उसे भाग्य हीन नहीं देख सक्के हैं, भाग्य वान गुणानुरागी ही देख सक्के हैं. गुणानुरागी ज्ञानवंत, क्रियावंत, क्षमावंत, धैर्यवंत, त्यागी वैरागी, ब्रम्हचारि संतोषी, धर्म दीपक वगैरा गुणवंतो को देख कर बिलकुल ही इर्ष नहीं कर ते हुवे ज्यादा सूखी होते हैं, वो समजता हैं कि इन ही नर रत्नो से जगत् में क्षेम कल्याण वर्तता है. एसा जान गुणवंतो की तन धन मनसे यथा शक्त सेवा भक्ति बजाते हैं, इच्छित वस्तु-वस्त्र, अहार, औषध, पुस्तक, स्थानक, वगैरा से साता उपजा कर धर्मानुराग बढाता हैं. नम्रतासे सत्कार सन्मान कर उनका उत्सहा बढाता हैं और मन से भले जाने, वचन कीर्ती करे, कयासे भक्तिकर पुण्यानुबन्धी पूण्य उपार्जन करते हैं ऐसे सत्य वन्ता के मुख से गुणवंतो की कीर्ती श्रवण कर अनेक गुणवंत बनते हैं. अनेक गुणानुरागी बनते हैं, गुणानुरागी गुणाग्राही होने के सबब से उनका दुशमन कोइ भी नहीं होता है, और वो दूसरे के गुणग्राम करते हैं. जिससे जगतभी उनका गुणग्राम करता है जिससे उनकी सत्कीर्ती विश्वव्यापी बन जाती है (१) श्री मद्भागवत में लिखा है की गुरू दत्तात्रयने सुतार, वैश्या, मखी, आदी २४ गुरू किये थे सो फक्त गुणानुरागी बन गुण ग्रहन करने का सबब ही था! जिससे वो अबी विश्नव सम्प्रदायमें गुरूदत्त के नामसे पहचाने जाते हैं, और बहुत जन उनका भजन करते हैं, (२) श्री कृष्ण वासुदेव की गुणानुरागके बारे में शक्रेन्द्री जी ने परसंस्याकरी, वो एक देवता ने कबूल नहीं करी और सडी हूइ कुत्ती का रूप बना कर रस्ते में पडा, उसकी दुर्गन्ध से सब लोको ने मुंह फिरा लिया; परन्तु कृष्ण

जी ने उसकी दाँतो की बतीसी पसंद कर पर संस्या करी. यह गु-णानुरागीयोंके लक्षण ध्यानमे लेकर गुणानुरागी को गुण सागर जान, श्रावक जी गुणानुरागी बनते हैं.

१४ 'सुपक्ख जुत्ता' गुणानुरागी तो होवें. परन्तु गुण अवगुण की गडबड करें नहीं. गुण अवगुण की पिछान कर अवगुणको छोड गुणही का पक्ष ग्रहण करते हैं, सो सु-पक्षी कहे जाते हैं, पक्ष भी दो तरह के होते हैं, तब ही वरोक्त पक्ष शब्द में 'सु' प्रत्यय लगा है, अवल कु-पक्ष है सो भी दो तरह का होता है (१) 'जाण से' कि तनेक सत्संग सत्शास्त्रों का पठन कर, लोको की प्रवृती देख वगैरा सम्बन्ध से जान जाते हैं कि जिसका अपन ने पक्ष धारन किया है वह देव गुरू धर्म खोटे हैं, शुद्ध आचार विचार रहित है, तो भी पक्ष में बन्ध हुवे उसे छोडते नहीं हैं, वो विचारते हैं कि मुझे इस धर्म वालों ने आगेवानी बना रखा हैं, सब मेरा सन्मान करते हैं. हुकूममे चला ते हैं, जो में इसे छोड दूंगा तो मेरी निंदा होगी, अजीवका बन्ध होज यगी, ऐसा सन्मान अन्य स्थान नहीं मिलेगा. वगैरा विचार से खोटे पक्ष को गद्धेकी पूंछ की माफक लात खाते हुवे भी पडक रखते हैं. उसे आभिनिवेशिक मिथ्यात्वी कहते हैं. (२) कितनेक स्वभाव स ही भोले जीव वो कुछ आचार विचार में तो समजते नही है. फक्त बाप दादा करते आये वैसाही अपन को करना चाहिये. अपने कुल परंपरा से जो गुरू चले आते हैं वोही अपने गुरू, अपने को तो गाय के दूध से गर्ज है, फिर वो कूछ भी खावों ! तैसे ही अपेन को तो ज्ञानादि गुण ग्रहण करने की गर्ज है. आचार को देख के क्या करना है. वगैरा विचार से द्रष्टी राग में फसकर कुमत का पक्ष धारन करते हैं सूमत का द्वेष करते हैं, सो अभिग्रह मिथ्यात्वी कहे जाते हैं. परन्तु श्रावक जन ऐसे भोले

नहीं होते हैं. उन के पुर्व पुण्योदय से जो सद्बुद्धि की प्राप्ती हुइ है, लोकीक लोकोतर प्रसंग द्वारा, व सत्शास्त्र श्रवण पठ द्वारा जो ज्ञान प्राप्त हुवा है, उससे सू-पक्ष दु-पक्ष की छान करते हैं. जो कूपक्ष द्रष्टी आवे उसे छोड सू-पक्ष का ही स्विकार करते हैं. यहां कोइ कहेगा कि पाहिले तो तुमने राग द्वेष करने की मना करी? और फिर अच्छे का पक्ष धारन करने का कहते हो? तो उन से कहा जाता है कि वस्तु को यथार्थ जानना और यथार्थ कहना; जैसे यह जेहर है, इसे खाने से मृत्यु निपजती है, यह अग्नि है इसका दाइक गुन है. ऐसे ही यह पाप कर्म है. सो दुःखदाता है, इन अनाचीर्ण को सेवन करे उसे साधू नहीं कहना. वगैरा यथार्थ कह कर, सुखार्थी आत्माको दुःख के मार्ग में गमन करते हुवे को बचाना. उसे निन्दा नहीं समजना. यह तो सद्बोद्ध और सत्धर्म मे प्रवृती कराने की सद्भावना है. और जिससे सत्यासत्य का भान नहीं है उसे अज्ञानी कहा जाता है. और असत्य का पक्ष धारन करे उसे मिथ्यात्वी कहा जाता है. इस लिये श्रावक जन इन दोषो से निवरे है सो सु-पक्षी कहे जाते हैं. (२) और भी पक्ष संसारिक सम्बन्ध परिवार को भी कहते हैं, सो श्रावक जी वहुत कर के तो धर्मात्मा के कुल में ही उत्पन्न होते हैं, इस लिये मात पिता आदि स्वजनो के सु-पक्ष के संयोग से सु-पक्ष वृद्धि करते हैं. कदापि पापोदय से मिथ्यात्वी कूलमें जन्म होवे और पीछे पुण्यो दय से सद्गुरू आदिक सु संयोग मिलने से धर्म की प्राप्ती होवे श्रावक धर्म अंगीकार करे. तो उन श्रावक को उचित है कि बने वहां तक किसी भी उपाव से अपने परिवारको धर्मात्मा बनावे. क्यों कि अधर्मी मिथ्यात्वी यो के प्रसंगमें हमेशारह ने से क्लेश चिंता आदि उत्पन्न होवे, तथा वृतको शुद्ध पालन होना मुशकिल

होवे. इस लिये जैसे चेलणाजी ने भूल कर मिथ्यात्वी यों के कूलमें आगयें परन्तु पर्यत्न कर अपने पति श्रेणिक राजा को और सब परिवार को तो क्या परन्तु सर्व देश को जैनी बना दिया. तैसे ही यथा शक्त पर्यत्न सबको करना चाहीये. ऐसे सत्पूरूष जक्तमें उत्पन्न हूवे ही प्रमाण गिने जाते हैं.

१५ 'सुदीह दिठी' अच्छी लम्बी द्रष्टी वाले होवे. सु-अच्छी और दीह-लम्बी यह दो प्रत्यय द्रष्टी नामक शब्द को लगे हैं, इस से द्रष्टी के चार भेद होते हैं. और १ सूदर्शी और २ कुदर्शी ३ दीर्घ दर्शी. और ४ हृस दर्शी. इन में दो तो हेय हैं अर्थात् त्यागने जोग हैं. और दो उपादय हैं अर्थात् आदरने जोग हैं. आदरने जोग का स्वरूप बताने से त्याग ने जोग की सहज समज हो जायगी. दर्शी नाम अंतःकरण में दरसना-समजना-विचार ने का हैं, अनादि से कू-कर्म क कार्योंका प्रसंग होने से कू-विचार की रमणता स्वभाविक होती है, और सू-विचार आना मुशकिल है. परन्तू धर्मात्मा जीव अनादि के कु-स्वभाव को मिटाने के लिये सदा सू संयोग स्थान में रहते हैं और वारर्तालप में तथा कायिक भोग आदि सम्बन्ध में भी कु-विचार का वृध्दिका प्रसंग कमी आने देते हैं, अपशब्द ऊचारना, अंग कूचेष्टा करना, या विशेष काल इन्द्रियोके भोग में रमण करना यह श्रावकों का कृतव्य नहीं हैं. पाप मय विचार उच्चार, आचार, से जितना बचाव होवे उसके उपाय में मशगुल बनने वाले ही श्रावक होते हैं. और दीर्घ कहीये लम्बे विचार वाले एक कार्य ऐसा होताहैं कि जो स्वल्प काल सुखदाता हो बहूत काल दुःख देता है और एक कार्य ऐसा होता है कि स्वल्प काल दुःख प्रद हो बहूत काल सूख दाता होता है. इन दोनो कार्योका दीर्घ द्रष्टी से विचार कर, स्वल्प काल सूख और बहुत काल दुःख रूप जो पचेन्द्री के भोग

अन्याय से द्रव्योपार्जन. आदिका त्याग कर, जोग स्वल्प काल दुःख और बहुत काल सुख देने वाले तप संयम, त्याग, वैराग्य वगैरा कृतव्य स्विकार वृद्ध मान परिणाम से प्रवर्ती करते हैं. मतलब यह है कि—हरेक कार्य के छेवटे में निपजते हूवे परिणाम—फल को विचार कर जो कार्य करते हैं, उसे पश्चाताप का प्रसंग बहुत कम आता है इस गुण के धणी कृतव्य कर्म निपजाने की रिती और उस के गुग के जान होते हैं. वो लोक अपवाद से बचते हैं, राज दर बार पंच पंचायती के सलाके काम में मान निय होते हैं अर्थात् बहुत जन उन से विचार कर काम करते हैं. और श्रावक भी ऐसे विचक्षण होते है कि पाप कार्य में भी सला देते आप धर्म निपजालेते हैं जैसे किसी ने सक्कर गाल ने की प्रवानगी मांगी, तब आप विचक्षणत-से जवाब देते हैं कि-इतने उपरांत सक्कर गाल ने की कुछ जरूर नहीं दिखती है. इस कार्य में असुक वस्तु (जो विशेष पापकारी हो सो) निपजानी नहीं चाहिये. वगैरा. अहो भव्य ! धर्म विवेक में ही है विवेकी श्रावक व्यवहार को साधते हूवे भी पापसे आत्मा बचालेते हैं

१६ ' विसेसन्न ' विशेपज्ञ होवे, ' ज्ञ ' शब्द जानने का हैं और विशेष यह प्रत्यय लगने से अधिक जान होना ऐसा मतलब होता है, जाणप ने की सीग हद तो हैही नहीं, इस लिये येही सामान्य पुरुषोंसे जितना विशेष ज्ञान होवे उनही विशेषज्ञ कहते हैं. विशेषज्ञ भली बुरी सबही बात के जान कार होते हैं क्यो कि बुरी को बुरी जानेगा तब ही बुरी से अपनी आत्मा को बचा सकेगा. शास्त्र में भी कहा है ' जाणियव्वा न समायरियव्वा ' अतिचार पाप आदिके जान तो होना परन्तु आदरना नहीं, ऐसे ही गुण के भी जान होना चाहिये! जो वृतादि गुणके फलका जान हो वृतादि गुग स्विकार करते

है उस के अंतःकरण में वो गुण चिरस्थाइ हो कर रहते हैं, और उन गुनो का वो यथा तथ्य फल भी प्राप्त कर शक्ता है, जैसे सुवर्ण और पीतल, गायका दूध और आकका दूध, वगैरा कितनेक पदार्थ रूप में तो एक से दिखने हुवे भी गुणों में महदा कासी (पृथ्वी और आकाश) जितना अंतर होता है. तैसे ही इस श्रेष्टी में कितनेक ही ऐसे २ पदार्थ व मनूष्य हैं कि—भेष मात्र से व पृथवी मात्र से उपरसे तो एक सरीखे दिखते हैं, कि यह सच्चे साहूकार, सच्चे भक्त राज, धर्मात्मा, महात्मा, साधु, बडे गुनीजन उत्तम पूरुष हैं, वगैरा और फिर उन की पोल खुलती है तब वो जितने ऊंच दिखते थे उससे भी अधिक नीच दिखनें लग जाते हैं. और जितने ऊंच चडे उस से भी अधिक लौकीक लोकोतर से, इह भव परभव से नीचे गिर जाते हैं, आप लाजत हुवे पवित्र धर्म को भी लजाते हैं. ऐसे दुरात्मा के अवगुण को जान ने के श्रावक बडे कुशल होते हैं. वह उनकी बोली में, चालीमें, अहार विवहारमें, द्रष्टीमें परिक्षा कर, धर्म की हानता न होवे ऐसे उन को बता देते हैं. और जो सच्चा बाह्य अभ्यन्तर शुद्ध प्रवृती वाले महात्मा होवे उनके गुन कीर्तन कर अच्छी तरह धर्म की वृद्धि करते हैं.

१७ 'वृधानुराग' इस विश्वमें एक २ से अधिक कइ महान् पुरुष हैं, ऐसा जान श्रावक अपनी आत्मा में सदा लघूवृती धारन करते हैं. और व्यवहार पक्षमें निश्चय पक्ष में जो बडे होवें उनकी भक्ति करते हैं, व्यवहार पक्ष में जेष्ट दो तरह के होते हैं, १ माता, पिता, बडे भाइ, सेठ, बहुतों के मान निय, वय में—रद्धि में बडे, इत्यादि की यथा उचित भक्ति कर संतोष उपजाते हैं, और २ साधू साध्वी, श्रावक, श्राविका, इत्यादि धर्म पक्षी जो वयोवृद्ध गुनोवृद्ध

शुद्ध व्यवहारिक प्रवृती में प्रवृतने वाले. उनकी भी यथा उचित तह मन से भक्ति करें. इस भक्ति से जक्त में यश वृद्धि होती है, और वृद्ध पुरुष संतुष्ट हो कर अनेक पुराने खजाने की द्रविक वस्तु सो रत्नादि, और भाविक वस्तु शास्त्री की कूंजीयों वताते हैं, तथा वृद्ध पुरुषों का शांती पूर्वक अंतःकरण का दिया हुवा आशिर्वाद ही बहुत गुणोंका कर्ता होता है. और भाविक-गुप्त वृद्ध उनको कह तेहैं, जो दिखने में वयमें-शरीर में लघु दिखते हैं. दिक्षा भी थोडे कालकी होती है, परन्तु कर्मों की क्षयोपशमता के जोग से कितनेक को स्वभाविक अंतःकरण की विशुद्धता होने से ऐसा अनुभव ज्ञान प्रगट हो जाता है, कि उन के हृदय उद्गार से अनेक ज्ञानादि गुणो की भरी हूइ तात्विक वातों प्रगट होती है, सम्यक्त्वादि गुन जिनके मजबूत होते हैं, ऐसे पुरूष मान प्रतिष्टाके अर्थि कमी होने के सवब से अपने गुन प्रगट नहीं करते हैं. परन्तु विचक्षण श्रावक उनकी अकृती व प्रवृती उपर से उनकी पहचान कर लेते हैं. जैसे जौहरी का पुत्र रत्न वाले पत्थरको पहचान लेता है. और उनकी व्यवहारिक प्रवर्तीं की तरफ लक्ष नहीं देते हुवे, यथा उचित भक्ति तह मन से करते हैं. ऐसे पुरुष जो कदापि तुष्टमान हो जावे तो दोनों लोक मे निहाल कर देवें. सारांश येही है कि वृद्धोकी भक्ति बहुत गुन कारक होती है.

१८ 'विनीत' विनय-नम्रता यह सब सद्गुणों का मूल है, गुणवंत के अपने गुणों में ओप चडाने,-बढाने,-दीपाने इस गुण की बहुत ही आवश्यकता है, पहिले यह गुण जिनकी आत्मा में होता है तो वो दूसरे अनेक गुनों को खेंच लाता है, विनय से ज्ञान, ज्ञान से जीवा जीव की पहचान, पहचान से उनका रक्षन, रक्षन से वैर विरोध से

निवर्ती, और वैर विरोध की निवर्ती से मोक्ष, यों विनय से अनुक्र में गुनोंकी प्राप्ती होती है. ऐसा जान श्रावक सदा सब से नम्रता से वर्तते हैं. किसी भी तरह का अभिमान नहीं रखते हैं. जो नम्र होता है थोही ज्यादा की मत पाता है, देख लीजी ये अनेकान्त द्रष्टी से इस जक्त में.

१९ 'कयनु' कृतज्ञ होवे—अपने पर किसी ने उपकार किया हो उसे भुले नहीं. सत्पूरूषों का स्वभाव होता है कि वो राइ जितने उपकार को भी पहाड जितना समजते हैं, और उसे फेडने की अभिलाषा सदा रखते हैं. ग्रन्थ में कहा है कि यह पृथवी कहती हैं किः—

नमी को पर्वत भारा, नमी भारा सागरा ।
कृतघ्न महा भारा, भारा विश्वास घातिका ॥ १ ॥

अर्थात् बडे २ पहाडो का और बडे २ समुद्रो का मेरे को बिलकुल ही बजन नहीं लगता है. परन्तु कृतघ्नी (किये हुवे उपकार को नहीं मानने वाला) और विश्वास घात की. इन दोनों के भार (बजन) को में सहन नहीं कर शक्ती हुं !!

कृतघ्नता ऐसा जबर पापका कारन है, कृतघ्नी का जगत् में विश्वास नहीं रहता है, कृतघ्न को दिया हूवा ज्ञान, तप, संयम, सब उलटा प्रगमता है, अर्थात् नुकसान का करता होता है, जैसे सर्पको पिलाया हूवा दूध विष रूप हो जाता है. ऐसे २ कृतघ्नता मे अनेक दुर्गुण हैं ऐसा जान श्रावक इसका स्पर्श्य भी नहीं करते हैं. उपकारीयों का उपकार फेडने सदा तत्पर रहते हैं, मौका आया सवाया फेडते हैं, और आनन्द मान ते हैं कि आज में कृतार्थ हुवा.

२० 'परिहियत्थ कारीये' 'परिकहीये दूसरे के हिसत्थ' कहीये हित—सुख उपजे ऐसे कार्य के 'कारीये' कहीये करने वाले-

यह व्यवहार भाषा का शब्द है, निश्चय में तो जो परोपकार करता है सो अपनी आत्मा पर ही उपकार करता है. क्यों कि परोपकार का फल उस ही की आत्मा को सुख दाता होता है. इस लिये पर हित के कार्य को निजहित का कार्य जान कर जो करते हैं. उसे उस कार्य का—परोपकारका गर्व नहीं होता है, जिससे वो कार्य बहुत फल दाता होता है क्योंकि गर्व—अहंकार है सो फलका नाश करता है. और जो मूल शब्द में पर हित करने का कहा है सो भी बरोबर है. क्यों कि जगत में स्वार्थ मतलब साध ने रूप लाय (आग) वडी जबर लग रही है. मतलब साधने के खास अर्थ में नहीं समजते हुवे जन जो मतलब साध ने का कार्य कर ते हैं, वो कार्य उलट मतलब का नाश करने वाला हो जाता है. ऐसे अज्ञ जीवों को समजाने के लिये यह उपकार करने का उपदेश ही बहुत फायदे मंद होता है, श्रावक अंतरिक द्रष्टी तो स्वार्थ साधने की तरफ रखते हैं, और व्यवहारिक में अज्ञ जीवों को रस्ते लगाने, अपने व्यवहारिक हित धन कुटंब या शरीर का नुकसान भी जो कधी होता हो तो उस की दरकार नहीं रखते परोपकार करते हैं, अन्य जीवों को यथा शक्त सुख शान्ती उपजाते हैं. व्यास ऋषिने काहा है किः—

श्लोक—अष्टदशं पूराणायं, व्यासस्य वचनं द्वयं ।
परोपकराय पूण्यायं, पापाय पर पीडनं ॥ १ ॥

अर्थात्—आठारेइ पुरान का सारांश मेने यह देखा है कि—परोपकार बरोबर पूण्य नहीं, और परको पीडा (दुःख) देने बरोबर पाप नहीं. ऐसा जान श्रावक जी यथा शक्त परोपकार सदा करते ही रहते हैं.

२१ 'लद्द लखवो 'लब्द' प्राप्त किया है 'लक्ष' ज्ञान मोक्ष

प्राप्त करने के चार कृतव्यों में अवल दरजे का कृतव्य ज्ञान ही है, इस लिये मुमुक्ष जीवों को मोक्ष प्राप्त होवे ऐसा ज्ञानाभ्यास करने की बहुत ही जरुरत अतुरता रहती है. जैसे क्षुधित को अहार की, पिपासी को पाणी की, रोगी को औषध की, लोभी को दाम की, कामी को काम की. इत्यादि को जैसी अतुरता होती है. तैसी आतुरता श्रावक को ज्ञान ग्रहण करने की होती है. जैसे वरोक्त इच्छक इच्छित वस्तू प्राप्त हुवे, उसे प्रेमातुर हो ग्रहण करते हैं, अत्रक्षीसे भोगवते हैं तैसे श्रावक अति आदर पूर्वक ज्ञान ग्रहण करते हुवे कभी त्रप्त नहीं होते हैं मूल सूत्र, सूत्र का अर्थ, और सुत्र का दोहन कर वनाये हुवे थोकडे वगैरा ज्ञान भ्यास करते हैं. शास्त्र में कहा है श्रावक 'सु परिगहा तवो वहाणा' अर्थात सूत्र का अभ्यास उपधान के तप युक्त करते हैं. और भी 'निगत्थे पव्वयण, सावय सेवी को वीए' अर्थात पालित श्रावक निग्रन्थ प्रवचन शास्त्र—के जान थे 'सीलवया वहु सुया' राजमती जी दिक्षा धारन करी उसवक्त शीलवती बहोत सूत्रों की जान थी. इन दाखलों से जाना जाता है कि—श्रावक श्राविका दोनों ही को सुत्रका जान जरुर होना चाहिये. जो सुत्र ज्ञानके जान होवेंगे उनकी श्रद्धा पक्की होगी, वृत सील तप नियम निर्मल पाल सकेंगे. आराधिक होवे गें.

इन इक्कीस गुण कर युक्त इस काल प्रमाने होवे उन्हे श्रावक कहना.

४ 'श्राविका' जैसे २१ गुन श्रावक के कहे, वैसे ही २१ गुण श्राविका के जानना. फक्त स्त्री पर्याय के सबब से वैपार आदि कितनेक कार्यों का प्रसंग बहुत कम आता है. तैसे श्राविका को गृह सम्बन्धी कार्यों का प्रसंग विशेष रहता है, उस में बहुत ही यत्ना से

वर्तने की हौंश्यारी रख ने की जरुर है, विचारना चाहिये की पूर्वो पार्जित पापोदय से तो स्त्री पर्याय पाइ हूं, जिससे पारधीनता और प्रायः सदा ही छः कायाका कुआरंभ का प्रसंग होता है. अव विशेष डर कर चलुंगी. विन देखे विन पुंजे किसी वस्तू को नहीं वापरुंगी लज्जा, दया, शील, संतोष, नम्रता, धर्म, दान, पुण्य, इत्यादि शुभ वृती से वर्तुंगी, तो यह जन्म भी सुख से पुरा कर सकुंगी. और आवते भव में पुनः स्त्रि जन्म नहीं पावुंगी. और सर्व सुख प्राप्त कर सकुंगी. इत्यादि शुभ विचारसे सर्वको सुख दाता हो धर्म की वृद्धी करती वर्ते सो श्राविका.

यह तो चारही तीर्थ के संक्षेपित गुणो का वरणन किया. इन के जान जो होवेंगे वो इन गुण धारक चतुर्विध संघकी भक्ति कर परमात्म पद प्राप्त करने के मार्ग में प्रवेश करेंगे.

संघ भक्ति के १७ प्रकार.

१ 'साधू साधू की वत्सलता करे' लौकीक व्यवहार आश्रिय तो कनिष्ट (छोटे) जेष्ट (बडे) का व्यवहार है. परन्तु निश्चय में तो ज्ञानादि गुन के धारक सब समण साधु एक से ही हैं. इस लिये लोकीक साध ने जेष्टो को वंदना विवहार वगैरा गुरु पद में कहे मुजब भक्ति करे. और कनिष्टों को सत्कार, सनमान, अहारदान, वस्त्र दान, ज्ञानदान, आदि देकर संतोषे. सब साधू ओंके साथ २ ग्रामानु ग्राम विहार करे, हिल मिल रहे, आपस में सूत्र थोकडे स्तवन आदि श्रवन पठन करे, करावे, शारिरीक व्याधी हुवे प्रासुक औषधी व पथ्य आदिक यथा उचित वस्तु का संयोग मिला देवे, वैयावच्च सेवा करे, मानसिक व्याधी चिन्ता को निवार ने उनको मनोज्ञ लगे एसा म-

छौव करे. अवसर उचित वारता लाप कर चित्त शांत करे. उपसर्ग उत्पन्न हूवे यथा शक्त साज देवे. जो किन शिक्षा देने की होवे से सन्मुख ही देवे. परन्तु पीठ पीछे कदापि निंदा अपवाद रूप शब्द निकाले नहीं. निंदा करने से असमाधी दोष लगता है. निंदा मांस भक्षण जैसी खराब कही है. इस लिये किसी भी साधू की कदापि निंदा नहीज करे. आपस में एकेक की यथा उचित परसंशा करे. धर्म स्नेह पूर्ण रखे. और अंतःअवसर नजिक आया जाने तो उनको होंश्यार कर आलोचना निंदना करा कर छेल्ले शाश्वोश्वास तक ज्ञान सुनाता समाधी मरण करावे.

२ "साधु साध्वी की वत्सलता करे"—साध्वी—आर्जिका दिक्षामें जेष्ट हो व कनिष्ट हो उनको वंदना करने का व्यवहार साधू का नहीं है. क्यों कि स्त्री की पुण्याइ पुरुष से अनंत गुनी हीन होती है. तथा स्त्री में गर्व (आभिमान) आदि दोष स्वभाविक पाते हैं. वगैर कारण से साधू साध्वी को नमस्कार करने का निषेध है. और विशेष सहवास परिचय का विचार रखना चाहिये, क्यों कि स्त्री पूरुष की प्रयाय में मिलाप स्वभाविक है, इस लिये जितना कम सम्बन्ध होवे उतना ही अच्छा. वाकी कारण सिर अहार, वस्त्र, पात्र, औषध पथ्य, पुस्तक, सूल वगैरा जिसकी साध्वी जी को चहाय होवे सो आपके पास होवे तो देवे, नहीं तो याचना करके ला देवे. क्यों कि पुरुष के पाससे मिलती हुइ वस्तू की याचना करते कादाक साध्वी को शरम आवे तो साधू उस वस्तु का संजोग मिला साता उपजावे. साद्धिका ज्ञान अभ्यास करने का इरादा होवे और कोइ अभ्यास कराने वाली साध्वी का जोग नहीं होवे तो, साधू दो से आधिक साद्धियों को साथ ज्ञान दान भी देवे, क्यौं कि ज्ञान विन संयमका निर्वाह हो

ना मुशकिल है. और अवसर उचित शिक्षा भी मधुर और मर्यादित वचनो से देवे. परन्तु पीछे निंदा कदापि नहीं करे. यथा योग्य गुनों की यथा उचित कीर्ती करे, कि जिससे उन के ज्ञानादि गुणों में वृद्धि हो संयम की निश्चलता होवे. साध्वी के संयम सील के विनाश होने का कोइ अनार्यों का प्रसंग, व उन्मादादि रोग का योग होतो आप मर्यादित रिती से ग्रस्थ की साक्षी युक्त सहवास कर उन के चितको शील संयम में स्थिर करने की भी शास्त्रमें आज्ञा हैं. अंतःअवसर समाधी मरण कराने समर्थ होवे तो करावे.

३ 'साधू श्रावक की वत्सलता करे' साधु के सहाय विन ग्रस्थ को धर्म की प्राप्ती होनी ही मुशकिल है. इस लिये साधु ग्रामानुग्राम विहार कर जहां श्रावक ज्ञानादि गुण ग्रहन करने सामर्थ्य-योग होवें, वहां से के काल (१महीना या चतुर्मास) रह कर, स्याद्वाद सेली युक्त सूत्रादि ज्ञान सुनावे, समजावे, रुचावे, पढावे. चारतीर्थ के गुण और भक्ति करने की रीती वतावे. जो अधिक ज्ञानी. द्रढ सम्यक्त्वी, निर्मल व्रत पालक, जैन धर्म को तन, मन, धन, कर दीपाने सामर्थ्य या विकट प्रसंग प्राप्त होते जिनो ने सम्यक्त्व व्रत का निर्वाहा किया हो इत्यादि गुणवंतो की शभामें परसंशा करे. जैसे भगवंत श्री महावीर स्वामी ने काम देव श्रावकी करी. परसंशा सुण उनका तो धर्न करणी मे उत्सहा वधे, और अन्य श्रधालुओं व वृतीयों द्रढ वने, गुण ग्रहण करें. और भी धर्मोन्नती वगैरा केइ फायदे होवें. निराश्रित श्रावको को आश्रय करने की श्रावको को सुचना करे, सिथिल प्रणामी सिथिला चारी श्रावको को उपदेश द्वारा व सहायता द्वारा स्थिर करावे. अंतःअवसर समाधी मरण करावे. साधू जी की जनीना-उत्पन्न होने का क्षेत्र श्रावक ही है, और श्रावकके सहाय विन संयम

मुशकिल है. इस लिये विशेपज्ञ आर्जिका को श्राविका के सुधारे तरफ विशेष लक्ष देना चाहिये. साध्वीयों की जनीता श्राविका ही है श्राविकाका सूधारा हुवा तो फिर शिष्यणियोंका सूधारा करने विशेष तकलीफ नहीं भुक्तनी पडती है, इत्यादि विचार से श्राविका ओंको उपदेशद्वारा ग्रह कार्य आदिमें यत्ना युक्त वृतन करने. कूटुम्बके साथ स-विनय वृतन करने, धर्म गुरू-गुरूणी ओंके साथ धर्माचार युक्त स-विनय वृतन करने, वगैरा रिती वताकर, धर्म ज्ञान पढाकर. उसे कूशल वना वत्सलता करनी चाहिये, कि जिससे चार ही तीर्थ की जननी का सुधारा होने से चारही तीर्थका सहज सुधारा होवे, जावत समाधी मरण करावे.

९ 'श्रावक साधू की वत्सलता करे'-श्रावकका नामही शास्त्र में 'श्रमणो पासक' कर के बोलाया है, उसका अर्थ ही येही होता है कि साधू की उपासना—भक्ति—वत्सलता के करने वाले होवे सोही श्रावक. उत्तम नाम धारीको नाम प्रमाणे उत्तम गुणोंकी प्राप्ती करना येही उत्तमता का लक्षण है. इस लिये श्रावको को यथा शक्ति, यथा उचित, अपने धर्म गुरूओं की भक्ति अवश्यही करनी चाहिये. साधू ओंको आहार, वस्त्र, स्थानक आदि ग्रहण करने की जो कठिण वृति है उस से (९६ दोषों से) अवश्यही वाकिफ होना चाहिये. और किसी प्रकारेस दोष नहीं लगे ऐसी विधीसे साधुओं को खपने जोग कि जिसका अपने घरमें सहज संजोग वना हो उसे सूजती रखना चाहिये. और दान देती वक्त जो अलभ्य लाभ ऋषभ देव भगवान के पूर्व भवमें धन्नासार्थवाही घृतका दान है, और नेमीनाथजी राजमती जी के पूर्व भवमें शंखराजा यशोमती राणी दाखका धोवणका दान आ-

दिसे जो अलभ्य लाभ उपार्जन किया उसे ध्यानमे रखना, § और दान देने का सू-पात्रों का संयोग मिले पीछा नहीं हटना. यह तो जरुर ध्यान में रखिये कि मुनिराज के खपेगा उतनाही ग्रहण करेंगे! क्यों कि ज्यादा ले कर रातको रखना नहीं, किसी को देना नहीं, और वढ जाय तो पडोवने(न्हाखने) का प्रायश्चित लेना पडे, इसलिये ज्यादा ले सक्तेही नहीं हैं! जितना मुनिराज के पात्रमें पडेगा वो सव संजतीयों केइ काम में अवेगा. और उतनाही संसार की लायसे वचा समजो, और भी साधूका आवागमन की वक्त आसन छोड खडे होना, वंदना नमस्कार करना, अपने हाथ से उनको खपती वस्तु देना. * अपने पास न हो तो दलाली कर जहां से मिलती हो वहां से दिलाना. व्याख्यान वाणी आप सूनना दूसरे को सूनने लेजाना. मूनिराजके उतरा के लिये सुखदाइ स्थानक देना. व दिलाना. किसी साधु को कर्मोदय कर आचार भ्रष्ट व श्रद्धा भ्रष्ट हुवा जानेतो. हरेक योग्य उपाव कर उन के चितको शांत-स्थिर करना. द्रढ वनाना. ज्ञानी, ध्यानी, जपी, तपी, धर्म दिपाने वाले जो मूनिराज होवें, उनपर वि-

---

§ जीय सुहत्त सूह मोखो । मोखो तय रयण रयण मुणी साहो ॥
मुणीण तण तण हारो । भोयण सावय गयेकर होइ ॥ २२ ॥

अर्थात-जीव सूख चहाता है, सो सुख मोक्ष में है, मोक्ष रत्न त्रय के आरधन से होवे, रत्न त्रय का आरायन मुनिके शरीर से होवे शरीर का टिकाव अहार से होवे सो अहार के देने वाले श्रावक, इस लिये श्रावक ही मोक्ष सुख के देने वाले हैं. देखिये! सुपात्र दान की महीमा!!

* जिसके हाथ से दान दिया जाता है. दान का लाभ उसी को होता है. मालधणी को तो दलाली मिलती है.

शेष धर्मानुराग रख सुख उपजाना. स्वमती अन्यमतीयों में अपने गुरूओं की परसंशा करना, क्योंकि जैन मुनि जैसा आचार विचार अन्य साधू ओंका नहीं है, और जैन जती के आचार गौचार से अन्यमतावलम्बी यों वाकेफ भी थोडे हैं, वो कठिण क्रिया श्रवण कर चकित होवें, पुण्यात्मा मिथ्यात्व का त्याग कर धर्मात्मा बने, इत्यादि गुण जान श्रावकों को सद्गुरू की माहिमा वारम्वार करना चाहिये. तैसे ही कोइ दिक्षा लेने का अभिलाषी होवे तो उसे हरके तरहका सहाय दे वैराग्य में बृद्धि करे. और उसके स्वजनो को तन, धन, आदि यथा उचित सहाय दे आज्ञा दिलानी चाहीये. देखीये कृष्ण महाराज श्रेणिक महाराजने दिक्षा की दलाली कर अपनी प्राण प्यारी प्रेमला पटराणीयों को, और राज धुरंधर पुत्रोंको, तथा अन्य जिनोंने दिक्षा की अभिलाषा करी उनको उन के कुटम्ब को सब तरह का सहाय दे स्वतः महोत्सब कर दिक्षा दिलाइ; जिससे तिर्थंकर गौत्र उपार्जन किया ? ऐसा महा नफा का कारण जान धर्म दलाली जरुर ही कर साधू ओंकी बृद्धि करना चहाइये. ज्ञानार्थी साधूओं को ज्ञान के साहित्य का संयोग मिला देना. जिससे ज्ञानमें बृद्धि हो कर आगे अनेक उपकार होवे. अहार विहार में मुनिराज को अनार्यों की तरफ से किसी प्रकारका उपसर्ग न उपजे ऐसा बंदोबस्त करना चाहिये. ऐसे अनेक तरह से संयमियों को सहाय दे कर उन के तप संयममें वृद्धि करना यह महा लाभ का कारण हैं, छद्मस्तताके कारण से, या काल प्रभावसे इस वक्त मुनिवरों की विचित्र तरह की प्रकृती व आचार गौचार मे तफावत होगइ है. परन्तू श्रावको को इस झगडे में पड ने की कुछ जरूर नहीं है. जिनका व्यवहार शुद्ध हो उन सब को गुरू तुल्य जानना. और किसी मुनिवर की तप आदि के प्रभा-

वसे प्रकृती में तेजी जास्त होवे तो उन के कठिण शब्द को सून बुरा नहीं मानना. क्योंकि उनका अंतःकरण स्वभाविक ही कौमल होता है और हित शिक्षा के वचन कटूक भी होवे तो उनको कटुक नहीं जानना चाहिये छः काय के पीयर मुनिवर कदापि किसी का बुरा नहीं चहाते हैं. इत्यादि अनेक तरह साधूओं की भक्ति करते है. वो समणो पासक श्रावक कहे जाते हैं. मुनिराज तो गृहस्थका सहाय बिलकुल ही नहीं चहाते हैं, सदा अप्रतिबन्ध विहारी रहते हैं. परन्तु इस पंचम काल में सराग संयम है, तथा संयघण आदि की हीनता और मतान्तरों के झगडे से राग द्वेष बहुत बडगया है. इत्यादि कारण के सबब से श्रावक के सहाय बिन मुनिराज का संयम पालना मुशकिल है. ऐसा जान मुनिराजके मार्ग को किंचित मात्र धक्का न लगे और अपनी भक्ति सज जाय एसी तरह साधू की वत्सलता श्रावक को जरुरही करना चाहिये.

१० ' श्रावक साध्वी की वत्सलता करे '—जैसी तर साधूजी की वत्सलता करने का कहा, वेसी ही तरह साध्वी जी की भी वत्सलता श्रावक को करना चाहिये. विशेष इतना ही की स्त्री पर्याय की धारक महा सतीयों होती है. इसलिये गौचरी और विहार आदि प्रसंग में उन के लिये बंदोबस्त कर ने की श्रावक को बहुत ही आवश्यकता है, और भी अर्जिकाजी की विशेष वत्सलता करने की जरूर हैं, विचारना की अपन पुरुष पात्र होकर भी संयम आदर नहीं सक्के है, धन्य है इन सतीयों को कि स्त्री जैसी सु—कुमाल स्थिती में भी संयम जैसी महा कठिण वृतिका निर्वाह करती हैं. शीत, ताप, क्षुधा, तृषा, विहार आदि अनेक परिसह सहकर, दुष्कर तपस्या कर, अपना, और सबोध कर जक्त का उद्धार करती है. धन्य है! धन्य है!

इत्यादि विचार से साधु से भी अधिक मर्याद युक्त साध्वी की वत्सलता करने की श्रावक को जरूर है.

११ 'श्रावक श्रावक की वत्सलता करे '—दुनियामें माता पिता आदि अनेक नाते—सम्बन्ध हैं, परन्तू सबसे अत्युतम नाता स्वधर्मी बन्धुओंका होता है. और सम्बन्ध मतलबसे भरे हुवे हैं, और कू-मार्ग में खेंच कर ले जाने वाले हैं. तथा नरक आदि दुर्गति से बचा नहीं सक्ते हैं. सच्चाप्रेम तो स्वधर्मी बंधुओंका ही होता है, कि जो आपस में वक्तो वक्त प्रेरणाकर धर्म करणी निपजाते हैं. ज्ञानादि गुनो की वृद्धि कराते हैं, कू-मार्ग से कूकर्त्य से, फाजूल खरच आदि से बचाकर दोनों लोकमें सुखी रहे ऐसे बनाते हैं, हरेक धर्म कार्य में एकेक को सहाय भूत होते हैं, ऐसी तरह की हुइ स्वधर्मी यों की वत्सलता भी बडा लाभ का कारण है, देखिये चेडा महाराज पर संकट पडाथा तब १८ देश के महाराजाने फक्त अपना स्वधर्मी बंधु जानकर अपनी सब शेन्या ले कर आये, और उनकी सहायता करी. शंख और पोखल जी श्रावक ने भी अपसमें एकत्र हो धर्म क्रिया और भोजन भक्ति करी है. अमन्डजी संन्यसी श्रावक बेले २ पारण करते, परने के दिन १०० घर के श्रावक आमंत्रण कर ते कि हमारे यहां परणा करने पधारो! अमंडजी को वैक्रय रूप बनानेकी लब्धी थी सो १०० घर पारना करने जाते थे. देखिये श्रावको का भक्ति भाव कैसा उत्सहा वाला था. यह शास्त्रमें कहे हुवे दृष्टांतोको भी अवश्य ध्यान में लेना चाहिये. और ज्ञानी, ध्यानी, वृती, तपश्वी, धर्म के दलाल. तैसे ही अनाथ, गरीब, अपंग, रोगी. इत्यादि श्रावको की विचक्षण सामर्थ्य श्रावकों की संभाल करते हैं. यथा शक्ति यथा जोग तन, धन, से सहाय करे, संकट निवारते हैं. और भी जितने श्रावक ग्राम

में होवें उनको मिल कर एक निर्वद्य धर्म स्थान की योजना कर, नित्य-हमेशा-अष्टायिक-पक्षिक या मासिक उस धर्म स्थानमें एकत्र होते हैं. संवर सामायिकादि धर्म क्रिया करते हैं. आपस मे दो चार विद्धर श्रावक दो अलग २ मतका पक्ष धारन कर चरचा संवाद करते हैं, कि जिसे श्रवण कर दूसरे होंश्यार होवें. चरचाका काम पडे उतर दे सकें. और अपने ग्राम या अन्य किसी स्थान किसी प्रकार के सुधारे की जरूर हो और अपने से वनशक्ति होतो उसकी मिसलत कर. योजना-वन्दोवस्त करते हैं. धर्मोन्नती होवे ऐसे प्रभावना आदि कार्य की वारम्वार योजना करते हैं. ज्ञान शाला (अभ्यास करने के स्थान) पुस्तक शाळा, निर्वद्य औषधों की शाळा, वगैरा जिसे २ तरह स्वधर्मीयों की सहायता हो ऐसे स्थानो की योजना करते हैं. और मार्ग मे या किसी भी स्थान स्वधर्मीयों मिलते हैं वहां अत्यन्तत नम्रता से जय जिनेंद्र वगैरा शब्दसे सत्कार करते हैं. जो श्रावक वयोवृद्ध गुनोवृद्ध होवें उनके सेवा गुरू की बुद्धि से साध ते हैं. इत्यादि कार्य करे सो श्रावक श्रावक की वत्सलता कही जाती है. साधूओं की भक्ति का जोग तो समय सारही वनता है. तथा आचार की तफावत होने से वहूत ही विचार के साथ प्रवतना पडता हैं. परन्तू 'स्वधर्मीयों की भक्ति तो घर वेठ गंगा है' ऐसा जान सहज स्वभावि लाभके योग्य को सुज्ञ श्रावक व्यर्थ नहीं गमाते हैं.

१२' श्रावक श्राविका की वत्सलता करे'-चारोंही संघका सुधारा करने का मुख्य उपाय श्राविका का सुधारा है. आनन्दजी आदि श्रावक भगवंत श्री महावीर स्वामी के पास वृत धारन कर घर आये और तूर्त अपनी स्त्री को हुकम दिया की जावो तुमभी व्रत धारन कर आवो. धर्म की वृद्धि के लिये कइ शक्ति भी वापरनी पडे

तो वो भी लाभ काही कारण गिना जाता है. धर्मात्मा दंपती का जोड़ा मिलनेसे अंतरिक और बाह्याहिक अनेक सुधारे होते हैं. और भी श्राविकाओं बनाने के लिये कन्याशाला की बहुत जरुर गिनी जाती हैं. श्रावक को उचित है कि अपने पुत्र पुत्रीको साधु साध्वी के दर्शन करने की वारम्बार प्रेरना करा कर वो वचन पत्र से सुसंगत से चूस्त—पक्के धर्मी बने और भी जो विध्वा, हो, निराधार, अपंग, श्राविका हो तथा जो ऊंच कुल आदि की लज्जाकर घर बाहिर निकल नहीं सक्ती हो. और अपना तथा अपने बच्चोका निर्वाह करने असमर्थ हो ऐसी श्राविका. तथा तप सण, विद्वान, धर्म दलाली कर ने वाली इत्यादि श्राविका ओंकी यथा उचित सहायता का श्रावक साता उपजाते रहते हैं. उनके सत्य सील धर्मका स्वरक्षण हो ऐसी योजना करते हैं. पुरुषों करता स्त्रियों की सहायता की बहुत आवश्यकता है.

१२ 'श्राविका साधूकी वत्सलता करे'-साधु भाक्ति के कितनेक कार्यों में श्राविका अधिक भाग्य सालनी होती है. क्योंकि आहार पाणी औषध आधिक बहुत से पदार्थ साधू के क्षप में आवे वैसे कै योग्य गृहस्थों के घरो मे ग्रहणी के स्वाधीन होता हैं इसलिये साधु वत्सलता की मुख्य अधिकारणी एक नय से श्राविका गिनी जाती है. जैसे शास्त्र में श्रावक को श्रमाणो पासिक कहे हैं, तैसे श्राविका को भी श्रमणो पासिक कही है. इसलिये श्राविका को उचित है कि साधू के खप में आवे उन वस्तू ओंकी समज लेवे. जैसे—१ पृथवी—निमक (लून) आदिक जो सचित सजीव होते है, सो अग्निके और लिम्बू आदिक रस के संयोग से आचित हो जाते है. वो साधू को औषधी आदि में काम आजाते है. ऐसी जानने वाला

जो श्राविका होगी वो कभी घरके कार्य निमित निमक आदि वस्तु अचित हूइ है. उसे वचाकर सूजती रख लेगी, जो कभी अंतराय टूटे तो औषध दान दे कर महा लाभ की भागी वनेगी. तैसे ही अग्नि व राख आदि के संयोग से पाणी भी अचित होता है, और ऐसा प्रसंग गृहस्थ के घर में वहुदा वनता है, ऐसे पानी को निकम्मा जान फेंक देते हैं. परन्तु जो श्राविका जान होती है वो उसे भी संग्रह कर यत्ना से रखती है, अन्तराय टुटने से पाणी के जैसे उत्तम दान की भी दातर वन जाती है. क्योंकि अहारसे भी अधिक पाणी की गरज होती हैं. तैसे ही कितनीक विनास्पति कितनेक प्रयोग से अचेत होती है. जैसे अंवरस, खरबूजा (वीजनिकाले वाद) केले (पके हुवे) चटनी (वनाये पीछे एक मुहुर्तवाद) वगैरा की जो जान होवेगी की यह वस्तु साधू ओंके खप में आती है, ता वक्त पर दान का लाभ ले सकेगी. कितनी विद्वान: श्राविकाओ संयम से चलित मुनी को भी पुनः स्थिर कर शक्ति है, जैसे नागला वाइ. ऐसा जो अहार पाणी वस्त्र पात्र औपध पथ्य आदि प्रतिलाभ और व्याख्यान आदि श्रवण कर, व वृत प्रत्याख्यान कर, वगैरा अनेक तरह श्राविका साधू की वत्सलता करती है.

१४ 'श्राविका साध्वीयों की वत्सलता करे'-श्राविकाका और साध्वीयों का तो जोडाही है, जैसा साधू श्रावकका. जैसी वत्सलता साधूकी करनी वताइ, वैसीही वत्सलता साध्वीयों की करनी चहिये वल्के स्त्री पर्याय के कारण से साधू से भी अधिक वत्सलता साध्वीयोंकी कर शक्ति है. कितनेक ऐसे कार्य हैं कि जो स्त्रीयोंके स्त्रीयोंही जानती है. उन कारणो का समाधान यथा उचित तिनीने श्राविकाही कर शक्ति है. और आहार विहार विचार आदि कार्यो में यथा उचित,

सहायता कर शांती उपजानी चाहीये. छद्मस्तता के सवव से किसी की प्रकृती तेज या विमित हो, तथा कूछ आचार गौचार मे फरक हो तो उनकी निंदा व अप चेष्टा कदापि नहीं करना. सव तरह शांती उपजाकर उन के मनकी ऐसी खातरी करदेना की यह श्राविका एकान्त हमारे हितकी ही चहाने वाली है. फिर अवसर उचित उनको नम्रता युक्त हित शिक्षण देकर सुधारने से वहोत अच्छा सुधारा होने का संभव है. ऐसी अनेक युक्ति यों कर श्राविका साध्वीयों की वत्सलता करती है.

१५ ' श्राविका श्रावक की वल्लसता करे. '—अपने पाति जो कधी श्रावक होवें तो फिर सोना और सुगन्ध दोनो ही मिले जैसा हुवा, एक तो पति की भक्ति पतिव्रता की निती से करने की आवश्यकताही थी, और दूसरे होवें श्रावक तो फिर संवर सामायिक आदि वृत उपवास आदि तप, सचित सील वृत आदि नियम इत्यादि धर्म करणी में उनको मुहपाति गुच्छकादि उपकरण. व तपस्या मे उष्ण पाणी और वैयावच्च यथा उचित रिती से कर साता उपजावे. और अन्य भी जो कोइ सम्यक द्रष्टी व श्रावक वृत धारी को पिता और भ्रातकी बुद्धि से वत्सलता करै, अपने घरको आवे तो जैसे शंख जी श्रावक की स्त्रीने पोखल जी श्रावकको तिखुत्ताके पाठकी विधसे वंदना करी, आसण आदि अमंत्रण करे, तैसे विचक्षण श्राविका वत्सलता करती है. अपने घरमें श्रावक के लायक अहार, पाणी, औषध, पथ्य, वस्त्र, जो होवे उसकी आमंत्रण करे, और भी वृत तप नियम वगैरा में यथा शक्ति यथा उचित सहायता कर धर्म तप की वृद्धि करती है, सो श्राविका श्रवक की वत्सलता कही जाती है.

१६ ' श्राविका श्राविका की वत्सलता करे '—और वहीनो तो

मतलबी होती है. सची बहिन तो श्राविका ही गिणी जाती है. स्व-धर्मी यों की भक्ति विन पुण्याइ नहीं मिलती है. इसलिये उत्तम श्राविका ओं आपस में हिल मिल रहती है, एकेक की निंदा करनी दुःख लगे ऐसा वचन उच्चार व वृतन कदापि नहीं करती है. श्रावकों की माफिक श्राविका ओंका भी एक धर्म स्थान अलग जरूर चाहिये. उसमें हमेशा व अष्टिक पाक्षिक को सब श्राविका ओं एकत्र होकर विद्वान श्राविका ओं को सद्बोध कर सबको संसार व्यवहार व धर्म मार्ग में सविनय शांतभाव से प्रवृतने की रिती बताना चाहिये. व पचरंगी कर्मचूर आदि तपश्चर्य करने की रिती बताना चाहिये. पातिव्रता और गर्भासय से लगा कर बालक को धर्म कर्म मार्ग में कैसे प्रवीन कर शक्ति है वगैरा समजाना चाहिये. तथा अनाथ-विधवा अंपग, निराधार, गरीव. तपसन, वगैरा जो कोइ श्राविका होवे उनकी सहायता कर शांती की धर्म की बृध्दी कैसी तरह होवे, उसको समजदेना व बंदोबस्त भी करना उचित हैं. इत्यादि रिती कर श्राविका श्राविकाकी वत्सलता करती है.

१७ ' चारोंही संघ-तीर्थ मिलकर आपसमें वत्सलता करते हैं. कहा है " जिसके घरमें एका, उसका घर देखा " यह चारोंहि तीर्थ है सो श्री तीर्थंकर भगवंत के स्थापन किये हुवे हैं. सब एक जैन धर्म रुप घर में रहते हैं, यह चारों ही यथा उचित रिती से एकत्र हो सम्प-मिलाप रख कर एकेक की सहायता व धर्मोन्नती कार्य करें तो फिर देखना चाहिये की इस वक्तमें यह परम पवित्र धर्म कैसा प्रदिप्त होता है. अपने मालिक जिनसासन के अधिपती चौवीसवें तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामी छद्मस्त अवस्थामें ग्रामानुग्राम विचरते थे, उनवक्त साडे बारा वर्षमें फक्त एकही वक्त गोदु-आसनमें ध्यानस्त बैठे हुवे को

निद्रा का झोका फक्त दो घडी आगया था जिसमें दश स्वप्न देखे उस में एक स्वप्नमें दो स्फटिक (श्वेत) रत्नो की माला देखी उसका अर्थ भगवंत ने फरमाया की मेरे सासण में साधू और श्रावक दोनो रत्नोकी माला जैसे निर्मल होगे इस शब्दके उपर से अपन को अपने मतलब का बहूतही अर्थ ग्रहण करने का है. साधुका और श्रावकका दोनो का जोडा है अर्थात् एकेक की सहायतासे एकेक धर्म वृद्धिका कर शक्ते हैं. कौन कर सक्ते हे ? तो कि जिनो का हृदय (मन) स्फटिक रत्न (हीरे) के जैसा निर्मल साफ होवे सो. व जैसे मालाके मण के (दाणे) एकत्र हो रहते हैं. ऐसे सम्प से रहने वाले होते हैं वो ही धर्म की वृद्धी कर दिपा सक्ते हैं. यह अपने नायक का हुकुम ध्यान में लेकर चारोंही संघ एकत्र होकर निर्मल मन से धर्म की व्रद्धि यथा शक्ति धर्म को प्रदिप्त करना चाहिये.

संघ वत्सलता के लिये सत्बोध.

गोयमा ! इमे आयरीयं पाडिणीया, उव ज्झायाणं पडिणीया, कुल पाडिणीया, गण पडिणीया, संघ पाडिणीया, आयारिय उव ज्झायाणं–अयसकरो–अवणकरो–अकित्तिकरो–बहूहिं असझावणाहिं मिच्छाभि णिवेसीहया, अप्पाणंवा, परंवा, तदुभयंवा, वुग्गाहेमाणा, वुप्पाए माणा, बहुहिं वासाइं सामण परियांग पाउणंति २ त्ता, तस्स ठाणस्स अणालोइय अपाडिकंत काल मासे कालं किच्चा अण्णत्तरे च किविसिये सु देव किविसियत्तरो भवंति.

भगवती सूत्र–शतक ९ उदेश ३३

अस्यार्थम्–भगवन्त श्री महावीर श्वामी फरमाते हैं कि अहो गोतम ! जो आचार्य के उपाध्याय के कुल (गुरूभाइ) का, गण

(सम्प्रदाय) का संघ (चारोंतीर्थ) का प्रतनीक वैरी, इन का अपयशका करने वाला, अवर्णवाद (निंदा) का बोलने वाला, अपकीर्ति का कराने वाला, असद्भाव—मनसे खोटा चिंतवने वाला, अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी का उपार्जन कर, अपनी आत्मा को दूसरे की आत्मा को, दोनों की आत्मा संसार समुद्र में डुवाता है. विटम्बना (दुःख) मे डालता है. वो जीव संयम वृती रूप उत्कृष्ट करणी भी करे और पूर्वोक्त पापकी आलोयणां (पश्चाताप) नहीं करे, प्रतिक्रमण (प्रायश्चित) नहीं करे तो वो आयुष्य पूर्ण कर—मर कर अनन्तर किलविषी देव (देवता ओं में चन्डाल जैसे देव) मे जाकर उत्पन्न होता है. और वहां से आगे कितनेक अनंत संसारमें परि भ्रमण करते हैं.

समवायंगजी सूत्र में तीस महा मोहनियकर्म वन्ध के वोल हैं उस में कहा है कि—तिर्थंकर के अवरण वाद वोले निन्दा को तो, तिर्थंकर परुपित मार्ग धर्म के अवरण वाद वोले. आचार्य उपरध्याय की वैयावृत (सेवा—भक्ति) नहीं करे, चारोंही तीर्थ में भेद (फूट) डाले. वगैरा कार्य करनेसे महा मोहनिय कर्म का वन्ध होता है. अर्थात् ७० क्रोडा क्रोडी सागरोपमतक सम्यक्त्व की प्राप्ती नहीं होती है. महाशयों ! जरा इस वातको विचारी ये, इसवक्त सम्प्रदाय और गच्छ की भेदा भेदी होने से, वरोक्त महा मोहनिय कर्म वन्ध के वोलों का वचाव कौन से पक्ष धारीयों के होता होगा ? एकमत के अनेक मतान्तर कर एकही पक्षको सच्चा ! श्रधो ऐसा कौनसा पक्ष वौध नहीं करता है ? और कितनेक तो वढ ते २ दूसरे पक्ष धारीयों को भगवान के चोर—मिथ्यात्वी तक वना, दान मान की अन्तराय देने में भी कचास नहीं रखते हैं. अव सोचीये ! क्या दूसरे पक्ष में

जैसे किसी महाराजा के बहुत फोज होती है, उनका एकत्र समावेश न होने जैसा देखाव कौवत समज वगैरामें फरक देख, अलग २ रिसाले करते हैं, वो सब रिसाले अलग २ रहते हैं. और अपने कप्तान (मालिक) के हुकम प्रमाने कवाइत वगैरा करते हैं. राजाकी नोकरी बजाते हैं. वो सब अलग २ दरेशों (पोशाको) और अलग रिवाजो में रहे हुवे रीसाले एकही राजा के अंग रूप गिने जाते हैं, अर्थात् सब एकही राजाका हुकम उठाते हैं. और परचक्री आदि प्रसंग प्राप्त होने से सर्व रिसाले उसपर चडाइ कर जाते हैं. सब रिसाले वाले अपने पक्ष के सब रिसालों का रक्षण-बचाव करना, प्रति पक्षीयों का क्षय करना चहाते हैं. और वक्त पर आपसमें एकेक की सहायता तह मनसे कर अपने मालकी फतेह-जीत करते हैं

इसी द्रष्टांत मुजब महा राजा महावीर श्वामी, उनकी शैन्य साधु साध्वी श्रावक श्राविका. यह चारों सिंघ का उस वक्त लाखों का समोह होने से काल प्रभाव से एकत्र रहने जैसा न होने से, रिसाले रूप अलग २ सम्प्रदायों-गच्छों की स्थापना की गइ है. उनो के कितनेक आचार विचार और लिंगमें किंचित मात्र फरक है. परन्तु हैं एकही महाराज श्री महावीर श्वामी के अंग, इस लिये सब सम्प्रदायों की फरज है कि परचक्र रूप पाखन्ड को हटाने सब एकत्र रहकर प्रयत्न करें. अपसमें एकेक सम्प्रदाय की कुशल चहावें और वक्त पर एकेक की सहायता कर महावीर के शासन की फतेह करें.

जैसे शैन्य के सूभटों सब एक से नहीं होतें हैं, विचित्र स्वभाव और विचित्र गुण के धारक होते हैं. तैसे ही श्री वीर प्रभूके चारही संघ में भी विचित्रता प्रतिभास होती है. कोइ ज्ञानी हैं. वो सत्बोध ज्ञान प्रसर आदि से धर्म दिपाते हैं. कोइ तपस्वी हैं वो

विचित्र प्रकार दुक्कर २ तप कर धर्म दिपाते हैं. कोइ वैयावच्ची हैं, वैयावृत कर सब को साता उपजा धर्म की बृद्धि करते हैं. ऐसे ही किसी में कौनसा किसमें कौनसा यों एक दो चार आदि गुन सब में है. साफही निर्गुनी कोइ भी नहीं हैं. फक्त अपनको तो समयानुसार शुद्ध व्यवहार देखने का जरूर है. बाकी जितने गुन जिसमें ज्यादा होंगे वो उनकी आत्मा को सुख कर्ता होंगे. और कम ज्ञानी कम क्रिया वंत जितना करेगें उतना पावेंगे, क्या तीर्थंकर भगवंत के हजारों साधू सती यों का एकसा आचार विचार था! क्या एक वक्त ऐसा न हुवा था? की श्रेणिक राजा और चेलना राणीका रूप देख प्रायः सभी साधू सतीयों ने नियाना कर दिया था? अहो भव्य ऐसे २ लेख शास्त्रों मे मौजुद होते भी धर्मकी पायमाली का उपाव निंदा और कटनी से नहीं बचते हैं. उनकी क्या गती होगी सो विचारिये!!

देखिये सुयगडांग सूत्र दूसरे श्रुतस्कन्ध का सातवा अध्यायः

सूत्र—भगवंचणं उदाहु-आउसं तो उदगा! जे खलु समणं वा, महाणंवा, परि भासेइ मिति मन्नंति, आगामिता णाणं, आगामिता दंसणं, आगामिता चरित्तं, पावाणं कम्माणं अकरणयाए, सेखलु परलोग पलिमंथाए चिठ इ. जेखलुसमणं वा, महाणंवा, णोपारिभासइ मिति मन्नंति आगामिता णाणं, आगामिता दंसणं, आगमिता चारित्तं पावाणं कम्माणं अकरणयाए, सेखलु परलोग विसुद्धीए चिठइ. ॥२६॥

अर्थात्—भगवंत श्री गौतम स्वामी फरमाते हैं कि—अहो आयुष्यवान् उदक? खलु इति निश्चय से जो पुरुष यथोक्त (तीर्थंकर की आज्ञानुसार) क्रिया अनुष्टान के कर ने वाले, ऐसे समण (साधू होवें, अथवा माहण (श्रावक) होवें, उनकी 'परि भासइ' कहता

निंदा करे, उन मे मंत्री भाव मानता हुवा; सम्यक ज्ञान, सम्यक द-र्शन, सम्यक चारित्र यह तीन गुण मुक्ति के दाता हैं इन सहित वो (निंदक) होवे, सब पाप कर्म का त्यागी होवे तो भी वो निंदक पर लोक का विराधक होवे. अर्थात पूर्वोक्त ज्ञानादि गुणो की विराधना कर परभव में अनेक जन्म मरण करे. [यह तो निंदा के फल कहे. अब गुण ग्राहक आश्रिय कह ते हैं.] जो महा सत्यवंत पुरुप रत्नाकर समुद्र के जैसा गंभीर साधू और श्रावक की बिकूल ही निं-दा नहीं करता हुवा सर्व जनोके साथ मैत्री भावका पोषण करता हुवा; सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन, सम्यक चारित्र यथोक्त शुद्ध पालता हुवा, सर्व पाप कर्म का त्यागी, ऐसे गुण युक्त गुणग्राही पुरूप परलोक में विशुद्ध होवे. अर्थात पुर्वोक्त गुनोकी आराधना कर पर लोक में निर्मल कूल आदिक में जन्म ले निर्मल धर्म की आराधना कर निर्मल देव लोक और मोक्ष के सुखका भुक्ता होवे !

देखिये भव्यों! अपने परम गुरू श्री गौतम श्वामी जी महाराज क्या फरमाते हैं ? इन बचनो पर जरा लक्ष दिजीये ! ओं संयम तप वृत नियम आदि करणी कर व्यर्थ नही गमाइये. गुणानुरागी बन कर गुन ग्रहण की जीये. जो गुन आप दूसरे की आत्मा में प्रक्षेप किये चहाते हो, उन गुनो का आपही की आत्मामें प्रक्षेप की जीये और बरोबर पालीये, कि जिससे आपको इच्छित सुख मिले.

अहो जिनेश्वर के अनुयायी महाशयो ! आपसमें चारोंही तीर्थ एकेक के गुण ग्रहण करो ? गुणानुवाद करो ? एकेक के उन्नती के उपाय की योजना करो ? अमल में लेनेका उपाय करो ! सबको सुख उपजावो ! जिन २ के पास तन, धन. विद्या. ज्ञान जो है वो सब संघ के अर्पण कर संघ के दानुदास हो वो ! तो ये ही सच्चा

श्वामी वत्सल है !! वाकी और जो छेः काय का कुटारम्भ कर, धामधुम कर तंगम तंगा पेटभर, अनाचार की वृद्धि करते हैं, वो श्वामी वत्सल तो पेटार्थीयों अज्ञानी यों के ही मानने योग्य है, धर्मात्मा ओं ढोंग सें धर्म कदापि नहीं मानने के.

जो वरोक्त रिती प्रमाणे श्वामी वत्सल–संघ भक्ति करने चारों ही तीर्थ अवी भी तह मन से प्रवृत हो जाय तो, में निश्चय के साथ कहता हु कि–यह परम पवित्र धर्म पुनःपुर्ण प्रकाशी वन जाय और परमात्म पद का मार्ग प्राप्त करें.

तद्यथा—" तीर्थ-संसार निरतरणो पायं करोतीति तीर्थ कृत "

अर्थात—संसार से निस्तार करे–जन्म मर्णादि दुःख से मुक्त कर जो आत्माको पर मात्मा वनावे सोही तीर्थ कहे जाते हैं. इसलिये परमात्म मार्गानुसारी को तीर्थ (साधू साध्वी श्रावक श्राविका) की भक्ती जरूर ही करना चाहीये.

यह संघ भक्ति ज्ञान के अभ्यासी यों ही कर सक्ते हैं, इसलिये ज्ञानका स्वरुप दर्शाने की इच्छा रख यह प्रकरण पूर्ण करता हूं.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के
वालब्रह्मचारी मुनिश्री अमोलख ऋषिजी महाराज
रचित " परमात्म मार्ग दर्शक " ग्रन्थका संघ–व
त्सलता नामक अष्टम् प्रकरण समाप्तम्.

प्रकरण-नव वा.

" ज्ञान-उपयोग. "

" उपयोगो लक्षणम् जीवस्य " तत्वार्थ सूत्रम्.

जीवका लक्षण ही उपयोग है, अर्थात् जो उपयोग युक्त होता है उसे ही जीव कहा जाता है. उपयोग विनको जड अचैतन्य वस्तु गिनी जाती है, इसलिये आत्मा निश्चय नयसे संपूर्ण रूप से विमल और अखन्ड जो एक प्रत्यक्ष ज्ञान रूप केवल ज्ञान है. उन ज्ञान स्वरूपही है. परन्तु वाही आत्मा व्यवहार नय से अनादि काल से कर्म वन्ध से आच्छादित हुवा हुवा निर उपयोग जड जैसा हो रहा है. तदापि जो इसको ज्ञान सत्ता है वो उन कर्मों की हीन अधिकता करके, हीन अधिक प्रगमी हूइ है. इस सवव से " साष्टविधोऽष्ट चतुर्भेदः ', इस सूत्र से ऐसा

वोध किया है कि वह आत्मा में जो उपयोग लक्षण है इस के दो भेद अथवा अष्ट (आठ) और चतु (चार) मिलकर वारह भेद होते हैं, इन वारह उपयोग का आगे संक्षेपित वयान कहा जाता हैः-

उपयोग के दो प्रकारः-१ साकार, और २ अनाकार. (१) ज्ञान साकार उपयोग गिना जाता हैं, क्योंकि पदार्थ आकर श्वरुप ज्ञान करके ही जाना जाता है. तथा अ इ वगैरा अक्षरों को भी श्रुत ज्ञान कहा जाता है, और इसलिये ही ज्ञान उपयोग को सविकल्प कहां हैं. क्योंकि वस्तु को जानने से उस के स्वभाव दर्शने की मन में अविलाषा होती है. उस अभिलाषा का निराकरण करने वाला-निश्चय करने वाला. (२) दर्शन उपयोग है कि जिसकर जानी हुइ वस्तु के गुण स्वरूप स्वभाव का अंतःकरण में दर्शाव होता है. जिस से विकल्प मिट जाता है, इसलिये दर्शन उपयोग को निर्विकल्प उपयोग कहा है, सो निराकार है.

अव प्रथम साकारी ज्ञान उपयोग कहा उस के भेदः—

गाथा—णाणं अट्ठ वियप्पं मई सुई ओही अणाण णाणाणी।
मणं पज्जव केवल, मावि पच्चख्ख परोख्ख भेयंच ॥ ५ ॥ द्रव्य सं.

अर्थ - ज्ञान के आठ भेदः-१ कुमती, २ कुश्रुति,-३ कू अवधि (विभंगावधि) यह तीन अनादि मिथ्यात्व के उदय के वश से विप्रित अभिनिवेषिक रूप ज्ञान होने से अज्ञान कहे जाते हैं. इन मे के प्रथम दो (मती और श्रुति) अज्ञान तो संसारि जीवों के अनादि सम्वन्धी है, अर्थात निगोद के विषे अविवहार राशी में अवल जीव था तव ही इन दोनों ज्ञान सहित था. और वहां से निकल कर एकेन्द्रि, विकेन्द्री असन्नी तिर्यंच पचेन्द्रि इनमें मिथ्यात्व पर्याय में रहा वहां तक येही दोनों ज्ञान सहचारी थे. कभी विशेष

क्षयो पशमतासे सन्नी पचेन्द्री मनुष्य व तिर्यंच में और देवता नर्कमें जन्म से ही विभंगावधी होता है.

"मति ज्ञान."

और जब विप्रित अभिनिवेशिक का अभाव होने से, मति ज्ञाना के आवरण वाली प्रकृति यों का क्षयोपशाम होने से, तथा विर्यन्तराय के क्षयोपशाम से और वहिरंग पांच इन्द्रिय तथा मन के अवलम्बन से मूर्त और अमूर्त वस्तू को एक देश से विकल्पाकार परोक्ष रूप से अथवा सां व्यवहारिक (प्रवृती और निवृती रूप व्यवहार से) प्रत्यक्ष रूप से जो जाने सो माति ज्ञान. इस के दो भेदः– १ श्रुत निश्रित और २ अश्रुत निश्रित. इस में श्रुत निश्रुत के दो भेद (१) चक्षु इन्द्रि और मन यह दोनो सामे जाकर पुद्गल ग्रहण कर ते हैं इस लिये उसे अर्थावग्रह कहते हैं. और (२) चार इन्द्रीयों को पुद्गल आकर लगे पीछे उनको ग्रहण करे इस लिये उसे व्यंजनावग्रह कहते हैं. २ अश्रुत निश्रित के चार भेदः– (१) विन देखी विन सुनि वात तत्काल बुद्धिसे उत्पन्न होवे सो 'उत्पातिकी बुद्धि.' (२) गुरू आदिक विद्वानो की भक्ती करने से जो बूद्धि उत्पन्न होवे सो 'विनिविका बुद्धि.' (३) काम करते २ काम का सुधारा होता जाय सो 'कम्मिया बुद्धि.' और (४) ज्यों ज्यों वय प्रणमती जाय त्यों त्यों बुद्धि का सुधारा होता जाय सो प्रणामिया बुद्धि. यह सब मति ज्ञान के भेद हैं.

२ श्रुत ज्ञान.

श्रुत ज्ञाना वर्णिय कर्म के क्षयोपशम से और नो इन्द्रिय के अवलम्बन से प्रकाश और अध्यापक आदि सहकारी कारण के सं

योग से मूर्त तथा अमूर्त वस्तूको लोक तथा अलोक की व्याप्ती रूप ज्ञान से जो अस्पष्ट जाना जाता है उसे परोक्ष श्रुत ज्ञान कहते हैं. और इस से भी विशेष यह है कि—शब्दात्मक (शब्दरूप) जो श्रुत ज्ञान है वह तो परोक्ष ही है. तथा श्वर्ग मोक्ष आदि वाह्य विषयमें वौध कर ने वाला विकल्प रूप जो ज्ञान है वह भि परोक्ष है, और जो अभ्यन्तर में सुख दुःख से उत्पन्न होता विकल्प है, अथवा मैं अनंत ज्ञानादि रूप हूं इत्यादि ज्ञान है वह किंचित परोक्ष है. और जो भाव श्रत ज्ञान है वह शुद्ध आत्मा के अभिमुख सन्मुख होने से सुख संवित (ज्ञान) श्वरूप है, और वह निजात्म ज्ञानके आकार से सविकल्पक है. तो भी इन्द्रिय तथा मन से उत्पन्न जो विकल्पक समुह है उनेस रहित होने के कारण निर्विकल्पक है, और अभेद नय से वही आत्म ज्ञान इस शब्दसे कहा जाता है, यह निरागी चारित्रिये विन नहीं होता है. यदि यह केवल ज्ञानी की अपेक्षा तो परोक्ष है, तथापि संसारी यों को ज्ञायिक ज्ञानकी प्राप्ती न होने से क्षयोपशमिक होने पर भी प्रतक्षही कहलाता हैं. इस श्रुत ज्ञान के दो भेदः— (१) 'अग प्रविष्ट' जो सर्वज्ञो सर्व दर्शी परम ऋपिश्वर अर्हत भगवान् परम शुभ तथा प्रवचन प्रतिष्टा पन फल दायक तीर्थंकर नाम कर्म के प्रभावसे तादृश स्वभाव होने के कारण से कहा है, उसीको अतिशय अर्थात साधारण जनो से विशेपता युक्त और उत्तम तथा विशेप वाणी बुद्धि ज्ञान आदि संपन्न भगवान् शिप्य गण धरोने जो कुछ कहा है वहा अंग प्रविष्ट श्रुत ज्ञान है, इस के वारह प्रकार है. अर्थात गणधर भगवान् ने इस अंग प्रविष्ट श्रुत ज्ञान को वारह प्रकरणों में अलग २ वेंचा है—विभाग किया है सो आचारांगादि वारह अंग कहलाते हैं और (२) गणधरों के अनन्तर होने वाले

अत्यन्त विशुद्ध आगमोंके ज्ञाता परमोतम वाक बूद्धि आदि शक्ति संपन्न आचार्यों ने काल सहन न तथा अल्पायु आदि के दोषों से अल्प शक्ति वाले शिष्यों के अनुग्रहार्थ जो ग्रन्थ निर्म्माण किये हैं वह सब उववाइ आदि उपांग छेद मूल सो आंग बाह्य है. सर्वज्ञ से रचित होने के कारण तथा ज्ञेय वस्तु के अनन्त होने से मतिज्ञानकी अपेक्षा श्रुत ज्ञान महान् विषयों से संयुक्त है, और श्रुत ज्ञान महा विषय वाला होने के कारण उन जीवादि पदार्थ का अधिकार कर के प्रकरणों की समाप्ती की अपेक्षा अंग और उपांग नानत्व-अनेक भेदत्व है. और भी सुख पूर्वक ग्रहण धारणा तथा विज्ञानके निश्चय प्रयोगार्थ श्रुत ज्ञान के नानत्व भेद हैं. जो कभी ऐसा न होतो समुद्र तरने के सदृश उन पदार्थोंका ज्ञान दुःसाध्य हो जाय. इसलिये सूख पूर्वक ग्रहणादि रूप अंग तथा उपांग भेद भाव स्वरुप प्रयोजन से पूर्व कालिक वस्तु जीवादि द्रव्य तथा जीवादि द्वारा ज्ञेय विद्या आदि अध्ययन और उनके उदेशोंका निरुपन होगया, अर्थात ज्ञेय की सुगमताके लिये जीव से ज्ञेय, जीव सम्बन्धी ज्ञान, तथा जीवसे वोध अचैतन्य पदार्थ ज्ञान यह सब नाना भेद सहित श्रुत ज्ञान द्वरा वर्णन् किया गया है.

गाथा-पज्जय अख्खर संघणा, पडिवत्ति तहय अणुओगो ॥
पाहुड पाहुड पाहुड, वथ्थु पुव्वाय स समासा ॥ १ ॥

अर्थात-१ ज्ञान के एक अंग को 'पर्याय श्रुत' कहते हैं * २ दो तीन आदि विशेष अंश को पर्याय सम्मास श्रुत कहते हैं. ३ आकारादि एक अक्षर को जानना सो 'अक्षर श्रुत' है, ४ अनेक

* "अख्खरस अणंत भाग उघाडी ओ भवइ" अर्थात निगो दिये जीव के अक्षर का अनंत मा भाग उघाडा होता है.

अक्षर को जानना सो 'अक्षर सम्मास श्रुत. ५ एक पदका ज्ञान सो पद श्रुत' ६ अनेक पदका ज्ञान सो 'पद सम्मास श्रुत' ७ एक गाथा का जानना सो 'संघात श्रुत' ८ अनेक गाथा का जानना सो 'संघात सम्मास श्रुत' ९ गाथा का अर्थ जानना सो 'प्राति पाति श्रुत' १० गाति जाति आदि विस्तार से जानना सो 'प्रातिपाति सम्मास श्रुत' ११ द्रवागुयोगादि मै का एक योग जाने सो 'अयोग श्रुत १२ दो तीन चार अनूयोग जाने सो 'अनुयोग सम्मास श्रुत १३ अंतर व्रती एक अधिकार जाने सो' प्राभृत २ श्रुत १४ अंतर व्रती अनेक अधिकार जाने सो' प्राभृत २ सम्मास श्रुत' १५ एक अधिकार एकही रुप करके जाने सो प्राभृत श्रुत. १६ एक अधिकार अनेक रूप कर जाने सो प्रभृत सम्मास श्रुत. १७ पूर्व की एक वत्थू जानना सो वस्तु श्रुत. १८ पूर्व की अनेक वस्तु जानना सो 'वत्थु सम्मास श्रुत.' १९ एक पूर्व जानना सो 'पूर्व श्रुत' २० दो आदि चउदह पुर्व जानना सो 'पुर्व सम्मास श्रुत' २१ द्रष्टीवाद की एक वत्थु जानना सो 'द्रष्टी वाद श्रत और २२ संपुर्ण द्रष्टीवाद जानना सो 'द्रष्टीवाद सम्मास श्रुत' यह श्रुत ज्ञान के २२ भेद कहे ऐसे श्रुत ज्ञान के अनेक भेद जानना.

मति और श्रुत ज्ञान में भेद.

माति और श्रुत ज्ञान में भेद इत्नाही है कि—१ माति ज्ञान तो इन्द्रिय तथा अन्द्रिय (मन) के निमित मान कर आत्माके ज्ञेय (जानने का) स्वभाव से उत्पन्न होता है. इसलिये प्रमाणिक मात्र है. और श्रुत ज्ञान तो माति पुर्वक है आप्तके उपदेश से उत्पन्न होता है और २ उत्पन्न होकर जो नष्ट नहीं हुवा है ऐसे पदार्थ वर्तमान काल

में ग्राहक तो मति ज्ञान है, और श्रुत ज्ञान तो त्रिकाल विषयक है. जो पदार्थ उत्पन्न हुवा हैं, अथवा उत्पन्न होकर नष्ट होगया है. व उत्पन्न ही नहीं हुवा, भविष्यमें होने वाला है. व नित्य है. उन सबका ग्राहक श्रुत ज्ञान है. बश इतना ही भेद इन दोनों में है, और तो 'द्रव्यष्ट सर्व पर्य्याये षु' इस सूत्रानुसार मति और श्रुत ज्ञान के धारक सो सर्व द्रव्योंके कूछ पर्याय जानते है. श्रुत केवली कहे जाते हैं. यह दोनो ही परोक्ष ज्ञान है.

३ अवधी ज्ञान.

३ अवधी ज्ञानवार्णय कर्म के क्षयोपशम से मुर्त वस्तु को जो एक देश प्रत्यक्ष द्वारा सविकल्प जानता है वह अवधी ज्ञानी. यह अवधी ज्ञान नर्क में उत्पन्न होने वाले जीवों को तथा देव लोक में उत्पन्न होने वाले जीवों को भव्य प्रत्यय होता है, अर्थात उस भव में जन्म ने के साथ ही होता है. जैसे पक्षियों का जन्म ही आकाश गमनका हेतू होता है, और मनुष्य योनी में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकर भगवान तो पूर्व भव से अवधी ज्ञान साथ ही लेकर आते हैं, और दूसरे मनुष्यों करणी कर कर्मोंका क्षयोपशम होने से अवधी ज्ञान उत्पन्न होता है. अवधी ज्ञानी–१ द्रव्यसे जघन्य पने अनंत सुक्ष्म रूपी द्रव्य को जानते हैं. उत्कृष्ट सर्व रूपी द्रव्यको जानते देखते हैं (२) क्षेत्रसे जघन्य पणें अंगुलके असंख्यात में भाग क्षेत्रको जाने उत्कृष्ट संपूर्ण लोक और लोक जैसे अलोकमें असंख्यात खंडवे जाने देखे* (३) काल से जघन्य पने आंवालिका के असंख्यात मे भाग जाने. उत्कृष्ट असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी जाने. (४) भावसे अवधी

* अलोक में अवधी ज्ञान से देखने जैसा कुछ भी पदार्थ नहीं है. फक्त शक्ति बताइ हैं.

ज्ञानी जघन्य अनंत भाव जाने उत्कृष्ट अनंत भाव जाने.

अवधी ज्ञान छः तरह से होता है:-१ 'अनुगामी' किसी क्षेत्रमें किसी पुरुष को उत्पन्न हुवा उस से अन्य क्षेत्रमें जाने पर भी उस पुरुष के साथ रहे. जैसे सूर्य का प्रकाश. २ 'अनानुगामी' जिस क्षेत्र में पुरुष को उत्पन्न होता है उस क्षेत्र से जब वो पुरुष च्युत हो जाता—चले जाता है तब उसका अवधी ज्ञान भी चला जाता है, जैसे दीवा का प्रकाश. ३ 'हींयमान' जो कि असंख्यात द्विप समुद्र में प्रथवी के प्रदेश में, विमानो मे तथा तिर्यक उर्द्ध अधो भागमें उत्पन्न हुवा है वह कर्म से संक्षिप्त होता हुवा यहां तक गिरजाता है व न्युन हो जाता है जब तक अंगुलके असंख्यात में भाग को नहीं प्राप्त हो, अथवा सर्वथा गिरही जाय, जैसे उपादान कारण इंधन रहित अग्नि की शिखा. ४ 'वर्धमान' जो अंगुल के असंख्यात में भाग आदि से उत्पन्न होकर. संपुर्ण लोक पर्यंत ऐसा बढता है जेसे शुष्क इंधन पर फेंका हुवा प्रज्वलित अग्नि. ५ 'अवस्थित' जो जिस क्षेत्रमें, जितने आकार में उत्पन्न हुवा हो उस क्षेत्र से केवल ज्ञान की प्राप्ती तक अथवा भव के नाशतक नहीं गिरना लिंग (भेषक) के समान स्थिर रहता है. ६ 'अनवस्थिर' जो तरंग के समान जहां तक उसको बढना चाहीये वहां तक पुनः २ बढताही चला जाय. और छोटाभी वहां तक होता है कि जहां तक उसे होना चाहिये. ऐसी ही तरह वह वार २ बढता तथा न्युन होता रहे, तथा गिरता और उत्पन्न होता रहे, एक रुप में अवस्थित नहीं रहे इस लिये अनवस्थित कहाते.

४ मनःपर्व ज्ञान.

१ मन पर्यव ज्ञानावर्णिय कर्मके क्षयोपशम से और अन्तराय

के क्षयोपशम से अपने मन के अवलम्बन द्वारा पर के मनमें प्राप्त हुवे मूर्ती पदार्थ को एक देश प्रत्यक्ष से सविकल्प जानता है वह मति ज्ञान पूर्वक मनः पर्यव ज्ञान कहा जाता है. इस के दो भेद १ ऋजु माति और विपुलमति. १ जो अढाइ द्विपमें कुछ (२॥ अंगुल) कमी क्षेत्र में रहे हुवे सन्नीपचन्द्रिय के मनोगत भाव सामान्य पणे खुला रहित जानता है. और जो आया हुवा पीछागिर भी जाता चला जाता है. सो ऋजुमति. और २ संपूर्ण अढाइ द्विप के सन्नी पचान्द्रिय के मनो गत भाव खुलासे सहित भिन्न २ भेदकर जाने. और गिरे नहीं सो विपुल मति अर्थात् विपुलमति मनः पर्यव ज्ञानीकों केवल ज्ञान अवस्य उपजाता है.

अवधी ज्ञान और मनः पर्यव ज्ञान में भेद.

अब अवधी ज्ञान और मनःपर्यव ज्ञान की विशेषता दर्शाते है (१) अवधी ज्ञान की अपेक्षा से मनःपर्यव ज्ञान विशेष विशुद्ध निर्मल है. जितने रूप रूपी द्रव्यों को अवधी ज्ञानी जानता है. उन को मनःपर्यव ज्ञानी मनोगत होने पर भी अधिक शुद्धता के साथ भेदो से भिन्न २ कर जान शक्के है. व जो सुक्ष्म रूपी द्रव्य अवधि ज्ञानी नहीं देख शक्के हैं, उसे भी मनःपर्यव ज्ञानी देख शक्के हैं. (२) अवधी ज्ञान जघन्य अंगुल के असंख्यात में भाग जितना क्षेत्र देखे उतना उपजता है, और उत्कृष्ट संपूर्ण लोक से भी अधिक उप जता है, परन्तु मनः पर्यव ज्ञान तो एक दम अढाइ द्विप देखे उतनाही उपजता है, ज्यादा कमी नहीं. (३)अवधी ज्ञान सर्व सन्नी पचे न्द्रिय को होता है. और मनःपर्यव ज्ञात फक्त विशुद्धाचारी संयमी कोही होता है, अन्य को नहीं.

५ केवल ज्ञान.

केवल ज्ञान जो अपना शुद्ध आत्म द्रव्य है उसका भले प्रकार श्रधान करना—जानना, और आचरन करना इन रुप जो एकाग्र ध्यानी है, जिस से केवल ज्ञान को आवरण-आच्छ दन-ढक्न कर ने वाले जो ज्ञानवर्णिय आदि ४ घन घातिक कर्मका नाश होने पर जो उत्पन्न होता है वह एक समयमेंही सर्व द्रव्य क्षेत्र काल तथा भाव को ग्रहण करने वाला, और सर्व प्रकार से उपादेय भूत-ग्रहण करने योग्य सो केवल ज्ञान है. यह जीवादि संपूर्ण द्रव्य तथा उन द्रव्यों के यावत् पर्याय हैं वे सव केवल ज्ञान के विषय है. केवल ज्ञान लोक तथा अ-लोक सर्व विपयक है, और सर्व भावों का ग्रहण करने वाला है. के-वल ज्ञान से वढ कर कोइ भी ज्ञान नहीं है, और केवल ज्ञान का जो विपय है उस से ऐसा कोइ भी पदार्थ नहीं है जो केवल ज्ञानसे प्रकाशित न हो. तातपर्य यह है कि—संपुर्ण विपय तथा संपूर्ण वि-पयों के संपुर्ण स्थूल तथा सुक्ष्म सर्व पर्याय है उस सव को केवल ज्ञान प्रकाशित करता है. केवल ज्ञान परिपूर्ण है. समग्र है, असाधरण है, अन्य ज्ञानोसे निरपक्ष है अर्थात् निज विपयोंको अन्यकी अपेक्षा न रख कर स्वयं सवको प्रकाशित करता है, विशुद्ध है अर्थात् सर्व दोपों कर रहित है, सर्व भावों का ज्ञायक अर्थात जानने वाला है, लोका लोक विपयक है, और अनंत पर्याय है. अर्थात सर्व द्रव्यों के अनंत पर्याय को यह प्रकाशक है.

यह पांच ज्ञान का संक्षिप्त कथन हुवा. इन पांच ज्ञान मे से एक काल में एक ज्ञान पावे तो केवल ज्ञान, और दो ज्ञान पावेतो

मति श्रुती. और तीन ज्ञान पावे तो माति श्रुती अवधी. और चार ज्ञान पावे तो माति श्रुती अवधी और मनःपर्यव. इस से ज्यादा एक जीव के एक वक्त में ज्ञान नहीं पावे. यह ज्ञान आश्रिय हुवा.

" चार दर्शन का स्वरूप "

अब दर्शन आश्रिय कहते हैं यह ज्ञानका श्वरूप दरर्शाय सो सविकल्पआत्मक होता है. और ज्ञानसे जाने हूवे विषयों में निर्विकल्पता निश्चयता करना सो दर्शन कहलाता है. यह आत्म निश्चय से निज सत्तामें अधो मध्य और उर्द्द यह तीन लोक तथा भूत भविष्य और वर्तमान यह तीनो काल में द्रव सामान्य को ग्रहण करने वाला जो पुर्ण निर्मल केवल दर्शन स्वभाव है, उसका धारक है, परन्तू अनादि कर्म बन्ध के आधीन हो कर, उन कर्मों में से १ चक्षु दर्शनावर्णिय कर्म के क्षयोपशम से अर्थात नेत्र द्वारा जो दर्शन होता है उस दर्शन के रोक ने वाले कर्म के क्षयोपशम से, थता वाहिरंग द्रव्य के आलम्बन से मूर्त सत्ता सामान्य को जो कि संव्यवहार से प्रत्यक्ष है, तो भी निश्चय से परोक्ष रूप है. उनको एक देश से विकल्प रहित जैसे हो तैसे जो देखता है, वह चक्षु दर्शन है. २ वैसे ही स्पर्शन रसन घ्राण, तथा श्रोते इन्द्रियके आवरणके क्षयोपशम से और निज २ वाहीरंग द्रव्येन्द्रिय के अवलम्बनसे मूर्त सत्ता सामान्यको परोक्ष रूप एक देशसे जो विकल्पक रहित देखता है वह अचक्षु दर्शन है. और इसी प्रकार मन इन्द्रिय के आवरण के क्षयोपशम से, तथा सहकारी कारण भूत जो आठ पांखडी के कमल के आकार द्रव्य मन है उस के अवलबम्नसे, मूर्त तथा अमुर्त ऐसे समस्त द्रव्यों मे विद्यमान सत्ता सामान्य को परोक्ष रूपसे विकल्प रहित जो देखता है वह मन

से अचक्षु दर्शन है. ३ और वही आत्मा जो अवधी दर्शनावरण के क्षयोपशम से मुर्त वस्तु में प्राप्त सत्ता सामान्य को एक देश प्रत्यक्ष से विकल्प रहित देखता है वह अवधी दर्शन है. ४ और सहज शुद्ध चिदानन्द रूप एक श्वरूप का धारक परमात्मा है, उस के तत्व के वल से केवल दर्शना वरण कर्म के क्षय होने पर मूर्त अमुर्त समस्त वस्तुओं में प्राप्त सत्ता सामान्य को सकल प्रत्यक्ष रूप से एक समय में विकल्प रहित जो देखता है उसको दर्शना वरण कर्म के क्षय से उत्पन्न और ग्रहण करने योग्य केवल दर्शन हैं.

यह आठ प्रकारका ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन है सो सामान्य रूपसे जीवका लक्षण है. इसमें संसारी जीवकी और मुक्ति जीव की विविक्षा नहीं है. और शुद्ध अशुद्ध ज्ञान की भी विविक्षा नहिं है, फक्त वहां तो जिवका सामान्य लक्षण का कथन किया है, व्यवहार नयकी अपेक्षा से समजीये. यहां केवल ज्ञान दर्शन के प्रती तो शुद्ध सद्भुत शब्द से वाच्य (कहने योग्य) अनुप चरित्र सद्भुत व्यवहार है. और कुमाति कु श्रुत विभंग अवधी इन तीनों मे उप चरित सद्भुत व्यवहार है, और शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध अखन्ड केवल ज्ञान, तथा दर्शन यह दोनों ही जीव के लक्षण है.

और भी यहां ज्ञान दर्शन रूप योग की विविक्षा में उपयोग शब्द से विविक्षित (कथन करनें योग अभिमत) जो पदार्थ है, उस पदार्थ के ज्ञान रूप वस्तु के ग्रहण रूप व्यापारका ग्रहण किया जाता है, और शूभ अशुभ तथा शुद्ध इन तीनो उपयोग की विविक्षा में तो उपयोग शब्दसे शुभ अशुभ तथा शुद्ध भावना एक रूप अनुष्टान जानना चाहिये. यहां पर सहज शुद्ध निर्विकार परमानन्द रूप एक लक्षण का धारक साक्षात उपादेय (ग्राह्य) भुत जो अक्षय सुख

है उस के उपादान कारण होने से, केवल ज्ञान और केवल दर्शन यह दोनो उपादेय हैं. इस प्रकार गुण और गुणी अथार्त ज्ञान और आत्मा इन दोनौं का एकता रूप से भेद के निरा कारण के लिये उपयोग का वाख्यान द्वारा वरणन किया.

शुद्ध उपयोग का फल.

यह तो फक्त ज्ञानोंके भेदा भेदों परही उपयोगा लगाने बदल दर्शाया. परन्तु ऐसेही या अपनी बुद्धि के हीनाधिकता के प्रमाणे श्रवण पठन मनन प्रेक्षन करे व हर कोइ व्यवहारमें प्रवर्तती हुइ वस्तु ओं कार्यों ज्ञान वैराग्यादि गुनों कर प्रति पूर्ण भरे हुवे हैं, उन सब वातों व वर्तावों का अंतः करण में ज्ञान उपयोग युक्त वारम्वार वि-चारना. वशिष्ट ऋषिने रामचन्द्रजी से कहा है " विचारं परमं ज्ञानं" अर्थात् विचार है सोही परम ज्ञान है. विचारसे ही विचार शक्ती बढती है. और जो जो पूर्व धारी द्वादशांग के पाठी भूत केवली व केवल ज्ञान तक ज्ञान ऋद्धि को प्राप्त करने वाले महात्मा हुवे हैं, सो सब ज्ञान उपयोग विचार शक्ति की प्रबलता से ही हुवे है, श्री वीर प्रभृ ने फरमाया है.

सूत्र—अणुप्पेहाणं आउयवज्जाओ सत्त कम्म पडिओ धणिय वंध ओ. सिढिल वंधण वंधाओप करेइ. दिह काल ठियाओ रहस्स काल ठिया ओप करेइ, वहू पएसगाओ अप्प, पयसगाओ पकरेइ, आउयंचणं कम्मं सिया बंधइ सिया नो बंधइ, असया, वेयाणज्जिं चणं कम्मं नो भुज्जो २ उवाचिणाइ. अणाइय चे णं अवणव दगं दीह मद्धं चउरंत संसार कंतार खिप्पा मेव वीइ वयइ, ॥ ३२ ॥

उतराध्ययन. अ २९.

अर्थात्—वारम्वार ज्ञान पर उपयोग लगाने से व ज्ञान फेरती वक्त अपणीं उपयोग शक्ति की सर्व सत्ता अन्य तरफ प्रवर्ती करती हुइ को निवार उस ज्ञान के अर्थ परमार्थ में एकाग्रतासे लगा. उसका रहस्य अर्थ का रस हूबहू आत्मा में परगमा ने से और दीर्घ द्रष्टी से उसका तात्पर्य अर्थ ढूंढ कर निकालने से वगैरा रिती से ज्ञान रमण में रमणता करने से वो जीव उसवक्त आयुष्य कर्म छोड बाकी के सात कर्मों की प्रकृती जो पहिले निवड—मजबूत वान्धी हो उसे स्थिल (ढीली जलदी से छूट जाय ऐसी) करे, बहूत काल तक भोगवणा पडे ऐसा वन्ध वांधा हो उसे थोडेही कालमें छुटका हो जाय ऐसी करे. तिव्र भाव (विकट रस से उदय में आवे ऐसे) वांधाहो उसे मंद भाव (सहज मे भोग वाय ऐसी) करे. आयुष्य कर्म कदाचित कोइ वान्धे कोइ नहीं भी वान्धे. क्यों कि आयुष्य कर्म का वन्ध एक भव में दो वक्त नहीं पडता है. असाता वेदनी (रोग—दुःख देने वाला) कर्म वारम्वार नहीं वान्धे. और चारगाति रूप संसार कान्तार (महा रन) का पंथ—मार्ग कि जो आदि रहित और मुशकिल से पार आवे ऐसा है, उसे क्षिप्र—शिघ्र आतिक्रमें—उलंघे अर्थात् वहूतही जलदी मोक्ष के अनन्त सुख प्राप्त करे.

मुमुक्षुओ! देखीये परम पूज्य श्री महावीर परमात्मा ने परमात्म पद प्राप्त होने का उपाय ज्ञान में उपयोग लगाना इसका कितने विस्तार से वर्णन किया. इसे ध्यान में लीजी ये!

और भी विचारी ये. किसी भी शुभ व शुद्ध क्रिया के विषय प्रवृती करी तो वो स्वल्प काल तकही हो कर छूट जाती है, और उसे करते मध्य में अनेक संकल्प विकल्प उत्पन्न ने ही रहते हैं. जिससे उस क्रिया के फलमें न्यूनाधिकता होती रहती है. इसी कारण

भगवंत ने क्रियावंत को देश (थोडा) आराधिक कहा है. औ
ज्ञानी का चित ज्ञान में अहो निश रमण होने से अन्य तरफ मुडते
फिरती हुइ वर्ती स्वभाविक रूक कर उस ज्ञान के अर्थ परमार्थ व
भंग तरंग में उछरंग करती हूइ रहती है जिससे अन्य तरफ प्रवृत है
मन आदि योंगों का स्वभाविक ही अकर्पण हो एकत्रता धारन क
ता है. उसवक्त अन्तान्त कर्म वर्गणा के पुद्गलों का समोह आत्म प्र
देश से अलग होता है. आत्मा को अत्यन्त शुद्ध वनता है, इसी
कारण भगवंतने फरमाया है, कि ज्ञानी सर्व आराधिक है. और भी
चौथ छट अष्टमादि तप के कर्ता वहुत काल में कर्म वन्धका नाश
करते हैं. और वही कर्म ज्ञानी जन ज्ञान में उपयोग का रमण कर ते
हूवे किंचित काल में दूर कर देते हैं. क्योंकि ज्ञानी किसी अन्य भी
प्रकार की क्रिया भी जो कर रहे हैं तो भी उनका उपयोग व सर्व
वृती यों ज्ञान में ही रमण करती है, जिससे किसी अन्य कार्य
में पुद्गलों के परिणाम में लुब्धता नहीं होती है, इस सववस वो पुद्गल
उनको चेंट शक्ते नहीं है, अर्थात् वन्धन रूप होते नहीं हैं. इसलिये
ही कहा है कि ज्ञान विना की सब क्रिया निर्थक है. अर्थात् पुण्य
प्रकृती की उपार्जन भलाइ हो जावो, परन्तु मोक्ष नहीं दे सके. ऐसा
परमोपकारि ज्ञान में वारम्वार उपयोग लगाता रमण करता है वोही
जीव परमात्म मार्ग में प्रवृता हुवा परमात्म पदका प्राप्त करता है.

ध्यानारूढ समरसयुंत, मोक्ष मार्ग प्रविष्टं ।
शान्त दान्तं सुमति सहिंत, योगवन्हो हूता क्षम् ॥
धर्मापन्नं क्षत मद मदं जीवतत्व निमग्नं ।
तत्सर्वज्ञा त्रि भुवन नुताह्यन्तरात्मा न माहुः ॥

अर्थात्—जो महात्मा शुद्ध ध्यानरूढ हैं, समता रूप रस में जि-

नकी आत्मा भींजी हूइ है. शांत स्वभावी है, मनका दमन कर स्व-वश किया है, सदा सुमति—सुबुद्धि युक्त हैं, योग रूप अग्नि में काम रूप शत्रुका दहन किया है, धर्मका प्रसार करने तत्पर हैं, अभीमान का नाश कर दिया, स्वता प्रवल प्रज्ञा से जीवादी सर्व तत्वों के यथार्थ कोविद् (जाण) हैं, और तत्वों के ज्ञान में ही सदा निमग्न तल्लीन रहते हैं, सर्वज्ञ ने इन्ही को अंतर आत्मा के धारक कहे हैं ऐसे महात्मा त्रिभुवन मै थोडेही हैं. और येही मोक्ष प्राप्त करते हैं.

परमात्म पद प्राप्त करे ऐसा शुद्ध ज्ञान मय उपयोग सम्यक्त्वी जीवों काही प्रव्रतता है. इसलिये आगे सम्यक्त्व का स्वरूप वताने की अभिलाषा रख इस प्रकरण को पुरा करता हूं,

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के
वालब्रह्मचारी मुनिश्री अमोलख ऋषिजी महाराज
रचित " परमात्म मार्ग दर्शक " ग्रन्थका " ज्ञान
उपयोग "नामक नवम् प्रकरण समाप्तम्.

प्रकरण-दशवा.

"दंशण-सम्यक्त्व."

सकल सुख निधानं धर्म बृक्षस बीजं ।
जनन जलधि पोतं भव्य सत्वैक पालं ॥
दुरित तरू कुठारं ज्ञान चारित्र मूलं ।
त्यज सकल कु धर्म दर्शनं त्वं भजस्व ॥ १ ॥

तात्पर्य–अहो भव्य जनो ! सर्व सुख का निधान, धर्म रूप बृक्ष का बीज, भव रूप समुद्र के पार पहोंचाने स्टिमर (जहाज) पाप रूप कंटक बृक्षका उच्छेद (काटने) कूठार (कुहाडा) और ज्ञान चारित्र के मूल रूप जो सम्यक्त्व है, कि जिसका आराधन भव्य जीवों हो कर सक्के, हैं इस लिये तुम भी सर्व कु धर्म (कुश्रधा) का त्याग कर सम्यक्त्व को अंगिकार करो ! !

श्री भगवंत ने मोक्ष प्राप्त करनें के चार अंग फरमाये हैं, जिसमें प्रथम अंग ज्ञानका तो यत्किंचित श्वरुप नव में प्रकरण में किया, अब द्वितीय अंग जो दंशण-सम्यक्त्व नामक है इसका श्वरुप दर है.

पूजा करा कर, या नारीयल आदि कुछ वदला ले कर इच्छा पूर्ण करने वाले वजते हैं, वो आपही की इच्छा पूरी नहीं कर सक्के हैं, तो दूसरे की क्या करेंगे ? और एक नारेल * जैसी तुच्छ वस्तु भी जो प्राप्त नहीं कर सक्के हैं, तो वो सुख संपत कहां से देवेंगे, तथा उन देवों को एसे भोले समजलिये हैं क्या नारियाल आदि जैसी कम कीमत की वस्तु के वदले में पुत्र आदि जैसे उत्तम पदार्थ तुम कोदे देवेंगे. ऐसा जो विचार नहीं करते कू देवोंकी आराधना करे सो देव मुढता.

२ लोकमुढता—गंगा आदि नंदी को तीर्थ जान स्नान करना, ग्राम पहाड घर आदि स्थानों को तीर्थ रुप मान उनके दर्शनार्थ भटकता फिरना. प्रातःसमय आदि वक्त में स्नान आदि पाप कार्य किये विन धर्म होवे नहीं ऐसी बुद्धि धारन करना. गौ आदि पशुओ में और वड पिंपल आदि वृक्षो में देवका निवास मान उने पूजना. इत्यादि कार्य में धर्म बुद्धि या पुण्य बुद्धि धारन करना सो लोक मुढता. क्योंकि आज्ञानी जन सो परमार्थके अन जान हो कर वरोक्त कर्तव्य करते हैं, परन्तू सम्यक द्रष्टियों को विचारना चाहीये कि जो स्नानादि करनेसे पापकी शुद्धि होती हो तो फिर दुनियांमें जाति भेद रहेही नहीं. क्योंकि चांडाल आदि नीच जाती के मनुष्य को भी स्नान कर पवित्र—उत्तम जाती वाला वना लेवें. और अपवित्र वस्तु को पवित्र वना भोगवे लेवें. अजी कडवी तुम्बी को सव तीर्थोंके

---

* पद—देवके आगे वेटा मांगे । तव तो नारेल फूटे ॥
गोटे २ आपही खावे । उनको चडावे न रोटे ।
जगचले उपरांठे । झूटे को साहेव कैसे भेटे ॥

कवीरजी

पाणी में पखाली तो क्या वो मीठी होती है ? कदापि नहीं. तो जो तूम्बी भी मीठी नहीं होती है तो यह रूद्र शुक्र से उत्पन्न हुवा, हाड मांस रक्त विष्टा मूत्र से भरा हूवा शरीर कैसे पवित्र होगा ? और जो शरीर ही पवित्र नहीं होता है तो फिर पाप रूप मलका नाश कर मनको पवित्र बनाने की सत्ता तो तीर्थ के पाणी में कहां से होय ? अर्थात्—नहींज है. देखीये मनुजी क्या कहते हैं सोः—

यामो वैव स्वताराजा, यस्त वैष हहृदि स्थितः ।
तेनचेद विवादस्ते, मां गङ्गा म कुरु गमः ॥ १
यस्य हस्तौच पादौच्, मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च तीर्थश्च, स तीर्थ मल श्नुते॥ २
अशनं व्यसनं चैव, गङ्गा तीर कुमागते :।
कीकेटेन समा भूमी, गङ्गा चाङ्गार वाहिनी॥३॥

अर्थात्–अरे मनुष्य ! यह जो अन्तर जामी तेरे हृदय में है यदि तूझे इस बात का विवाद नहीं है तो तूं गंगा कुरू क्षेत्र आदि तीर्थों को मत जा ॥ १ ॥ जो हाथ पांच इन्द्रि और वाणी को नियम में रख रक, विद्या और तप रूप तीर्थ करता है. उसे दूसरे तीर्थ से कुछ भी जरुर नहीं हैं. ॥ २ ॥ जो गंगा आदि तीर्थों में जाकर पाप कार्य करता है तो वो नदीके किनारेके कीटक (कीडे) तुल्य है, और जले हुवे अंगारे की तुल्य है. कीजीये भाइ ! और इस से भी ज्यादा क्या कहें *

* आत्मा शुद्ध तो तपश्चर्या से होती है. देखीये ऋषि कुल ग्रन्थ.
श्लोक–केवर्त गर्भ सभुतो ।व्यसो नामं महा मुनि ॥ १ ॥
तपः श्चर्या ब्राह्मण जातो । तस्मात न जाति कारणं ॥
चडाल गर्भ संभुतो । विश्वामित्र महामुनि ॥
तपश्चा ब्राह्मण जातो । तस्मात् न जाति कारणं ॥ ॥ २
अर्थात तपश्चर्या से आत्म पवित्र कर धीवरणी और चांडलनी की कुक्ष से उत्पन्न हुवे व्यासजी और विश्वामित्रजी ब्राह्मण के और महा ऋषि के पदको प्राप्त हुवे हैं.

और श्री जिनेश्वर भगवान का फरमान है कि ' नहूं जिनो अज्ज दीसइ ' अर्थात्–पंचम कालमें तीर्थंकर द्रष्टी गौचर न होंगे नहीं. इन वचनो पर आस्ता नहीं रखते, तथा मोक्ष गये जीवो की पूनरावर्ता नहीं होती है, ऐसा जानते हुवे भी जो पहाड ग्राममें देव धोकते फिरते हैं. और ग्रहण आदि प्रासंग में पाणी ढोलते हैं. वगैरा जो काम करते हैं सो लोक मुढता.

इस मुढ ता को छोड. अष्ट पाहूड सूत्रके चौथे वौध पाहूड में कहे मुजब तीर्थ करना चाहियेः–

गाथा –जं णिम्मलं सु धम्मं । सम्मत्तं संजमतवंणाणं ॥

तं तित्थ जिणमग्गो । हवेइ ज दीसंति भावेण ॥ २ ॥

श्री जिनेश्वर के मार्ग में तो क्षमादि दश प्रकार का निर्मळ शुद्ध यति धर्म तप संयम ज्ञान ध्यान इनहीको तीर्थ (संसार से पार पहोंचाने वाले) कहे हैं. येही सच्चा तीर्थ है.

३ " समय मुढता " शास्त्र सम्बन्धी अथवा धर्म समवन्धी जो बुद्धि की विप्रीत ता होति है. उसे समय मुढता कहते हैं. जैसे अज्ञानी लोकों के चित को चमत्कार करने वाले ज्योतिष, मंत्र वाद या कूकथा के शास्त्र उनको सुनकर देखकर, श्री वीतराग सर्वज्ञ द्वारा किये हुवे जो सत्शास्त्र व समय(धर्म) है. उसे छोड कर मिथ्यात्वि देव को माने. मिथ्या आगम को पढे सुने. खोटा तप करे, तथा खोटा तप करने वाले कुलिंगी–साधू ओं को भयसे, वांच्छा से, स्नेह से और लोभके वश हो जो धर्म जान नमस्कार विनय पूजा सत्कारादि करते हैं. उन सब को समय मूढता कहना क्योंकि सुख दुःख तो कर्माधीन है, तथा मंत्र आदिक का जो ढोंग करते हैं. जिनने वि-

हो मद नहीं कर ते हैं.

३ 'लाभ मद' लाभालाभ तो लाभान्तराय कर्म के उदय अनुदय से होता है, और लाभान्तराय कर्म दूसरे के लाभमें अन्तराय देने से बन्धता है, सो भोगवनाही पडता है अर्थात् लाभान्तराय उदय होने से इच्छित वस्तु की प्राप्ती नहीं होती है. और जिनोने अपनी प्राप्त वस्तुका बहुतों को लाभ दिया है वो जीव लाभान्तराय तोडते हैं. उनको सर्व इच्छित पदार्थ मिलते है. ऐसा जान सम्यक्त्वी जन प्राप्त वस्तूका गर्व नहीं करते हैं और दान देते हैं.

४ 'एश्वर्य मद' एश्वंय मालक को कहेत हैं, ज्ञान द्रष्टीसे देखत हैं तो कोइ किसी का–नाथ मालक नहीं है, क्योंकि सब जीवों अपने २ कर्म से ही सुखी दुःखी हो रहे हैं. कोइ भी किसी को सुखी करने और दुःखसे उवारने–बचाने समर्थ नहीं है, तो फिर मालकीपना काय का. यह तो मेले तमासे जैसा सम्बन्ध मिला ऐसा जानकर सम्यक द्रष्टी श्वर्य वंत होकर भी गर्व नहीं करते हैं.

५ 'बल मद' विर्यान्तरायका नाश होने से तीर्थंकर भगवंत अनंत बली होते हैं, उनकी चिट्टी अगुंली अनंत इन्द्र मिलकर भी नमा नहीं सक्के हैं. ऐसे प्राक्रमी होने परभी. जो घोर उपसर्ग के कर्ता मरणान्त जैसे संकट के कर्ता पर भी कभी करूर अध्यवशाय नहीं करते हैं, तो अन्यका तो कहनाही क्या ? ऐसे प्राक्रम और ऐसे सील स्वभावी के आगे अन्यका बल कौनसी गिनती में है, ऐसा जानकर सम्यक्त्व द्रष्टी सामर्थ्य होकर भी गर्व नही करते हैं. और न किसी को दुःख देते हैं.

६ 'रूप मद' इस गन्धी देही का कदाचित् गौर आदि रंग होगया, चमकती हुइ चमडी दिखने लगी, तो भी अन्दर तो

असूचीका भंगारही भरा है. ⊛ चमडे का टूकडा या चमडेके अन्दर की कोइभी वस्तु निकाल देखनेसे कितनी मनोहर लगती है, इसका जरा विचार कीजीये. यह प्राण प्यारे शरीरके अन्दर रहे हुवे रोगो में का जो कभी पापोदय कर एक भी रोग प्रगट हो जाय तो इस शरीर को कुत्ते भी न सूंघे! ऐसा इस शरीर का माजना जान सम्यक द्रष्टी रूप वंत होकर भी गर्व नहीं करते हैं.

७ 'तप मद' तपश्चर्या जो करते हैं सो कर्म काटने को का ते हैं, और फिर उस का दुसरा फल मद कर यशः कीर्ति का चा- हना तो फिर यह तो धर्म को ठगने जैसा होगया! इस अधम्म पने से न तो कर्म कटे, और न किसी सूखकी प्राप्ती होवें. हां, लोकों में महिमा हो जाती है. तो यह ऐसा मूर्ख पना हो जाता है कि जैसे कोडी के वदल में कोडका रत्न दे देना. ऐसे हीं अनन्त दुःख से मूक्त करने वाले तप को फक्त दोदिन की वहा २ के लिये गमा दे- ऐसी मूर्खता सम्यक द्रष्टी कदापि नहीं करते निर्भीमान गुप्त तपकर पूर्ण फल प्राप्त करते हैं.

८ 'श्रुति मद' श्रुति ज्ञान के और मद अभीमान के अ- नादि काल से वैर-दुशमनाइ है, एक होय वहां दूसरा टिकही नहीं सक्ता है, और कदाचित रहगया तो जो वलिष्ट होता है, वोही प्रति पक्षी का सत्यानाश कर धूल में मिला देता है! फिर ज्ञान जैसे अ- त्यूतम पदार्थ का नाश करने, अभीमान जैसे नीच शत्रू को सम्यक

* थूक रू लाल भर्यो मुख दीसत, आँख में गीडरू नाकमें सेडो ॥
और हि द्वार मलीन रहे अति हाड के मस के भीतर वेडो ॥
ऐसे शरीर में वास कियो तब एकसा दीसन यमन देडो ॥
सुंदर गर्व कहा इतने पर, कांहे को तूं नर चालत तेडो ॥ १ ॥

स्व द्रष्टी अपने हृदय सदनमें कब प्रवेश करने देंगे, अर्थात् कभी नही

यह आठों ही मद अनेक दोषों कर प्रती पूर्ण भरे हुवे हैं, ऐसा जान वरोक्त जाती आदि आठ ही उत्तम पदार्थों की जो पुर्वोपार्जित पुण्योदय से सम्यकत्व द्रष्टी को प्राप्ती हुइ है, उसे मद जैसे नीच मार्ग में नहीं व्यय करते वापरते समय धर्म धर्मोन्नती वैयाव्रत्य वगैरा शुभ मार्ग में लगा आत्मोद्धार करते हैं.

३ अनायत्तन

सम्यक्त्व आदि सद्गुणों का जो रहने का स्थान (घर) होवे उसे अयत्तन कहते हैं. और जिस कार्य से सम्यक्त्वादि सद्गुणों का नाश होवे उसे अनायतन कहते हैं. इस लिये सम्यक्त्वादि गुणों की रक्षा के लिये सम्यक्त्व द्रष्टी को उन गुणो के नाश करने वाले ६ अनायतन से बचना चाहीये. सो कहते हैं.

१ " मिथ्यात्वी देवों की उपासन " –जिनो में देव के गुन नहीं होय, जो स्त्री, शस्त्र, भूषण, पुष्प, फल, राग-रंग, नाटक-ख्याल, सुगन्ध, भोगोप भोग, व मदिरा मांस आदि के भोगवने वाले; राग-द्वेष, विषय, कषाय, युक्त. इत्यादि दुर्गुण के धारक हो-वें, ऐसेदेव की उपासना- भक्ति-पूजा कदापि नहीं करे. किसी वक्त लौकीक व्यवहार साधने गाढ गाढी प्रसंग में फसकर करना पडे तो धर्म बुद्धि नहीं रखे, और सर्व समक्ष खुला कह दे कि इस. प्रसंग से यह काम मुझे करना पडता है. ऐसा सुनकर अन्य सम्यक द्रष्टी फंद में नही फसे, अपनी सम्यकत्व निर्मल रख सके.

२ ' मिथ्यात्वी देवों के उपाशक का परिचय ' संगत की असर वहूत कर होती रहती है. इसलिये भगवंत ने सम्यकत्व के पंचम

३ ' मिथ्या तप ' कार्तिक पौषादिक शीत कालमें प्रा
कर कितनेक तप समजते हैं. तैसे ही तीर्थ स्नान में, पर्व
स्नान में. कंद, मूल दूध फल मेवा मिष्टान आदि भक्षण कर
श्रधे ते हैं, अग्नी ताप नेमे, पाणी में पडे रहने में, काँटे खीले प
बेठने में, तीर्थाटन में, हस्त पाद आदि अंग काष्ट वत सुख
नख केश (जटा) बढाने में, इत्यादि अ-कार्य कर जो अन्य
लम्बियों तप श्रधेते हैं. परन्तु सम्यक द्रष्टी ऐसा मिथ्या तप द
मुरजाते नहीं हैं, क्योंकि ऐस तप में असंख्य स्थावर जीवों क
त्रस का वध होता हैं, और माल मशाले खाने से विषय की
होती है. और जो कु हेतू देकर कहते हैं कि ' आत्मा सो पर
है ' इसे तरसाना नहीं, तो फिर इतनाभी तप क्यों करते हैं. और
ऋषि गों ने ओलीयो ने तप किया सो वो क्या अज्ञानी थे ? ऐस
जानते हुवे भी पुद्गला नन्दी बन कू उपदेश कर भोले लोको
गाते हैं. इस भरममें सम्यक द्रष्टी कदापि नहीं पडते हैं. उनका
करण नहीं करते हैं.

४ ' मिथ्यात्वी तपस्वियों का परिचय ' मिथ्या–झुटा त
करने वाले जो तपस्वियोंमें गुण तो मिलना मुशकिल है, परन्तु
अधिक होता है, और मिथ्यात्वियों का तप बहुत कर अभिल
फल की वांछा सहित होता है. अर्थात् भोजन, वस्त्र, धन, यशः
राज पद, वैकुंठ, वगेरा कुछभी इस तप के प्रभाव से हमे मिल
मिलेगा, इस उम्मिद से वो तपश्चर्या करते हैं.

मनहर—लीना कहे कूड जोग। रहा भुगत जो भोग।
। पाय परे मुढ लोग। खूब खाय दूध मट के ॥
केते होय के संन्यासी। नहीं आत्मा तपासी।

जो पे पाय पग फांसी । तर वर तले लट के ॥
केते छार में हो क्ष्वार । काट डाले कान फार ।
शुभ हार गुन सार । फिरे तीर्थ को भट के ॥
चंपा विन मोडे मान । निज विषे निज धन ।
ताही के गवेषे विन । थोथे कन फट के ॥ १५ ॥

इस लिये उनका तप भगवंत की आज्ञा विरूद्ध गिना जाता है ❀ जो सम्यक द्रष्टी मिथ्यात्वियों का परिचय करेगा तो भगवंत की आज्ञाका उलंघन करने वाला गिना जायगा. और विशेप परिचय से उन के ढोंग देख, सत्य तप परसे रूची उतार, इस लोक के सुख में लुब्धहो मिथ्यातप कर सम्यक्त्व गमा देगा. इत्यादि कारण से मिथ्या तपस्वियों का सत्कारसन्मान भी नहीं करना. क्योंकि मिथ्या तप की वृद्धि होने से वो मिथ्यात्व का व हिंशाका वढाने वाला हो जायगा.

छापय—जटा धरे वट वृक्ष । पतंग वाले निज काया ॥
जलचर जलमें न्हाय । ध्यान धर वा वग धाया ॥
गाडर मुंडावे शीस । अजा मुख दाढी राखे ॥
गर्दभ लोटे छार । शुक मुख रामजी भाखे ॥
वली मोह तजे छे माननी । श्वान शकल नुखाय छे ।
शामल कहे साचा विना । कोण स्वर्ग मे जाय छे ॥ १ ॥
ऊंचो भाले ऊट । बगलो नीचो निहाले ॥
तरुवर सहे छे ताप । पहाड आसान द्रडवाले
घर करी न रहे सांप । उंदरो रहे छोपेने ॥
नोली कर्म गज राज । भक्ष फल पत्र कपिने ॥
इश्वर अनुभव विन नव मले । सहज भावना भगछे ॥
शामल मनना सिद्ध जेहने । नो कथोटी मांग गछे ॥ २ ॥

५ 'मिथ्या शास्त्र पठन' जिन शास्त्रों में दया, क्षमा, शील, सत्य, त्याग, वैराग्य आदि सदगुणों प्राप्त होवे ऐसा कथन नहीं होवे. हिंशा, झूट, चोरी, कूशील, परिग्रह, क्लेश, झगडे, क्रिडा, भोगोपभोग मदिरा, मांस, सिकार, संग्राम आदि की परसंस्या–वाख्यान होवे. जिसके श्रवण करने से विषयाराग जगे, या क्रोधादि कषायों की वृद्धि होवे, ऐसा कथन जिनोंमें होवे ऐसे शास्त्रोंको मिथ्या शास्त्र कहे जाते हैं. जैसे शास्त्र पठन व श्रवण करने में आते हैं. मगजमें वैसाही विचार रमण करता है, और विचार आकृती धारण कर वैसे ही कार्य कराने की प्रेरना कर आखिर वैसाही काम करा डालता है, अर्थात्–सद्गुणी कु–मार्ग में रमण कर अनाचार-विपय-कषाय आदि सेवन कर उत्तम नर जन्मकी ख्वारी कर डालते हैं, इत्यादि दुषण जान सम्यक द्रष्टी कु शास्त्र का पठन पाठन सर्वथा वर्जते हैं.

६ 'मिथ्या शास्त्रके धारक का परिचय' इस संसारमें अनादि से सुमति और कूमति दोनों ही चली आती है, और दोनोंही पन्थ का स्वरूप दर्शाने उन पन्थ के अनुयायीयों विद्वरों ने अपनी २ मति कल्पना प्रमाणें अनेक शास्त्रों की रचना रची है. * और उस रचना मुजब सबको बनाने चलाने अपने से बनता प्रयत्न कर रहे हैं. अपने २ मतकी तह चित से स्थापना करने खप रहे हैं. उन की परिक्षा सम्यक द्रष्टीको सम्यक द्रष्टी द्वराही करना चाहिये. कि इनमें सचा

* गाथा–धम्मी फल हेवत । जाचिक उदराय अधम लोभादी ॥
पर जणाय भंडाय । ण लजय हासि जोडव कताए ॥ ६४ ॥

अर्थात्–धर्मी जन धर्म फल के अर्थ, याचक जन पेटार्थ, अधर्मी द्रव्यार्थ (धन के लिये.) भांड दूसरे को रींजाने, निर्लज्ज दूसरे को हँसाने जोड करते हैं–कवीता बनाते है. ऐसा सुद्रष्ट तरंगणी मे लिखा है.

कौन और झुटा कौन ? जो उपर कहे पंच वोलों में कु कथनी के लक्षण वताये हैं, ऐसे कू शास्त्र के वौधक जो जान ने में आवे उन का परिचय–संगत सम्यक द्रष्टी को नहीं करना चाहीये.

मनहर—झुटि ऐसी पांडिताइ । पिंड पापकी भराइ ।
पिंड पातिक लगाइ । कहा पाइ शुद्ध ताइ को ॥
ज्ञान ध्यान को भूलाइ । गुझ वुझ सूज ताइ ।
सीख पाइ कपटाइ । निज स्वार्थ सजाइ को ॥
अच्छी गीलट वनाइ । निज औगुन छिपाइ ।
मुढ लोग भरमाइ । खान पान की जुगाइ को ॥
यहा राज पोपा वाइ । चंपा चाह सो चलाइ ।
आगे राज यमराइ । माह सजा है अन्याइ को ॥ ३६ ॥

"सम्यकत्व के ८ दोष."

१ राग आदि दोष और अज्ञान यह दोनोंहि असत्य (झूट) वोलने में कारण भूत हैं. और राग तथा अज्ञान का वीतराग–सर्वज्ञ श्री जिनेन्द्र देव ने सर्वथा नाश कर दिया है. इस कारण श्री जि-नेश्वर देवसे निरूपित हुवे हेय (त्याग) उपादेय (ग्राह्य) तत्वों में-मोक्ष और मोक्ष के मार्ग में सम्यकत्वी यों को संदेह नहीं करना चाहिये, तत्व ये ही है, ऐसे ही है,अन्य नहीं हैं, अथवा और प्रकार नहीं हैं, ऐसी निष्कम्प खड्ग धारके समान सन्मार्ग में संशय रहित रूचि स्थापित करना, इसको निशंकित अंग कहते हैं. यह व्यवहार नयसे सम्यक्त्वका व्याख्यान किया, और निश्चयसे उस व्यवहार निशंकित गुण की सहाता से इस लोकादि सात ही भय से रहित होकर, घोर उपसर्ग तथा परिसह उपजने पर भी शुद्ध उपयोग रूप जो रत्न त्रय

है, उसकी भावना से जो चालित नहीं होता है. सो निश्चय से निशंकित गुण है.

२, कंखा ' निष्कांक्षित इस लोक तथा पर लोक सम्बन्धी अशा रुप जो भोग कांक्षा निदान है, इसका त्याग कर के जो केवल ज्ञान आदि अनंत गुणों की प्रगटता रूप मोक्ष है, उसके अर्थ ज्ञान ध्यान तपश्चर्या आदि अनुष्ठानों का जो करना है वही निकांक्षित गुण है. कर्म आधीन अंत सहित उदयमें दुःख मिश्रित और पाप वीज रूप सुख में अनित्यताका श्रद्धान निकांक्षित अंग है. यह व्यवहार निष्कांक्षा गुन का स्वरूप कहा, अब निश्चय से उसी व्यवहार निष्कांक्षा गुण की सहायता से देखे सुने तथा अनुभव किये हुवे जो पांचो इन्द्रिय यों सम्बन्धी भोग है. इन के त्याग से रत्न त्रय की भावना से उत्पन्न जो परमार्थिक निज आतमा से उत्पन्न सुख रुपी अमृत रस है, उस मे जो चितका संतोष होना वही निष्कांक्षित गुण है.

३ ' विती गिच्छा ' निर्विचिकित्सा भेद अभेद रुप रत्न त्रयका आराधने वाले जो भव्य जीव हैं, उनकी दुर्गन्धि तथा भयंकर आकृति आदि को देखकर धर्म बुद्धिसे अथवा करुणा भावसे यथा योग्य विचिकित्सा (ग्लानि) को जो दूर करना है. इसको द्रव्य निर्विचिकित्सा गुण कहते हैं. और जैन मत में सब अच्छी २ बाते है. परन्तू वस्त्रकी मलीनता और जल स्नान आदिक नहीं करना ये ही दुषण. इत्यादि कुत्सित भाव है, इन को विषेश ज्ञान के बल से दूर वह निर्विचि कित्सा गुण है. मतलवकी रत्न त्रयि से पवित्र किन्तू स्वभाविक अपवित्र शरीर में ग्लानी नहीं करके, गुणों में प्रीती करना यह व्यवहार निर्विचिकित्सा गुण है. और निश्चय से तो इसी व्यवहार निर्विचि कित्सा के सहाय से जो समस्त राग द्वेष आदि विकल्प त-

रंगो के समूह का त्याग करके निर्मल आत्मानुभव लक्षण निज शुद्ध आत्मा में स्थित करना है वह निर्विचि कित्सा गुन हैं.

४ 'असुढ द्राष्टि '. श्री वीतराग सर्वज्ञ देव कथित जो शास्त्र का आशय है, उस से वाहि भूत जो कू द्रष्टियों के वनाये हुवे अज्ञानी जनो के चित में विषय उत्पन्न करने वाले धातुवाद, खान्यवाद, हर में खल, क्षुद्र विद्या, व्यन्तर विकुर्वणादि शास्त्र है, उनको पढकर और सुन कर जो कोइ मुढ भाव से धर्म की बुद्धि कर के उन में प्रीती को तथा भक्ति को नहीं करता है, और दुःख दायक कूत्सित मार्ग में और कु मार्ग में स्थित पुरुषों में मन से प्रमाणता, वचन से स्तुती, और कायासे भक्ति परसंशा नहीं करने को व्यवहार से अमुढ द्रष्टि गुण कहते हैं. और निश्चय में इसी व्यवहार अमुढ द्राष्टि गुणके प्रसार से जव अन्त रंग के तत्व (आत्मा) और वाह्य तत्व (शरीरादि) का निश्चय हो जाता है, तव संपूर्ण मिथ्यात्व रागादि शुभा शुभ संकल्प विकल्पों * के इष्ट जो इन में आत्म बुद्धि, उपादेय (ग्राह्य) वुद्धि, हित बुद्धि और ममत्व भाव है, उनको छोडकर, मन वचन काय इन तीनों की गुप्ती रूपसे विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभावक धारक निज आत्मा है. उस में जो निवास करना (ठहरना) है वही अमुढ द्रष्टी नामक गुण हैं.

५ 'उप गुहन ; यद्यपि भेद अभेद रत्न त्रयिकी भावना रूप

---

* पुत्र तथा स्त्री आदि जो वाह्य पदार्थ है उनमें यह मेरे हैं ऐसी जो कल्पना है वह संकल्प है, और अन्तरंग में मै सुखी हु, मै दुःखी हु इस तरह हर्ष व खेदका करना वह विकल्प है. अथवा यथार्थ रूप से जो संकल्प है, वही विकल्प है. अर्थात् संकल्प के विवरण रूप से विकल्प संकल्पका पर्याय है.

जो मोक्ष मार्ग है वह स्वभाव से ही शुद्ध है. तथापि उसमें जब कभी अज्ञानी मनुष्य के निमित से अथवा धर्म पालन में असमर्थ जो पुरुष है, उन के निमित से जो धर्म की चुगली निंदा दुषण, तथा अप्रभावना होवे तब शास्त्र के अनूकुल शक्ति के अनुसार धन से अथवा धर्म के उपदेश से जो धर्म के लिये उन के दोषों को ढकना. तथा दूर करना. निर्दी को दूर करना सो व्यवहार उप गुहन गुन है. इसी प्रकार निश्चय में व्यवहार उप गुहन गुणकी सहायता से अपने निरंजन निर्दोष परमात्मा को ढक ने वाले जो रागादि दोष है, उन दोषों की उसी परमात्मा में सम्यक ज्ञान श्रद्धान तथा आचरन रूप जो ध्यान है, उन के द्वारा जो ढकना-नाश करना–छिपाना तथ झपना है सोही उप गुहन गुण है.

६ ' स्थिती करण ' भेद तथा अभेद रूप रत्न त्रय को धारन करने वाले जो साधू, साध्वी, श्रावक तथा श्राविका रूप चार प्रकार का संघ है, उसमे से जो कोइ दर्शन मोहनिय के उदय सें दशनको अथवा चारित्र मोहानियके उदयसे चारित्र को छोडने की इच्छा करे, उनको शास्त्र की आज्ञानुसार यथा शक्ति धर्मोपदेश श्रवण करावे, धनसे व सामर्थ्यसे और किसी भी उपायसे जो धर्ममें स्थिर कर देना है, व व्यवहारसे स्थिर करण गुण है. और निश्चयसे उसी व्यवहार स्थिर करण गुण से जब धर्म में द्रढता हो जावे तब दर्शन मोहनिय तथा चारित्र मोहनिय के उदय उत्पन्न जो समस्त मिथ्यात्व राग आदि विकल्पोंका समुह है. उस के त्याग द्वारा निज परमात्मा की भावना से उत्पन्न परम आन्नद रूप सुखामृत रस के अस्वाद रूप जो परमात्मा में लीन अथवा परमात्म श्वरूप समरसी (समता) भाव है. उस से जो चितका स्थिर करना है, वही स्थिती करण गुण है.

७ 'वात्सल्य' बाह्य और अभ्यन्तर इन दोनोंप्रकार के रत्न त्रय को धारन करने वाले, मुनि आर्यिका. श्रावक-श्राविका रूप चारों प्रकार के संघ में जैसे गौ (गाय) की वत्स में प्रीति रहती है, उस समान अथवा पांच इन्द्रियों के विषय के निमित पुत्र स्त्री सुवर्ण आदि मे जो स्नेह रहता है, उसके सामान्य अतुल्य स्नेह (प्रिती) का जो करना है, व व्यवहार नय की अपेक्षासे वात्सल्य गुण कहा जाता है, और व्यवहार वत्सल्य गुण के सहकारी पणे से जव धर्म में द्रढता हो जाती है तव मिथ्यात्व राग आादि संपूर्ण वाह्य पदार्थों में प्रितीको छोडकर रागादि विकल्पों की उपाधी रहित परम स्वस्थान के ज्ञान से उत्पन्न सदा आन्नद रुप जो सूख मय अमृत का स्वाद है, उस के प्रते प्रिती का करनाही निश्चय वात्सल्य है.

८ प्रभावना' जो तप और ज्ञान करके जैन धर्मकी प्रभावना करते हैं. और श्रावक व सम्यक्त्वी ज्ञान प्रसार दान पुण्य सील वृतादि कर जैन धर्म दिपाते हैं, मतलव की अज्ञान अन्धकारकी व्याप्ती को जैसे तैसे दूर करना सो व्यवहार प्रभावना है, और निश्चय से इसी व्यवहारक प्रभावक गुण के वल से मिथ्यात्व विषय कपाय आदि जो संपूर्ण विभाग परिणाम है उस रुप जो परमतोंका प्रभाव के धारक निज शुद्ध आत्म का जो प्रकाश अर्थात् अनुभव करना सो ही प्र-भाव है.

यह ३ मुढता, ६ अनायतन, ८ मद, ८ दोप मिलकर स-म्यक्त्व के २५ मल है. इन से रहित, और जीव आदि तत्वोंका शुद्ध श्रद्धान रुप लक्षण का धारक स-राग सम्यक्त्व व व्यवहार सम्यक्त्व जिसको जाना चाहीये. और इस सम्यक द्वारा परंपरा सेसाधने योग्य-शुद्ध उपयोग रुप निश्चय रत्न त्रय की भावनासे उत्पन्न जो परम अ

हलाद रुप सुखामृत रस अस्वादन है. वोही उपादेय है. और इन्द्रिय जन सुखादि हेय (त्यागने जोग) हैं. ऐसी रुची रुप, तथा वीतराग चारित्र के विना नहीं उत्पन्न होने वाला ऐसा वीतराग सम्यक्त्व नामका धारक निश्चय सम्यक्त्वकी साधना (सिद्धता) होती है, इस साध्य साधक भावको अर्थात् व्यवहार सम्यक्त्व साधक और निश्चय सम्यक्त्व साध्य हैं.

जीवों के सम्यक दर्शन का ग्रहण होने के पहिले आयूका वन्ध नहीं हुवा होतो.

सम्यग्दर्शन शुद्धा नारक तिर्य तिर्यग्न पुंसकं स्त्री त्वनी ।

दुष्कृत विकृत्ताल्पायु दरिद्र तांच व्रजान्ति व्रतिका: ॥

अर्थात्—जिनको शुद्ध सम्यक्त्व दर्शन हुवा है, ऐसे जीव नर्क गति और तिर्यंच गति में नहीं उपजते हैं तथा नपुंसक, स्त्रीपना, नीचकूल, अंगहीन शरीर आल्पायु, और दरिद्री पना को प्राप्त नहीं होते हैं. और मनुष्य गती पाते है वहा:—

ओजस्तेजो विद्या विर्य यशोवृद्धि विजय विभव सनाथाः ।

उत्तम कुला महार्था मानव तिलका भवन्ति दर्शन पूता ॥१॥

अर्थात्—जो सम्यक दर्शन से शुद्ध हैं ऐसे जीव दिप्ती, प्रताप विद्या, वीर्य, यशः वृद्धि, विजय, और विभव से सहित होते हैं, और उत्तम कुल वाले तथा विपुल (वहुत) धन के स्वामी, हो सर्व मनुष्यो में श्रेष्टता प्राप्त करते हैं.

और जो देव गति में उत्पन्न होते हैं तो प्रकीर्ण देव, वाहन देव, किल्विप देव, व्यन्तर देव भवन वासी देव, और जोतषी देव, के पर्याय को छोडकर, अन्य जो महा ऋद्धी धारक देव हैं उन में उत्पन्न होते हैं.

अब तत्वार्थ सूत्रमें कहे मुजब सम्यकत्वके प्रश्नोतर लिखते हैं.

सूत्र-" निर्देश स्वामित्व साधना-धिकरण स्थिती विधानतः "

प्रश्न-निर्देश—अर्थात् सम्यक दर्शन क्या पदार्थ है? उत्तर-सूत्र ' तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ' अर्थात्-जो पदार्थ जैसे अवस्थित है, तैसा उसका होना सो ' तत्व ' है, और जो निश्चय किया जावे वह ' अर्थ ' है तत्वरूप जो निश्चय सो तत्वार्थ हैं. तात्पर्य कि-जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित है. उसका उसी प्रकार से ग्रहण—निश्चय होना सो तत्वार्थ जिन शास्त्रोंसे प्रती पाद्य जो तत्व (जीवादि) का श्रधान अथवा तत्व से जो अर्थ का श्रधान है उसको तत्वर्थ श्रधान कहते हैं, और उसी तत्वार्थ श्रधान को सम्यक दर्शन कहते हैं.

प्रश्न—' स्वामित्व ' अर्थात् सम्यक दर्शन का श्वामी कौन है? सम्यक दर्शन किनको होता है? उत्तर-सम्यक दर्शन का श्वामी जीव है, अर्थात् जीवको ही सम्यक दर्शन होता है. यही वात जरा विस्तार से कही जाती है:-१ ' गति ' नर्क में किसी जीव को सम्यक्त्व होता हैं. (१) पहिली नर्क के अपर्यासा पर्यासा दोनो प्रकारके जीवों में क्षायिक और क्षयोपशम सम्यकत्व होवे. दूसरी नर्क से सप्तमी नर्क तक अपर्यासा अवस्था में सम्यक्त्व नहीं होती है, पर्यासा में हो तो उपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्व होवे. (२) जुगलिये तिर्यच पचेंन्द्रिय के अपर्यायसा में सम्यक्त्व दो पूर्वोक्त, तीसरी उपशम. कर्म भूमी तिर्यच के अपर्यासा में सम्यक्त्व नहीं, और पर्यायसा में दो सम्यक्त्व उपशम क्षयोपशम. (३) मनुष्य के अपर्यासा मे दो सम्यत्व क्षायिक क्षयोपशम, पर्यासा में तीन ही. ४ भवन पति, वाणव्यतर, जोतषी के अपर्यासा में सम्यक्त्व नहीं, पर्यासा में दो उपशम क्षयोपशम. और विमानिक देव के अपर्यासा में पर्यासा दोनोही मे सम्यक्त्व

कत्व कदापि नहीं होता है; बाकी के जीव काल लब्धी पके से सम्यकत्व प्राप्त कर मोक्ष को पाते जाते हैं. इस अपेक्षा सम्यकत्व है.

८ प्रश्न–'संख्या' अर्थात् सम्यक दर्शन कितना है? उत्तर सम्यक दर्शन तो असंख्य है, और सम्यक द्रष्टी अनन्त हैं.

९ प्रश्न–'स्पर्शन' अर्थात् सम्यक दर्शनने क्या स्पर्शन किया है? उत्तर छद्मस्त आश्रिय लोकका असंख्यात मा भाग स्पर्शन किया है. और केवली आश्रिय संपूर्ण लोक स्पर्शन किया है.

१० प्रश्न—'काल' अर्थात् सम्यक दर्शन कितेनेक काल तक रहता है? उत्तर–एक जीव आश्रिय जघन्य अन्तर मूहुर्त, उत्कृष्ट ६६ सागर. बहुत जीव आश्रिय सदा ही बना रहता है.

११ प्रश्न—'अन्तर' अर्थात् सम्यक दर्शन का विरह कितना होता है? उत्तर–एक जीव आश्रिय जघन्य अन्तर मूहुर्त. उत्कृष्ट अर्ध पुद्गल परावर्तन. और अनेक जीव आश्रिय विरह कदापि नहीं पडता है.

१२ प्रश्न—'भाव' अर्थात् सम्यकत्व कौन से भावमे पाता है? उदायिक और प्रणामिक भाव छोड बाकी के उपशमिक, क्षयोपशमिक और क्षायिक भाव में सम्यकत्व होता हैं.

१३ प्रश्न–'अल्प बहुत्व' अर्थात् तीनो सम्यकत्व में तुल्य ज्यादा कमी कौन २ है? उत्तर सब से कम औपशमिक, उससे क्षयोपशमिक असंख्यात गुणे, और उससे क्षायिक वाले अनन्त गुणे अधिक होते हैं.

यह सम्यकत्व के भेदानुभेद कर के यत्किंचित स्वरूप बताया.

एवं जिण पणत्तं । दंसण रयण धरेह भावाणं ॥
सारं गुण रयण तये । सोवाणं पढम मोख्ख स्स ॥ २१ ॥

अर्थात्-अहो भव्यों ! ऐसा जिनेश्वर भगवन्तका फरमाया हुवा जो सम्यक्त्व रत्न है सो सर्व गुणोंमें का अव्वल दरजेका गुण, और मोक्ष मार्ग का पाहिला ही पंक्तिया है; इसे अंतःकरण के पवित्र भाव से धारण करो !

ऐसे सम्यक्त्व के धरने वाले सम्यक्त्वी जीव विचार करते हैं. कि रें जीव ! तुझें इस अपार संसार में परिभ्रमण करते २ अनन्त पुद्गल परावृतन वीत गये, जिसमें अज्ञानने अन्ध वन, मोहफन्दमें फन्द ज्ञान दर्शन चारित्र तप आदि धर्म कार्य की व इनको आराधने वाले चारही तीर्थों की अनेक वक्त विराधना करी, निंदा करी, इर्षा किया, व्रतादि ग्रहण किया उनको यथोक्त पालन नहीं किया, व भंग किया. ढोंगी धुतारा पणा व धर्म ठगाइ करी, पेटार्थी वन महा कर्म उपार्जन किया, पंचइन्द्रि चार कषाय को पोषणे, स्वजन परजन को तोषणे, धर्म अर्थ, काम अर्थ, मोक्ष अर्थ, छःकाया जीवोकी विराधना कर, वज्र कर्मों पार्जन किये. जिन कर्मोंको भोगवणे, नर्कादि दुर्गति में महा विटंवना सहन करी, परन्तू अभी तक उन कर्मों का अंत आया नहीं. अकाम सकाम निर्जरा के जोग से अनंत शुभ कर्मों की वर्गणा की वृद्धि होने से पचेन्द्रीत्व, मनुष्यत्व, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल निरोग शरीर, सद्गुरू की जोगवाइ इत्यादि आत्म तारने की सामुग्री मिली; श्री गुरू दयाल ने मेरेपर परमोपकार अनुग्रह कर तत्वार्थ प्रकाश करने वाली देशना मेरे श्रवण करा, समजा, रुचा, जचा, पचाइ, जिससे मेरे कुछ हृदय नेत्र खुले, वौध वीज सम्यक्त्व रत्न मेरे हाथ लगा. अव मिथ्यात्व, मोह, काम, कपाय आदि ठगार. व कू-देव गुरू धर्म रूप महाठगो से मेरे सम्यक्त्व रूप सद्द्रव्य को किसी प्रकार नुकसान नहीं पहोंचे, हरण नहीं होवे ऐसी तरह होंशार रह प्रवृती कर

ना उचित है, येही मेरा परम कृतव्य है.

सम्मत्तादो णाणं । णाणा दो सव्व भावओ लद्धी ॥
उवलद्धीय पयत्थे । पुणु सेयासेयं वियाणेहि ॥१५॥
सेयासेय विद एहु । उब्दुद दुसील वंतोवी ॥
सील फलेण भ्भुदंय । तत्तो पुण लहेइ णिव्वाणं ॥ १६ ॥

दर्शण पाहुड.

अर्थ-सम्यक्त्वके साथही ज्ञान प्रात होता है, जिससे जीवाजीव को जाणने की उलब्धी (शक्ति) प्राप्त होती है, वो पुण्य पाप के कर्तव्यो में समजता है, जिस समज से आत्म सुखार्थी पापका कृतव्य दुसीलको त्याग धर्म कर्तव्य सूशील का स्वीकार करते हैं. उन सूशील रुप उत्तम करणी के महा पुण्य के प्रभावसे वो तीर्थं कर हो. निर्वाण प्राप्तकरते हैं.

जो गफलतमें रह वरोक्त ठगारोंके वशमें पड ठगा जावूंगा, सम्यक्त्व रत्न हार जावूंगा. तो फिर 'आणि चूका वीसा सो' हो जायगा. अर्थात् पीछा यह रत्न हाथ लगना मुशकिल हो जायगा. ऐसा अतःकरण में खटका रख, जों जवहरीयों रत्नो के डब्वे की हिपाजत करते हैं. त्यों, वल्के उससे भी अधिक प्रणांत होने तक भी सम्यक्त्व में किसी प्रकार किंचित मात्र दोष न लगावे. और सम्यक्तवी तन। धन, जन को अनित्य जान; जिस पर से ममत्व कमी करे, धनको दान में चार तिर्थकी भक्ति में, धर्मोन्नती के कार्य में, हमेशा लगता ही रहे, जाने की जितना यह सु-कार्यमें लगेगा कमी होगा उतना ही मेरी आत्मा को अधिक सुख होगा. और शरीर को तप जप, क्रिया, वृद्धोकी, संघ की गुनीजनों की सेवा में लगावे, जाने; की यह काया कारमी रोग सोग व्याधी उपाधी कर भरी है, वो नहीं प्रगटे,

उसके पहिले इस में से निकले सो माल निकाल लेवूं. जैसे धने भरी की हवेली में आग लगने से वो बडे कीमती माल को पहिले निकालते हैं, तैसे इस देह रूप हवेली मे आयुष्य रूप लाय लगगी है. इस लिये पहिले उत्तम २ धर्म करणी कर लेवूं. और जन से स्वजनों धर्म मार्गमें लगावें अर्थात् सम्यक्तवी श्रावक साधू बनावे. उनसे भी धर्मोन्नती का कार्य करावे. यों सदा धन, तन, जन, से जितना लाभ लेवाय उतना लेने में बिलकुल ही कचास नहीं रखे.

आरंभ परिग्रह की बृद्धि वांछे नहीं. इन्द्रियों के भोगोप भोग में लुब्ध होवे नहीं. अनुचित तथा अपकीर्ती होवे ऐसा कार्य कदापि करे नहीं, वक्तो वक्त फुरसद की वक्त एकांत स्थानमें निर्जन जगह में, शांत चितसे ध्यानस्थ हो अर्हत सिद्ध, साधूकी, और अपनी आत्म शक्ति की तुल्यना सदा करता रहै.

श्लोक—प्रात पञ्च नमस्कृ तिर्यीतपतें जैनंच्चनस्य वृतिः ।
धर्मा चार मतिः प्रमाद विरतिः सिद्धान्त तत्व श्रुतिः ॥
सर्वज्ञोदित कार्य भाव करणं साधोश्च वैयावृतिः ।
श्रेयो मार्ग सदा विशुद्धि करणं श्लाघानराणां स्थितिः ॥ १ ॥

अर्थ-फजरही पंचपरमेष्ठीका स्मरण कर, विधी पूर्वक नमस्कार करना. फिर निग्रन्थ गुरूको नमस्कार करना स्तवना (गुणानुवाद) करना धर्मा चारका सदा पालन करना, प्रमाद (आलस्य) का त्याग कर नित्य शास्त्र का श्रवण कर उसके तत्वका यथातथ्य श्रद्धान करना. और उस में से जो कार्य अपने करने लायक होवे सो भक्ति पूर्वक (अभीमान रहित) करना. साधू की वैय वृत्य-भक्ती करना-विधी दूर करना, जो सन्मार्ग द्रष्टी आवे उसमें प्रवृती करना-चलना, यह सत्पुरूषों के श्लाघानिय-परसंस्य निय कृतव्य हैं.

दंसण भठा भठा । दंसण भठस्स नात्थि निव्वाणं ॥
सिझंति चरिय भठा । दंसण भठा न सिझेती ॥ ३ ।

—दंशन पाहुड.

अर्थ-जो सम्यक्त्वसे भृष्ट होवे उसे भृष्ट कहना, क्योंकि चारित्रका भृष्ट हुवा तो सीझता है अर्थात् निर्वान (मोक्ष) प्राप्त कर शक्ता है, परन्तु सम्यक्त्व से भृष्ट हुवे को मोक्ष नहीं होती है.

इत्यादि अनेक युक्तियों कर जो जीव सम्यकत्व रत्न की सम्यकत्व प्रकारे अराधना पालना स्फर्शना करते हैं. वो परमात्म पंथमें क्रमण करते हैं, तीर्थंकर पदको प्राप्त करते हैं.

ऐसे परमोत्तम सम्यकत्व रत्न की आराधना जो विनय वंत होगा सो ही कर सकेगा इसलिये विनय का वरणव आगे करने की इच्छा रख यहां इस प्रकरण की समाप्ती करता हुं.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाज की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी मुनिश्री अमोलख ऋषिजी रचित "परमात्म मार्ग दर्शक" ग्रन्थका "दंशण सम्यक्त्व" नामक दशवा प्रकरण समाप्तम्.
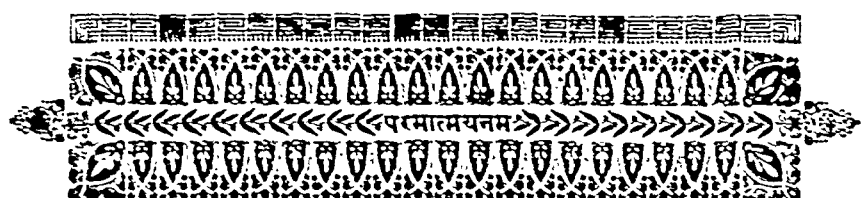
प्रकरण-इग्यार वा.

"विनय नम्रता"

जितने इस विश्वमें गुण हैं. उन सब गुनों में का अवल दरजे का गुण विनय नम्रता ही है. जहां विनय गुण होता है वहां सर्व गुण आकर्षाते-खेंचाते हुवे आप से ही चले आते हैं, इस लिये ही कहा है कि तद्यथाः—

गाथा—विणय ओ णा णं, णाणा ओ दंसणं, दंसणा ओ चरणम् ॥
चरण हुंति मुख्खो, मोख्खे सुहं अवाबाहं ॥१॥

अर्थात्—विनय से ही ज्ञान होता है, इसलिये ही ज्ञान के जो १४ अतिचार हैं उनमें कहा है कि "सुट्टदनिं" अर्थात् विनीत को ही ज्ञान देना ! क्योंकि जिसे जो वस्तु गुण करता होवे. वो उसे देना चाहिये. इसलिये विनीतो को ही ज्ञान होता है. और ज्ञान से दर्शन-सम्यक्त्व होता है. कहा है कि "णाणेणं दंशणं होइ" अर्थात् जैसा जिस वस्तुका स्वरूप होवे वैसा शुद्ध जानना उसे ज्ञान कहते

हैं जो शुद्ध वस्तूका स्वरूप जानेगा वो यथार्थ श्रधेगा. विना जान पने श्रद्धा जमनी–स्थिर होनी मूशकिल है. इसलिये ज्ञान ही सम्य-क्त्वका कारण है. और जो श्रद्धेगा कि यह संसार असार है, दुःख का सागर है सुखार्थी इस का त्याग कर जो शिव सूखका दाता चारित्र धर्म है, उसे स्विकारेगा; तवही सुखी होगा इसलिये शुद्धश्रद्धान से ही चारित्र धर्मकी प्राप्ती होती है. और जो चारित्र धर्म शिव सूख प्राप्त करने के लिये करेगा, वो जहां तक शिव सुख की प्राप्ती नहीं होगी वहां तक उसेमें तह चित से वृद्धमान प्रणाम से प्रवृती करेगा. कषाय नो कषाय का निग्रह करेगा. सर्व दोषसे दूर रहेगा. उनो के नवे कर्म का आगम तो बन्ध हुवा. और चारित्र धर्म में शुद्ध प्रणामो की वृद्धि होने से ध्यानाग्नि से पूर्वोपार्जित सर्व कर्म का नाश हुवा. वोही जीव शिव मोक्ष स्थान को प्राप्त होवेगा. इसलिये चारित्र ही मोक्ष प्राप्ती का कारण है: ऐसी तरह विनय नामक गुण होने से एकेक गूण स्वभाव से ही आकर्षाते हुवे चले आते हैं.

और भी कहां है तद्यथा:–

श्लोक–विनय फलं शुश्रषा गुरू शुश्रुषा फलं श्रुत ज्ञानं ॥
ज्ञानस्य फलं विरति, विरतिःफलं चाश्रव निरोध : ॥ १ ॥
संवर फलं तपो, बलमपि, तपसो निर्जरा फलं द्रष्टं ॥
तस्मात् क्रिया निवृती क्रिया निव्रते योगित्वं ॥ २ ॥
योग निरोधाद् भव संसृति क्षय : संसृति क्षयान्मोक्षः ॥
तस्मात कल्याणानां सर्वेषा भाजनं विनय ॥ ३ ॥

अर्थात्–जो विनीत शिष्य होता है गूरु महाराज की शुश्रुशा भक्ति करता है उस विनय भक्तिसे संतुष्ट हुवे गुरु परम निध्यान रूप जो श्रुत ज्ञान (शास्त्र की रहस्य) बताते हैं. उस शास्त्र के ज्ञान में

आत्म तल्लीन होने से इच्छा का निरोध होता है. जिससे वृत संयम आदि धारण करते हैं, वृत धारने से अवृत-आश्रव-पाप रुप जो प्रवाह आताथा सो रुकता-बंध हो जाता है, आश्रावका निरोध सो ही संवर धर्म है, संवर है सो ही मुख्य तप है. और तपका स्वभाव कर्मों की निर्जरा-क्षय करने का है. कर्म की निर्जरा होने से क्रिया की निवृती होती है. क्रिया की निवृती होने से योगों की प्रवृती का निरुंधन होता है. योगोंका निरुंधन होने से संसार परिभ्रमण का नाश होता है. संसार परिभ्रमण के नाश के होने से. और संसार में परिभ्रमण करनेका नाश होना है, उसेही मोक्ष कहते हैं. इसलिये आत्मा के परम कल्याण का भाजन विनयही है. और भी कहा है तथाही-

गाथा-विणओ जिण सासण मूलं, विणयो निव्वाण सहगो॥
विणयायों विप्प मुकस्स, कओधम्मो कओ तवो ॥ १ ॥

अर्थात्—जिनकी आत्मामें विनय गुण नहीं हैं, उसका किया हुवा धर्म और तप सर्व निर्थक है, कुछ भी काम का नहीं. क्योंकि निर्वाण पंथ मोक्ष मार्गमें जाते हुवे जीव को सहाय भूत और धर्मका मूल (जड) विनयही है. इसही अर्थ की विशेष पुष्टी करने श्रीदशवैकालिक सूत्र के नव में अध्या के दुसरे उदेशे मे फरमायाहै— तद्यथा

विनय रूप कल्प वृक्ष.

काव्य-मुलाओ खन्ध प्पभवो दुमस्सा। खन्धा ओ पच्छा समुवेन्ति साहा।
सहा प्पसाहा विरुहन्ति पत्ता। तओ से पुप्फ फल रसोयं ॥ १ ॥

अर्थात्—यह अनादि से रिवाज चला आता है कि—अवल मुल (जड) होगा तो फिर अनुक्रमें कन्ध खन्ध शाखा-प्रतिशाखा-पत्र पुष्प फल और रसकी प्राप्ती होती है. और नास्ति मूले कुतो

शाखा ' अर्थात्-जो मूल ही नहीं तो फिर शाखा आदि वरोक्त वृक्ष के अव्यय होवे ही कहां से ? अर्थात् नहींज होवें. इस लिये अवल मूलकी जरूर है. सो कहते हैं.

गाथा-एवं धम्मस्स विण ओमुलं। परमो से मोख्खो ॥
जणे किर्चि सुयं सग्घं। निस्से सं चाभिगच्छाइ ॥ २ ॥

अर्थात् ऐसी तरह धर्म की बावत में भी समजना चाहिये, कि धर्म रुप कल्प वृक्ष का विनय रुप मूल है. विनयवंत को धैर्यता अवस्य ही रखनी पडती है. इसलिये धैर्य रुप कंद (गोड) है ? धैर्य से ज्ञान की और यशःकी बृद्धि होती है, इसलिये ज्ञान रुप स्कन्ध (पेड) है. ४ ज्ञानवन्त सदानिर्मल भाव रख ते हैं इसलिये १२ भावना, तथा पांच महाव्रतकी २५ भावना रूप उस वृक्षकी त्वचा (छाल) है. ५ शुभ भाव वाले संयमी होते हैं, संयमी महावृत धारी को कहे जाते हैं. इसलिये पंच महाव्रत रूप उस झाड की पंच शाखा (डालीयों) हैं. महाव्रतो का स्वरक्षण समिती और गुप्ती कर होता है. इस लिये पांच समिती और तीन गुप्ती रूप प्रार्तं शाखा (छोटी डालीयों) है, ७ समिती गुप्तीवंत शुद्ध ध्यानी होते हैं, इसलिये धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान रूप अंकूर (पलव) फूटते हैं. ८ शुद्ध ध्यानीयों विषयेस निवृत ते हैं, इसलिये पंच इन्द्रीयों की २३ विषय और २४० विकार से निवृती भाव रुप पर्णव (पत्र) हैं, ९ निर्विपयी के अनेक सद्गुणोंकी प्राप्ती होती है. इसलिये क्षमा, निर्लोभता, सरलता, निर्भिमानता, लघुत्व, सत्य, संयम, तप, ज्ञानाभ्यास, ब्रम्हचार्य रुप व उत्तर गुण अनेक वृत प्रत्याख्यान रुप सुगन्धी पुष्प (फूल) है. १० अनेक गुण गणों के धारक मोक्ष प्राप्त करते हैं. इस लिये उस झाड के मोक्ष रुप फल है. और ११ उत्तम वृक्ष का फल मधुर-मिष्ट रस कर भरा होता है. इस

लिये विनय रुप झाडका मोक्ष रूप फल भी अनंत अक्षय अव्याबाध अतुल्य अनोपम अखन्ड निरामय सूख रूप रस कर भरा है. अर्थात् विनीत प्राणी इस रसका भुक्ता होता है. और दूसरी तरह इस गाथा का अर्थ ऐसा भी होता है कि–जैसे ज्यों ज्यों झाड के मूल की द्र-ढता होती है त्यों त्यों उस झाड में अधिक २ शाखा प्रतिशाखा पत्र पुष्प फलकी वृद्धि होती है. तैसे ही ज्यों ज्यों विनय गुणमें ज्यादा २ द्रढता होगी, त्यों त्यों उस जीव को अधिक २ सूख की प्राप्ती होगी. जैसे तद्यथाः—

सूत्र–' तम्हा धम्मस्स दुम्मस ओ विणओ मुल खंध असुरत्तं,
सहा होइ सुरतं, पसहा सुकुमालो पत्ताय पत्त समजस कित्तीयं
पुप्फस्स परम रसो, सिद्धतं परम सूखं परम पयंच पावंती
तम्हा चारित्त सारं विण ओ.

अर्थात्—धर्म रूप वृक्षका विनय रूप मूल है. खंध जैसे अ-सुर देव भवत पति आदि के सुख, और शाखा जैसे महा ऋद्धि (द्र-विक धन आदिक, और भाविक ज्ञान आदिक) के धर ने वाले, म-नुष्य के सुख, पत्र तुल्य यशःकीर्ती, पुष्प समान ज्ञान आदि परम गुणों मे लीनता. फल समान तीर्थंकर गणधर आदिक का पद. और रस समान परमपद मोक्ष की प्राप्ती.

ऐसी अनेक तरह अनेक शास्त्र ग्रन्थों में विनय गुण की पर संस्या करी है. इस लिये सर्व धर्म का सार सर्व गुणों में अवल विनय गुन को ही लिया है.

"विनय के ७८ भेद."

विनय के मुल ५ भेद हैं–१ ' ज्ञान विनय ' सो आप सदा

पहोंचाने जावे. आउ–पास रहे तो यथा योग्य वैयावृत करे, साता उपजावे. और दूसरे अनाशातना विनय के ५२ भेद (१) अर्हत(२) सिद्ध. (३) कुल (एक गुरुके अनेक शिष्य) (४) गण (एक सम्प्रदाय के साधू) (५) संघ (साधू साध्वी श्रावक श्राविका) (६) शुद्ध क्रियावंत (७) धर्मवंत (दान सील तप के आराधक) (८) ज्ञान. (९) ज्ञानी (१०) स्थिविर. (११) आचार्य-गुरु. (१२) उपाध्याय. (१३) गणी (सव के निर्वाह कर ने वाले) इन तेरही की एकम् अशातना नहीं करे. दोयम् प्रेमोत्सुक हो भक्ति करे. तीयम् सत्कार सनमान करे. चारम् गुनानुवाद स्तूती करे. यों वरोक्त तेर को चौगुने करते १३×४=५२ अन अशातना विनय के भेद हुवे.

"विनीत के १५ गुण"

श्री उत्तराध्यन जी सूत्र के एकादश अध्ययन में फरमाया है कि १५ गुणका धारक होवे उसे विनीत–विनयवंत कहना. यथाः–

गाथा—अह पन्नर सहिं ठाणेहिं । सुविणिएत्ति वुच्चइ ॥
नीयावती अचवले । अमाइ अकुऊ हले ॥ १० ॥
अप्पं चाहि खिवइ । पवन्ध च न कुव्वइ ॥
मेतिज्ज माणो भयइ । सुयं लद्धुं न मज्जइ ॥ ११ ॥
न य पाव परिक्खेवी । नय मित्ते सु कुप्पइ ॥
अप्पिय स्सावि मित्तस्स । रहे कल्लाण भासइ ॥ १२ ॥
कलह डमर वज्जिए । वुद्धे अभिजाइगे ॥
हरिमं पडिसंलीणे । सुविणीएत्ति वुच्चइ ॥ १३ ॥

अर्थ—१५ गुण संयुक्त होवे उनको विनीत कहनाः—१ गुरु

आदि जेष्ट जनो से द्रबे तो आसन आदि नीचा रखे. और भाव से सदा नम्र भूत हो रहे. २ चपलता रहित रहे, सो चपलता चार प्रकार की (१) एक स्थान बैठा न रहे, वाम्वार स्थान बदले सो स्थान चपल(२) बहुत जल्दी २ चले सो गति चपल. [३] असम्बन्ध-अमिलती, विगर विचारी भाषा बोले, तथा बहुत बोले सो भाषा चपल.(४) प्रणाम स्थिर नहीं रखे, एक सूत्र व थोकडा पुरा हुवे विन दूसरा तीसरा पढना सुरु करे. और पहिले का अधूरा छोडे, वारम्वार पच्चखाण ले पूरे पाले नहीं. सदा मन को भृमता फिरता रखे, सो भाव चपल. विनीत इन चारही चपलता रहित होते हैं. ३ माया कपट दगाबाजी नहीं करे. बाह्य आभ्यन्तर एकसी वृती रखे. ४ ठट्टा मस्करी कतुहल हस्त चालाकी व इन्द्रजाल आदि के ख्याल नहीं करे. ५ किसी का भी अपमान तिस्कार होवे ऐसा व खराब दुःख दाइ बचन नहीं बोले. ६ क्रोध नहीं करे, कदाचित् छद्मस्त [ज्ञानादि गुण पर कर्म पडदे के अच्छादन] के कारण से आजावे तो उसका विस्तार नहीं बढावे. तुर्त नम्र हो क्षमा लेवे. ७ वृत शास्त्रके ज्ञान में प्रवीन पण्डित हो कर भी अभिमान नहीं करे. ८ कृतघनी न होवे-किसी ने अपने पर थोडा भी उपकार किया हो तो उसे बहुत समजे. उपकारी के वाम्वार गुणानुवाद करे, वक्त पर यथा शक्त सहाय देवे. मैत्री प्रमोद भाव रखे. ९ छद्मस्त भूल पात्र है, प्रमाद आदि के कारण से कोइ अयोग्य कार्य बन गया हो तो आप की भूल आप कबूल करे. दूसरे के शिर कदापि नहीं डाले. १० मित्रसे कदापि अपराध भी बन जाय तो आप क्षमा करे. परन्तु कोप नहीं करे. ११ सर्व जीवो के साथ मैत्री भाव रखे. १२ जिन २ बातों से या कामों से क्लेश-झगडे की वृद्धि होती दिखे, संघ सम्प्रदाय में फूट पडती दिखे, वो काम गुण करता अच्छा

भी हो तो नहीं करे. व्यर्थ आडम्बर फेल फतूर ढोंग कदापि नहीं करे सदा गरीबी से रहे. १३ बुद्धि आदि गुणों की वृद्धि करने का मूल मन्त्र विनय ही है, इसलिये विन कहे ही विचक्षणता से मनोगत भाव को जान यथा उचित सबको सूखदाइ प्रवर्ती निवर्ती करे. १४ अपवाद अकार्य अनाचार की लाज धरे अर्थात् नहीं करे. लज्जावंत हो सदा ढलते हुवे नेत्र रखे. १५ पांच इन्द्रि, चार कषाय, तीन योग इनकी प्रती सलीनता करे. अर्थात् कु-मार्ग जाते हुवेको रोक रखे, धर्म कार्य में संलग्न करे. इन १५ गुनो कर संयूक्त होवे उनको विनिती-विनय धर्म के आराधिक कहना.

"विनय वन्तो की भावना ओं"

१ सर्वथा प्रकारे विनय मार्ग के आराधने वाले बाह्य (प्रगट) संयोग माता–पिता–स्त्री-पुत्र-मित्र-धन--धान्य-पशु घर खेत इत्यादि परिग्रह का त्याग कर अणगार (साधु) बनते हैं. और अभ्यन्तर (गुप्त) संयोग क्रोध-मान-माया-लोभ राग द्वेष विषय मोह-कदाग्र म-मत्व इत्यादि का घटाने का सर्वतह नाश करने का उद्यम करते हैं. और जो सर्वथा प्रकारे विनय धर्म आराधन करने समर्थ न होवे देश (थोडा) यथा शक्ति आराधने के लिये. सागारी (ग्रहस्था वास में) रहे हुवे वरोक्त दोनो प्रकार के परिग्रहका संकोचने–घटाने का उद्यम करते हैं. ऐसे दोनो प्रकारकी वर्तीवंतही विनय धर्म का आराधन कर सक्ते हैं.

विनयवन्त तीर्थंकर की और गुरु की अनुज्ञा आराधने सदा तत्पर रहते हैं.

२ विनीत सदा गुरु जीके समिप (नजीदक) रहे हैं. गुरु

के इंगित आकर अंगचेष्टा के जाण होते है. वो विना कहे वक्ता नुसार व समिक्षानुसार कार्य निपजा कर गुरुजी को पसंद खुशी रखते हैं.

४ विनीत—कषाय का उपशान्त कर बाह्याभ्यन्तर शान्त व्रती रख ते हैं. कम खाली, स्त्रियों के परिचय रहित, ज्योतिष वैदिक आदिक निर्थक शास्त्र के पठन मनन नहीं करते. तत्शास्त्राभ्यास के करने वाले हेय (छोड ने योग्य) ज्ञेय (जाणने योग्य) और उपादेय (आदरने योग्य) ऐसे तीनी पदार्थोंका अभ्यास सदा गुरू महाराज समिप्य रह कर करते हैं.

५ किसी वक्त हित प्रायण हुवे पिता तुल्य गुरूजी हित शिक्ष कठिण वचन कर देवें. तो उसे आप बहुतही नम्रता पूर्वक ग्रहण करे बडा खुशी होवे ज्यों रोगी औषधी की कटूकता की तरफ लक्ष नहीं रखता गुण को ही देखता है. तैसे अपने हितका ही अवलोकन करे.

६ यदि किसी वक्त छद्मस्तता के जोग से क्रोध आदि के आवेश में आकर मिथ्या विचार उच्चार आचार बन जावें और गुरुजी पूछ लेवें तो आप गोपवे (छिपावे) नहीं. जैसा हो वैसा कह दे.

७ जैसा जातिवंत अश्व (घोडा) एकवक्त शिक्षा ग्रहण कर उम्मर भर उसी मुजब—मालिककी मरजी प्रमाणे प्रवर्तता है. तैसे विनीत शिष्यको गुरूजी एकवक्त जिस कार्यकी सूचना कर देवें. उसी मुजब सदा प्रवर्ते परंतु गालियार घोडे की माफिक वाम्वार वचन रूप चाबूक की मार वांछे नहीं.

---

* कुंडलिया मिसरी घोले झूटकी, ऐसे मित्र हजार; जेहर पिलावे साचका, ते विरला संसार. तोविरला संसार, पऽतर जिनका ऐसा मिसरी जेहर समान, जेहर है, मिसरी जैसा कहे गिरधर काविराय सुनो रे सज्जन भोले. जिन सिर सात पेजार झूट की मिसरी घोले॥ १॥

८ अनाचारी क्रोधी शिष्य क्षमावन्त गुरूजी को भी क्रोधी वना देता है. जैसे वहुत मथन करने से शीतल चंदनमें से भी अग्नि झडती है. और अचार वन्त क्षमा सील शिष्य क्रोधी गुरूजी को भी शीतल वना देता है, जैसे प्रज्वलित अग्नि पाणी से शीतल हो जाती हैं.

९ विनीतो के लक्षण है कि-विन वोलाय वोले नहीं, वोलते हुवे असत्य व अप्रतीत कारी वचन वोले नहीं, किसी के भी आनिष्ट वचन सुनकर क्रोध करे नहीं.

१० आत्मा का दमनकर विनय करना वहुत ही मुशकिल हैं परन्तु जो जानते हैं कि जो स्ववश पने आत्मा का दमन (वशमें) नहीं करते हैं, वो रोग आदि के व वलिष्टोंके वशमें पड अनेक वक्त आत्मा का दमन कराते हैं. परवश पड अनेक दुःख सहन करते हैं. और उस से आत्मिक गुणका कुछ भी लाभ नहीं होता है. इससे तो श्रेष्ट है कि स्ववशसे विनय मार्ग में गुरू के छन्दानुवृती हो आत्माका दमन करूं, जो फिर कदापि परवश नहीं पडूं.

११ विनीत गुरूजी का मनकर भला चाहावे, वचन कर गुणानुवाद करे, और काया कर यथा योग्य साता उपजावे.

१२ विनीत शिष्य गुरु महाराज के पास सदा मर्याद शील हो रहते हैं अर्थात् गुरूजी के वरोवर, आगे, पीछे, अडकर (लगकर) नहीं वैठे. अपने अपंग से गुरूजी के अंग वस्त्र आदि उपकरण का संघटा नहीं करे. वस्त्र से तथा हाथ से अपने दोनो पग वान्ध (पालठी मार) नहीं वैठे. और भी सर्व प्रकार मर्याद से रहे.

१३ विनीत गुरू महाराज वोलावे उसी वक्त आसन छोड हाथ जोड उत्तर देवे, परन्तु सुना अनसुना नहीं करे. चुप चाप वैठा नहीं रहे.

१४ विनीत शिष्य के मन में किसी भी प्रकार का संदेह उ-

त्पन्न होवे तो, या ज्ञानादि गुण ग्रहण करने की अभिलापा होवे तो गुरू महाराज के सन्मुख आकर विधी युक्त वंदना कर दोनो हाथ जोड प्रश्नादि पुछे उनको जी ! तेहत ! आदि बहुत मान के वचनो से सुने, ग्रहण करे. ऐसे विनय से जो ज्ञान ग्रहण करते हैं. उनको गुरु जी जैसे पिता सू-पुत्र को प्राणसे भी अधिक प्यार द्रव्यका निधान बताते हैं; तैसे गुरूजी भी अपने गुरू पास से शास्त्र कूंचीओ धारण करी है. वैसी ही तरह उस विनीत शिष्य को बताते हैं.

१५ विनीत आप भी कभी कोपाय मान न होवे, गुरूजी को भी कभी कोपवन्त नहीं करे, और किसी वक्त विना गुन्हे ही गुरूजी कोपवन्त हो जावे तो भी आप हाथ जोड कर अपराध क्षमावे कि माफ की जीये, अब मैं ऐसा नहीं करुंगा, ऐसे नम्र-मिष्ट वचन से पसंद खूशी करे.

१६ विनीत गुरुजी के मनोगत कार्य को विचक्षणता से जाण कर शिघ्र चतूराइ से निपजावे. और वृद्ध रोगी आदिकी घात कदापि नहीं चिंतवे.

१७ मद—अहंकार, क्रोध और प्रमाद इनको विनय के शत्रू समजे.

१८ वय और बुद्धि में कम होवो परन्तु एक अक्षर के दातार को गुरु समजे.

१९ गुरु के अविनय और निंदा अग्नि के स्पर्श तुल्य समजे.

२० गुरुकी अशातना और अप्रसन्नता को बोध बीज सम्यक्त्व का नाश करने वाली जान कर अशातना से बचे पसंद रखे.

✓२१ केवल ज्ञान के धारण हार भी गुरूजी की विनय भक्ति करते हे तो अपन करे इस में क्या अधिकार यह विचार सदा रखे.

२२ विनीत प्रत्यक्ष देखते हैं कि १–जो अविनय अवगुण हाथी अश्वादि पशु ओं में होते हैं. वो हित शिक्षण ग्रहण नहीं कर सक्ते हैं, विना शिक्षण से वध बन्धन क्षुधा तृषा आदि अनेक सहे अनेक कष्ट उठा दुःख आयूष्य पुर्ण करते हैं. और विनीत पशु होते हैं. वो हित शिक्षण ग्रहण कर होंशियार होते हैं. वो पशु जाति के हो करभी कितनेक मनुष्य से भी अधिक सुख भोगवते है, माल मशाले खाते हैं, गदीले पर लोट कर सुखे २ उमर पूरी करते हैं. (२) तैसे ही मनुष्य मनुष्यणि यों भी जो अविनीत होते हैं. वो अज्ञानी पशुकी माफिक रहजाते हैं, और दास दासी बनकर अनेक दुःख भुक्त जि-न्दगी पुरी करते हैं. और जो विनीत मनुष्य मनुष्यनी होते हैं वो विद्वर हो ऋद्धि सिद्ध प्राप्त कर यशश्वी बन सुखमें आयुष्य पुर्ण कर ते हैं. (३) तैसे ही देवता ओं में जो अविनीत हैं वो अभीयोगीये देव पशु जैसे रूप धारण कर स्वारी देते हैं. व नाच गान आदि गु-लामी कर दुःखे आयूष्य खुटाते हैं. और सुविनीत हैं वो अहमेन्द्र इन्द्र सामानिक देव आदि पद्वी के धारक हो अनेक सुख भुक्ते हैं. ऐसी तरह ऐसी अविनीत को दुःख और सुविनीत को सुख प्रायः सर्व स्थान में द्रष्टी गोचर होता हैं. फिर जान कर दुःखी कौन बने ?

२३ विनीत के ज्ञानादि गुणों की वृद्धि घृत मे सींची अग्नि की तरह होती है.

२४ जो संसार में फक्त व्यवहार साधने की ६४ कला स्त्री की और ७२ कला पुरुष की पढाते हैं उन कलाचार्य के भी राज पुत्र जैसे दातार दाता बन जाते हैं. तो जो आत्मा का सुधार कर सं-से पार होने की विद्याभ्यास कराय दोनो भवका सुधार करें ऐसे ध-र्माचार्य की भक्ति तो जितनी करें उतनी थोडी है.

२५ यह विनय धर्म वन्त (१) किसी के अवर्णवाद (निंदा) नहीं बोले. (२) गुरू के बचनकी घात होय तैसा बचन नहीं बोले (३) निश्चय कारी भाषा नहीं बोले (४) अप्रतीत कारी भाषा नहीं बोले. (५) अहार आदिक वस्तुका लोलपी नहीं होवे (६) कुटीलाइ नहीं करे. (७) चूगली नहीं करे. (८) परिसह उपसर्ग पडे दीन नहीं होवे (९) स्वश्लाघा—अपने मुख से अपने गुण नहीं कहे (१०) दूसरे के पास अपनी स्तूती नहीं करावे. (११) इन्द्र जाल आदि कौतुक नहीं करे. (१२) क्षमा आदि गुणों का संग करे. (१३) अविनीत और दुराचारी का संग नहीं करे. (१४) ज्ञान आत्मा से द्रव्यादि आत्मा को जाणे. (१५) राग द्वेश की प्रणती नित्य घटावे. (१६) किसीका अपमान नहीं करे. (१७) रत्न परिक्षा को की तरह गुणका पारखी होवे. (१८) और गुण ही को ग्रहण करे. (१९) सदा अप्रमादी सावधान रहे. (२०) व्यवहार सांचवे और निश्चय की तर्फ दृष्टी रखे. (२१) सर्व कार्य में स्वार्थ बुद्धि रख कर करे. यह विनी तो के गुण गण हैं.

ऐसी तरह २५ भावना युक्त जो विनयको साध सिद्ध करते हैं, उनको वो विनय त्रि—जगत् को वशी भुत करने मोहनी मंत्र तुल्य, सर्व सद्गुणों को खेंच कर लाने अकर्षण मंत्र तुल्य, वैरीयों को उद्वेग उपाजाने औचाटन मंत्र तुल्य, इस भवका व भवान्तरों का वैर-जेहर उपशमा ने विष पहार मंत्र तुल्य क्रोधादि वेताल-व्यंतरो का नाश करने उपसर्ग हर मंत्र तुल्य हो जाता है. बल्के इन मंत्रो से भी अधिकार असर कारक होता है. किंबहुना सर्व मनोरथ का सिद्ध कर ने वाला यह विनय धर्म ही है.

ऐसे विनय धर्म के आराधिक इस लोक में निःशय शान में

पूर्ण हो सुरेन्द्र नरेन्द्र के पूज्य हो, ज्ञानानन्द में रमण करते परमात्म मार्ग में क्रमण करते हैं. हो अवश्य तीर्थंकर पद परमात्म पद को प्राप्त होते हैं.

विनीत आवश्यक करणी सदा करते हैं. इस लिये आवश्यक का स्वरूप आगे बताने की इच्छा कर इस प्रकरण की यहा समाप्ती की जाती हैं.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी मुनिश्री अमोलख ऋषिजी रचित "परमात्म मार्ग दर्शक" ग्रन्थका " विनय नम्रता " नामक इग्यारवा प्रकरण समाप्तम्.
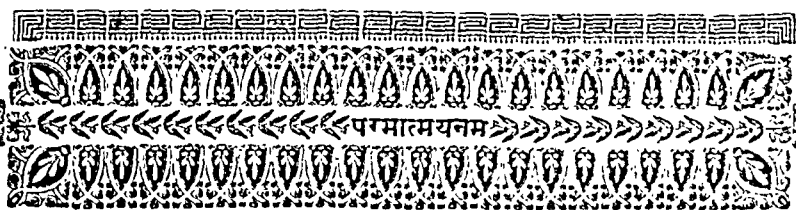
प्रकरण-बारह वा.

"आवश्यक"

जो अवश्य किये बहुत जरूर कार्य करने का हो कि जिसके किये विन आत्मा का कल्याण कदापि नहो उसे 'आवश्यक' कहते हैं. इस विश्व में इस प्राणी को दुःख देने वाला पाप है, और सुख देने वाला धर्म है; यह बात सर्व मान्य है, परंतु धर्मका क्या श्वरुप ? और पाप का क्या श्वरूप ?इस के जाण होणा और उस जान पणे को ज्ञानको वारम्वार याद करते रहना कि जिसका प्रकाश सदा हृदय में बना रहे; और पाप कर्मसे निवार धर्म मार्गमें सदा जीवकी प्रणती प्रणमती रहे. जिससे जीव सर्व दुःखका नाश कर अनंत अक्षय आत्मिक सुख शिव सुखकी प्राप्ती करने समर्थ बने!

इस आवश्य किये क्रिया के उत्तराध्यायन में सूत्र में छः भेद किये हैं. तद्यथाः—

गाथा—पोरिसीए चउ भाए । वन्दित्ताण तओ गुरु ॥
पडि क्कमित्ता कालस्स । सेज्जंतु पडि लेहए ॥ ३८ ॥

अर्थ–दिनकी छेली–चौथी पोरसी का चौथा भाग (दोवडी ४८ मिनट) दिन रहे तब सज्झाय से निवृत, गुरू महाराज को नमस्कार कर फिर, स्थनक की पडि लेहणां करे.

१ पाठ पहिला 'गुरु वंदना का'

तीखुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, वंदामि, नमं
सामि, सक्कारेमि, समाणेमि, कल्लाणं, मंगलं,
देवयं, चेइयं, पज्जुवा सामि, मथयेण वंदामि.

भावार्थ–तीन वक्त पंच अंग (दोनो घुट ने, दोनो हाथ, और मस्तक) जमीन को लगा. वहुत दूरही नहीं वैस। वहुत नजीक ही नहीं ऐसा रहा हुवा. दोनो हाथ जोडे हूवे प्रदक्षिणावर्त (जेसे अन्य मतावलम्वी आरती घुमाते हैं. तैसे) घुमाता हुवा. आप धन्य हो वगैरा गुणानुवाद करता हुवा, नमस्कार करे, सत्कार सन्मान देवे, कल्याणके मंगलिक के कर्ता, धर्म देव ज्ञानवंत पर्युपासना (भक्ति) करने योग्य जान, मस्तक नमा कर वंदना करे. फिरः—

गाथा—पासवणुच्चार भूमिंच, पडिलेहिज्ज जयं जइ ॥
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्व दुख्खा वि मो ख्खणं ॥ ३९

अर्थ— लघुनित (मुत्र) वडीनिती (दिशा) आदि जो रात्री परिठावने–न्हाखने का काम पडे, उसके लिये भूमिका को देखे फिर इस क्षेत्र विशुद्धिमें जो कुछ पाप लगा हो उसकी शुद्धि निमित.
इर्या वही पडि कम्म से। कहते हैं:—

२ पाठ दूसरा-"इरीया वही का"

इच्छा कारेण संदिसह भगवान् इरिया वहियं पडि क्कमामि, इच्छं, इच्छंमि पडि क्कमिओ, इरिया वाहि याए, विराणाए, गमणा गमणे. पाण क्कमणे, वीय क्कमणे, हरिय क्कमणे, ओसा, उत्तिंग, पणग, दग, मट्टी, मक्कडा, संताणा, संकमणे, जे मे जीवा विराहिया, एगिंदिया, वेइंदिया, ते इंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसि या, संघाइया, संघटिया, परिया विया, किला मिया, उद्दाविया, ठाणा ओ ठाणा, संका मिया, जीविया ओ, विवरोविया, तस्स मिच्छामी दुक्कडं. ॥ २ ॥ *

भावार्थ—अहो गुरू महाराज! आपकी आज्ञा से मे अलोच ना करता हुं कि—रस्ते चलते प्राणी, बीज, (धान्य) हरी, औसका पाणी, कीडी नगरे, फूलण, पाणी, मट्टी, मकडी, एकेंद्री, बेंद्री, तेंद्री चौरिंद्री, पचेंद्री, इन जीवो सामे आते को पग से दावे होवें, संताप दिया, स्थान से चलाये हो, वत्ती करी हो, मशले हो, परिताप दिया हो किलामनादी हो, उदवेग उपजाया हो, जावत् जीव काया अलग की हो सो पाप दूर होवो.

---

*"मिच्छामि दुकडं" का शब्दार्थः-मि-मैंने विन उपयोग से छा-इ च्छा विना पाप लगा, मी-मैं मेरी आत्मा को दु-दुगंछता हूं. कि क-किया हुवा पाप 'ड' नाश होवो. अर्थात्-पश्चाताप युक्त कहता हुं कि यह पाप मेरी इच्छा विना हुवा, सो भी खोटा हुवा अर्थात् मन विनकिया हुवा पाप 'पश्चातापे न शुद्धती' ऐसा पश्चातापसे आत्मा शुद्ध होती है.

३ पाठ तीसरा—'तसुत्तरी' का

तस्स उतरी करणेणं, पायच्छित करणेणं, विसोही करणेणं, वि-सल्ली करणेणं. पावाणं, कम्माणं, निग्घाएण ठाए, ठामी काउसग्गं; अन्नत्थ उससिएणं. णिससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वाय निसग्गेणं, भमालिये पित मुच्छाए सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं सुहुमेहिं खेल मचालेहिं, सुहुमेहिं दिठि संचालेहिं, एवमाइएहिं आगरेहिं, अभग्गो अविराहिओ हुज्जमें काउसग्गो, जावअरिहंताणं, भगवंताणं, नमुक्कारेणं, न पारेमि, तावकायं—ठाणेणं, मोणेणं झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि. ॥ ३ ॥

भावार्थ—पहिली इर्यावही की पाटी में कहें हूवे पाप से नि-वृतने, आत्मा को विशुद्ध निशल्य पाप रहित करने के लिये, काया को एक स्थान (स्थिर) करता हूं. उस में श्वासोश्वास, खांसी, छींक, वागासी. अंगस्फुरण, वयोत्सर्ग, चक्कर, पित, मुर्छा, सुक्ष्म-अंग-खंकार-द्रष्टी चले, और अग्नि आदिका उपसर्ग तथा जीव दया निमित हलन च-लन करना पडे तो आगार—छूटी है. नहीं तो जहां तक अरिहंत भ-गवंत का नामका उच्चार नहीं करूं, वहां तक कायाको एकस्थान रख मौन और ध्यान युक्त निर्ममत्व पणे रहूंगा.

☞ इतना कहे बाद काउसग्ग करना और मनमें दूसरा "इर्यावही का पाठ" कहना, फिर निर्विघ्न कायुत्सर्ग की समाप्ती हुइ जिसके खुशाली में जिनस्तव करे. सो:—

४ पाठ चौवथा—'लोगस्स' का

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्म तित्थयरे जिणे, आरिहंते कित्तइस्सं, च-उवीसंपिकेवली ॥ १ ॥ उसभ माजियंच वंदे, संभव माभिणंदणं च सु-

मइंच, पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ २ ॥ सुविहिं च पुप्फदंतं सीअल सिज्जंस वासुपूज्जंच, विमल मणंत च जिणं, धम्मं संतिंच वंदामि ॥ ३ ॥ कुंथुं अरंच मल्लिं, वंदे मुणि सुव्वयं, नमिजिणं च वंदामि रिट्ठनेमि. पासं तह वद्धमाणं च ॥ ४ ॥ एवं मए अभिथुआ, विहूय रयमला, पहिण जर मरणा, चउविसंपि जिणवरा, तित्थयर मे पसीयंतु ॥ ५ ॥ कित्तिय वंदिय, महिया, जेए लोगस्स उत्तमा सिद्धा, अरूग्ग बोहिलाभं, समाहि वर मुतमं दिंतू ॥ ६ ॥ चंदसू निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा, सागर वर गंभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ॥ ७ ॥

भावार्थ-जन्मसमय स्वभाविक और फिर ज्ञान मय तीनही लोक में प्रकाशके कर्ता, कर्म शत्रु का नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया,* जिससे चार तीर्थ की स्थापना करी, ऐसे ऋषभ देवजी आदि महावीर स्वामी पर्यंत २४ ऽ पि शब्दसे वीस विरहमान जिनश्वर जिनकी कीर्ती करता हुं की आप कर्म मल जन्म मरण रहित हुवे, मनसे (भाव) पूजा, वचनसे गुणानुवाद, कायासे वंदने योग्य, चंद्र समान निर्मल, सुर्य समान प्रकाशके कर्ता, सागर समान गंभीर अहो प्रभू ! आपने सिद्ध पद प्राप्त किया. मुझे भी आरोग्यता, सम्यक्त्व का लाभ, उत्तम समाधी और सिद्ध पद की बक्षीस दीजीये.

☞ ऐसे जिनस्तव कर फिर क्षेत्र विशुद्धी के दोषसे निवृते.

५ पाठ पांचवा—"क्षेत्र विशुद्धि का"

अप्पडि लेहिय दुप्पडि लेहिय सिज्झाय संथारए, अप्पमंज्जिय

---

* लोगस्स की प्रथम गाथा मे 'केवली' शब्द से ज्ञाना तिशय, 'तित्थयर' शब्द से पुजातिशय, तथा वचनातिशय और 'जिण' शब्द से अपायागम अतिशय यों चारों अतिशय संक्षेप में दर्शाये हैं.

दुप्प मज्झिय सिज्झा संथारए, अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चार पासवण भुमिए, अप्पमज्झिय दुप्पमज्झिए उच्चार पास वण भुमिए. पुढविआउ, तेउवाउ, विणास्सइ, तस छन्हं कायाणं जीवाणं जीवीयाओ विवरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कडं. ॥ ५ ॥

भावार्थ—स्थानक और विछोने को अच्छी तरह से देखा नहीं, व पूंजा—झाडा नहीं, देखते झाडते छः कायाकी विराधना हुइ हो तो पाप दूर होवो.

☞ फिर क्षेत्र विशुद्धी के पाप से आत्मा शुद्ध हुइ उसकी खुशाली मे नमोत्थुव करे सो:—

६ पाठ छट्टा — 'नमुत्थुणं' का

नमुत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताण आइगराणं, तित्थयराणं, सयंसं बुद्धाणं, पूरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवर पुंडरियाणं, पूरिसवर गंध हत्थीणं, लोगुत्तमाणं. लोग नाहाणं, लोग पइवाणं, लोग पज्जोय गराणं, अभय दयाणं, चक्खुदयाणं, मग्ग दयाणं, सरण दयाणं, जीव दयाणं, वोहि दयाणं, धम्म दयाणं, धम्म देसियाणं, धम्मनाय गाणं, धम्म सारहीणं, धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टीणं, दिवोताणं, सरणगइ पइ ठाणं, अप्पडिहय वरणाण दंसण धाराणं, विअठ छाउमाणं, जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं, तारयाणं, बुद्धाणं, बोहियाणं, मुत्ताणं, मोयगाणं, सव्वनूणं, सव्वदारिसिणं, सिव, मयल, मरू, अमणंत, मख्खय, मव्वाबाह, मपुणरावित्ति सिद्धि गइ नाम धेयं, ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जिय भयाणं ॥ ६ ॥

☞ यह 'नमुत्थण' का पाठ डावा ढींचण—गोडा खडा रख, उसपर दोनो हाथ खूणीतक जोड स्थापन कर दो वक्त कहना, पहिली वक्त तो उपर लिखे मुजबही कहना; और दूसरी वक्त में 'ठाण संपत्ताणं' के

स्थान 'ठाणं संपाविओ कामस्स' कहना.

भावार्थ—नम्रता युक्त स्तवता हूं कि अहो अरिहंत भगवत! आप स्वयं प्रतिवौध पाकर धर्म की आदि के और चार तीर्थ के कर्ता हो. जैसा स्वपदो में सिंह, शैन्या में गन्धहस्थी, पुष्प में अरविंद कमल उत्तम होता है, तैसे आप पुरुषों में उत्तम हो लोक के नाथ, हितके कर्त्ता, आधार भूत और प्रकाश के कर्त्ता हो. अभय, ज्ञान चक्षु मोक्ष मार्ग, सरण, जीवत्व वौद्ध वीज, और धर्म दाता हो. धर्मोंपदेशक, धर्म नायक, धर्म सार्थवाही धर्मचक्री हो, और संसार समुद्रमे द्विप-समान आधार भुत हो. छद्मस्त अवस्था से निवृत्त अप्रातिहत ज्ञान दर्शन वंत हुवे हो, जिससे सर्व जान देख रहे हो. जीते हो. जीताते हो तरे हो तारते हो, बुद्धवंत, वौध करता हो मुक्त हो मुक्त करता हो और उपद्रव रोग और पुनरावृत रहित अचल अक्षय अनंत अव्यावाध मोक्ष स्थान प्राप्त किया, तथा अहो अर्हंत आप! प्राप्त करने वाले हो सर्व भय रहित हो. ऐसे जिने श्वरको नमस्कार है.

इति क्षेत्र विशुद्धी की विधी समाप्त

☞ फिर प्रथम पाठ से देव गुरु को वंदना नमस्कार कर कहे:—

७ पाठ सातवा—'इच्छा मिण भंते' का

इच्छा मिणं भंते तुम्भेहिं-अभणु नाय समाणे देवसि पडिक्कमणु ठायमी, देवसि णाण दंसण चारित्र [श्रावक कहे—'चरिता चरित'] तप अतिचार चिंतवणार्थ करेमि काउसग्ग ॥ १ ॥

भावार्थ-अहो भगवान! आपकी आज्ञा हो तो मैं चहाता हुं कि ज्ञान दर्शन चारित्र (श्रावक कुछ चारित्र कुछ अचारित्र है) और तप में जो कोइ अतिचार लगा हो उसको विचारने काउसग्ग करता हूं!

प्रथम आवश्यक 'सामायिक'

☞ प्रथम मंगला चरण निमित्त नवकार मंत्र कहे सोः—

८ पठ आठवा—"नवकार महामंत्र"

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं.

भावार्थ–अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और लोकमें रहे सर्व साधू को नमस्कार होवो.

☞ फिर लिये वृतोमें स्थिर रहने सामायिक सूत्र कहे.

९ पाठ नवमा सामायिक का

करेमि भंते सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जाव जीवाय तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करंतपि अन्नं न समणु जाणामि, तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामी, अप्पाणं वो सिरामि.

भावार्थ—अहो भगवंत आपकी साक्षीसे मैं सामिक—समाधी भाव रूप व्रत धारण करताहुं, जावजीव तक सर्वथा प्रकारे सावद्य हिंशक काम मन वचन काया कर के करूंगा नहीं, कराबूंगा नहीं और करते को अच्छा भी नहीं जाणूंगा. आत्माकी साक्षी से निवृतता हूं, गुरू की साक्षी से ग्रहण निंदा करता हुं, अबसे छोडता हुं.

☞ और वरोक्त सामायिक का पाठ श्रावक इस तरह कहते हैः—

करेमि भंते सामाइयं सावजं जोगं पच्चक्खामि, जाव नियमं पजुवासामि, दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणेणं, वायाए, कायणं, तस्स भंते पाडि० निंदा० गरि० अप्पा० ॥

भावार्थ—साधू जीने सर्वथा जावजीव की हिंसा का त्याग

किया जिससे त्रिजोग से अनुमोदन—अच्छा जानने से निवृते हैं और श्रावक जावनियम देशसे दोघडी से अधिक इच्छा हो वहां, तक वृत धारण किया, इस से अनुमोदना खुला रहा है बाकीका सर्व अर्थ उपर मुजवही जानाना. ❊

❊ सामायिक इस शब्द में सम-आय-इक ऐसे तीन शब्द हैं ' सम' पुद्गलों का धर्म पुर्ण गलन है, और चैतन्य की चैतन्यता अवास्थित (मदा एकसी रहने वाली) है. इस लिये चैतन्य भाव में रमण कर पुद्गल की इष्टता अनिष्टता की कल्पना नहीं करना सो समभाव. ' आय ' जससे ज्ञानादि त्रिरत्नका लाभ आवे सो आय और ' इक ' प्रणाम समय २ पलटते ही रहते हैं इसलिये एक समय मात्र भी वरोक्त रीरिती से प्रणाम रमण करे सो इक यह शब्दार्थ हुवा.

सामायिक तीन प्रकार की होती है—१ ' सम्यक्त्व सामायिक ' सो क्षयोपश, उपशम और क्षायिक भाव मे परिणाम प्रवृते सो. २ श्रुत सामायिक ' सो द्वादशांग जिनेश्वर की वाणी के ज्ञानमें परिणाम परिणमें सो. और ३ चारित्र सामायिक के दो भेदः—१ भावसे और २ द्रव्यसे

श्लोक—रागद्वेष त्याग निखिल, द्रव्येषु स्याम मवलम्बय.
तत्वोप लब्धि मुलं बहुश, सामायि कं कार्यम् ॥

अर्थ—राग द्वेष का त्याग कर सर्व इष्ट अनिष्ट पदार्थो में समभाव रखे, और आत्म तत्व के तरफ एकाग्रता निश्चलता यूक्त लक्ष लगावे सो भाव सामायिक और.

श्लोक—सामायि काश्रि तानां । समस्त सावद्य योग परि हरात् ।
भवीत महा वृत मेषा । मुदयेपि चारित्र मोहस्य ॥

अर्थ—सावद्य योगकी प्रवृती का त्याग करना सो द्रव सामायिक इस के दो भेदः— १ सर्वव्रती सामायिक सो महावृत धारी साधुजी की और २ देशव्रती सामायिक सो अनुवत धारी श्रावको की क्योंकि वो मोहोदय से संपुर्ण आराधन कर सक्ते नहीं हैं.

यह सामायिक पांच चारित्रों में का पहिला चारित्र है, और बारह व्रतों मे का नवमांवृत है और छः आवश्यक में का पहिला आवश्यकहै

☞ फिर कायुत्सर्ग में चिंतवने दोषों को विचारने इछामी ठामी कहे,

१० पाठ दशवा—" इच्छामि ठमीका"

इच्छामि ठामि काउसग्गं जो मे देवसिओ अइयारो कओ, काईओ, वाइ ओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उमग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्ज- ओ, दुवि चिंतिओ, अणायारो, अणिच्छियव्वो, असमण पाउग्गो नाणतह दंसणे चरित्ते, सुए सामाइए, तिन्हं गुत्तीणं, चउन्हं कसायणं, पंचन्हं, महाव्वयाणं, छन्हे जीवनी कायाणं, सतन्हं पिण्डे सणाणं, अठन्हं प- व्वय मायाणं, नवण्हं बंभचेर गुत्तिणं, दशविह समण धम्म जंखन्डियं जं विराहियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं. ॥

भावार्थ—काया एकस्थान कर जो दोप विचार ने हैं उने संक्षेप में चिंतवता हुं—वो दोप मन वचन काया मे लगते हैं. जिसने आठ प्रकार के विरूद्ध आचरण होते हैं:-१ 'उसुत्तो' उत्सूत्र तो श्री जिन वचन से विरुद्ध भापण. २ 'उमग्गो' क्षयोपशम भावके मार्गसे अ- टककर उदयिक भाव रूप मार्ग (मिथ्या कर्म) में प्रवृती ३ 'अ- कप्पो' कल्प आचार से विरूद्ध प्रवृती. ४ 'अकरणिज्जो' नहीं कर ने लायक कार्य करे. (यो एकक से पाप की वृद्धि होती है. जैसे उ- त्सूत्रसे उन्मार्ग और उन्मार्गसे अकल्पनिक आकार्य होवे. यह चार कर्म तो वचन और कायाके योग मे समावे. अब मन सम्बन्धी) ५ 'दुज्जाओ' आर्त रौद्र ध्यान की एकाग्रता. ६ 'दुविचिंतिओ' उ- त्सुकता चंचल चित से अनर्थ दंडका चिंतवन करे. ७ 'अनायारो' उसे ही अनाचार कहावे. तो ८ 'अणिच्छियव्वो' इच्छने लायक नहीं है, तो आचरण करना तो कहां रहा? आगे नाणतह आचार तो ज्ञान दर्शन. चारित्र. सुय समाई. तीन गुप्ती, चार कषाय निवृती, [illegible]

वृत, छः जीव कायकी रक्षा, सात भय-आठ मद--से निवृती, नव ब्र-ह्मचार्य गुप्ती, दशयति धर्म, इनकी खन्डना विराधना हुइ हो तो वो पाप दूर होवो.

☞ वरोक्त इच्छामी ठामी का पाठ श्रावक इसतरह कहते हैं:—

इच्छामि ठामि काउस्सग्गं, जो मे देवसिओ अइयारोकओ काइ ओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मगो, अकप्पो, अकरणिज्यो, दुज्झओ, दुविचिंतिओ, अणायारो, अणिच्छियव्वो, असावग पा-वगो, नाणे तह दंसणे, चरिता चरिते, सुए सामाइए, तिन्हं गुत्तिणं चउन्हं कषायाणं, पंचन्हं मणुव्वयाणं, तिन्हं गुणवयाणं, चउन्हं सि-ख्खावयाणं, बारस विहस्स सावग धम्म स्स, जं खंडियं, जं विराहियं, तस्समिच्छामि दुक्कडं.

भावार्थ--उपर लिखे प्रमाणे ही जाणना, विशेष इतनाही है कि श्रावक कुछ वृती और कुछ अवृती होते हैं इसलिये 'चरित्ता चरित' कहा तथा पांच अणु (छोट) वृत, तीन गुणवृत, और चार शिक्षवृतकी खन्डना विराधना हुइ हो तो वो पाप दूर होवो ऐसा कहे.

☞ फिर स्थिर चित से अलग २ अतिचारों का चिंतवन करने कायुत्सर्ग करे इस लिये ३ तीसरा 'तसुत्तरी' का पाठ पूरा कहे कायुत्सर्ग करे.

☞ कायुत्सर्ग में साधू जी ज्ञानके १४, और सम्यक्त्व के ५ अतिचार, पांच महावृत की २५ भावना, ५ सुमिती ३ गुपति, यह १३ चारित्र के मूल गुण, १८ पाप, और १० वा इच्छामी ठामी का पाठ जं विराहिये तक कहे और १ नवकार कहकर फिर कायूत्सर्ग पारे.

☞ और श्रावक १४ ज्ञानके, ५ सम्यक्त्व के, ७५ वृतके, ५ सलेपणाके, १८ पाप, इच्छामी ठामी जं विरहीयं तक, और १ नवकार कहकर काउसग्ग पारे (इन सबका वरणन चौथे आवश्यकमें किया जायगा)

यह पहिला आवश्यक हुवा.

☞ निर्विघ्न ध्यान की समाप्ती हुइ इस लिये चउवीस जिनकी स्तुती करे सो—

द्वितीय आवशक- " चउवी सत्थो. "

☞ इस दूसरे आवश्यक मे चौंथा " लोगस्स " का पाठ नमन युक्त बोलना, पाठ और अर्थ पहिले चौथ पाठ मे कहेमुजब जानना.

☞ आगे सर्व वृतो का अलग २ चिन्तवन करना है इसलिये गुरुकी आज्ञा लेने वंदन करे सोः—

तृतीय आश्यक-" वंदना"

११ पाठ-इग्यारवा-'खमासमणो' का

इच्छामि खमासमणो वंदिओ जावणिज्जाए निसीहियाए, अणु जाणह, मे मिउग्गहं, निसीही, अहो, कायं, काय-संफासं, खमणिज्जो भे किलासो, अप्पाकिलं ताणं, वहु-सुभेण, भे, दिवसो वइक्कंतो, जत्ता भे, जवोणंज्ज च, भे, खामेमि खमासमणो, देवसियं वइ कम्मं आवसि याए पडिक्कमामि खमा समणाणं, देवासियाए, आसायणाए, तिती सन्नयराए, जंकिंचि मिच्छाए, मण दुक्कडाए, वय दुक्कडाए, काय, दुक्कडाए, कोहाए, माणाए, मायाए, लोहाए , सव्व कालियाए, स-व्व मिच्छो वयाराए, सव्व धम्माइ क्कमणाए आसायणाए, जो में देवासि ओ अइयारोक ओ तस्स खमा समणो, पडि क्कमामि, निंदामि गरिहामि, अप्पाणं वो सिरामि ॥

☞ भावार्थ औरविधी-आवश्यक करती वक्त पुरूप (साधू श्रावक)

चोलपट्ट मुहपति रजुहरण इन सिवाय और कुछ पास नहीं रखे, गुरु के आसन से साडी तीन हाथ दूर रहे, फिर धनुपाकार अपने शरीर को नमाकर, हाथकी अंजलीमें रजुहरण रख कर कहे ' खमा समणो' अहो क्षमा समण 'जावणिज्जाए' जिससे काल क्षेप होवे ऐसी शक्ति साहित ' निसीही आए , पापसे निवृती रूप इच्छा है, जिस की ऐसे शरीर कर के आपको ' वंदिउ ' वंदना करने. ' इच्छामि ' मै चहाता हुं, इसलिये ' मिउग्गहं ' मर्यादि (३॥ हाथके) क्षेत्र में प्रवेश करने की 'मैं' मेरे को ' अणुजाणह ' अनुज्ञा दिजीये. (फिर जगह पूंजकर कहे)' निसिही ' गुरू वंदन बिन अन्य कामका निषेध है, यों कहता हुवा गुरू सन्मुख प्रवेश करे. गुरू पास आवे और रजुहरण गुरू चरण के पास रख कर, उत्कट आसन अर्थात् गाय दुहने के आसन से बैठकर. दोनो हाथ जोड साथलों के बिच अधर रख कर गुरू जी के चरण को दशही अंगुली लगा कर ' अ ' अक्षर कहे, फिर दश ही अंगुली अपने शिरको लगाकर ' हो ' अक्षर कहे, इन दोनों अक्षरों का एक अवृतन कहा जाता है. ऐसे तरह ' का-यं ' इन दोनों अक्षरों से दूसरा और ' का-य ' इन दोनों अक्षरों से तीसरा आवर्तन करे. फिर ' संफासं ' कहता हुवा अपने मस्तक कर गुरू चरण का स्पर्श करे. फिर कहे ' किलामो ' आपके चरण का स्पर्श करते मेरी आत्मा से आप की आत्माको किसी प्रकारकी किलामना (पीडा) हुई होवे तो ' भे ' अहो भगवंत 'खमणिज्जो' माफ की जीये. ' बहुसुभेण ' महान शुभ क्षेम कुशल से ' भे ' आपका ' दिवसो ' दिन ' वइक्कंता ' व्यतिक्रंत होवो. अहो पूज्य ! आप के शरीर ' अप्पकिलंताणं ' अल्प किलामणा बाधा-सुखमाल है. (इस तरह शरीर की सुख साता पूछकर फिर नियम आदि की पूछे) अहो पूज्य! ' जत्ता ' भे

संयम रूप यात्रा * 'भे' आपके अव्याबाध है, 'जवणिज्जं' इन्द्रियों को जीत पीडित नहोना ऐसा यज्ञ § निराबाध है; 'च' और 'भे' आपके. इन जत्ता भे, जवणि जचंभे, शब्दसे तीन आवर्तकरे– हाथ जोडे दशों अंगुली गुरू जी के चरण को लगाता 'ज' अक्षर मंद स्वर से कहे. हाथ पीछा उठाता 'त्ता' अक्षर मध्य स्वर से कहे हाथ मस्तक को लगाता 'भे' अक्षर उंच स्वरसे कहे. ऐसी हो तरह 'ज–व–णी' इन तीनो अक्षरों से दूसरा. और 'जं-चं-भे-' इन तीनों अक्षरों से तीसरा आवृतन करें. फिर दोनो हाथ और मस्तक गुरू- के चरणकी तरफ नमाकर कहे, आपका 'खमासमणा' अहो क्षमा स- मण 'देवसियं' दिनमें, 'वइक्कमं' व्यतिक्रम—आवश्य किय करणी में विराधना रूप मेरा अपराध 'खामोमि' क्षमाता हूं. ; माफी चहाता हुं. इतना कहे बाद रजूहरण से जगह पूंजता हद (जो ३॥ हाथकी करीथी उस) के बाहिर पीछा निकलने को फिरता हुवा कहे 'आवसियाए' आवश्य किये करने योग्य करणी करते जो अतिचार लगा हो इतना कह दोनों हाथ जोग मुद्रा से और दोनो पग जिन मुद्रा से स्थापन कर कहे 'पडिक्कमामि' मैं निवृतता हुं. 'खमा

---

* धर्मात्माओं के लिये तप संयम रूप यात्रा. और इन्द्रि दमन रूप यज्ञ भगवंत ने फरमाया है! ऐसे सद्बोधक के उपदेश को उल्लंघन कर ढोंग में नहीं फसना चाहिये.

§ निरर्थक बातोंमें जो साधु श्रावक अमूल्य समय गमाते हैं. उनको विचारना चाहिये कि वंदना करने भी गुरू के ज्ञान में व्याघात होता है. उसकी भी क्षमा जाची. तो निरर्थक बातों में ज्ञानादि की अन्तराय देने वाले के क्या हाल!

; दोनो हाथ जोड रखे सो जोग मुद्रा. और २ पग की एडी में ३ अंगुल और अंगुठमें चार अंगुलका अंतर रखकर खडा रहे सो जिनमुद्रा.

समणो ' क्षमांवत श्रमण की ' देवासियाए ' दिनमें जो हूइ ' आसायणाए आशातना; सो कितनी अच्छादना? तो कि ' तितीसन्नयराए ' तेंतीस अशातना मै की कोइ भी की हो ' जं किंचि मिच्छाए ' जो कोइ खोटा अवलम्बन लेकर मिथ्या भाव वरताए होवें, 'मण दुकडाय' मन के दुष्कृत्य ' वय दुकडाय ' वचन के दुष्कृत्य ' काय दुकडाय ' काय के दुष्कृत्य. ' कोहाए जाव लोहाए ' क्रोध मान माया लोभ के वश हो, ' सव कालिया ' अतीत अनागत वर्तमान काल में ' सव मिच्छोवराए ' सर्व कूड कपट आदि मिथ्या क्रिया कर किसी भी तरह से ' सव्व धम्माइ कमणाए ' सर्व धर्म सम्वन्धी जो करणी उसका उलंघन करने से कोइ; ' आसायणाए ' अशातना की हो, जो में जो मेरे जीव से कूछ 'देवासि ओ' दिनमें 'अइयारक ओ' अतिचार-दोष 'जो कअ' जो किया हो, 'तस्सा' उस पाप को 'खमा समणा' अहो क्षमा श्रवण? आपके पास प्रतिक्रमता-पीछा हटताहु, निंदा करता हूं, ग्रहण करता हुं, और भी मेरी आत्मा से अच्छादना रूप पाप वोसीराता-दूर करता हुं.

☞ यह वरोक्त खमासमना के पाठकी विधी कही, ऐसी ही तरह दूसरी वक्त भी करना, विशेष इतनाही की ' आवासियाए पडिकमामि ' यह पाठ नहीं कहना, क्योकि इसमें पीछा नहीं फिरना है, सर्व खमा समणा का पाठ वही बैठे पूग करना चाहिये, * और फिर चौथे आवशय की अज्ञा

---

* इस तीसरे आवश्यक को उत्कृष्ट वंदना कहते हैं, इस में २५ आवश्यक उत्कृष्ट कार्य होते हैं, दोनो खमा समणा के अवल दो वक्त नमन किया सो दो आवश्यक, आ-हो, का यं, क-य. यह ३, और जत्ता भे, ज-वणी, जं-च भे, यह तीन, यों ६, दोनों खमा समणा के १२, और ४ वक्त गुरु चरण का स्पर्श, दो वक्त अवग्रह में प्रवेश, एक वक्त अवग्रह बाहिर निकलना, तीन गुप्ती का एक, और यथा जात का; यों २५ आवश्यक होते हैं.

ग्रहण कर स्वस्थान आना चाहीये.

☞ यह तीनोंही आवश्यक प्रतिक्रमण की विधी रुप जानना.

चौथा आवश्यक–"प्रति क्रमण."

प्रति-पीछा, क्रमण-हटना. अर्थात् मिथ्यात्व, अवृत, प्रमाद, कषाय, और अशुभ योग, इन से पीछा हटे-इने छोड कर; ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, और वीर्य, (शुभ कर्तव्य में प्राक्रम) इन में मन वचन काया के जोग को जोडना, उसे प्रति क्रमण कहा जाता है.

१२ पाठ बारहवा-"आगमे तिविहे" का

आगमे तिविहे पण्णते तंजहा-सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे, ऐसे श्री ज्ञान के विषय जो कोइ अतिचार लगा होतो आलो उं; जं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणख्खरं, अच्चख्खरं, पयहीणं वीणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिन्नं, दुट्ठु पडि च्छियं, अकाल कओ सज्झाओ, कालन कओ सज्झाओ, आसज्झाय सज्झायं, सज्झाय नसज्झायं, भणते, गुणते, चिन्तवते, विचारते, ज्ञान और ज्ञान वन्त की शातना करी होवे तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ७ ॥

भावार्थ-तीर्थंकर कथित्त, और गणधरों से लगा कर दशपूर्व धारी तक के रचे हुवे को आगम कहते हैं-ऐसे आगम के मूल पाठ अर्थ और दोनों के १४ अति चार टालना:-१ पहिले का पीछे और पीछे का पहिले पढाहो, २ विच २ में छोडदिया, ३कमी अक्षर कहे, ४ ज्यादा अक्षर कहे, ५ कमी पद कहे, ६ विनय रहित कहा, ७ जोग की चपलता रखी, ८ पुरा शब्द नहीं बोला, ९ अवीनीत को ज्ञान दिया. १० विनीत को ज्ञान नहीं दिया. ११ अकाल में सूत्र

पढा, १२ काल की वक्त नहीं पढा. १३ असझाइ में सूत्र पढा, और १४सझाय की वक्त सुत्र नहीं पढा. यह ज्ञानाचार के १४ अतिचार लगे हो सो पाप दूर होवो.

१३ पाठ तेरहवा- "दंसण-सम्यक्त्व" का

दंसण समकित, परमत्थ संथवो वा; सुदिठ परमत्थ सेवणा वावि, वावणं कुदंसण वज्जणाय, एह सम्मत्त सद्दहणाए ॥ ॐ ॥एह सम्मतस्स पंच अइयारा पयाला जाणियव्वा न समायरियवा तंजह ते आलो उं:-संका, कंखा, वितिगिच्छा, पर पासंडी परसंसा, पर पासडी संथवो, एव पंच आतिचार मैं का कोइ भी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ० ॥

भावार्थ—जड चैतन्य पदार्थ को अलग २ देखना सो दर्शन और उन पदार्थों कों सम प्रमाण (राग द्वेष की स्पर्शना रहित) रखना सो सम्यक्त्व. ऐसे दर्शानाचारि जीव, जीवादि ९ पदार्थ के जान कारों की संगत सेवा कर उन पदार्थों का जान होवे, मिथ्यात्वियों का और सम्यक्त्वका वमन किया हो उनकी संगत नहीं करे और सम्यक्त्व के पांच अतिचार टाले सो:—१ जिन वचन (शास्त्र) में वैम लाया, २ पर मत की वांच्छा करी, ३ धर्म करणी के फल में संशय लाया ४-५ पाखान्डियों की महिमा और संगत करी हो सो पाप दूर होवो.

☞ यहां तक ज्ञानाचार और दर्शनाचार तो साधू और श्रावक उपर कहे मुजब बोलते हैं, आगे चारित्र आचार में साधू चारित्रि है, और श्रावक चरीता चरीती हैं इसलिये अलग २ कहते हैं.

" साधू के-पंच महावृत और २५ भावना "

१४ पाठ चउदावा—"अंहिंसा महावृत" का

पढमं भंते महव्वय सव्वं पाणाइ वायं पच्चक्खामि, से सूहुमं वा, बायरंवा, तसंवा, थावरवा जाव जीवाय तिविहं तिविहेणं नेवसयं पाणाइ वायं करेज्जा, नेवन्नेहिं पाणाइ वायं कारावेज्जा, पाणाइ वायंते- वि अन्नं न समणु जाणिज्जा, मणेणं, वायाए, कायणं, तस्स भंते प- डिक्कमामि, निंदामि, गारिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ॥ ७ ॥

तास्तिमा ओ पंच भावणाओ भवंतिः—इरिया समिए, मणंपरि जाणाइ वतिपरिजाणाइ, आयाण भंड णिक्खवणा समिए, आलोइए पाण भो इ. पाहिले महावृत में जो कोइ पाप दोष लगा हो तो तस्स मिच्छा०

भावार्थ—पाहिले महावृत में सर्वथा प्रकार सुक्ष्म बादर त्रस स्थावर जीवों का वध करने का जाव जीव तक तिविध २ (आप करे नहीं, करावे नहीं अच्छा जाने नहीं मन वचन काया से) पहिले महावृत की पांच भावाना (विचार) १ इर्यासमिती (सदा नीची दृष्टी युक्त वरते,) २ पापमें मन नहीं प्रवर्तावे. ३ पापकारी वचन नहीं बोले ४ भंड उपकरण यत्ना से रखे, और ५ आहार आदिक देखकर खावे इस में दोष लगा हो तो पाप दूर होवे.

१५ पाठ पन्धरवा ' असृषा महावृत ' का

दोच्चं भंते महव्वय सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि से कोहावा, लो- हावा, भयावा, हासावा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, नेव सयं मुसं [illegible] नेवन्नेहिं मुसं वायाविज्जा, मुसं वयंतेवि अन्नं न समणु [illegible]

जाणेज्जा म०, वा०, का०, त०, निं०, गि०, अप्पाणें वोसिरामि ॥®॥ तास्सिमाओ पंच भावाणाओ भवंतिः—अणुविइ भासी, कोहंपरि जाणाइ, लोहं परि जाणाइ, भयं परिजाणाइ हासं पारि जाणाइ दू-मा० मि०

भावार्थ—दूसरे महावृत धारी सर्वथा प्रकारे क्रोध, लोभ, भय, और हँासी आदिके वशहो झूट बोले नहीं, जावजीव त्रिविधी. २ इस की पांच भावना १ विचार कर बोले २–५ क्रोध लोभ हांसी और भयके वश होवे नहीं. दूसरे महावृतमें पाप लगा हो तो दूर होवो.

१६ पाठ सोलहवा–'दत दान महावृत का'

तच्चं महव्वयं सव्वं अदिण्णा दाणं पच्चक्खामि, से गामेवा, नगरेवा, अरण्णे वा, अप्पवा, बहुवा, अणुंवा, थुलंवा, चित्तमंतंवा अचिमंतंवा, जाव० तिवि० णेव सयं अदिण्णं गिण्हेज्जा, णेव णेहि अदिण्णं गिण्हावेज्जा, अदिण्णं गिण्हंतोवि अन्नं न समणु जाणेज्जा म० वा० का० तस० प० नि० गि० अप्पा ॥®॥ तास्सिमाओं पंच भावना अणुविह मिउग्गहंजाती, अणुण्ण वियपाण भोयण भोती, णिग्गंथेणं उग्गहंति उग्गहिंतसि, णिग्गंथेणं उग्गंहासि उग्गाहियंसि आभिक्खणं २ अणुवीइ मितोग्गहजाती. तीसरा० पाप० तस्समि ॥ ३ ॥

भावार्थ—तीसरे महावृत धारी सर्वथा प्रकारे ग्राममें, नगर में, और जंगल में. थोडी, बहुत छोठी, बडी, सजीव, निर्जीव वस्तु की चोरी करे नहीं त्रिवीध त्रिविध. इस की पांच भावना—१ निर्दोष स्थानक मालक की आज्ञासे भोगवे. २ गुरू आदि वडे साधू की आज्ञा विन आहार आदिक नहीं भोगवे, ३ नित्य काल क्षेत्र की मर्यादा बांध द्रव्य भोगवेन की आज्ञा ले ४ शिष्य वस्त्र आदि आज्ञा से ग्रहण करे. और ५ एक स्थान रहने वाले साधू आपस में आज्ञा ले वस्तु वापरे. तीसरे महावृत मे पाप लगा होतो दूर होवो.

१७ पाठ सतरहवा 'ब्रह्मचर्य महाव्रत' का

चउत्थं भत्तं महव्वयं सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि, से दिंववा, माणुसंवा, तिरिक्ख जोणियंवा, जावजीवाय तिविहंतिविहेणं णेव सयं मेहुणं सेविज्जा णेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा, मेहुणं सेवंतेवि अन्नं न समणू जानेज्जा म० वा० का० तस० प० निं० गि० आप्पाणं वोसिरामि, ॥ ॐ ॥ तस्सिमाओ पंच भावणाः—णो णिग्गथे अभिक्खणं २ इत्थिणं कहं कहितए, णो णिग्गंथे इत्थिणं मणोहराइं इंदियाइं आलोयमाणे णिज्झाएमाणे, णो णिग्गंथे इत्थिंणं पुव्वरयायं पुव्व किलीयाइं सुमरितए, णातिमत्त पाण भोयण भोइ, णोणिग्गंथे इत्थि पशु पडंग संसत्ताइं सयणा सणाइं सेवित्तए चोथा पाप० तस्स० ॥ ४ ॥

भावार्थ—चौथे महावृत धारी सर्वथा प्रकारे देवांगना मनुष्यणी और तिर्यंचणी से मैथुन सेव नहीं जावजीव तक त्रिविध २ निवृते. इस की ५ भावनाः— १ स्त्री की वारम्वार कथा करे नहीं. २ स्त्री के अंगोपांग निरखे नहीं. ३ स्त्री सम्बन्धी पूर्व कृत क्रिडा को याद करे नहीं, ४ कामोतेजक अहार करे नहीं, और ५ स्त्री पशु नंपुसक जिस मकान में रहते होवे वहां रहे नहीं. चौथे महावृत में दोष लगा हो सो दूर होवो.

☞ इस वृतमें स्त्री के स्थान साध्वीको पुरुषका नाम लेना चाहीये.

१८ पाठ अठारहवा—'निष्परिग्रह महावृत' का

पंचम भंते महव्वयं सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामी, से अप्पवा, वहुवा, अणुंवा, थुलंवा, चितमंतवा, अचितमंतवा, जाव जीवाय तिविहं तिविहेणं, णेवसयं परिग्गहं गिण्हज्जा, णेवन्नेहिं परिग्गहं गिण्हा वेज्जा, परिग्गहं गिण्हतेवि अन्न न समणु जाणेज्जा म० वा० का० त० प० नि० गि० अप्प० ॥ ७ ॥ तस्सिमाओ पंच भावणाओः—मणुन्न

मणूण्णे सद्देसु राग दोष परिवज्जाए, मणुण्ण मणूण्णे रूवेसु राग
परिवज्जए मणुण्ण मणूण्णे गंधेसूरा० मणुण्णा मणुण्णे रसे सुरा०
मणुण्णा मणुण्णे फाससु राग दोष परिवज्जए पंच० पाप तस्स॥५

भावार्थ—पंचम् महाव्रत धारी सर्वथा प्रकार थोडा, वहुत, छो
वड़ा, सजीव, निर्जीव परिग्रहा जावजीव तक त्रिविध२ वर्जे. इस म
वृत की पांच भाव १–५ अच्छे शब्द–रूप गंध–रस और स्पर्श
राग करे नहीं, तैसे खराव पर द्वेप करे नहीं पांच० पा० दूर होवो

१९ पाठ उन्नीसवा—'रात्री अहार निवृती वृत'

छट्टे भंते वए सव्वं राइ भोयणाओ पच्चक्खामि, से असणंव
पाणंवा, खाइमंवा, साइमंवा, जावजीवाए तिविहं तिविहेणं णेव स
राइ भुंजिज्जा, णेवन्नोहि राइ भुंजाविज्जा, राइ भुंजतेवि अन्नं न स
मणु जाणेज्जा मणेणं, वायाए, कायणं त० प० नि० गि०अ० जलदी
अहार ग्रहण किया, दिन अस्त होते २ भोगवा, मर्याद उल्घी हे
छट्टा रात्री भोजन निवृती व्रतमें दोष लगाहो तो तस्स ०॥ ६ ॥

भावार्थ—सुग्म समज में आवे जैसा है.

" पांच समिती , तीन गुप्ती "

☞ इन पांच समिति तीन गुप्ती का इस वक्त अर्थही कहने का
रिवाज है इसलिये यहां अर्थही लिखा जाता है.

पाठ वीसावा—'इर्या समिती का'

पहिली इर्या समितीका आलम्बन ज्ञान चारित्र, काल दिनका,
मार्ग रस्ता छोड नहीं चलना. और जतना से—द्रव्यसे नीच देख

चले, क्षेत्रसे धूंसरा(३ ॥ हाथ) प्रमाणे आगे देख कर चले, कालसे दिन को द्रष्टीसे देख कर, और अप्रकाशिक जगहमें तथारात्रीको पूंज कर चले, भावसे शब्द रुप गंधं रस स्पर्श्य, वाचान, पूछना, परियटना, अणुप्पेहा, और धर्मक-कथा यह १० काम रस्तेचलता नहीं करना, पहिली इर्या समति में दोष लगा होतो मी० ॥ १ ॥

२१ पाठ इक्कवीसवा- " भाषा समिती " का

दूसरी भाषा समिती-द्रव्यसे करकस, कठोर, छेदक, भेदक, पीडा कर, हिंशाकर, सावद्य, मिश्र, क्रोधकी, मानकी, मायाकी, लोभ की, राग कर, देष कर, मुंह कथा, और वीकथा. यह सोलह प्रकार की भाषा वोले नहीं. क्षेत्रसे रस्ते चलता वोले नहीं. कालसे पहर रात्री गये वाद जोरसे वोले नहीं, भावसे उपयोग रखे, दूसरी भाषा० पाप ० तस्स० ॥ २ ॥

२२ पाठ वावीसवा- " एषणा-सामिती " का.

तीसरी एषणा समिती-द्रव्यसे वेतालीस दोष टाल अहार लेवे. क्षेत्रसे दोकोस उप्रांत अहार आदि भोगवे नहीं, कालसे पहिले पहरे का लाया चोथे पहर भोगवे नहीं. भावसे पांच मांडले के दोष वर्जे. तीसरी ए. पाप० तस्स. । ३ ।

२३ पाठ तेवीसवा- "आदान निक्षेपना सामिती " का

चौथी आदान भंड मत निक्षेपना समिती-द्रव्यसे भंड उपकरण यत्ना से लेवे, यत्ना से रखे; क्षेत्रसे अपनी नेश्राय की वस्तु ग्रहस्थ के घर रखे नहीं, कालसे दोनो वक्त(शुभ-श्याम) पहिलेहणा करे. भावसे

के पास करावे नहीं. करते को अच्छा जाने नहीं मन वचन कया कर तेउकाय जीवोंकी विराधना की होतो तस्स० ॥ ३ ॥

३१ पाठ इकतीसवा–' वाउकायका '

चौथी वायू काय–पंखे से, चमरसे, पत्र से, पींछी से, हाथ से, मुखसे, वस्त्र, से अपने शरीर पर, तथा अन्य पदार्थ पर, जावजीव तक हवा करे नहीं, करावे, नहीं करते को भला जाने नहीं, मन, वचन, काया कर वायु काय जीवकी विराधना की होता तस्स० ॥ ४ ॥

३२ पाठ बतीसवा–' वनस्पति कायका '

पांचमी वनश्पाति काय-वृक्ष, वेल, खंध, शाख, प्रतिशाख, पत्र, फल, फूल, अँकूर, बीज, द्रोव, इत्यादि वनस्पति का जावजीव तक छेदन भेदन संघटा करे नहीं, करावे नहीं, करताको भला जाने नहीं, मन काया कर के, वनस्पति की विराधना की होतो तस्स ० ॥ ५ ॥

३३ पाठ तेंतीसवा ' त्रस काय ' का

छट्टी त्रस काय–बेंद्रि, तेन्द्री, चौरिन्द्री, पंचेन्द्री इन जीवों की हाथ पांव आदि अंग उपांग से वस्त्रसे, पात्र से, रजुहरण से, गोछे से, दंडेसे, पाट पाटलासे, स्थानकसे, लेत, देते, वापरते, किसी भी त्रस जीव की जावजीव तक घात करे नहीं, करावे नहीं, करते को भला, जाने नहीं, मन से, बचनसे, काया से, त्रस जीव की विराधना हुइ होतो तस्स० ॥ ६ ॥

☞ यह १४ में पाठ से लगाकर ३३ में पाठ चौथे आवश्यक में साधूजी कहते हैं.

☞ और आगे श्रावकके कहने के १२ व्रत कहे जाते हैं.

श्रावक के 'वारह वृत—और अतिचार'

३४ पाठ चौतीसवा 'अहिंशा वृत का'

पहिला अणुवृत थूलओ पाणाइ वायाओ वेरमणं, त्रस जीव वेंद्रिय तेंद्रिय चौरिंद्रिय पाचिंद्रिय, जानी प्रिच्छी. विन अपराधी, आकुटी, संकल्पी, सलेसी, हणवा निमिते हणवा का पच्चक्खाण, जावजीवाय दुविहं तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा वायसा, कायसा॥ ॥ ऐसे पहिले थूल प्रणातिपात विरमण वृत का पंच अइयारा पयाला, जाणिवव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं:-बंधे, वहे, छविछेए, अइभारे, भत्त पाण वच्छेए, तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥ १ ॥

भावार्थ—पहिले छोटे वृतमें स्थुल-वडे जीव वेंद्री तेंद्री, चौरिंऔर पचेंद्री इनको जान कर, पहचान कर, निर अपराधी को, क्रूर भावसे, मारने के विचार से मारनें के त्याग हैं. जावजीव तक, घात करूं नहीं कराबूं नहीं (यह दो जोग) और मन वचन काया (यह तीन करन) से. इस व्रत के पांच अतिचार—१ कापापड जाय ऐसे बांधे, घाव लग जाय ऐसे मारे, अंगोपांग छेद भेदे, शक्ति उप्रान्त वजन देवे. और अहार पाणी की अंतराय देवे. यह ५ पाप लग होवे तो दूर होवो. ॥ १ ॥

३५ पाठ पेंतीसवा—'अमृपा अणुव्रत' का

दुसरा अणुवृत थुलाओ मोसावाय ओ वेरमणं, कन्नालिये, गोवालिए, भोमालिए, थापाण मोसो, नोटकी कूडी साक्ष, इत्यादि मोटे झूट बोलने के पच्चक्खाण, जाव० दुविहं तिविहेणं नक० नका० म०

३८ अडतीसवा 'परिगृह प्रमाण व्रतका'

पंचमा अणुवृत थूलाओ परिग्गहा ओ वेरमणं, खित वत्थू का यथा परिमाण, हिरण सोवन का यथा परिमाण, धन धान्यका यथा परिमाण, दोपद चौपदका यथा परिमाण, कुवीधातूका यथा परिमाण, यह यथा परिमाण किया है. इस उप्रांत पोताका कर परिग्रह रखने का पञ्चखाण, जावजीवाए एगविहं तिविहेणं, न करेमि मनसा वाए- सा कायसा ॥ ७ ॥ ऐसा पंच० परि० पंच० जा० त० ते आलोउं—खितवत्थू प्पमाणाइ क्कमे, हिरण सोवण प्पमाणाइ क्कमे, धण धान्य प्पमाणाइ क्कमे, दुपद चउप्पद प्पमाणाइ क्कमे, कुविय प्पमाणाइ क्कमे, तस्स० ॥ ५ ॥

भावार्थ—पंचमें परिग्रह प्रमाण वृत में श्रावक खेत, घर, चांदी, सोना धन (नगद) अनाज, मनुष्य, पक्षी, पशु और घर विखरे वर्तन आदी सबका प्रमाण करते हैं, जावजीव तक एक करण और तीन जोग से. अपनाकर रखते नहीं हैं. मन वचन कायासे. इस वृत के पांच अतिचार उपर कही सर्व वस्तुका प्रमाण किया उसे उलंघे ज्यादा रखे तो दोष लगे, ऐसे दोष लगाहो तो तस्स ॥ ५ ॥

☞ इन पांचो वृतो को अणुवृत कहनेका मतलब यह है कि साधू के महाव्रतों की अपेक्षा से यह छोटे है, और स्थूल कहनेका मतलब यह है कि इनों में बडे २ पापों का त्याग है.

३९ पाठ उनचालीसवा-'दिशिव्रत' का

छट्टा दिसीवृत ऊर्ध्व दिशिका यथा परिमाण, अधोदिशी कायथा परिमाण, तिरिय दिशिका यथा परिमाण यथा परिमाण किया उसेस

आगे स्वइच्छा कायसे जाकर पंच आश्रव सेवने के पच्चक्खान, जाव० दुविहं तिविहेणं, नक० नका० म० वा० का० ॥ ७ ॥ ऐसे छट्टे दिशी वृत पंच० जा० तं० ते आ० उढ दिसिप्पमाणाइ क्कमे, अहो दिसिप्पमाणाइ क्कमे, तिरिय दिसी प्पमाणाइ क्कमे, खित बुढि सयंतरद्धाए, तस्स० ॥ ६ ॥

भावार्थ—छट्टे वृतमें उंची, नीची, और तिरछी—पूर्वादि दिशामे जाने का प्रमाण करे, और पांच अतिचारः-तीनो दिशाओं का प्रमाण औलंघे, वक्तपर एक दिशाका घटा दूसरी दिशामें, मिलावे और कितना प्रमाण किया उसकी याद आये विन आगे जावे तो दोष. यह दोष लगाहो सो पाप दूर होवो. ॥ ७ ॥

४० पाठ चालीसवा—' भोग परिमाणव्रत ' का

सातमा व्रत उपभोग परिभोग विहं पच्चक्खायमाणे, उल्लणिया विहं, दंतण विहं, फलविहं, अभ्यंगणविहं, उवट्टणविहं, मंजणा विहं, वत्थ विहं, विलवण विहं. पुप्फ विहं, आभरण विहं. धूप विहं, पेज विहं, भक्खणविहं, उदनविहं, सुपविहं, विगय विहं. साग विहं. महुर विहं, जिमणविहं, पाणीविहं, मुखवास विहं, वाहनिविहं, वाहनविहं, सयणविहं, सचितविहं, दव्वविहं, इत्यादिक का यथा परिमाण किया है उस उपरान्त उपभोग परिभोग भोग निमित्त भोग भोगवने के पच्चक्खाण जावजीवाए एगविहं तिविहेणं, नकरोमि. मनसा, वायसा, कायसा। ✱ । सातमां उपभोग परिभोग दुविहे पन्नते तंजहा—भोयणाउयं, कम्मउयं भोयणा उप समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं० ते आलोउं सचित्ताहारे, सचित्त पडिबद्धाहारे, अप्पोलिओसहि भक्खणया. दुप्पोलि ओसहि भक्खणया, तुच्छोसहि भक्खणया, क-

म्म उय समणो वासयाणं पनरस कम्मा दाणाइ जाणियव्वा न सभा रियव्वा तंजह ते आलोउंः—इंगाल कम्मे, वण कम्मे, साडी कम्मे, भाडी कम्मे, फोडी कम्मे दंतवाणिज्ज लकरवखवाणिज्ज, केसवाणिज्ज, रसवाणिज्ज, विसवाणिज्ज, जंत पिलुण कम्मे, निलच्छण कम्मे, दव-ग्गिदावण कम्मे सरदह तलाव परिसोसणया कम्मे असइजण पो-सण या कम्मे. तस्स ० ॥ ७ ॥

भावार्थ—सातमे वृत में जो एकवक्त भोगवने में आवे सो उपभोग अहार पाणी आदि, और वारम्वार भोगवेण में आवे सोपरि भोग वस्त्र, भुषण आदि, इनके मुख्य २६ भेद किये हैंः— शरीरको पूछने का वस्त्र, दाँतन, वृक्षके फल, तेल आदि शरीर को लगाने का, पीठी मर्दन, स्नान, वस्त्र, विलेपन,—या तिलक, फूल, गहने —भुषण, धूंप, चाह प्रमुख पीने का, पक्वान, दाल, चांवल, दूध दही —घी—तेल—मिठाइ आदि विगय शाक—भाजी, मेवा, अहार, पाणी —रस, तंबोल, पगरखी, वाहन अश्वादि, शय्या, सजीव वस्तु, और २६ स्वाद पलटे सो द्रव्य यह २६ वस्तु आदिका जाव जीव तक भोगवनेका प्रमाण एक करन तीन जौग से करे. इस वृत के २० अतिचारों में से ५ भोजन सम्वन्धी सो—१ पचखाण उपरांत सचेत का आहार करे.२ सचेत के लगी हुइ अचेत वस्तुको अलग कर उसका अहार करे. ३ पुरी पकी नहीं ऐसी वस्तू भोगवे, ४बहुत पकके बिगडगइ ऐसी वस्तु भोगवे, और ५ थोडा खाना न्हाखना बहुत ऐसी वस्तु भोगवे. यह ५ भोजन के और कर्म (वैपार) के १५ अति-चारः-१ कोयले का, बन कटानेका, वाहन बनाने का, भाडे देनेका, पृथवी आदि फोडने का दाँतका, लाख, चपडी का, केश—बालका,

जेहरका-शास्त्र का, घाणी-यंत्र पिलाने का, वैल आदि के अंग भंग (छेद) करने का, जंगल में दव (आग) लगाने का, और अव्रती मनुष्य पशुको को पालकर वेंचनेका. यह १५ वैपर, यों सातमेंवृत के २० अतिचार मे का कोइ अतिचार लगाहो सो पाप दूर होवो.

४१ पाठ एकतालीसवा ' अनर्थ दंड व्रत ' का

आठमां अनर्थ दंड विरमण वृत, ते चउविहे अनत्था दंडे पण्णं ते तंजहा-अवज्झाण यरिय, पमायायरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवए से, ऐसा अनर्थ दंड सेववा का पचखाण, जाव० दुविहं तिविहेणं नक० नका० म० वा० का० ॥ ॥ ऐसे आठ में अनर्थ दंड विरमण वृत के प० जा० तं आलोउं:- कंदप्पे, कुकूइए, मोहारेए, संजुत्ताहिगरेण, उवभोगपरिभोग अइरते, तस्स० ॥ ८ ॥

भावार्थ—आठमें वृतमें आर्तध्यान करना, प्रमाद करना, हिंशाकारी वचन वोलना, और पाप का उपदेश देना, इन चार अनर्थां दंड से निवृते दो करन और तीन जोगसे. इस के ५ अतिचार—काम जगे ऐसी कथा करे, कूचेष्टाकरे, असम्वन्ध वचन वोले, पापका उपदेश देवे, भोगोप भोग भोगवते अत्यन्त असक्त लुब्ध होवे, यह पांचपाप लगे होवे तो दूर होवो ॥ ९ ॥

☞ पहिले कहे पांच अणुवृन में यह पीछे कहे ३ वृत गुणके करता होते हैं. इसलिये इन तीनो को गुण वृत कहे जाते हैं.

४२ पाठ वयालीसवा-' सामायिक व्रत ' का

नवमां सामायिक वृत सावज्ज जोगका वेरमणं, जावनियम पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं नक० नका० म० वा० काम० ॥ ७ ॥ ऐसे

नवमें सामायिक वृत के पंच० जा० तं० आलोउं:—मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, काय दुप्पणिहाणे, सामाइ यस्स सइ विहुणो अकरणि याए, सामाइ यस्स अणवुठि यस्स करण याए, तस्स० ॥ ९ ॥

भावार्थ—नव में वृत में एक महुर्त (४८ मिनट)से अधिक इच्छाहो वहां तक सावद्य-जोग दूसरेको दुःख होवे ऐसा करना और, कराने से निर्वते मन वचन काया कर. इस वृतके पांच अतिचार-मन वचन और शरीरसे पाप कार्य करा होवे, सामायिक की समृती भूल गया होवूं. और पुरा काल-वक्त हुवे विन छूट्टा हुवा होवूं यह ५ पाप दूर होवो ॥ १० ॥

४३ पाठ त्रितालीसवा-' दिशावगासि व्रत का '

दशमुं दिसावगासिक वृत, दिन प्रते प्रभात थकी प्रारंभकर पुर्वादिक छः दिशों मे जितनी भुमिका मोकली रखी है. उस उपरांत स इच्छासे कायासे जाकर पांच आश्रव सेवने के पचखाण जाव अहो रतं दुविहं तिविहं नक०नका०म०वा ०का० जितनी भोमिका रखी है उस में द्रव्यादिककी भी मर्यादा करी है उस उपरांत उपभोग परिभोग भोग निमित भोग भोगवने के पचखाण जाव अहोरतं एक विहं तिविहं न करेमि म० वा० का० ॥ ❀ ॥ ऐसा दशमा वृत का पं० जा० तं० ते आलोवु:-आणवाण प्पओगे, पेसवाण प्पओगे, सद्दाणुवाइ, रूवाणुवाइ वहिया पुग्गल पक्खेवा तस्स ०॥ १० ॥

भावार्थ—दशमें वृत में सदा फजर से लगार कर इच्छा हो उतनी वक्त तक पुर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीची, और उंची इन छः दिशामें इतनी दूर से ज्यादा मेरी इच्छा से नहीं जावूंगा, ऐसा प्रमाण दो करण तीन जोग से करे, और भोमिका मे रह अहार, वस्त्र, आदि

की मर्यादा एक करन तीन जोगसे करे, इस वृत के पांच अतिचारः- मर्याद करी हुइ जमीन के बाहिर की वस्तु मंगाइ, भेजाइ, शब्द कर, रूप बता, और कोइ वस्तू डाल अपना आपा बताया. यह पांच दोष लगे हो तो दूर होवो. ॥ १० ॥

४४ पाठ चौवालीसवा-' पौषध वृत ' का

इग्यारमा पौषध व्रत असणं पाणं खाइमं साइमं का पच्चखाण अवंभ का पचखाण, (अमुक) मणिसुवर्ण का पच्चखाण, माला वन्नंग विलेवण का पच्चखाण, सत्थ मुसलादि सवज्ज जोग का पच्चक्खाण, जाव अहोरंत, पजुवा सामि, दुविहं तिविहेणं नक० नका० म० वा० का०॥ॐ॥ ऐसे इग्यार में पौषध व्रत का पंच०जाणि० तं० ते आलोवुं अप्पडिलेहिये दुप्पडिलेहिये सिज्झा संथारए, अप्पमझिय दुप्पमझिय सिज्झा संथाराए, अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चार पासवण भुमि, अप्पमझिए दुप्पमझिए उच्चारपास वण भुमि, पोसहस्स सम्मं अणणु पालणया, तस्स० ॥ ११ ॥

भावार्थ—इग्यारमें पोषध व्रत में एक दिन रात्री पूर्ण या अधिक इच्छा होवे वहां तक अहार, पाणी सूखडी, मुखवास, कुसील, निकलजाए ऐसा गहना, शरीरको विलेपन, शस्त्र, और दूसरेका घात होवे ऐसा जोग प्रवृत ने के दो करण तीन जोग से पच्चखाण करे॥ इस के पांच अतीचारः-मकान विछोना लघुनीत आदि परिठाणे की भूमी देखे नहीं, पूंजे नहीं, या अच्छी तरह देखे पुंजानहीं, बरोबर पोषा न हुवा हो. यह पांच पाप लगे हो तो दूर होवो ॥ १ ॥

४५ पाठ पैंतालीसवा—' दान वृत ' का

बारमां अतिथी संमविभाग व्रत, समणे निग्गंथे फासुएं एस

(कपट युक्त झूट) और मिथ्या दंशण सल्ल, यह अठारह पाप स्थान से वे होवे सेवावे होवे, और सेवतेको अच्छा जाना होवे तो तस्समि०

४८ पाठ अडतालीसवा—' पचीस मिथ्यात्व ' का

अभिग्राहिक मिथ्यात्व, अनाभिग्राहिक मि०, आभिनीवेसिकामि संसयिकामि०, अना भोग मि०,लौकीकमि०, लोकोतर मि०,कुप्रावचन मि०, वीतराग के सुत्र से औछी श्रधाना करेमि०, वीतराग के सुत्रसे आधिक श्रधना करेमि०, वीतरागके सूत्र से विपरीत श्रधना करे तो मि०,धर्मको अधर्म श्रधे तो मि०,अधर्मको धर्म श्रधे तो मि०,साधूको असाधू श्रधे तो मि०,असाधुको साधू श्रद्धे तो मि०, जीवको अजीव श्रद्धे तो मि०, अजीवको जीव श्रद्धे तो मि०, मार्गको उन्मार्ग श्रद्धे तो मि०, उन्मार्गको श्रद्धे तोमि० रूपि पदार्थ को अरूपी श्रद्धे तो, मि०, अरूपी को रूपी श्रद्धे तो मि०, आविनय मि०,अशातना मि० अक्रियामि०, और अज्ञान मिथ्यात्व यह पचीस मिथ्यात्व सेव्यासवया सेवतां को भला जाना हो तो तस्स० ॥ १ ॥

भावार्थ—सत्यासत्यका निर्णय नहीं करता अपने को ही सत्य माने. सबको एकसा जाने, सत्य में संशय रखे, अनजान पने लगे, लोकोके देखादेख कु देव, कु-गुरू-धर्म को माने, सुदेव सुगुरू सुधर्म को इस लोक निमित माने, सच्चे खोटे को एकसा जाने, जैन धर्म से अधिक औछी और विपरीत परूपना करे. धर्म साधु जीव मार्ग रुपी-इन पांच को उलट श्रद्धे अविनय अशातना करे, अक्रिया और अज्ञानी. यह २५ श्रद्धे हो सो पाप दूर होवो

४९ पाठ उनचासवा—' चउदह समुर्छिम ' का

उच्चार सुवा, पासवेणसुवा. खेले सुवा, संघेण सुवा, वंतेसुवा

पिते सुवा, सोणिये सुवा, पुइ सुवा, सुक्के सूवा, सुक्के पोगल
डी सुवा, विगय जीव कले वरे सुवा, स्त्री पुरूप संजोग सुवा
निद्धवणे सुवा, सव्वे लोए असुइ ठाणे सुवा. इन चउदह स्थान
मुर्छिम जीव की विराधना करी हो तो तस्स०

भावार्थ–वडीनील, लघुनीत, खेंकार, सेडा–श्लेषम, वमन
रक्त, वीर्य, शुक्र वीर्य, यह पुनः भींजे सो, निर्जीव शरीर (मुरदा
पुरुष का संयोग, और लोकमें रहे हुवे सर्व अशुची स्थान मे
छिम (स्वभाव से) असंख्य असन्नी मनुष्य उपजते हैं. उ
विराधना की हो तो तस्स ॥ १ ॥

☞ यह जो वृत अतिचारों की आलोचन करी, उनमें कोइ
अतिचार रह गया उसकी निवृती के लिये १० मां 'इच्छामी ठामी
पाठ कहे. फिर परमेष्टी का साक्षी से आलोचना सरूकरी थी सो पा
इस लिये फिर भी ८ मां पाठ ' नवकार मंत्र ' का कहे. और फि
की आलोचना से हलकी आत्मा हुइ इस लिये मंगलिक कहे सो:-

५० पाठ पचासवा-" मंगलिक " का,

चतारि मंगल–अरिहन्ता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहु मं
केवली पण्ण तो धम्मो गंगलं, चत्तारि लोगुत्तमा—अरहन्त लो
मा, सिद्धलो गुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्ण तो धम्म लोगु
चतारि सरणं पव्वज्जामी–आरिहन्त सरणे पव्वज्जामि, सिद्ध स
पवज्जामि, साहु सरणं पवज्जामि, केवली पण्णं तो धम्म सरण
ज्जामि, यह बारह बोल सदा काल मुजको होवो ॥ १ ॥

☞ फिर भी किसी प्रकारकी कसर रह गइ होतो उससे नि
फिर १० मां ' इच्छामि ठामी ' का पाठ कहे. और फिर वरोक्त वृ

की विधी में हलन चलन करने से किसी प्रकार की विराधना हुइ हो तो उससे निव्रतने दूसरा पाठ ' इर्यावही ' का कहे. फिर श्रमण सूत्र कहे.

श्रमण—सूत्र *

५१ पाठ एकावनमा-' निद्राकी आलोचना ' का

इच्छामि वडि कमि ओ पगाम सिज्झाए, निगाम सज्झाए, संथारा उवट्टणाय. परियट्टणाय, अउट्टणाए पसारणाए, छप्पइ संघट्टणाय, कुइए कक्कराइ ए, छीए जंभाइए, आमोसे ससर खामोसे, आउल माउलाए, सुवण वतियाए, इत्थि (स्त्री को ' पूरूष ') विपरिवासियाए, दिठी विपरिया सियाए, मण विपरिया सियाए, पाण भोयण विपरिया सियाए, तस्स मिच्छामि दुकडं ॥ १ ॥

भावार्थ—प्रभु ! आपकी साक्षी से निद्रामें लगे हूवे पापकी

☞ * समण सुत्र बदल कितनेक कहते हैं कि-समण नाम साधु का है तो फिर श्रावक को क्यों कहना चाहिये ? समाधान-श्रावक साधु धर्म ग्रहण करने के सदा अभिलाषी है, इसलिये साधु की करणी से जरूर वाकेफ होना चाहिये, और भी समण सूत्रमें के बहुत पाठ श्रावककी हरेक वक्त होती हुइ क्रिया में बहुत उपयोगी हैं जैसे-श्रावक इग्यारमी प्रतिमाका 'समण भुए' ऐसा नाम हैं अर्थात साधू जैसे होते हैं. उस वक्त तथा अन्य भी दया दश में व्रत में भिक्षाकर अहार लाते हैं. उसवक्त ' गौचरी की अलोचना ' का ५२ वां पाठ काम आता है. और पोषधादि व्रतमें निद्रा ले जाग्रत होते ' निद्रा की आलोचन ' का पाठ ५१ वां जरूर कहना चाहिये. और पोषधादि में पडिलेहणा ने निव्रते बाद 'चउकाल सझाय' का ५३ वा पाठ जरूर कहना चाहिये और भी एक बोलसे तेंतीस ही बोलका जानकारभी जरूर होना ! इत्यादि सबब से श्रावक को समण सूत्र जरूर ही कहना चाहिये.

आलोचना (विचारना) करताहुं—हदसे ज्यादा विछोना किया हे निद्रामें विछोना विन पूंजे पसवाडा फेरा, हाथ पग संकोचे, पसारे, ज्यूं पटमल वगैरा जीवों को दावें, उघाडे मूखसे वोलाया, छीक उवासी ली हो, सचित रजकी घात करी, अकुल व्याकूल चित हूवा और स्वपन में अहार पाणी या स्त्रिया सवंधी भोग किया हो सो पाप दूर होवो ॥ १ ॥

५२ पाठ बावनावा-' गौचरी की आलोचना ' का

पडिक्कमामि गोयरग चारियाए, भिक्खायारियाए, उग्घाड कवाड उग्घड णाए, साणा वच्छा दारा संघट्टणाए, मंडि पाहुडियाए, वलि पाहुडियाए, ठवणा पाहुडियाए, संकिए, सहसागारे, अणेसणाए, आण भोयणाए, पाण भोयणाए बीय भोयणाए, हरिभोएणाए, पच्छा कमि याए, अदिठ हडाए, दग संसठ हडाए, रय संसठ हडाए, परिसाडाणि याए, परिठावाणियाए, उहासण भिक्खाए, जं उग्गमेणं, उपायणे- सणाए, अपडि सूद्ध, पडिगाहियं, परिभुतंवा, जं न परिठावियं तस्स०

भावार्थ—गाय की तरह थोडी २ भिक्षा ले सो गौचरी जाते आधे लगे या पुरे लगे कि माउड उघाडे होवे, कूत्ता बच्छा वाल इ- त्यादि को उलंघ कर प्रवेश किया दूसरे को देने धराहो, बलीदान का हो, भिक्षाचरो निमित रखाहो, दोप शंका युक्त हो और वलत्कार छींन के देवे, सून्य उपयोग से जलदी २ से, सचित, बीज धान्य या लीलोत्री का, वहिरे पीछे या पहिले दोप लगाकर दिया, ऐसा. विन दिखता सचितके संग्घटा, का खपसे ज्यादा अथवा खानेमें थोडा आवे और न्हाखने बहुत जावे ऐसा. ढोलता २ लाकर दे ऐसा. और १६ उदगन के (गृस्थ के तर्फसे लगते)दोप, १६ उत्पाद (साधू

के तर्फ से लगते) दोष, दश एषण (दोनो मिलके लगते) दोष, ऐसा ४२ दोष युक्त आहार भोगवाहो, उसे न परिठाया हो सो पाप दूर होवो ॥ २ ॥

५३ पाठ त्रेपनवा—'पडिलेहण आलोचना' का

पडिक्कमामि चउकाल सज्झायस्स अकरणाए, उभयकालं भंडोवगरणस्स अपाडि लेहणाए, दुपडिलेहणाए, अपमज्जणाए, दुपमज्जणाए, अइक्कमे, वइकम्मे, अइयारे, अणायारे, तस्स० ॥ ३ ॥

भावार्थ—दिन और रातके पहिले और छेल यों चार पेहेर में शास्त्रकी स्वध्याय नहीं करी, और फजर शाम दोन वक्त वस्त्र पात्रे भंडोपकरण की पडिलेहणा नहीं करी, जौ करी तो प्रमाद के वश हो, पुरी नहीं करी, विपरित करी, पूंजे नहीं, पाप कार्य का चितन्न प्रवृतन, ग्रहन, और भोग किया हो. सो पाप दूर होवो.

५४ पाठ चौपन्नवा-"तेंतीस बोल" का

(१) पडिक्कमामि-एग विहे असंजमेहिं. (२) पडिक्कमामि-दोहिंबंधणेहिं-राग बंधणेणं, दोष बंधणेणं. ॥ (३) प० तिहिं दंडेहिं-मनदंडेणं वयदंडेणं, कायदंडेणं । प० तिहिं गुत्तिहिं—मन गुत्तियं, वयगुत्तियं, काय गुतियं । प० तिहिं सल्लेहि मयासल्लेहिं, नियाण सलेहिं, मिच्छा दंशण सलेहिं । प० तिहिं गारवेहिं—इड्ढि गारवेणं, रसगारवेणं, सायागारवेणं । प० तिहिं विराहणाए—नाण विराहणाए, दंसण विराहणाए, चारित्त विराहणाए ॥ (४) प० चउविहंकसाएहिं—कोह कसाए, माण कसाए मायाकसाए, लोह कसाए । प० चउविहंसन्नहिं-अहारसन्नाए, भयसन्नाए, मेहुण सन्नाए, परिगह सन्नाए । प० चउविहं विकहाएहिं-स्थीकिहाए, भत्तकहाए. देशकहाए, रायकहाए । प० चउ-

हिंहं ज्झाणेणं-अट्टझाणे, रूद्दझाणे, धम्म झाणे, सुक्क झाणे॥ (५) प० पंचकिरियाहिं-काइया किरियाए, अहिगराणिया किरियाए, पाउसिया किरियाए, परितावाणिया किरियाए, पाणाइवायं किरियाए। प० पंच-हिं काम गुणेहिं—सद्देणं, रूवेणं, गंधेणं, रसेणं, फासणं। प० पंचहिं महाव्वयेहिं-सवाओ पाणाइ वाया ओ विरमणं, सवाओ मुसा वाया ओ विरमणं, सवाओ अदिंन्नदाणा ओ विरमणं, सवाओ मेहुणा ओ विरमणं, सवाओ परिग्गहाओ विरमणं। प० पंचहि सामियेहिं—इरिया, समिए, भासासमिए, एसणासमिए, आयाण भंड मत निक्खेवणा समिए, ऊचार पास वण खेल जल संघाण पारिठावणिया समिए(६)॥ प० छहिं जीवनि कायहिं-पुढवी काय, आउकाय, तेउकाय, वाउकाय, विणासइकाय, तसकाय,। प० छहिलेसाहिं कन्ह छेमा, नील लेसा,-काउलेसा तेउलेसा, पह्म्म लेसा, सुक्क लेसा॥ (७) प०सत्ताहिं भ-यठाणेहिं-इहलो गभय, परलोग भय, आदान भय, अकस्मात भव, आजीवी का भय मरणभय, श्लघाभय, ॥(८) प० अठमय ठणेहिं—जाइमयेणं, कूल मयेणं, वलमयेणं, रूवमयेणं, तवमयेणं, लाभमयेणं, सुत्तमयेणं, इसरीमयेणं॥(९)प० नव विह, बंभचेर गुत्तिहिं--नो इत्थी पसु पणगड संसताइं सेविता हवइ, नो इत्थिणं कहं कहिता भवइ, नो इत्थिणं सद्धि सन्निसेज्जागए विहारिताभवइ, नो इत्थिणं इन्दियाइं म-णोहराहिं मणेरमाहि आलो इत्तानिज्झाइता भवइ, नो इत्थिणं कू-डन्तरंसिवा, दुसन्तरंसिवा कुइयसद्दं रूइयसद्दं, गीयसद्दं, थणियसद्दं, कंदियसद्दं, विल वियसद्दं ना सूणेता भवइ- नो इत्थिणं पूवरयं पूव कीलियं अणुसारिना हवइ.नोपणियं अहार आहरिताहवइ नो अतिमायाए पाण भोयणं आहारेतावहइ, नो विभुसाणु वादी हवइ.॥ (१०) प० दस विहे समण धम्मे-खंति,मुत्ति, अज्जव, मद्दव, लघव, सच्चे, संयमे,

जीव बंधता है सो त्यज है ॥३ (१) मन बचन काया के जोग पाप
में प्रवृताने से आत्मा दंड पाती है सो त्यज है. (२) इसलिये तीन
को गुप्त रखे, पापसे बचावे सो तीन गुप्ती आदरने जोग है.(३)दगा-कपट
करणी के फलकी इच्छा, और कुमत की श्रधा, यह अंतःकरण के श
ल्य है सो त्यज है. (४) ऋद्धिका, भोजनका, और सुखका गर्व हो
ता है. सो त्यज है. (५) ज्ञान, दर्शन, और चारित्र, तीनों को सम्य
क प्रकारे नहीं अराधे सो तीन वीराधना त्यज है ॥ ४ (१) क्रोध-
मान, माय, और लोभ, यह चार कषाय त्यज है (२) अहारकी डरकी
मैथुन की, और धनकी यह इच्छा होती है सो त्यज है. (३) स्त्री
की, भोजनकी, देशान्तरोंकी, और राजावली की, यों ४ खोटी कथा
होती है सो त्यज है (४) आर्त और रौद्र ध्यान खोटे हैं सो त्यज
है. धर्म और शुक्ल ध्यान अच्छे हैं आदरने जोग हैं ॥५ (१) काया-
का, शस्त्र से, द्वेश भावसे, परिताप उपजाने से, और जीव काया अ
लग करनेसे क्रिया (पाप) लगती है सो त्यज है. (२) शब्द, रूप-
गंध, रस, और स्पर्शय, यह पांच काम के गुण है सो त्यज है (३,
दया, सत्य, दिया हुवा लेना. बृम्हचार्य, और निर्ममत्व. यह पंच म)
हाव्रत आदर ने जोग हैं. ३ देखकर चले, विचार कर बोले शुद्ध अ
हार प्रमुख भोगवे. भंड उपकरण यत्ना से लेवे और धरे उच्चारादि
क न्हाखने योगा वस्तू यत्नासे परिठावे—न्हाखे यह ५ समिती आद
र योग्य हैं ॥ ६ १ मट्टी, पाणी, अग्नि, हवा वनस्पति और हलते
चलते जीव यह जीव की काया जानने योग्य है (२) कृष्ण नील, का
पोत, यह तीन लेश्या त्यज है. और तेजु, पद्म शुक्ल, यह तीन आदरने
जोग हैं. ॥ ७ मनुष्य से मनुष्य को होवे सो इस लोक भय. मनुष्य
को तीर्यच का होवे सो परलोक भय. दे-ने का भय, अचिन्त्य उपजे

[१९] पुंडरिक पुंडरिक का. यह जानने योग है.

२० वीस असमाधी दोष—[१] जल्दी २ चले, [२] विनपूंजेचले. [३] पूंजकन्हां और पग कहां धरे. [४] पाट पाटल अधिक भोगवे. [५] वडे के सन्मुख बोले [६] स्थविर की घात चिन्तवे. [७] जीवकी घात चिन्तवे, [८] क्षिण २ क्रोधकरे, [९] वार २ निश्चय कारी वचन वोले, [१०] निंदाकरे, [११] नवा क्लेक करे, [१२] जून (खमाया हुवा) क्लेश पुनः करे, [१३] अकालमें सज्झाय करे, [१४] सचित रजसे भरा हुवा वस्त्र-व उपकरण विन पूंजे वापरे, [१५] पहर रात्री गये पीछे जोरसे वोले, [१६] जवर क्लेशकरे [१७] झुंज—तिस्कारके वचन वोले, [१८] चिन्ता करे, या दूसरेको चिन्ता उपजावे. [१९] नोकारसी आदि पच्चखाण नहीं करे [२०] असुजता अहार आदि भोगवे. यह त्यागने योग्य है.

२१ सवला (जवर) दोषः—[१] हस्त कर्म करे, [२] मैथुनसेवे, [३] रात्री भोजन करे, [४] आधाकर्मी अहार भोगवे, [५] राजपिंड (वलिष्ट) अहार भोगवे. [६] मोल लिया, वदला, छिनाके ले दिया मालिक की आज्ञा विन दिया, सामें लाकर दिया, यह पांच दोष युक्त अहार भोगवे.(७) वार २ पच्चखाण ले कर भांगे,(८) छः महीने पहिले सम्प्रदाय वद ले.९) एक महीने में नदी के तीन लेप लगावे, (१२—१३—१४) जानकर—हिंशाकरे-झूट—वोले—चोरी करे. (१५) सचित पृथवी पर सयन करे,(१६) सडे हुवे पाट भोगवे, (१७)सचित रजसे भरे पाट भोगवे, (१८) मूल,—स्कन्ध,—त्वचा,-प्रवाल (कूंपल,) पत्र, फूल. फल, वीज, हरी, यह दश सचित भोगवे(१९) एक वर्ष में दश नदीके लेप लगावे २० एक वर्षमें दश वक्त कपट करे. २१ सचित वस्तू से भरे हुवे हाथ और भाजन सेअहार लेवे. यह त्यागने जोग है.

२२ वावीस परिसहः-(१) क्षुद्याका (२)त्रषाका, ३)शीतका, (४)

पाणी की जावत् सातमी प्रतिमामें सात सात महीने तक सात दात आहारकी सात दात पाणीकी आठ मी नवमी और दशमीमें सात २ दिन एकांतर चोवीहार उपवास करे. इग्यारमी में १ वेला करे. इन उपवासके दिनमें दिनको सूर्यकी आतापना लेवे, रातको वस्त्र रहित ध्यान करे. और वारमी प्रतिमा में अठम (तेला) करे, तेले के दिन स्मशान में एक पुद्गल पर द्रष्टी रख ध्यानस्त रहे, देव दानव मानव के परिसह समभाव से सहे.

१३ तेरह क्रिया–(१) अपने शरीर कूटम्बादी निमित पाप करे सो 'अर्था दंड क्रिया'(२)निर्थक पाप करेसो 'अनर्था दंड क्रिया' (३) यह मुझे मारेगा ऐसा जान मारेसो ' हिंशा दंड क्रिया '(४)मारे किसे और मरजाय कोइ सो ' अकस्मात दंड क्रिया '(५) शत्रुके भरोसे मित्रको मारे सो 'द्रिष्टी विपरासीया क्रिया'(६)झूट वोले सो ' मोषवाति (७)चोरी करे सो 'अदीणादाण वति' (८)वहुत चिंता करेसो 'अझत्थ वति '(९)माता पिता आदि मित्रका अपराध करे सो 'मित्र दोष वति' (१०)अभीमान करे सो ' मानवति, '(११)दगा करे सो 'मायावती,' (१२)वांछा करे सो 'लोभ वति,' और(१३) केवली ज्ञानी और छद्मस्त को यत्न करतेभी अयत्नाहो जाय सो ' इर्यावही. यह तेरेही क्रिया त्यागने जोग हैं.

१४ चउदप्रकारे के जीव–सूक्ष्म एकेन्द्रिय, वादर एकन्द्रिय, वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चोरिन्द्रिय, असन्नीपचन्द्रिय, और सन्नी पचन्द्रिय, इन सातका अपर्यप्ता और पर्याप्ता यों १४ जीव के भेद जानने जोग है.

१५ पन्नरह परमाधामी (यम)देव-(१) नेरीये को आंव की तरह मश्ले सो ' अम्व नामे परमाधामी '(२) आंव के रसकी तरह रक्त मांस अलग २ करे सो ' अम्वरसप० ' (३) जवर प्रहार करे सो ' शामप० ' (४) मांस निकाले सो ' अम्वरसप० '(५)वरछी भालेसे

पाणी की जावत् सातमी प्रतिमामें सात सात महीने तक सात द
आहारकी सात दात पाणीकी आठ मी नवमी और दशमीमें सात
दिन एकांतर चौवीहार उपवास करे. इग्यारमी में १ वेला करे.
उपवासके दिनमें दिनको सूर्यकी आतापना लेवे, रातको वस्त्र रहि
ध्यान करे. और वारमी प्रतिमा में अठम (तेला) करे, तेले के दि
स्मशान में एक पुद्गल पर द्रष्टी रख ध्यानस्त रहे, देव दानव मान
के परिसह समभाव से सहे.

१३ तेरह क्रिया-(१) अपने शरीर कूटम्वादी निमित पाप क
सो 'अर्था दंड क्रिया'(२)निर्थक पाप करेसो 'अनर्था दंड क्रिया' (३
यह मुझे मारेगा ऐसा जान मारेसो ' हिंशा दंड क्रिया '(४)मारे
से और मरजाय कोइ सो ' अकस्मात दंड क्रिया '(५) शत्रुके भरो
मित्रको मारे सो 'द्रिष्टी विपरासीया क्रिया'(६)झूट वोले सो ' मोषवा
(७)चोरी करे सो 'अद्दीणादाण वति' (८)वहुत चिंता करेसो 'अझत
वति '(९)माता पिता आदि मित्रका अपराध करे सो 'मित्र दोष वति
(१०)अभीमान करे सो ' मानवति, '(११)दगा करे सो 'मायावती,
(१२)वांछा करे सो 'लोभ वति,' और(१३) केवली ज्ञानी और छद्मस्त
को यत्न करतेभी अयत्नाहो जाय सो ' इर्यावही. यह तेरेही क्रिय
त्यागने जोग हैं.

१४ चउदप्रकारे के जीव-सूक्ष्म एकेन्द्रिय, वादर एकन्द्रिय, बे
न्द्रिय, तेन्द्रिय, चोरिन्द्रिय, असन्नीपचन्द्रिय, और सन्नी पचान्द्रिय, इन
सातका अपर्यप्ता और पर्याप्ता यों १४ जीव के भेद जानने जोग है.

१५ पन्नरह परमाधामी (यम)देव-(१) नेरीये को आंव की त-
रह मशले सो ' अम्व नामे परमाधामी '(२) आंव के रसकी तरह
रक्त मांस अलग २ करे सो ' अम्वरसप० ' (३) जवर प्रहार करे सो
' शामप० ' (४) मांस निकाले सो ' अम्वरसप० '(५)वरछी भालेसे

पाणी की जावत् सातमी प्रतिमामें सात सात महीने तक सात दात आहारकी सात दात पाणीकी आठमी नवमी और दशमीमें सात २ दिन एकांतर चौवीहार उपवास करे. इग्यारमी में १ बेला करे. इन उपवासके दिनमें दिनको सूर्यकी आतापना लेवे, रातको वस्त्र रहित ध्यान करे. और वारमी प्रतिमा में अठम (तेला) करे, तेले के दिन स्मशान में एक पुद्गल पर द्रष्टी रख ध्यानस्त रहे, देव दानव मानव के परिसह समभाव से सहे.

१३ तेरह क्रिया-(१) अपने शरीर कूटम्वादी निमित पाप करे सो 'अर्था दंड क्रिया'(२)निर्थक पाप करेसो 'अनर्था दंड क्रिया' (३) यह मुझे मारेगा ऐसा जान मारेसो ' हिंशा दंड क्रिया '(४)मारे किसे और मरजाय कोइ सो ' अकस्मात दंड क्रिया '(५) शत्रुके भरोसे मित्रको मारे सो 'द्रिष्टी विपरासीया क्रिया'(६)झूट वोले सो ' मोषवाति (७)चोरी करे सो 'अदीणादाण वाति' (८)वहुत चिंता करेसो 'अझत्थ वति '(९)माता पिता आदि मित्रका अपराध करे सो 'मित्र दोष वति' (१०)अभीमान करे सो ' मानवति, '(११)दगा करे सो 'मायावती,' (१२)वांछा करे सो 'लोभ वाति,' और(१३) केवली ज्ञानी और छद्मस्त को यत्न करतेभी अयत्नाहो जाय सो ' इर्यावही. यह तेरेही क्रिया त्यागने जोग हैं.

१४ चउदप्रकोर के जीव—सूक्ष्म एकेन्द्रिय, वादर एकन्द्रिय, वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चोरिन्द्रिय, असन्नीपचन्द्रिय, और सन्नी पचान्द्रिय, इन सातका अपर्यप्ता और पर्याप्ता यों १४ जीव के भेद जानने जोग है.

१५ पन्नरह परमाधामी (यम)देव-(१) नेरीये को आंव की तरह मशले सो ' अम्ब नामे परमाधामी '(२) आंव के रसकी तरह रक्त मांस अलग २ करे सो ' अम्वरसप० ' (३) जवर प्रहार करे सो ' शामप० ' (४) मांस निकाले सो ' अम्वरसप० '(५)वरछी भालेसे

सो भय, अजीवका का, मरणका, और अपयशका- यह सातभय त्यज हैं, ८ जातिका, कुलका, रूपका, वलका, तपका, लाभका, बुद्धिका और मालकीका. यह ८ मद है सो त्यज हैं. ॥९ पहिली वाड स्त्री पशु नपुंक रहे उस मकानमें ब्रह्मचारी रहे नहीं, दूसरी वाड-स्त्री के सिणगार की कथा करे नहीं. तीसरी वाड-स्त्रीके अंगोपांग निरखने नहीं. चोथी वाड-में स्त्री के आसन पर बैठे नहीं, पांचमी वाड-स्त्री पुरुष के क्रीडा के शब्द सुन ने नहीं. छट्टी बाड-पूर्व कृत क्रिडा को याद करे नहीं. सातमी वाड—सदा सरस अहार करे नहीं. आठमी वाड-दाव २ कर अहार करे नहीं, नवमी वाड-सिणगार करने नहीं. इन नव वाड-युक्त शील पाले. यह आदराणियहै ॥१०प्रकार साधूका धर्म(१)क्षमावन्त(२)निर्लोभी[३]सरल[४]नम्र[५] हलके[६]सत्यवंत, [७]संयमी, [८]तपश्वी, [९] ज्ञानवन्त,[१०] ब्रह्मचारी, यह आदरणिय, (११) इग्यारे श्रावकको प्रतिमा—(१)सम्यकत्व निर्मल पाले,(२) व्रत निरतिचार पाले. (३)त्रिकाल सामायिक करे. (४)महीनें के छः छः पौषध व्रत करे. (५)स्नान, निशी भोजन, हिजामत, पगरखी, और काछ भीडना. यह पांच बोल बर्जे. [६]सर्वथा बृह्मचर्य पाले, [७] सर्व सचित अहार त्यागे, [८]आरंभ करे नहीं,[९]करावे नहीं,(१०)उनके निमित किया ग्रहण करे नहीं,[११]समण भूत-साधू जैसे से होवे, स्वकुलकी भिक्षा करे, दाढी मुछलोच करे पहिली पडिमा एक महीने की, दूसरी दो महीने की, जावत् इग्यामी इग्यार महीनेकी जानना. आगेकी प्रतिमामे पछिके सब बोल पालते हैं. और पहिली प्रतिमामें एकांतर उपवास, दूसरीमें बेले२ पारणा, जावत् इग्यारमी पडीमामे इग्यारे २ उपवास के पारणा करें.

१२ वारह साधु की पडिमा—१एक महिने एकदात अहारकी एकदात पाणी की, (२) दो महिने तक दो दात अहार की दो दात

तापका, [५] दंश मच्छरका, [६] अचेल [वस्त्र] का, [७] अरती [चिंता] का, (८) स्त्री का, [९] चलनेका, [१०] बैठनेका. [११] स्थानकका, [१२] आक्रोशवचन का, [१३] वध (मारने) का [१४] याचनेका, [१५] अलाभ का, [१६] रोगका [१७] सत्कारका, [१८] जलमेल का, [१९] त्रण स्फर्श्यका, [२०] ज्ञान का, [२१] अज्ञान का, और २२ सम्यक्त्वका, यह जानने योग हैं.

२३ तेवीस सुयगडांगके अध्यायः-सोलह तो पहिले सोलमें बोलमें कहे सो, और ७ दूसरे सुतस्कन्ध के अध्यायः-[१] पुष्करणी का, (२) क्रिया नामे (३) अहार प्रज्ञा, (४) पच्चक्खाण प्रज्ञा, (५) भाषाना में (६) आद्र कूँवार का, (७) उदक पेढाल, पुत्रका. यह जानने योग्य हैं.

चौवीस-देव[२४]तिर्थंकर, तथा[१०]भवनपति, [८]वाण व्यतर [५]जोतषी, और[१] विमानिक यह. [२४]जानने योग्य हैं.

[२५]पच्चीस भावना. पांच महावृतमें [२५]भावना देखीये.

[२६] छब्वीस कल्पके अध्यायसोः-व्यवहार सूत्र के ६,दशाश्रुस्कन्धके दश, औरवेदक कल्पके दश यों[२६]यह जानने योग्य हैं.

[२७]सताइस अनगार (साधू) के गुन, देखिये प्रकरण[८]वा

२८अट्ठाइस आचारके अध्यायः-१शस्त्र परिज्ञा,(२)लोक विजय,[३] शीतोस्नीया, (४) समाकित, (५) लोकसार,(६)धूता, (७)विमूख, (८) उपध्यान श्रु्त,(९) महाप्रज्ञा (यह आचारांग सूत्र के प्रथम सुत्स्कन्धके ९ अध्याय)(१०) पिण्डसणा,(११) सेजा, (१२) इर्या, (१३) भाषा,(१४) वखेषणा,(१५) पात्रेषणा,(१६ उगहं पडिमा,[१७-२३]सात सत किये,[२४] भावना (२५) विसुती,(यह १४ दूसरे सुत्स्कन्धके यों, आचारांगके २३ अध्याय हुवे, और २६ उवघाइ, २७ अणूवघाइ, २८ वृत रोपण.) यह

तीन नशीतके) यों २८ अध्याय आचारके जानने जोग हैं.

२९एकुण तीस पाप सूत्र-भूमी कम्प, उत्पात, स्वपन, अंतरिक्ष, अंग-स्फूरण, स्वर, व्यंजन, लक्षण, इन ८ के शास्त्र मूल, अर्थ, और कथा, यों ३ गुन्हे करने से २४ हूवे. और काम शास्त्र, विद्या शास्त्र, योगानुयोग, अन्य तीर्थी का आचार के, यों २९. यह जानने जोग हैं.

३० तीस महामोहनिय कर्म (की जो ७० क्रोडा क्रोडी सागर, तक सम्यक्त्वकी प्राप्ती न होने दे उन के) बंध के कारणः—(१-५) त्रस जीवको पाणीमें डूबाकर, शाश्वाच्छास रोक कर, धूंवे के योगसे, मस्तक में घावकर, मस्तक पर चर्म (चमडा) बान्ध मारे (६) बाला-मुर्ख की हँसी करे, (७-८) अनाचार सेवन कर छिपावे. या दूसरे के सिरडाले(९) शभामें मिश्र भाषाबोले (१०) भोगीके भोग रूंदे * [११] ब्रह्मचारी नहीं ब्रह्मचारी नाम धरावे. [१२] बाल ब्रह्मचारी नहीं बाल ब्रह्मचारी नाम धरावे [१३] शेठका धन गुमस्ता चोरे, [१४] सब जने मिल बडा स्थापन किया, वो बडा सबको दुःख देवे, या सब मिल बडे को दुःख देवे (१५) स्त्री भरतार आपस में विश्वास घात करे. (१६-१७) एक देश के या बहुत देश के राजाकी घात चिंतवे, (१८) साधूको संयम से भृष्ट करे, (१९-२१) तीर्थंकर की, तीर्थंकर प्रणित धर्मकी, आचार्य उपध्याय की, निंदा करे. (२२) आचार्य उपाध्याय की भक्ति नहीं करे (२३-२४) बहु सुत्री नहीं और बहु सुत्री, या तपस्वी नहीं, और तपस्वी नाम धरावे. (२५) वृद्ध—रोगी—तपस्वी—ज्ञानी-नव दिक्षित-इन की वैयावच्च नहीं करे, (२६) चार तीर्थ में भेद फूट डाले. (२७) जोतिष या वशीकरण आदि मंत्र भाखे (२८) देव मनुष्य तिर्यंच के अछते काम भोगकी

* भद्रबाहादि : वैराग्य प्राप्त करा या दूसरा निमित्त भोग छोडाने का अवसर नहीं करी [illegible] है. यह तो जनरों से सोचने से समझना है.

तिव्र अभिलाषा करे, (२९) धर्मके प्रभावसे देवता हुवे. उनकी निंदा करे, (३०) देवता नहीं आवे और कहे मेरे पास देवता आवे, तो महा मोहनिय कर्म वन्धे, यह त्यागने जोग है.

३१ इक्तीस सिद्ध भगवंत के गुन (देखो येदूसरा प्रकरण) यह आदर निय है.

३२ वत्तीस जोग संग्रहः—(१) अपने दोष गुरू सन्मुख प्रकाशे, (२) वो दोष गुरू किसी को कहे नहीं. (३) संकट समय धर्म में द्रढ रहे, (४) वांछा रहित तप करे, (५) हित शिक्षणग्रहण करे, (६) शरीर की शोभा नहीं करे. (७) अज्ञात कूलमें गौचरी करे. (८) गुप्त तप करे, (९) समभाव परिसह सहे, (१०) सरल [निष्कपटि] रहे (११–१७) संयम–सम्यक्त्व चितकी समाधी, पंचाचार, विनय, वैराग्य सहित सदा प्रवृतें. [१८] धर्म तप में विर्य फोडे. (१९) आत्मा का निध्यान की तरह यत्न करे, (२०) शिथिल (ढीले प्रमाण नहीं करे. २१ संवर को पुष्ट करे (२२) अपनी आत्मा के अवगुन दूर करे.(२३)वृत प्रत्याख्यान की सदा व्राद्धि करे (२४)कायोत्सर्ग करे, और उपाधी का अहंकार नहीं करे. (२५) पांच प्रमाद छोड(२६)थोडा वोले, और वक्तोवक्त क्रिया करे. (२७) धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान ध्यावे.(२८)सदा शुभ जोग रखे.(२९)मरणान्ती वेदना उपजे मन स्थिर करे. (३०)सर्व काम भोग त्यागे.(३१)आलोचना निंदणाकर निशल्य होवे, (३२) सलेषणा यूक्त समाधी मरण करे. यह आदरने योग्य है.

३३ तेंतीस अशातना-(१) अर्हतकी, (२) सिद्ध की, (३) आचार्यकी, (४) उपाध्यायकी, (५) साधू की, (६) साध्वी की, (७) श्रावक की, (८) श्राविका की, (९) देवताकी, (१०) देवी की,

(११) इसलोककी, (१२) परलोक की, (१३) केवल ज्ञानी की (१४) केवली प्रणित-धर्म की, (१५) देवोंकी मनुष्यो की, (१६) सब जीवोंकी, (१७) कालकी, (१८) सुत्रकी, (१९) सुत्र की वांचना देने वालेकी, यह(१९)और(१४)ज्ञानके अतिचार यों३३ अशातानाा त्याग ने योग्य हैं.

यह एक बोल से लगाकर[३३]बोल कहे, उन में से जानने जोग बोल जाने नहीं, आदरने जोग आदरे नहीं, और छोडने जोग छोडे नहीं होवे सो पाप निष्फल होवो.

५५ पाठ पचावनवा- " नमो चौवीसा " का

नमो चउ वीसाए, तित्थयराणं, उसभाइ महावीर, पजवसणाणं, ईणमेव निग्गंथ पावयाणं-सच्चं, अणुत्तरं, केवलीयं, पडिपु-न्नं, नेयाउयं, संसुद्धं, सल्लकत्त णं, सिद्धि मग्गं, मुत्तिमग्गं, निज्जान मग्गं, निवाण मग्गं, आवेतह माविसीद्धं, सव्व दुःख पहीण मग्गं, इ-त्थं ठिया जीवा सिझंति, बुझंति, मुच्चंति, परिनिव्वायंति, सव्व दुःखा-ण मंतं करंति, तंधम्मं-सद्दहामि, पतियामि, रोयामि, फासेमि, पालेमि, अणु पालेमि, तं धम्मं-सदहंतो, पतियंतो, रोयंतो, फासंतो, पालंतो, अणुपालंतो, तस्स धम्मस्स केवलीपतन्नस्स अभ्भुठि ओमि, आराहणाय विरओमि विराहणाय, असंयम परियाणामि, संयम उव संपज्जामि, अबंभ परियाणामि, बंभ उवसंप ज्जामि, अकप्पं परियाणामि, कप्पं उव संपज्जामि अन्नाणं परियाणामि, णाणं उवसंपज्जामि, आकिरियं परियाणामि, किरियं उवसंपज्जामि, मिछत्तं परियाणामि, समत्तं उवसंपज्जामि, अबोही परियाणामि, बोहि उवसंपज्जामि, अमग्गं परियाणामि, मग्गं उव संपज्जामि, जंसंभरामि, जंचन संभरामि, जंपडि क्कमामि, जंच नपडि क्कमामि, तस्स सव्वस्स देवसीयस अइयारस्स, पडिक्कमामि, समण-

हिं, संजय, विरय, पडिहय, पच्चाखाय, पावकम्मो, अनियाणे, दीठी. संपन्नो. माया मोसं विरजो, अढाइअेसु दिव पन्नरस्स कम्मभूमिसु जावंती कइ साहु रयहरणं गुच्छगं पडिगहं धारा, पंच महाव्वय धारा, अठारस सहस्स सिलंग रथ धारा, अक्खय आयार चरिता; ते सव्वे सिरसा मणसा मथयेण वंदामि.

गाथा—खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खिमामे तुमे ।

मित्ति मे सव्वे भूयेसु, वैर मझं न केणइ ॥ १ ॥

एवमहं आलोइयं, निंदियं ग्रहियं दुगंछियं ।

सव्वं तिविहेण पडिकंतो, वंदामि जिण चउवीसं ॥ २ ॥

भावार्थ—श्री ऋषभ देवजी आदिक चौवीस तीर्थकरों को स विनय हस्तांजली युक्त अभिवंद युक्त प्रार्थना करताहूं कि–हे नाथ! आप जैसे निग्रन्थोने पुर्ण ज्ञान की सत्ता कर वताया हुवा सर्वोत्तम मार्ग सत्य न्याय नीती कर भरपूर है, शुद्ध है. वैम रहित स्वतःसिद्ध है, कर्म से मुक्त हो परम शीतल भूत होने का है, इस मार्गमें प्रवृतने वालेका सव दुःखका नाश होता है, सिद्ध पदको प्राप्त करते हैं, लोकालोक के स्वरूप को जानते हैं, कर्म के वन्ध से छूटते है, शीतली भूत होते हैं, ऐसा जानकर मै भी वन्धनो से मुक्त होने की इच्छा से इस धर्म को पक्की आसता से श्रधता हुं. परतीत करता हुं, रुची रखताहुं. तीनो ही योग से स्पर्शयता हुं, पालताहूं. विशेष शूद्ध पालता हूं. तैसे ही अहो मुमुक्षु जनो ! तुम भी इस धर्म को श्रद्धो, परतीत करो, रूची यूक्त स्पर्शों, पालो, विशेष शूद्ध पालो, यह धर्म पालने का मेरा प्रयास सफल होने की इच्छा से–आश्रवको त्याग संवर ग्रहण करता हुं, कूशील कों त्याग शील ग्रहण करताहूं, अकल्पनीक पदार्थोंको त्याग कल्पनीक ग्रहण करताहूं. अज्ञानताको छोड. ज्ञान ग्रहण

करतांहू. दुष्कृत्य को छोड, सुकृत्य करूंगा, मिथ्या श्रद्धा छोड, सम्यक्त्व की श्रद्धा रखुंगा, कु बोध को छोड, सुबोध ग्रहण करूंगा. और कु मार्ग को छोड मोक्ष मार्ग में प्रवृतूंगा, यह वगैरा जो मुझे याद आया, अथवा नहीं आया, और जिसका प्रायश्चित मैने किया, अथवा नहीं किया, उन सर्व अतिचारों से अब प्रायाश्चित ले निवर्तताहु ऐसा ही होवो, वरोक्त सिद्ध मार्ग को ग्रहण कर प्रवर्तने वाले सम्म प्रणामी मुनिवरों, संसार से मुक्त होने के लिये संवर क्रिया कर पाप की अव्रत को रोकते हैं, और नियाणा तथा कपट रहित सम्यक्त्व पूर्वक जिनाज्ञा मुजब प्रव्रत कर अढाइ द्विप के पन्दरह कर्म भूमी के क्षेत्र में विचरते हैं. जो रजूहरण, पात्र, गुच्छ, मुहपति,वगैरा नियमित धर्म उपकरण रखते हैं, पंच महावृत धारी, आठरह हजार शील वृत रूप रथके वाहन करने वाले धोरी समान है! निर तिचार चारित्र पालते हैं, उन सबको त्रिकरण शुद्धि से वंदना कर कृतज्ञ होताहूं. ऐसाही होवो. खमाताहु सब जीवों ! मेरा अपराध माफ करीये, सब साथ मैरे मैत्री भाव है. किंचितही वैर भाव किसी के साथ नहीं है. ऐसी मैं आलोचना-निंदना-ग्रहणा कर—पापसे निवृत, चौवीसही तीर्थंकर गुरू-महाराज को वंदना करता हुं.

☞ यहां ११ में पाठमें कहा हुवा खमासमणा विधी युक्त कहना. फिर अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधू जी के गुणानुवाद १–२–३-६-५ में प्रकरण में किये हैं, उस मुजब यथा शक्ति कह कर अलग २ वंदना नमस्कार करना. फिरः—

५६ पाठ—छपन्नवा—'आयरिय का'

गाथा—अयरिय उवझाए सीसे साहामिए कुल गणे अ ॥

जेमे केइ कसाया । सव्वे तिविहेण खामेमि ॥ १ ॥
सव्वस्स समण संघस्स । भगवओ अंजलिं करिय सीसे ।
सव्वं खमा वइत्ता । खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ २ ॥
सव्वस्स जीव रासिस्स । भावओ धम्म निहिय नियाचितो ।
सव्वं समाइत्ता । खमामि सवस्स अहयंपि ॥ ३ ॥

भावार्थ—पंचाचार पाले सो-आचार्य ' गीतार्थ-' उपाध्याय ' शिक्षा ग्रह सो-' शिष्य ' एका धर्म पाले सो-' साधर्मी ' एक गुरूका परिवार सो-' कूल ' एक सम्प्रदायके सो-'गण' इन सवौं का आविनय किया हो तो त्रिविध २ क्षमाताहुं. सर्व संघको हाथ जोड मस्तक पर चडाकर नम्र भूत हो सर्व अपराध की क्षमा चहाताहुं. और में सवके किये अपराध को क्षमाताहुं. एकेंद्री आदि जीवरासी का किया अप राध भाव से क्षमाकर, सव जीवों पर समभाव धारण करताहुं. फिर—

पाठ ५७ सतावनमा-' अढाइ द्विप ' का

अढाइ द्विप तथा पन्नरह क्षेत्र अन्दर और वाहिर, श्रावक श्रा विका-दान देवे, शील पाले, तपस्या करे, भावना भावे, संवर करे, सामायिक करे, पोसह करे, पडिक्कमणा करे, तीन मनोर्थ चउदह नि-यम चिंतवे. एक वृत धारी जावत वारहवृत धारी, जो भगवंत की अज्ञामें विचरे, मेरे से मोटे को हाथ जोड पगे लगा क्षमाताहुं. छोटे को वारम्वार क्षमाता हूं.

☞ यह वरोक्त ५७ वा पाठ फक्त श्रावक ही वोलते हैं.

५८ पाठ अठावनमा-„ जीवायोनी "-का

सात लाख पृथवी काय. सात लाख अपकाय सात लाख तेउ

काय, सात लाख वाउ काय, दशलाख प्रत्येक वनस्पाति काय, चउदह लाख साधरण वनस्पाति काय, दोलाख वेंद्री- दोलाख तेंद्री, दो लाख चौरिंद्री, चार लाख तिर्यंच पंचेन्द्री, चार लाख नारकी, चार लाख देवता, चउदह लाख मनुष्य, यों चौरासी लक्ष जीवा जोनी का छेदन भेदन विराधना करी हो तो तस्स० ॥

५९ पाठ उन्नसठमा- " कुल कोडी " का

पृथवी कायकी बारह लाख क्रोड, अपकायकी सात लाख क्रोड, तेउकायकी सात लाख क्रोड, वाउकायकी सात लाख क्रोड, वनस्पति की अठाइस क्रोड, बेंद्री की सातलाख क्रोड, तेंद्री की आठ लाख क्रोड, चौरिंद्र की नवलाख क्रोड, जलचरकी साडी बारह लाख कोड, थलचरकी दश लाख कोड, खेचकर की बारह लाख क्रोड, उपरकी दश लाख क्रोड, भुजपरकी नव लाख क्रोड, नरककी पच्चीस लाख क्रोड, देवताकी छब्वीस लाख क्रोड, मनुष्य की बारह लाख क्रोड, सर्व एक कोड साढी सताणुव लाख कोड, जीवोंके कुलका छेदन भेदन विराधना की होतो तस्सामि ०॥

६० पाठ-साठवा-" खमाने " का

खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे ॥
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मझं न केणइ ॥ १ ॥
एव महं आलोइअ, निंदीआ गिरहिअ दुगंछिअं ।
सव्वं तिविहेण पडिकं तो, वंदामि जिण चउवीसं ॥ २ ॥

☞ यह पाठ ५५में पाठ के अन्तमें भी आया है.

☞ यहा तक चौथा आवश्यक—जानना.

पंचम-आवश्यक-'काउसग्ग.'

६१ पाठ इकसठवा-"प्रयाश्चित" का

दैवसिक प्रायश्चित विशुद्धनार्थ करेमि काउसग्गं ॥

भावार्थ-दिन में लगे हुवे पापकी निवृती के लिये काउसग्ग करताहुं

☞ यहां ८ वा पाठ 'नवकार महा मंत्र का, ९ वा सामायिक का १० वा 'इच्छामी ठामीका,' और फिर ३ रा पाठ 'तसुत्तरी' का कह, काउससग्ग करना, काउसग्ग में ४ था पाठ 'लोगस्स' का ४ वक्त कहना फिर काउसग्गपार. एक वक्त और भी ४ था पाठ 'लोगस्स' का संपूर्ण कहना. फिर ११ वा पाठ 'खमासमणा' का दो वक्त पूर्वोक्त विधीसे कहना. यह पंचमा आवश्यक हुवा.

छठा आवश्यक 'पच्चखाण'

☞ पुर्वोक्त पंच आवश्यक की विधीसे आत्मा को पाप मार्ग से निवार शुद्ध करी, अब आगामिक काल का पाप रोकने के लिये छठा आवश्यक में पच्चखाण करे. सो पाठः—

६२ पाठ बांसठवा-"पच्चखाण" का

गंठीसहि, मुठीसहि, नवकारसी; पोरसी, साढ पोरसी; आप आपनी धारणा प्रमाणे, तिविंहंपि चौहीविहीप आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणा भोगेणं, सह सागारेणं, महत्तरा गारेणं, सव्व समाहि वतिआगारेणं, वोसिरे ॥ १ ॥

भावार्थ—असुक वस्त्रकी गाठी लगी रहे वहां तक, मुट्ठी भी

डी रहे वहांतक. नमस्कार सी–नवकार नहीं गिणु वहांतक तथा, कच्ची दो घडी दिन आवे वहातक, पहर दिन आवे वहांतक, देढ पहर दिन आवे वहांतक, (इस उपरांत इच्छा होवे वहांतक) जो पाणी पीणा होवे तो तीन अहारके करे, * और पाणी नहीं पीणा होवे तो चारही अहार के करे, इस में चार आगार रहते हैं:—१ पच्चखाणका भान नहीं रहन से कोइ वस्तु मुख में डाल दे, २ काम करते दाणा या छांटा उछलकर मुख में पडजाय, परंतु याद आये तूर्त थूक देवे. ३ पच्चखाण से भी अधिक लाभका कोइ काम होवे उस के लिये गुरू महाराजके या संघके हुकम से अहार करले. ४ रोगादि कारण से अत्यन्त असमाधी हो जाय, और वे भान में कोइ वस्तू भोगवे लेवे. इन ४ काम से पच्चखाण का भंग न होवे.

३६ पाठ त्रेसठवा-"समाप्ती" का

१ सामायिक, २ चौवीसत्थो, ३ वंदणा, ४ पडिक्कमणो, ५ काउसग्ग, ६ पच्चखाण, यह ६ आवश्यक पूर्ण हुवा, इसमें सामायिक वृतमान काल की हुइ, प्रतिक्रमण गये कालका हुवा, पच्चखाण आवते काल के हुवे, जिसमें आतिक्रम, व्यतिक्रम, आति चार, अनाचार लाग होवे तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

☞ सुखसे निर्विघ्नपणे छःही आवश्यक की समाप्ती हुइ. इस लिये ३ टा पाट 'नमुत्थुणं' का दोवक्त पुर्वोक्त विधीसे कहै. फिर सव साधूजी महाराजको आर्याजीको अनुक्रमे 'तिखुत्त' की विधीयुक्त वंदणा करे, और सव स्वधर्मीयों से क्षमत क्षमावना करे.

इति छः आवश्यक समाप्त.

---

* यह निवि अहार फक्त दिनके किये जाता है रातको तो चोविहार ही होते है.

उस से संवत्सरी प्रती क्रमण किये जाता है. चौमासी की माफिक इसमें भी दो प्रातिक्रमण किये जाते हैं फरक फक्त 'संवत्सरी सम्बन्धी मिच्छामी दुक्कडं' देना चाहीये. और चालीस लोगस्स का काउसग्ग किया चाहिये.

☞ इन छः आवश्यक की विशेष विधी अपने २ गुरु आंमना प्रमाणे करना चाहीये.

ऐसी तरह यथा विधी पापके पश्चाताप युक्त शुद्ध भावसे पांच ही प्रतिक्रमण करने से किया हुवा पाप शिथिल (ढीला) हो जाता है अपने कृत्या कृत्य से वाकिफ हो मनुष्य कर्तव्य प्रायण बनता है. अनेक पाप कार्य में प्रवृत ते हुवे मनको रोक शक्त है, चितकी शुद्धि होती है. जिससे दोनो लोकका का सुधारा होता है. शुद्ध चितसे यथा विधी आवश्यक करने वाला उत्कृष्ट पन्दरह भवमें मोक्ष पाता है, और उत्कृष्ट रसायण आने से तीर्थ कर गौत्रकी उपार्जना कर तीसरे भवमें तीर्थंकर–परमात्मा बनता हैं.

निरती चार वृत वालोका ही प्रतिक्रमण शुद्ध होता है, इस लिये वृतोके आतिचार आगे दर्शाने की इच्छासे इस प्रकरण की समाप्ती करता हूं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्म चारी मुनि श्री अमोलख ऋषि जी रचित " परमात्म मार्ग दर्शक " ग्रन्थका " आवश्यक " नामक बारहवा प्रकरण समाप्तम्.

श्री परमात्मायनमः

प्रकरण--तेरहवा.

शील आदि वृत—निरातिचार.

शीलं प्राण भ्रता कुलोदय करं, शीलं वपु भुषण ।
शीलं शौच करं विपद्भय हरं, दौर्गत्य दुःखा पहं ॥
शीलं दुर्भगतादि कंद दहनं, चिन्तामणी प्रार्थि तो ॥
व्याघ्र व्याल जला नलादि शमनं, स्वर्गा पवर्गा प्रदं ॥

भावार्थ—यह शील है जो कुलका उद्योत का करने वाला, शरीर को भूषण रूप, पवित्रता का करने वाला, विपत्ति और भय का हरने वाला, दुर्गति और दुःखका नाश करने वाला, दुर्भाग्यादि के कंद का दहन करने वाला, चिन्तामणी रत्न जैसा इच्छा को पूर्ण करने वाला, व्याघ्र, सर्प, जल और अनल (अग्नि) आदिक उपसर्ग को समन (शांत) करने वाला, यह शील ही है.

शील शब्द अनेक गुन अर्थमें प्रवर्ता है. जैसे:—ब्रह्मचर्य को शील कहते है. शीतल स्वभाव को शील कहते है. और शील का मुख्य अर्थ ब्रह्मचर्य ही है. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

कर ने वाले ही बडी शक्ति के धारक वीर पुरुष ही अराध शक्ते हैं. कायरका मी जन की क्या ताप कि इस की अराधना कर सके.

अब काम शत्रु कैसा प्रबल है सो कहते हैः-ज्ञाणार्णव ग्रन्थ मे काम शत्रु के दश वेग कहे हैं.

"काम के १० वेग"

श्लोक-प्रथमो जायते चिन्ता । द्वितीय द्रष्टु मिच्छाति ॥
तृतीये दीर्घ निश्वासा । श्चतुर्थ भजते ज्वरम् ॥ २९
पञ्चमे दह्यते गात्रं । षष्टे भुक्तेन रोचते ॥
सप्तमें स्यान्महा मूर्च्छा । उन्मत्त त्वम थाष्टमे ॥ ३०
नवमें प्राण संदेहो । दशमें मुच्छते २ भिः ॥ १
एतैर्वेग समा क्रान्तो । जीवस्त त्वं नपश्यति ॥ ३१२

अर्थात्-कामकी वांछा उत्पन्न होते ही :-१ चिंता होती हैं, कि स्त्री कामिलाप कैसे होवे, २ फिर उसे देखने की दीर्घ इच्छा अति उत्कन्ठा होती है. ३ दीर्घ निश्वास न्हाके, हाय २ करे, ४ संयोग नहीं मिलने से ज्वरादि रोग की प्राप्ती होवे, ५ शरीर दग्ध होवे, ६ दुर्बल होवे, किया भोजन नहीं रूचे. ७ मुर्च्छा आवे अचेत होवे. ८ बुद्धि की विकलता होवे, पागल होवे, यद्वा तद्वा प्रलाप करे-बके, ९ जीते रहनेकाही भरोसा न रहे. १० मरण भी निपजे. यह १० काम वेग कहे है. इन में से एक वेगमें फसा हुवा प्राणी शूद्ध बूद्ध जाता हे, तो दश वेग प्राप्त होवे उनकी क्या दशा? अर्थात् से ही गांठ पडे! ऐसा प्रबल काम शत्रू है.

"काम शत्रू को जीतने सद्बोध"

१ कामग्नि बडी प्रबल होता है कमी को कभी गहरे समुद्र में

भी डूवा देवो तो उसकी आत्मा शीतल नहीं होती है, कामाग्नि प्रथम हृदय से प्रज्वलित हो फिर सव शरीर में पसर जाती है, बुद्धि को दग्ध कर डालती है, और उस भस्म को शरीर को लगा काला वना देती है.

२ काम रूप जेहर वडा प्रवल है, क्योंकि और जेहर तो खाने से व्याप्त होते हैं और यह काम रूप जेहर स्मरण मात्र से व्याप्त हो जाता है. और जेहर का तो औषध उपचार भी होता है. इसका तो कौइ औषध ही नहीं ! और जेहर तो फक्त एकही भवमें प्राण हरण करता है, और यह तो अनंत वक्त मार करभी पीछा नहीं छोडता है!

दर्शनात हरते चिंत स्पर्शतात, हरते वलं ।
संभोगांत हरते वीर्यं नारी प्रत्यक्ष राक्षसी ॥

भावार्थ—नारीका दर्शन देखनेसे चितका हर्ण होता है, स्पर्श-करने से वलकी हाणी होती है, और भोग करने से वीर्य की हानी होती है, इस वास्ते नारीको प्रत्यक्ष राक्षसी—समानही जानी जाती है!

३ यह काम काँटा वडा तिक्षण और दुरघर है, चुवते ही आरपार भिद जाता है. और निकलना वडी मुशकिल हो जाता है, सदा चूवा ही करता है, जिससे कामीका लक्ष उधरही लगा रहते है.

४ कामांध हुवा मनुष्य अपनी इज्जत धन सुखयशः और शरीर इस के नाश की तरफ जराही लक्ष नहीं देता है, और वक्तपर इच्छित संयोग नहीं मिलने से जेहर, शस्त्र आदिसे अपनी मृत्यू कर लेता है.

५ इस काम ठगारेने चतुरको मूर्ख, क्षमावान को क्रोधी, शूर, वीर को कायर, और गुरूको लघू वना दिये हैं.

६ काम रूप मतवाला मद में मदमस्त हुवा मातु, पुत्र, वंधु, भवजाइ, विध्वा, गुरू पत्नी, और मात भगिनि भी व्यभिचार करनेमें

नहीं चूकता है, योगायेग का बिलकुल ही विचार नहीं करता हैं.

७ जैसे फूटे घडे में से पाणी निकल जाता है, तैसे ही काम वाण से भिदे हुवे हृदय मै से-सत्य, सील, दया, क्षमा, संयम, तप इत्यादी सब सद्गुण पलाय मान हो जाते हैं!

८ अहो इस काम की प्रवलता के तरफ तो जरा लक्ष दिजीये ! इस ने ब्रह्माके पंचम् मुख गर्द्धवका बनाया, शंकरके लिंगका पतन कराया ! पारवतीके आगे नचाये, ! माधवको गोपीयों के पीछे नचाये! इन्द्रके भगेन्द्र का रोग किया! चन्द्र को कंलकित किया! वगैरा वडे २ देवोंकी बिटवना करने में कूछभी कसर नहीं रखी ? ऐसा लेख उनको परमेश्वर मानने वालेके शास्त्रोंमें ही लिखा हुवा है. और लंका धीश रावणकी भी महा विटंबना हूइ, तथा अवभी उसके नामसे कर रहे है. * ऐसे २ केइ दाखले ग्रन्थो में हैं.

९ और इस लोक में प्रत्यक्ष भी देखते है कि-काम लुब्ध की इज्जत जाती है, फजीती होती है, और गरमी आदि अनेक कू-रोग से सड २ कर अकाल मृत्यू पाकर नर्कादि दुर्गतिम चलाजाते है, कि जहां यम पोलाद की गरमागरम पूतली के साथ अलिंगन कराते हैं. यों यह काम शत्रू दोंनो भव में दुःख दाताहोता है,

---

* मनहर—नायकनी रासी, यह बागुरीन भासी।
खासी लीए हांसी, फांसी, ताके फास में न परना ॥
पारधी अनंग फिरे, मोहन धनुष्य धरे।
पेन नेन बान खरे, ताते तोही डरना ॥
कुचेह पहाड हार, नदी रोम वन।
कीसन अमृत एन, वेन मुख झरना ॥
अहो मेरे मन मृग, खोल देख ज्ञान दग।
येही वन छोरी, कोउ और ठोर चरना ॥ ११

का गिनते है. फिर चमडे पर प्रिती धरने वाले-चर्मका प्यार करने वाले पवित्र कैसे होवें ?

१२ और भी जोजो वस्तु इस जक्त में अपवित्र होती है सो विशेष कर इस शरीरके सम्बन्ध से ही होती है. उमदा भोजन जहां तक इस शरीरके भोगोपभोग में नहीं आता है वहां तक ही मनहर दिखता है. वोही पदार्थको शरीर सम्बन्ध होने से सुगन्धी, के दुर्गन्धी सुरूप के दुरूप होते हैं तब उसे देख वोही भोगी थूक ने लग जाता है ! ऐसे ही वस्त्र भूषणकी भी आभ जो पहिले होती है वो शरीर सम्बन्ध हुवे पीछे नहीं रहती है. ऐसा यह खराब शरीर है. फिर इस के सम्बन्ध से खुशी कैसे उत्पन्न होवे ?

१३ कामान्ध श्वान (कुत्ते) की माफिक आज्ञानी होता है, जैसे क्षुधा पिडित श्वान सूखे हड्डी के टुकडे को चिगलता उसकी तिक्षण कोरसे ताल्ल फूटनेसे रक्ता श्रव होता है, जिसके स्वाद में लुब्ध हो ज्यादा २ चिगलता है, जिससे तालुमे रोग उत्पन्न हो कीडे पडतेजाते हैं, फिर मारा २ फिरता हैं, महा संकठ से प्राण त्यगता है. तेसेही अज्ञानी अपने रक्तका-सुक्र का क्षय कर आप मजा मानते हैं. और फिर हीन सत्व के धणी हो गरमी के अनेक रोगसे सड २ के कुत्तेकी मोत से मरजाते हैं. जो उस शरीर को प्राण प्यारे कर के बोलाते थे, वोही उसपर थूकने लग जाते हैं? दूर २ करते हैं? देखीये सुज्ञों ? काम शत्रु कामी की कैसी विटम्बना करता है ?

१४ आत्म सुखार्थी ज्ञानी जनो! जैसे सन्ध्याराग, पाणीका वुद वुदा, इन्द्र धनुष्य, वगैरा क्षिणिक की शोभा बना कर अदृष्ट हो जाते हैं, जैसे घाणी में पिल्लाया हुवा तिल निसार हो जाता है, तैसेही विनकी लीला मे लब्धिन हुवे शरीर की अस्क मस्क क्या को धय

कर सत्व हीन निरूप योगी असार वनाने वाले यह दुष्ट शत्रू कामही है.

१५ गाथा–सुत्ता दाम तग कज्जय । भंजय सुढाणाण जे राहिया ॥
इम अवरफल सुह लुहदो । णर आयुदिनसुत्ताफलेहओ ॥ ४९ ॥

अर्थात्–जैसे अज्ञानी (वाल) सूतके धागे (डोरे) के लिये मोती के हारको तोड डालता है, तैसेही मुढनर विषय भोगमें लुब्ध हो दिनरात (आयुष्य) रूप मोती का नाश करते हैं.

१६ असुर सुर नराणां योन भोगेन तृप्तः
कथमपि मनुजानां तस्य भोगेन तृप्तिः
जल निधि जल पानैर्योंन पानेत तृप्तिः
स्तणा शिखर गतास्य स्तस्य पानेस तृप्तः

अर्थात्–समुद्र का पाणी पीने से ही तृषा शांत न हुइ, तो क्या तृणाके अग्रह के उपर जो औसके पाणी का बुन्द है, उस के प्रासन से तृप्ति होगी ? ऐसे ही सागारो पमो के आयूष्य तक जो देवता ओं सम्बन्धी उत्कृष्ट भोग भोग वनेसे ही तृप्ति न आइ, तो इन धीनिक क्षिनिक मनुष्य के भोगों से क्या तृप्ती होगी ! अर्थात् भोग भोगवने से तृप्ती कदापि नहीं होती है, परन्तु भोगों त्याग शांतात्मी वननेसे ही तृप्ती होती है !

☞ अहो सुख इच्छ कों ? वरोक्तादि अनेक द्रष्टांतेस इस काम शत्रू की दुष्टता का अच्छी तरह ख्याल कीजीये, और अपणी ही आत्मा के हितेच्छू वन. वन आवेतो वच पनसे ही आतम संयम कीजीये अर्थात् इस शरीर में जो राजा तुल्य वीर्य है. कि जिसकी सहायता से अपने ज्ञान, ध्यान, तप, संयम, भक्ति, भाव आदि अनेक आतम उद्धार के करम कर शेक, उस वीर्य का विषय सेवन जैसे नीच कृतव्य में नाशकर आतम द्रोही पना नहीं करना चाहिये ! जो वचपन मे

नहीं बने तो समज में आये पीछे, जबसे बने तबसे आत्म संयम करना ब्रह्मचार्य धारण करना शीलवृती होना चाहिये.

"शीलकी ९ वाड"

जैसे कृपान खेत के रक्षणके वास्ते काँटे की बाड करता है, त्यों ब्रह्मचारी अपने शील व्रत के स्वरक्षण के वास्ते नव वाड करते हैं.

गाथा—आल ओरथी जणाइणो । थी कहाय मणोरमा ॥
संथवो चेव नारीणं । तासिंन्दिय दरिसिणं ॥ ११ ॥
कुइयं रुइयं गीइयं । सह भुत्ता सियाणिय ॥
पाणियं भत्त पाणंय । आइ मायं पाण भोयणं ॥ १२
गत्त भूसण मिट्ठंच । काम भोगाय दुज्जया ॥
नर सत्त गवेसिस्स । विसं तालउडं जहा ॥ १३ ॥

अर्थात्—१ पाहिली वाड में ब्रह्मचारी, स्त्री, पशु, नपुंसक रहता होवे उस जगह में रह नहीं. जो कदाचित रहतो, जैसे—बिली वाले मकानमें उंदरे रहे तो उनकी घात होती है, तैसे सील की घात होवे. २ दूसरी वाडमें, स्त्री के शृंगार, हाव, भाव की कथा करे नहीं जो करेतो, जैसे—इमली आदि खटाइ का नाम लेने से मुख में से पाणी छूटता है, तैसे मन चलितहो, वृत भंग. ३ तीसरी वाड में, स्त्री पुरुष एक आसन पर बैठे नहीं, और बैठे तो, जैसे-भूरे कोलके फलसे कणिक आटे का नाश होवे, त्यों शील का नाश होवे. ४ चौथी वाड में ब्रह्मचारी, स्त्री के अङ्गोपांग निरखे नहीं निरखे तो जैसे कच्ची आँख वाला सूर्य सन्मुख देखने से उसकी आँख का विनाश होवे, त्यों शीलका नाश होवे. ५ पांचवी वाडमें ब्रह्मचारी टट्टी भींत पाणित पडदा आदि के अंतर में स्त्री पुरुष संसार की क्रिडा करते होवें और

कान में शब्द आते होवें, वहां रहे नहीं. रहेतो जैसा घी का घडा अग्निके पास रहनेसे पिगलता है, त्यों मन पिगल कर शीलका नाश होवे. ६ छट्टी वाडमें ब्रह्मचारी पहिले करी हुइ क्रिडाको याद करे नहीं, करे तो जैसे-परदेशी छाछ पीकर परदेश गये, और छःमहीने पीछे आये, तव बुड्डिने कहा कि-तूम छाछ पीकर गये पीछे उस छाछमें सांप निकलाथा ! इत्ना सुनते ही उनको सांप का जेहर चडा, और वो मर गये ! तैसे पूर्व क्रिडा संभार ने से ब्रह्मचार्यका नाश होवे. ७ सात मी वाड में ब्रम्हचारी नित्य सदा सरस २ अहार करे नहीं, क-रेतो जैसे-सन्नी पात के रोगी को दूध सक्करका अहार आयुष्य का नाशका कर्ता होवे, त्यों शीलका नाश होवे. ८ आठ मी वाड में ब्र-म्हचारी मर्यादा उप्रांत (भूख उपरांत) दाव २ कर अहार करे नहीं, करे तो जैसे सेर भर खीचडी पके ऐसी हंडी में सवा सेर खीचडी प-काने से हंडी फूट जाय, त्यों ब्रम्हचर्य नाश पावे. ९ नवमी वाडमें ब्रम्हचारी शरीर की विभुषा (श्रंगार) करे नहीं, करे, तो जैसे-भिंमार के हाथ में रत्न नहीं टिके, त्यों शील रत्न नहीं रहे.

☞ इन नव वाडमें से एकही वाडका भंग करने से जैसे तालपुट विषके भक्षण कर मृत्यू निपजता है, तैसे शील व्रत का नाश होवे. ऐसा जानकर ब्रह्मचारी नववाड और शब्द, रूप, गंध, रस स्पर्शकी लुब्धताका त्याग रूप दशमा कोट का पक्का बंदोवस्त कर ब्रह्मचार्य वृत पालते हैं.

" शील व्रत पालने का फल "

ऐसी तरह शुद्ध शील वृतका पालन करने से दोनो भवमें अ-नेक महालाभो की प्राप्ती होती है. इविक लाभतो-रूप, तेज, पाक्रम,

व्यवहार चारित्र पालने से उत्तम देव गतियों के सुख के भुक्ता बन जाते हैं, परन्तु मोक्षका कारण न गिना जाता है क्योंकि; व्यवहार चारित्रयों की बाह्य गुणों में रमणता और वांच्छा युक्त क्रिया होती है, और निश्चय चारित्रवंत तो शरीर, इन्द्रिय, विषय, कषाय योग इन सब को पर वस्तु जान, एकांत त्यागने छोड ने के ही अभिलाषी रहते हैं. जिससे जिनके परिणाम चंचल वृती से निवृती भावको प्राप्त हो आत्म स्वरूप में एकत्वता तन्मयता रूप हो, तत्वानुभव में स्थिर वृती धारन करते हैं. उसे भाव चारित्र कहते हैं. भाव चारित्र में देश वृती और सर्व वृती में प्रायः अभिन्नताही है, इसलिये यहां जो देश वृती के बारह वृत हैं, उनका निश्चय व्यवहार नय से कुछ वरणन करते हैं:—

१ 'प्रणातिपात विरमण वृत' तो सब जीवों को अपनी आत्मा सामान जान रक्षा करे, उसे व्यवहार दया कही जाती है. और जो अपना जीव अनादी से कर्म के वशमेंपडकर दुःख को प्राप्त होता है, उसकी दया कर, जो जो कर्म बन्ध के कारण हैं उस से अपनी आत्मा को अलग रखना और जो जो सद्गुणों के संयोग्य से आत्मा को सुख की प्राप्ती होवे उनको ग्रहण करने तत्परता धारन करनी. और जो जो सद्गुणोंकी प्राप्ती हुइ है, व होरही है, उनके स्वरक्षणा के लिये प्रयत्न सील रहना. अर्थात् मिथ्यात्वादि का नाश कर ज्ञानादि निज गुण के तरक प्रवृतक और पालक होना सो दाय वृत.

२ ' मृषा वाद विरमाण वृत ' सो झूठ वचन का कदापि उच्चार विचार नहीं करना, सो व्यवहार सत्य. और जो पर पुद्गल मय जो वस्तु है उसे अपनी कहे. तथा जीवको अजीव, २ को जीव वगैरा दश या पच्चीस प्रकारके मिथ्या वचन उचारे, और अपने उपर रेला आता देख शास्त्रार्थ फिरा देवे, इत्यादि को निश्चय मिथ्यावादी

कहा जाता है बृह्मवृत के भंग करने वाले का अलोचना तपादि से सुधारा हो जाता है, परन्तु ऐसे मिथ्यावादी का सूधारा नहीं होता है. ऐसा शास्त्र का प्रमाण जाण, जिनकी आत्मा अंतःकरण से कम्पित हो कर, वरोक्त दोषों से निवृती भाव धारन कर, सत्य, तथ्य, पथ्य, मर्याद शील वक्तसर वचनोचार कहते हैं, सो सत्यवृत.

३ 'अदत्तादान विरमणं वृत' सो जो दूसरेके धनको मालिक की विन परवानगी गृहन करे, या छिपावे, या ठगाइकरे, सो व्यवहार अदत्तादान (चोरी) और जो पांच इन्द्रियों की २३ विपय, और अष्ट कर्म वर्गणा के पुद्गल इन का ग्रहण करना सो निश्चय चोरी. जो पुण्य फलकी वांच्छा अर्थात् करणी के फलकी इच्छा करना सो भी निश्चय अदत्तादान गिना जाता है, जिससे निवृती करजो निर्विपयी और निष्कर्म व्रतीसे निष्काम क्रिया करते हैं सो अदत्तावृत.

४ 'मैथून विरमण वृत' स्त्री पुरूप के संयोग से निवृती धारण करना सो व्यवहार शील. अंतःकरण से विपयकी अभिलापा तथा ममत्व तृष्णा का त्याग, और वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पुद्गलों का स्वामीत्व पने का त्याग, अभोगवृती सो निश्चय से शील वृत.

५ 'परिग्रह परिमाण वृत धन, धान, दोपद, भूमी, आभरण, इसका त्याग सो व्यवहार निष्परिग्रह. और राग, द्वेप, अज्ञान, कर्म वंध के कारणसे निवृती अर्थात् पर वस्तु की मुर्छाका अंतःकरण से त्याग सो निश्चय से निष्परिग्रही वृत.

६ 'दिशी प्रमाण वृत' उंची नीची और तिरछी चारों दिशी में गमन का परिमाण सो व्यवहार दिशीवृत-और चारोंगति में गमन करने के जो महा आरंभादि कर्तव्यों का त्याग कर सिद्ध अवस्था की तरफ उपादेय वृती होवे सो निश्चय से दिशी प्रमाण वृत.

अतिचार का विशेष खुलासा यह है कि-जैसे किसीके किसी वस्तु भोगवने के पच्चखान हैं, और वो उस वस्तु को लेने की इच्छा करे सो अतिक्रम, लेने को जावे सो व्यतिक्रम, गृहन करे सो अतिचार, और भोगव लेवे सो अनाचार, इन चार दोष में से यहां 'अइयारो' अर्थात् अतिचार तीसरे दोष को गृहन करना. क्योंकि पहिले के दो दोषतो छद्मस्तों को सहज लगतेही रहते हैं. और वैराग्य युक्त पश्चाताप से शुद्ध भी हो जाते हैं, इसलिये जिससे वृतका भंग नहीं होता है. और जो तीसरे दोष की आलोचना नहीं करे तो वो वक्त पर चौथा दोष सेवन कर वृतका खन्डन भी कर डाले, इसलिये पहिले के दो दोषों से इस तीसरे दोष की आलोचना वारम्वार करते रहना, कि जिससे चौथे दोष का प्रसङ्ग न आवे.

अतिचार के १२४ भेद

इन अतिचार के शास्त्र में १२४ भेद किये हैं, सो यहां कहते हैं:-

'ज्ञान के ८ अतिचार'-१ 'काल, ३४ असज्झाइ को टाल कर कालो काल सूत्र नहीं पढे, व्यर्थ काल गमावे. २ 'विणए' ज्ञान दाता गुरूका विनय भक्ति नहीं करे. अभिमान रखे. ज्ञानी ज्ञान प्रकाशे तव सुस्त बैठा रहे, परन्तु जी ? तहेत ! वगैरा मान पूर्वक वचनो से ज्ञान ग्रहण नहीं करे. ज्ञानी को अहार वस्त्र आदि से आप शक्ति वन्त हो साता उपजावे नहीं और ज्ञान के उपकरण पुस्तक आदि की यत्ना नहीं करे. तो दूसरा अतिचार लगे. ३ 'वहुमान' ज्ञानी गुरूका वहु मान पूर्वक सत्कार सन्मान नहीं करे ३३ अशातना करे. ४ 'उवहणे' शास्त्र सुरू करते, व पूर्ण करते, जो उपधान कर ने का होता है सो नहीं करे और यथा विधी नहीं पढे. ५ 'नि-

ह्वणें' ज्ञान के दाता गुरु-वय में, गुणमें, विद्यामें, प्रख्याति में कमी होवें, उनका नाम छिपा कर दूसरे प्रसिद्ध का नाम लेवे. ६ 'व्यंजन' आचारांग और प्रश्नव्याकरण के फरमान मुजब १६ प्राक के वचनों की शुद्धि रहित शास्त्र पढे, अक्षर, पद, गाथा, मात्रा, अनुस्वंग, विसर्ग, कमी ज्यादा विप्रित कहे. ७ 'अत्थ' अजान पनेसे, अपानात जमावे, पण्डिताइ वताने या अपने दुर्गुण छिपाने, अर्थको फेरे-पलटावे, विप्रित अर्थ करे. ८ 'तदुभय' मूल पाठ, और अर्थ को लोपे गोपे विगाडे, या छिपावे. दूसरे रुप में वनावे, या प्रगमावे तो ज्ञान में अतिचार लगे.

"दर्शना चार के ८ अतिचारः—" १ 'शंका' श्री जिनेश्वर के वचन में वैमलावे. २ 'कंखा' अन्य उगारे मतान्तरियों के ढोंग देख, उस मत को ग्रहण करने की अभिलापा करे, ३ 'विती गिच्छा' धर्म करणी का फल होगा की नहीं? ऐसा संदेह लावे. ४ 'मुढ द्रष्टी' मूर्ख की माफिक भले बुरे की तत्वातत्वत की, धर्मा धर्म की, परिक्षा नहीं करे. एकेक के देखा देखी करे. ५ 'उववुह' अभिमान के वश ऐंटीला वन कदाग्रह करे, स्वधर्मी और साधु सतीयों का सत्कार नहीं करे, ६ 'अथिर करण' अस्थिर रहे अर्थात्-यह सचा कि यह सचा, यह करुं, की यह करु, ऐसा डामा डोल चित रखे. और वारम्वार श्रद्धा तथा गच्छ—सम्प्रदाय का पल्टा करे, ९ 'अवच्छल' मतलवी, फक्त अप नाहीं यशः सुख चहावे. दूसरे की दया नहीं करे. साता नहीं उप जावे. ८ 'अप्रभावि' ज्ञानी, गुणी, तपश्वी, संयमो, धर्म दीपक इत्यादि सत्पुरुषों को देख उनके गुण सहन नहीं होवे, मनमें जले, हीलणा निन्दा करे, लोको की धर्म से आसता उतारे, तो दर्शनमें अतिचार लगे.

" चारित्र के ८ अतिचार ":–१ ' अइर्या ' देखे और पूंजे वि-न चले. २ 'कूभाषा' विगर विचारे और सावद्य भाषा बोले. ३ 'अए-षणां ' सदोष अहार वस्त्र पात्र स्थानक भोगवे. ४ 'अनयुक्त अदान निक्षेप ' भंड उपकरण अयत्ना से लेवे रखे, ५ ' अनयुत परिठावणिया ' बडी तीन आदि अयत्नासे परिठावे (न्हाखे). ६ ' कूमन ' मन व-वशमें न रखे, ७ ' बचन ' अमार्यादित बोले. ८ ' कुकाया ' शरीर अ यत्नासे प्रवृतावे, तो चारित्र में अतिचार लगे.

तपाचार के १२ अतिचारः–१ द्रव्य काल की मर्याद रहित अ-हार करे, २ अप्रमाणिक अहार वस्त्र भोगवे. ३ त्रीयोग की प्रवृती को रोके नहीं, ४ रसना स्वाद का गृद्धि बने, ६ सशाक्ति धर्मार्थ काया को क्लेशन देवे. ६ बिषय कषया की वृद्धि करे. ७ पाप का पश्चाताप नहीं करे. ८ अहंपद-अभिमान रखे-विनय नहीं करे. ९ गुरु आदिक की भक्ती नहीं करे. १० सूत्र पढे सुने नहीं. ११ अर्थ विचारे नहीं, निर्णय करे नहीं. १२ काया को एक स्थान स्थिर नहीं रखे. तो तप में अतिचार लगे.

' वीर्याचारके ३ अतिचार ' ;–१ मनसे कायरता धारन करे धर्म करणी करता को चवावे, प्रणाम ढीले करे. २ वचन से निरूत्सहा धर्म प्रेमके घटा ने वाले वचनका उच्चार करे. ३ काया से कु-कार्य करे तप नहीं करे.

यह ज्ञान के ८, दर्शन ८, सम्यक्त्व के ५, चारित्र के ८, च-रीता चरित्त (वारह वृत) के ७५, तप के १२ और वीयाचार के तीन ३, यों सर्व १२४ अतिचार से अपनी आत्मा को बचावे. सर्व वृत प्रत्याख्यान नितीचार पाले.

४९ भांगे और ४४१ सेरीयों. *

निरती चार व्रत पालने के लिये ४९ भांगे. और ४४१ सेरीयों का जाण कार अवश्यही होना चाहीये, सो कहते हैं:—

अंक ११ का, भांगे ९. सेरीयों ८१. जिसमे रूकी ९, और खूली ७२. एक करण एक जोगसे से कहनाः—१ करूं नहीं-मन से, पहिले सेरी रूकी, ८ सेरी खूली. २ करूं नहीं—वचन से, दूसरी सेरी रूकी, ८खुली, ३ करूं नहीं—कायासे, तीसरी सेरी रूकी, ८ खूली. ४ करावुं नहीं—मन से, चौथी सेरी रूकी, ८ खुली. ५ करावू नहीं-वचन से पांच मी सेरी रूकी, ८ खूली. ६ करावुं नहीं—कायासे, छट्टी रूकी ८ खुली ७ अनमोदू (अच्छा जाणू) नहीं—मन से, सातमी रूकी ८-खूली.८ अनमोदू नहीं वचनसे, आठमी रूकी, ८ खुली. ९अनमोदू नहीं कायासे नवमी सेरी रूकी, ८ सेरी खूली.

अंक १२ का, भांगे ९, सेरी ८१, जिसमे रूकी, १८, खूली. ७२, एक करण दों जोगसे—१ करूं नहीं-मन से-वचन से, १—२सेरी रूकी, ७ खुली. २ करूं नहीं—मनसे-काया से, १—३ रूकी, ७ खूली. ३ करूं नहीं-वचन से-कायसे, २—३ रूकी, ७ खूली. ४ करावूं नहीं मन-से वचन से. ४—५ रूकी, ७ खूली. ५ करावुं नहीं—मनसे—काय से, ४—६ रूकी, ७ खुली, ६ करावूं नहीं-वचनसे-कायसे, ५—६रूकी ७ खुली, अनमोदू नहीं-मनसे-वचनसे. ७-८ रूकी, ७ खुली. ८अमोदू नहीं मन से कायसे, ७—९ रूकी. ७ खुली, ९ अनमोदू नहीं-वचन से

* यथा दृष्टांत-भांगे राज पंथ (सडक) और शेरीयो गल्ली, सडक पर चलते २ आगे किसी प्रकार का व्याघात आनेसे रसता रूकने से जैसे गल्ली में होकर दूसरी सडक पर चल अपना कार्य साधते हैं. तैसे ही वृत पालते २ कोइ जबर कारण प्राप्त होनेसे उस वृत का निर्वाह होने जैसा न होवे तब इन शेरीयों से निकल कारण भी साधले और वृत का भी भंग नहीं होने दे.

कायासे ८-९ रुकी, ७ खुली.

अंक १२ का, भांगे ३, सेरी २७, जिसमेरुकी ७, खुली १८, एक करण-तीन जोगसे १ करूं नहीं-मन से,-बचनसे-कायासे, १-२-३ सेरी रूकी, ६ खूली. २ करावुं-नहीं-नमसे-बचन-से काया से, ७-८ रूकी, ६ खूली. ३ अनमोदू नहीं-मनसे बचन से काया से, ७-८-९सेरी रूकी, ६ खूली.

अंक २१ का, भांगे ९, सेरी ८१, जिसमे रुकी १८, खुली७२ दो करण-एक जोगसेः—१ करुं नहीं-करावुं नहीं-मन से १-४ रुकी७ खुली. २करुं नहीं--करावूं नहीं-बचनसे २-५ रुकी, ७ खुली. ३ करुं नहीं-करावुं नहीं-कायासे ३-६ रुकी. ७ खुली. ४ करुं नहीं-अनमोदू नहीं-मन से १-७ रुकी, ७ खुली. करुं नहीं-अनमोदु नहीं-बचनसे २-८ रुकी, ७ खूली. ६ करुं नहीं-अनमोदू नहीं कायासे, ३-८ रुकी७ ७ खुली. ७ करावुं नहीं-अनमोदू नहीं-मनसे ४-७ रुकी, ७ खुली. ८ करावूं नहीं-अनमोदू नहीं-बचन से ५-८ रुकी, ७ खुली. ९ करावुं नहीं-अनमोदू नहीं-काया से, ६-९ रुकी. ७ खुली.

अंक २२ का, भांगे ९, सेरी ८१, रुकी ३६, खुली ४५, दो करण दोजोगसे १ करुंनहीं-करावुंनहीं-मनसे-बचनसे, १-२-४-५ मी चार सेरी रुकी, ५ खुली. २ करूं नहीं-करावूं नहीं-मनसे काया से, १ ३-४-६ रुकी. ५ खुली. ३ करुं नहीं-करावूंनहीं-बचनसे-काया से, २-३ ५-६ रुकी, ५ खुली. ४ करुं नहीं-अनमोदू नहीं-मन से बचन से, १-२ ७-८ रुकी, ५ खुली. ५ करुं नहीं-अनमोदू नहीं-मनसे-काया से १-३ ७-९ रुकी, ५ खुली. ६ करुं नहीं-अनमोदु नहीं-बचनसे कायासे २-३ ८-९ रुकी, ५ खुली. ७ करावुं नहीं-अनमोदू नहीं-मनसे-बचन से, ४- ५-७-८ रुकी. ५खुली. ८ करावुं नहीं-अनमोदू नहीं-मनसे-कायासे, ४-६ ७-९ रुकी ५ खुली. ९ करावूं नहीं-अनमोदू नहीं-बचनसे-काया से, ५ ६-८-९ यह चार सेरी रूक बाकी की ५ खुली.

अंक २३ का, भांगा ३, सेरी २७, जिसमें रुकी १८, खुली ९,

दो करण-तीन जोगसेः—करुं नहीं-करावुं-नहीं-मनसे-वचन से कायासे १-२-३-४-५-६ यह ६ से रुकी, ३ खुली. २ करुं नहीं-अनमोदू नहीं-मनसे-वचनसे-कायासे, १-२-३-७-८-९ छः रुकी ३ खुली. ३ करावूं नहीं अनमोदू नहीं-मनसे-वचनसे-कायासे, ४-५-६-७-८-९ छः सेरी रुकी बाकी की ३ खुली.

अंक ३१ का, भांगे ३, सेरी २७ जिसमें ९ रुकी, १८ खुली, तीन करण-एक जोगसेः-१ करुं नहीं-करावूं नहीं-अनमोदूनहीं—मनसे. १-४-७ रुकी. ६ खुली. २ करुं नहीं-करावुं नहीं-अन मोदू नहीं-वचनसे, २-५-८ रुकी. ६ खुली. ३ करुं नहीं-करावुं नहीं-अनमोदू नहीं-कायासे ३-६-९ रुकी. ६ खुली.

अंक ३२ का, भांगे, ३, सेरी २७, जिसमें रुकी १८, खुली ९, तीन करण-दो जोगसे-१ करुं नहीं- करावुं नहीं-अनमोदू नहीं- मनसे वचनसे, १-२-४-५-७-८ छः रुकी, ३ खुली. २ करुं नहीं-करावु नहीं अनमोदू नहीं-वचनसे, १-३-४-६-७-९ सेरी रुकी. ३ खुली. करु नहीं-करावु नहीं—अनमोदू नहीं-कायासे,-२-३-५-६-८-९. यह छः सेरी रुकी बाकी की ३ खुली.

अंक ३३ का भांङ्गा १, सेरी ९, रुकी ९, खुली नहीं. तीन करन तीन जोगसे—करुं नहीं-करावु नहीं अनमोदू नहीं-मनसे-वचन-से और काया से, १-२-३-४-५-६-७-८-९ नवही सेरी रुकी.

यों ४९ भाङ्गकी ४४१ सेरीमें २९७ सेरीतो खुली है, और १४४ सेरी रुकी है. सो श्रावकको किसीभि प्रकारके पच्चखाण ग्रहण करती वक्त उपयोग रखना चहीये, कि यह पच्चखाण मुझे अमुक भाङ्गसे करना चाहीये की जिस से आगे किसी प्रकार का प्रसंग आये, अमुक सेरी (रस्त) मेसे निकल, मेरे वृत का निर्वाह कर सकुंगा. ऐसी विचक्षणता से

जो वृत ग्रहण करते हैं उन को अतिचार लगने का प्रसंग वहुत करतो आताही नहीं हैं, और जो कदाचित आयाभी तो अपने वृतमें बिलकुल दोष नहीं लगाते, निर्मल वृत पालते हैं. सदानिवृती भावमें रमण करतेही रहते हैं, जिससे उत्कृष्टी रसायन आनेसे तीर्थंकर गौत्र की उपार्जना होती है.

श्लोक–योगात् प्रदेश वन्धः । स्थिति वन्धो भवति तू कषायात् ॥
दर्शन बोध चरित्रं । न योग रुपं कषाय रुपंच ॥ १ ॥

अर्थात्–मन वचन काये के योगों की प्रवृती होने से आत्म प्रदेश पर कर्म प्रमाणु ओं का वन्ध होता है, और उस वक्त तिव्रमंद जैसा काषय (क्रोध, मान, माय लोभ, हांस, रति, अरती, भय, शोक, दुगंछा, स्त्रिवेद, पुरुषवेद, नपुंशकवेद) का उदय होता है, वैसी ही उन कर्मोंकी स्थिती वन्धती हैं, इसलिये परमात्मा मार्गानुसारी को कर्मोंसे वचने सम्यक्त्व युक्त चारित्र में प्रवृती करना चाहीये जिससे अर्थात् सम्यक्त्व से कषायकी और, चारित्र से योगों की प्रवृती मंद पडती है, व रुकती है, जिससे आत्मा परमात्म पद को प्राप्त कर सक्ती है.

वृतो में दृढ रखने वाले जो निवृती भाव है उसका स्वरुप आगे दर्शाने की इच्छा रख, इस प्रकरणकी समाप्ती यहां की जाती है.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारीमुनि श्री अमोलख ऋषि जी रचित " परमात्म मार्ग दर्शक " ग्रन्थका " नितीचार वृत " नामक तेरहवा प्रकरण समाप्तम्.

में बांधने वाला और मनही कर्म बंध से मूक्त–छुटका करने वाला है. मनही जन्म मरणका मुख्य हेतु है. इसलिये मुमुक्षु जनोंको प्रवृती मार्ग में प्रवृत ते हुवे मनको रोककर निवृती मार्ग की जो पुद्गल की वासना–तृष्णा से अलग है. सहजानन्दी आत्मिक गुण मय है. उस में सं लग्न करना जोग है.

'मनको रोको!' ऐसा कहना तो सहज है, परन्तु मनको रोकना बडाही मुशकिल है; एक क्षिण का सम्बन्धही मुशकिल से छूटता है, तो जो मन अनादि से प्रवृती मार्गका सदा हो रहा है उसे मोडकर निवृती मार्गमें लगाना यह वडे धीर वीर मुनियोंकाही काम है.

अवल तो काया की प्रवृती को ही प्रवृती मार्ग से रोकना मुशकिल है, और उससे वचनकी वहुतही मूशकिल है, तो फिर मनका तो कहनाही क्या ? क्योंकि कायापर और वचनपर तो लोकीक लोकोतर सम्बन्धी अनेक अंकूश हैं. परन्तु यह मन विन अंकुशका गजेन्द्र इस के वेग को किस्तरह से वारा जाय ! हेमचन्द्राचार्यने कहा है " अति चञ्चल मति सूक्ष्मः दुर्लभ वेग वतया चेतः " अर्थात् यह मन अतिही चंचल होकर अति सुक्ष्म है, इसलिये इसकी गतिको रोकना बहुत ही मुशकिल है बडाही कठिन है.

परन्तू ऐसी वातों सुन कर शूर वीर महात्मा ओं कदापि कायरता नहीं करते हैं, वो जानते हैं कि मनूष्य से वलिष्ट इस जगत् में दूसरा कोइ भी नहीं है. वडे बलिष्ट गजेन्द्रको और मृगेन्द्र (सिंह)को मनुष्य करामात से वशमें कर मन माने नाच नचाते है, ऐसे क्रूर पशूओं को भी मनुष्य वशमें करने समर्थ है तो क्या अपने मनको नहीं समजा सकेगा ? जो मनुष्य जाज्वल मान ज्वालाके मध्यमें से अखन्ड निकल जाता है, हलाहल जेहर को भी पचाकर अमृत मय वना देता है, ऐसा प्राक्रमी मनुष्य स्थावर और जंगम पदार्थों के स्वभाव को शाक्ति से पलटा देता है. उसको मनको पलटाना क्या मूशीवत है. अर्थात् कुछ नहीं. जरूर धारे सो कर सक्ता हैं, फक्त का

परता तज, इष्टितार्थ के सन्मुख हो मनवश करने के उपाय में प्रवृत ने ही की देर है.

भगवद्गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा हैः—

श्लोक—असंशयं महावाहो, मनो दुर्निग्रहं चञ्चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च ग्रह्यते ॥ १ ॥

अर्थात्—हे अर्जुन! मनको वश करना बहुतही मुशकिल है, क्योकि मन अति चंचल चपल है, परन्तु निरन्तर अभ्यास से और वैराग्य से मन वश में होता है, यह मन को वशमें करने के दोउपाय वताये हैं, एकतो निरंत्तर अभ्यास, और वो अभ्यास वैराग्य युक्त हुवा चाहिये. अर्थात् अनादी से इस जगत् में शब्द आदि के जो पुद्गलों परि भ्रमण कर रहे हैं, उनको ग्रहण कर मन्योज्ञ अमनोज्ञ की कल्पना कर राग द्वेष मय वनता है, यह राग द्वेष रुप जो संस्कार है सो ऐसा प्रवल है कि-मनको कभीतो मुद वना देता है, कभी भ्रम रुप वना देता है, कभी भय भीत वना देता है, कभी रागिष्ट वना देता है, कभी शोकित वनादेता है कभी क्लेशित, कभी क्रोधी-मानी--मायी-लोभी-मोही-ममत्वी इत्यादि अनेक रुप मय प्रणमा देता है. जिससे आत्मा स्वतत्वा (आत्म ज्ञान) से विमुख होजाता है, न्याय मार्ग से च्युत हो जाता है, और अज्ञानता वढ जाती है, वो अज्ञानता मनको और मनसे वचन को और वचन से काया को कुमार्ग—कुकर्म में धकेल देती है, जिस से अनंत विटम्बना की वृद्धी होती है. ऐसे प्रवल यह राग और द्वेष रूपी पीशाच हैं. इन पीशाचो से मन आत्मा को वचाने एक वैराग्य रुपही महा मंत्र सामर्थ्य है.

इस वैराग्य रुप महा मंत्र का साधन इसतरह से होना चाहिये कि-जिस २ प्रणतीमें मन प्रणम कर व्याप्त होना चाहे, उनर प्रणती की पर्याय के स्वरुप का चिन्तवन-मनन वैराग्य युक्त करना. कि अहो मन! यह पुद्गल पर्याय है, इनका निर्धार बिगडने का स्वभाव है. जो हमेशा पलटतीही रहती है; और हे मन! [illegible]

जो पल टने-फिरने लगातो तेरी कमबख्ती हो जायगी ! जैसे ध्वजा फरकती है वैसाही जो कभी देवालय फिरने लग जाय तो उस देवालय का विनाश होते कितनी देर लगती है, ? तैसेही तूंसमज !!

इस लियेही हे, मन ! जो तुझे सुखी होने की अभीलाषा हो-तो पुन्दलों की पर्यायके माफिक तेरे को फिरना नहींही चाहीये, जैसे पुद्गल शुभाशुभ रुप धारन करते हैं, तैसा रुप तुझे धारन नहीं करना चाहीये. तबही सुखी बनेगा.

मनको कुमार्गसे रोक सुमार्गमें प्रवर्तानेका उपाय ※ ज्ञानार्णव ग्रन्थमें इस प्रकार फरमाया हैः—

---

§ दोहा—काया देवल मन ध्वजा । विषय लेहर फिर जाय ॥
मन चले जैसी काया चले । तो जडा मूल से जाय ॥ १ ॥
मन गया तो फेर ले । वश कर राख शरीर ॥
विन ऐंचे कवान के । कैसे लागे तीर ॥ २ ॥

॥ गजल ॥

※ गुम कर देजो तकदीर को, तदवीर उसे कहते हैं. ॥
॥ तदवीर से जायद नहो, तकदीर उसे कहते हैं ॥ १
॥ सब झूटी है कागजकी क्यामिट्टीकी क्या पत्थरकी ॥
॥ बुत होरहे तसव्वुरमें तस्वीर उसे कहते हैं. ॥ २ ॥
॥ दुनिया को अगर कत्लकरे, घाट की ओछी है ।
॥ काटे जो अहंकार को, शमशीर उसे कहते हैं ॥ ३ ॥
॥ कहता है खुदा खूदसे जुदा, जाण अधूरा है ।
॥ दिखला दे जो खूद ही में खुदा, पीर उसे कहते हैं.
॥ सो पर्वत अगर तोड दे, फौलाद के तो क्या है ।
॥ तोडे जो फकत पर्दादुइ, तीर उसे कहते हैं ॥ ५ ॥
॥ है यू तो बहूत वेदो की तफ्सीर मगर जिससे ।
॥ तसदीक अनलहक हो, तफसीर उसे कहते हैं. ॥ ६ ॥
॥ जो कहता है मै इन्द्र हू, तो फीर कहा उसकी ।
॥ मै हूं यह गुमा मिट जाय तो कीर उसे कहते हैं ॥ ७ ॥
॥ है आबो हवा ठंडी तो, काश्मीर नहीं साहेब।
॥ ठंडा हो कलेजा जहां, कश्मीर उसे कहते हैं ॥ ८ ॥
॥ दुनिया है सरा निर्भय तू जागीर समझ जता हैं ।
॥ कब्जे में हमेशा रहें, जागीर उसे कहते हैं. ॥ ९ ॥

श्लोक–अष्ट वङ्ग नियोगस्य. यान्युक्ता न्यार्य सूरिभिः
चित प्रसत्ति मार्गेण, बीजं स्युस्तानि मुक्तये ॥ १ ॥

अर्थात्–पुर्वा चार्योने चित मन–की प्रसन्नता के लियेमुक्ति मार्ग के बीज भूत अष्ट अंग फरमाये हैं, सो कहते हैं:–

गद्य–"अथ कै श्चिद्येम तिर्यमासैन प्राणायाम प्रत्याहार–धारणा ध्याँन समाधाय इत्यष्टावङ्गानि योगस्य स्थानानि"

अर्थात–यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान, और समाधी. इस प्रकार आठ यह योग के अंग के साधन से मन निग्रह होता है.

प्रथमांग 'यम' " अहिंशा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रह यमाः" अर्थात—१ 'अहिंशा' चराचर (त्रस स्थावर) सर्व प्राणी यों के साथ वैर भाव रखनेसे, शत्रुता साधने से, [illegible] से निवृते सो आत्म तुल्य–स्वसजन तुल्य [illegible] मैत्री भाव धारण करे सो अहिंशा २ 'सत्य' [illegible] कर ग्रहण किये भाव मनके विषय में जिन [illegible] (हीनाधिकता रहित) सत्य सर्व प्रमाण [illegible] तथ्यः सर्व को सुख दाता बोलना [illegible] कर्ता सो पथ्य. ऐसा वचन [illegible] अन्य ने किसी भी [illegible]

कर आत्मा के प्रदेशों मे मथनकर प्रणामों को व शरीर को विकृती विकल रूप बनावे सो अब्रह्म उस से निवृत किसी पदार्थमें विकार भाव रहित प्रगमना सो ब्रह्मचर्य. ५ अपरिग्रह शब्द आदि विषय में मन्योज्ञ पर अनुराग और अमनोज्ञ पर अरूची–कल्पता सो परिग्रह जिससे निवृत निर्ममत्व भाव से प्रवृते सो अपारिग्रह. इन पांच यमो को पूर्ण पणे धारण करे.

द्वितीयांग " नियम " " शौच, संतोप, तप, स्वध्यायेश्वर प्रणिधानानिनियमाः" १ 'शौच' वाह्य सप्त दुर्व्यश्न (ठगाइ. ईर्षा मदान्धता, पर परणतिरमण, खप से अधिक संचय, मिथ्यावृतन, अनाचार) का त्याग. व अशुची अंगसे अलग रखे सो वाह्य शुद्धी. और छः शत्रु (काम, क्रोध, मद मोह, लोभ, मत्सर) का नाश करना सो आभ्यन्तर शुची. २ 'संतोप' प्राणके और वृतके रक्षणार्थ अन्न नित्य भावे जितना (परन्तु रात्री को एक दाणा भी पास नहीं रखना) वस्त्र शरीर केगुप्त अव्ययका आच्छादन होवे जितना व शीतादी व्याधी से बचावे जितना. और स्थान आसन प्रमाण या आवश्यकता जितना. इस उप्रान्त इच्छा भी नहीं करे. तो ग्रहण करना तो दूर रहा. सो संतोप ३ 'तप' क्षुधा, पिपासा, शीत, ताप, वाक्य प्रहार, तर्जना, ताडना, निंदा, असत्कार, रोग, वेदना. इच्छित की अप्राप्ती वगैरा प्राप्त दुःखोको बिलकुलही संकल्प विकल्प नहीं करते सम भावसे सहे, धर्म वृद्ध सेवा सदाचरणका स्विकार करे सो तप. ४ 'स्वध्याय'

८. =सूत्र के मूलके पाठका पठन व नवकार ॐकार आदि का स्मर

.. पिण्डस्थ= स्वात्म के पर्याय का व सुत्रके अर्थका चिंतवन. रूपस्थ घन घातिक कर्म कलङ्क रहित चिद्रुप केवल ज्ञान के धारक प्रतिहार्य आदि ऋद्धि युक्त उनके गुनों का रटन करना. रूपातीत= सत्य चिद आनन्द मय निर्विकार निजात्म श्वरुपी परमात्माका ध्यान यह चार विचार करे सो स्वध्याय ५ 'प्रणिधान' जो जो कृत्य होते

वो होनहार मुजवही होते हैं, फिर उसका हर्ष शोक करना सो निर्थक है. व मै कर्ताहुं, ऐसा अहं भाव धारण करना भी निकर्थक है. ऐसी प्रणती में आत्मा प्रणमे सो प्रणिधान. यह नियम.

तृतीयांग-" आसन "

पर्यङ्क मर्द्ध पर्यङ्क । वज्रं विरासनं तथा ॥
सुखार विन्द पूर्वेचा । कार्यात्सर्गश्च सम्मतः ॥ १ ॥
येन येन सुखा सीना । विदध्यु र्निश्चलं मनः ॥
तत्त देव विदेयं स्यान्मुनि भिर्वन्धु रासनम् ॥ २ ॥

अर्थात्-पद्मासन, पर्यंकासन, वज्रासन, वीरासन, कायुत्सर्गा सन, इत्यादि जिस आसन से अपना मन स्थिर-निश्चल रहकर एका ग्रता धारण करे सोही आसन से रहे सो आसन. ❋

'चतुर्थांग '-' प्रागा याम ' मनको निग्रह करनेका मुख्य उपाय प्राणायामही गिना जाता है, अन्य मतावलम्बियों प्राणायाम का साधन करते है, परन्तु उनका प्रयोजन तथा स्वरुप औरही है. और जैनाचार्य व सर्वज्ञ प्रनित आगम जो स्याद् वाद् रुप सिद्धान्त से निर्णय करके सिद्धी और मनकी एकाग्रता से आत्म स्वरुप में ठेहरना सो ही प्राणायाम श्रेष्ट है, इनसे इष्ट प्रयोजंत की सिद्धी होती है, सो पक्ष

❋ समं काय शिरो ग्रीवं । धारयन्न चलंस्थिरः ॥
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं । स्वांदशा श्चान वलोकयन् ॥ १३
प्रशान्तात्मा विगत भीर्ब्रह्मचारि व्रते स्थितः ॥
मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४
युञ्जन्नेव सदात्मानं योगी नियत मानसः ॥
शान्ति निर्वाण परमां मत्संस्था मधि गच्छति ॥

अर्थ-श्री कृष्ण कहते हैं कि-अहो धर्म राज । जो शरिर मस्तक और गरदन स्थिर कर, इधर उदर न देखते फक्त नाशीका के अग्रपर द्रष्टी को स्थिर कर, अंतः, करण को अत्यान्त निर्मल कर,-भय रहित और ब्रह्मचर्य सहित जो मन का संयम कर मेरी तरफ लगाता है-मेरे कोही सर्व स्वय जान ता है. ऐसे योगीयों ही मेरी स्हायता से निर्वाण और परम शांति को प्राप्त होते हैं.

खने लगे. क्योंकि मेरा अंतःस्थान चिरस्थान मोक्ष है. मैं वहां ही का निवासी हुं, मेरे और सिद्ध भगवंतके फक्त शाक्ति व्याक्ति काही अंतर है अर्थात अनंत चतुष्टादि जो गुण सिद्धों के व्याक्ति रुप प्रगट हुवे हैं वो मेरे में शक्ति रुप हैं इस लिये अभेदत्व है सो देखिये–द्रव्य तो अनादि निधान है, और उन में जो पर्याय है वे क्षिण २ में उत्पन्न होते हैं. और विनशते भी हैं. उन में जो त्रिकाल वर्ति पर्याय हैं वे शक्ति अपेक्षा सत् रुप एकही कालमें कहे जाते हैं. और व्यक्ति की अपेक्षा जिस कालमें जो पर्याय होता है. वही सत्य रुप कहा जाता है. तथा भूत भविष्यके पर्याय असत् रुप कहे जाते हैं, इस प्रकार शक्ति की अपेक्षा सत्का उत्पन्न और होना व्यक्तिकी अपेक्षा असत्त का उत्पन्न होना कहा जाता है, और इसी प्रकार द्रव्य की अपेक्षा सत्का उत्पाद है, और पर्याय की अपेक्षा असतका उत्पाद हैं. इस प्रकार आत्म द्रव्य से भी सामान्यतासे मति ज्ञानादि गुण भूत पुर्वक कहे जाते हैं. तथा अभूत पुर्वक भी कहे जाते हैं.

परन्तु वास्तव में अनंत चतुष्टयादि कही अभूत पूर्वक कहे जाते हैं. ऐसे नय विभाग से वस्तुका स्वरुप विचारते मेरे में और परमात्मा मैं कुछ विशेष भेद नहीं हैं, इस लिये मैं अनन्त वीर्य शाक्ति का धरने वालाहूं अनन्त ज्ञान–दर्शनवंत अनन्द स्वरुपी हूं. सो अब में मेरे स्वरुप से चुत करने वाले प्रतिपक्षी शत्रु कर्म हैं, उनका जड मुलसे नाश नहीं करुंगा तो फिर कब करुंगा! मुझे उचित है कि ऐसा मौका मेरे हात लगा है तो अब उनका नाश करुं! उनके नाश होने से मैं शिव स्थान नाम आनन्द मन्दिरमें प्रवेश कर फिर अपने स्वरुप से कदापि चुत न होवे ऐसा बन जावूंगा. इत्यादि विचार सो धारणा.

सप्तम् 'ध्यान'–ऐसी तहर धारणा कर निश्चित–निश्चल हो फिर ध्यान करे. ध्यान नाम विचारका है, सो विचार कहते हैंः—

श्लोक–साकारं निर्गता कारं । निष्क्रियं परमाक्षरम् ॥
निर्विकल्प चनिकम्पं । नित्य मानन्द मन्दिरम् ॥ १ ॥

विश्वरुप विज्ञात । श्वरुपं सर्व दो दितम् ॥
कृत्य कृत्यं शिवं शान्तं । निष्कलं करुण च्युतम् ॥
निः शेष भव सम्भूत । क्लेश द्रुम हुता शनम् ॥
शुद्ध मत्यन्त निर्लेपं । ज्ञान राज्य प्रतिष्टितम् ॥ ३ ॥
विशुद्धा दर्श सक्रान्त । प्रति विम्व सम प्रभम् ॥
ज्योतिर्मयं महा वीर्यं । परि पूर्ण पुरातमम् ॥ ४ ॥
विशुद्धाष्ठ गुणोपेतं । निर्द्वन्द्वं निर्गता मयम् ॥
अप्रमेयं परिच्छिन्नं । विश्व तत्व व्यव स्थितम् ॥
यद ग्राह्यं वायिर्भावे । ग्राह्यं चान्तर्मुखैः क्षणात् ॥
तत्स्व भवात्मकं । साक्षात्स्वरुपं परमात्मनः ॥ ६ ॥

अर्थ—अहो परमात्मा! आप—१ साकार अर्थात् आकार करके सहित हो. जो अर्हत भगवंत व केवल ज्ञानी हैं उन परमात्माके फक्त चरम (छेला) शरीर रहा है. सो आकर मय है. इस लिये उन्हे साकार परमात्म कहे जाते हैं. क्योंकि वो परमात्म पद (निजगुण की प्रगटता) को प्राप्त हो चूके हैं. अर्थात अनन्त चतुटय के धारक हो गये हैं. और उसी शक्ति की धारक मेरी आत्मा है, २ ' निरगत रकारं निराकार आकार रहित निजात्मरुप में जो संस्थित मुक्ति स्थान में रहसो सिद्ध के जीव हैं उनका पुद्गलों का आकार जैसा आकार नहीं है. और वोही मेरा निज स्वरुप है. ३ ' निष्क्रियं ' अर्थ दंडा दिक १३ क्रिया. तथा कायिका दिक २५ क्रिया रहित अक्रिय हैं. क्रिया पुद्गल मय है और परमात्मा पुद्गला तीत निर्लेप हैं, तैसेही निजात्मा भी अक्रिय है. ४ ' परमा क्षरम् ' अ—नहीं+क्षय=क्षय होवे सो परमाक्षर अर्थात् ऐसी कोइ भी वस्तु परमात्मा में नहीं है जो खिरंजडट, इसलिये परमाक्षर हैं. और जीवात्माभी अखन्ड है. ५ ' निर्विकल्पं ' ह्रविकल्प रहित हैं. किसी भी वस्तु में संदेह भाव उत्पन्न होने

मनमे विकल्प होता है, सो परमात्मा तो यथार्थ सर्व वस्तु के जान होने से संदेहातीत होगये हैं, इस लिये विकल्प रहित हैं. और सोही श्रद्धान मेरा है, ६ 'निष्कम्पं' परमात्मा निष्कम्प हैं, कदापि चलाय मान नही होते हैं, चलन स्वभाव धर्मा स्तिका हे, सो अचैतन्य है, और उसकी अचेतना युक्त चैतन्य परही सत्ता चलत्ती है. शुद्ध चैतन्यपर नहीं चलती है, इस लिये परमात्मा अकम्प हैं, और मेरे निजगुण भी अकम्प हैं, १ 'नित्य' परमात्मा सधा नित्य हैं, एकसे रहते हैं, क्यों-कि-पुद्गलोके गुणों मे पलटने का स्वभाव है, नकि आत्म स्वभाव में, परमात्म स्वभवतो सदा एक साही रहता हैं, इस लिये नित्यहैं, और स्वात्म स्वभाव भीनित्य है. ८ 'आनन्द मन्दिर' परमात्मा आनंदका घर हैं, अक्षय आनन्द के धारक हैं, क्योंकि आनन्द में विघन के कर्ता जो पर परणती भाव हैं, उसका उनके समूल नाश हुवा है. और सदा स्व स्वभावकी प्रणती मे प्रणम रहे हैं. सो आनन्द का स्थान है. और वोही आनन्द आतमामे भी है. ९ 'विश्व रुप विज्ञान स्वरुपं' अर्थात् जैसे छत्त में लगा हुवा काँच (आरीसा) में नीचे पडे हुवे सर्व पदा-र्थों का प्रति विम्व पडता है, तैसे विश्वेश्वर सर्व जगत् के उपर अग्र भाग में रहे हुवे परमात्मा के निर्मळ आत्मा में सर्व जगत् के पदार्थ-प्रति विम्वित हो रहे हैं. और येही शाक्ति इस आत्मामें हैं. १० 'सर्व दो दितम्' सदो दित हैं. परमात्मा की आतमा में जो ज्ञानादि गुण रुप सूर्य का उदय हुवा है, उसको ग्रासने न राहू है और नपश्चम है. अर्थात अनन्त अक्षय उदय के धारक परमात्म और निज आत्मा हैं. ११ 'कृत्य' कृत्य हैं, सर्व कार्य की सिद्धी होने से ही परमा त्मा पद को प्राप्त हुवे हैं. जिससे उनको किसी भी कार्य कर ने की कदापि इच्छा होती ही नहीं हैं. न वो श्रष्टीके व जीवके घड मोड के

झगडे में पडते हैं. क्योंकि श्रीष्ट आदि किसी भी पदार्थ बनाने की जो इच्छा होती है, सो ही अपुर्णता है. अपुर्णता है सो ही दुःख है. और जहां दुःख है वहां परमात्मत्व नहीं. और वो कृत्याकृत्य भी नहीं. इस लिये सर्व इच्छा रहित होने से परमात्मा कहे जाते हैं. तैसाही निजात्मा भी है. १२ 'शिव' कल्याण रूप है. आधी (चिंता) व्याधी (रोग) उपाधी (काम) इन तीनो दुःख रहित निरुपद्रवी सो ही शिव हैं. तैसे ही निजात्म गुण हैं. १३ ' शांत ' हैं, क्षोभ रहित है क्षुधा-तृषा-शीत-ताप-जरा-मृत्यु इत्यादि किसी भी प्रकार के शत्रु की वहां सत्ता नहीं चलती है. इसलिये परमात्म अक्षोभ हुवे हैं. आत्मा भी अक्षोभही है १४ 'निष्कल' अकलङ्क हैं. दुष्ट लक्षण व्यंजन कुरूपता हीनंगता वगैरा अपलंच्छन शरीर को होते हैं. और परमात्मा तो शरीर रहित हैं. इसलिये निष्कलङ्क हैं. तथा निष्कल-अकल-जिनका स्वरुप मिथ्यात्वी यों के कलने-जानने में नहीं आवे. इसलिये निष्कल है. और आतमाका निजस्वरुप भी निष्कल है. १५ ' करुण चूत ' शोक रहित हैं, शोक चिंता है सो अज्ञानताका चिन्ह है. और परमात्मा त्रिकालज्ञ हैं, सो होणहारके जान हैं. इसलिये उन्हे किसी भी प्रकारका शोक कदापि नहीं होता है. तथा 'चूत' कहता इन्द्रियों रहित है, परमात्मा अशरीर होने से अनेंद्रिय हैं. और इन्द्रिय शब्दादि विषयको ग्रहण कर मनोमय प्रणमती है, जिससे केइ विकल्प होते हैं, सो भाव परमात्मा में नहीं हैं, और उन के इंद्रियोंका भी कुछ प्रयोजन नहीं हैं. क्योंकि जो वस्तु वक्तपर इन्द्रियों से ग्रहण करी जाती है, वो उनोने केवल ज्ञान कर पहिली ग्रहण करली है जानली है. कि-असुक वक्त अमुक शब्दो चार होगा. रूपकी प्रवृती होगी, ऐसे सब विषयोके आगमिक ज्ञान होने के सबब से राग द्वेष

नष्ट होगया है. आत्माका भी निजगुण येही है. १६ ' निःशेष भव सम्भुत क्लेश द्रुम हूतासनम् " अनेक भवों के परिभ्रमण में अनेक पापों के बीज बाये. और इतने कालमें उन बीजों के बडे २ वृक्ष हो गये कि-जिनोका निंकद्र बडे तिक्षण कूदाल से भी न हो, ऐसे वृक्ष को भगवंत ने ध्यान रूप प्रबल अग्नि कर क्षिण मात्र में जलाकर भश्म करदिय, निशंकूर कर दिये, कि-जिससे उनेंमं अकूर प्रगटनेकी सत्ता वि लकुलही नहीं रही, और अबमें भी उसही ध्यानारूढ होताहूं. १७ 'शुद्ध' शूद्ध हैं अशूभ योग कषाय कु-लेशा इत्यादि प्रणतीमें प्रणमने से आत्मा मलीनता को प्राप्त होती है. उस मलीनता का कारण जिनेन्द्र की आत्मामें से स्वभाव से ही नाश होगया है, जिससे परम पवित्र शुद्ध हूवे हैं. और निजात्म स्वरूपभी तैसाही शुद्ध है. १८ 'मत्यन्त निर्लेपम्' शुद्धात्म प्रदेशपर अनादी कर्म लेप चडरहा है, उस लेपको तप रूप अग्निसे दूरकर शुद्ध निजात्म स्वरूप को प्राप्तकर अत्यन्त निर्लेप हूवे हैं. और आत्मापरभी लेप लगता नहीं है. १९ 'ज्ञानराज्य प्रातिष्ट तम्' यह आत्मा सदा से ज्ञानादि त्रीरत्न का निध्यान है, परन्तु उस खजाने को ज्ञानावर्णि आदि शूभटोने घेर रखाथा-ढक रखाथा. जिससे चैतन्य अपने गुणपर मालकी नहीं कर शक्ता था, जब अनन्त वीर्य शक्ति प्रगटी और उन कर्मों के सन्मुख तहमन से अजमाइ तब उन कर्मोंने वहां से अपनी चोकी उठाइ कि उसी वक्त वो खजाना प्रगट हुवा. चैतन्य अपना माल जान उसपर मालकी करी जिससे सर्व आदि अनन्त गुण में अक्षय स्थित हुवे. २० विशुद्धा दर्श सकान्त, प्राति विम्ब समग्र भम् "जैसे सर्व पदार्थों का प्राति विम्ब-प्रति छांया नेर्मल दर्पण में पडती, है ऐसेही सर्व क्षेत्रोमे रहे हुवे जीवादि द्रव्योंके समय २ में जिस २ प्रकार भावों की प्रवृती होती है उसका प्राति विम्ब परमात्मा के आत्मा रुप दर्पन

में प्रति विम्बित हो रहे हैं. और जैसे वो दर्पन उस प्रति विम्ब से भार भूत नहीं होता है, तैसेही परमात्मा भी निरोगी होनेके कारण से सर्व भाव देखते हुवे भी कोइ प्रकार भार भून नहीं हैं. और आत्माभी अभारी है. २१ 'ज्योतिर्मयं' जैसे एक दीपक के प्राकश में अनेक दीपक का प्रकाश समा जाता, है और जगह रोकता नहीं है, तैसेही एक प्रमात्मा के आत्म प्रदेशके स्थान अंनत परमात्मा के आत्म प्रदेश का समावेश हुवा है. तो भी सिद्ध स्थान की किंचित् मात्र जगह रुकी नहींहैं और जैसे दीपककी ज्योति प्रकाश करती है. तैसे ही परमात्मा का ब्रह्मज्ञान प्रकाश करता है. फरक यह है कि वो जोती देश प्रकाशिक है, और गुलभी हो जाती है, और ब्रह्मज्ञान सर्व प्रकाशित हो कर भी कदापि नाश नहीं पाता है. २२ 'अंनत वीर्य' आठ कर्मो मे छेले कर्म का नाम अन्तराय कर्म हैं, और पांच अन्तराय में छेली आन्तराय का नाम वीर्य अन्तराय है. जिनोने अष्ट कर्म का नाश किया जिनोके अन्तराय कर्म का और अन्तराय कर्म के साथ वीर्य अन्तराय का नाश होने से जो आत्मा में अनादि शक्ति थी वो प्रगट हुइ, जिससे अनन्त वली हुवे, और जो अपूर्ण घडा होता है वो झलकता है परन्तु पूर्ण घडा कदापि झलकना नहीं है, इसही दृष्टान्त से जो अपूर्ण शक्ति वन्त हैं, वोही अपनी शक्ति अजमाने–कम शक्ति वाले को दवाने प्रयास करते हैं, परन्तु जो पूर्ण–अनन्त शक्ति के धारक परमात्मा हैं, उनको अपनी शक्ति फोडनेका किसी को सताने का कदापि इरादाही नहीं होता है, इसलिये शान्त निश्चल भवको प्राप्त हुवे हैं, और उस शक्ति के प्रभावसे अनन्त काल तक एकही स्थान रहने से कदापि थकते भी नहीं हैं. अकृगमन अतीहा नहीं है, २३ 'परिपूर्ण' प्रतीपूर्ण हैं. जिनने जगत् में उत्तमोत्तम गुन

थी प्राप्त होती है तद्यथा-' तदेवार्थ मात्र निभासि समाधी ' ध्यान किये हूवे विचारसे एक्यता अभेदता प्राप्त होवे सो समाधी.

श्लोक सोऽयं समरसी भाव स्तदेहकी करणं स्मृतम् ॥

अपृथक्त्वेन यत्रात्मा लीयते परमात्मानि ॥

अनन्य शरणस्ताद्धि तत्सं लीनेक मानसः ॥

तद्गुण स्तत्स्व भावात्मा सतादात्म्यच्च संवसन् ॥

अर्थात्-समरसी भाव उसे कहते हैं कि-जिस भावसे आत्मा अभिन्नतासे परमात्माने लीन हो जाय, तव आत्मा और परमात्मा का सामानता स्वरुप भाव है सो उस परमात्मा और आत्मा को एक्यतासे जाना जाय सो एकी कारण भाव है, इस में परमात्मा सिवाय अन्य किसी का भी आश्रय नहीं रहे, और तद्गुण कहीये उन परमात्मा केही अनन्त ज्ञानादि गुण उसमे सं प्राप्त होवे, उस का शुद्ध स्वरुप आत्माही है. और तत्स्वरूपता से उसे परमात्मा ही कहना. ऐसी आत्मा परमात्मा की एक्यता सो अन्य भावका विश्रमण हो जाय सो समाधी.

यह वरोक्त अष्ट प्रकार से अनुक्रमें मनको प्रवृती मार्ग से निवृताकर, निवृति मार्ग में रमण करने की यूक्ति बताइ. मुमुक्षु जन इस युक्ति से मनका निग्रह करते हैं.

यह मन निग्रह की आठ बातों कही, जिसमे से इस वर्तमान काल में ७ वा ध्यान तक तो साधन हो शक्ता है. अष्टपाहूड में कहा हैः—

गाथा—भरह दुस्सम काले, धम्म ज्झाणं हवइ णाणिस्स ।

तं अप्पसहवठि, एणहु नण्णइ सोदु अण्णाणी ॥ १ ॥

अज्जवि तिरयणसुद्धा, अप्पा ज्झाऊण लहइ इंदत्तं ।

लोयंतिय देवत्तं, तच्छाचु दाणि व्बुदिं जंति ॥ २ ॥

२ " उणोदरी तप " के १३ भेद.

२८-२९ मुख्य में उणोदरी के दो भेदः—१ द्रव्य से उणोदरी और २ भावसे उणोदरी.

३०-३२ द्रव्य से उणोदरी के ३ भेदः-(१--३) वस्त्र, पात्र, उपकरण, कम्म करे.

३३-४० भाव से उणोदरी के ८ भेद (१--८) क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, क्लेश यह ७ घटावे. और ८ थोडा बोले.

३ " भिक्षा चरी तप " के ४६ भेद

४१-४४ मुख्य में भिक्षा चरी के ४ भेदः-१ द्रव्यसे, (२) क्षेत्रसे (३) कालसे, (४) और भाव से.

४५-७० द्रव्य से भिक्षाचरी के २६ भेदः—(१) ' उखित चरिये ' बरतनमें से वस्तु निकालकर देवे सो लेवूं (२) ' निखित चरिये ' बरतन में वस्तु डालता हुवा देवे सो लेवु, (३) ' उखित निखित चरिय ' बरतनमें से निकाल पीछी डालता देवे सो लेवुं (४) ' निखित उखित चरिये ' बरतनमें डाल पीछा निकलता देवे तो लेवूं. (५) ' वट्टीज माण चरिए '—दूसरे को पुरसता वुहा देवे तो लेवूं (६) ' साहारिज माण चरिए '— दूसरे को पुरसे वाद बचा सो लेवूं. (७) अवणिज माण चरिए '—दूसरे को देणे लेजाता सो लेवूं, (८) ' उवणिज माण चरिए '—दूसरे को दे पीछा लाता हुवा देवेसो लेवूं. (९) उवणिज अवणिज माण चरिए '—दूसरे को दे पीछा लेकर देवे. सो य लेवूं. (१०) ' अवणिज उवणिज माण चरिए '—दूसरे के पास से लेकर देवे सो लेवूं. (११) ' संसठ चरिए '-भरे हुवे हाथ से देवे. तो लेवूं. (१२) ' असंसठ चरिए '-विना भरे हाथ से देवे तो लेवूं. (१३) ' तज्जाए संसठ चरिए '--जिस द्रव्य से हाथ भरे वो ही द्रव्य देवे

तो लेवूं. (१४) 'अन्नाए चरिए '–मुझे पहचाने नहीं वहां से लेवूं. (१५) 'मोणं चरिए '—विन बोले चुप चाप देवे सो लेवूं. [१६] दिठ लाभए–वस्तु दिखा कर देवे तो लेवुं. [१७] 'अदिठ लाभए '–विन देखाइ वस्तु देवे सो लेवूं. [१८] 'पुठ लाभए '– अमुक वस्तु लो ! यो पूछ के देवे तो लेवूं. [१९] अपुठ लाभए–विना पूछे देवे सो लेवूं. [२०] 'भिख लाभए '–मेरीनिंदा करके देवे तो लेवूं. [२१] 'अभिख लाभए '–मेरी स्तुती करके देवे तो लेवूं. [२२] 'अन्न गिलाए'-जिसके भोगवने शरिरको दुःख होवे ऐसा अहार लेवूं. [२३] 'उवणी हिए '–गृहस्थ भोगवता होवे उसमें से लेवूं. [२४] परमित पिंड वतिए '–सरस अहार लेवूं. [२५] 'शुद्धे सणिए ' वारम्वार चोकस कर लेवूं. [२६] 'संखा दत्तीए ' कुडछी की तय वस्तुकी गिणती कर लेवूं.

७१–७८ क्षेत्र से भिक्षा चरीके ८ भेदः– [१] संपुर्ण पेटीकी तरह गोचरी अर्थात् चारों कोने के घर स्फर्शे. (२) 'अर्ध पेटी की तरह गोचरी ' अर्थात् दोनों कोने [खूने] के घर स्पर्शे [३] 'गौमुत्रकी तरह गौचरी ' अर्थात् एक इधरका एक उधरकायों घर स्पर्शे. [४] 'पतंगिया गौचरी ' छुटे २ घरसे अहार लेवे [५] 'अभ्यन्तर संखावृत गोचरी ' पहिले नीचेका फिर उपरकायों घर स्पर्शे [६] वाह्य संखावृत गौचरी पहिले उपरका फिर नीचे का यों घर स्पर्शे. [७] जाते हुवे अहार लेवे पीछा आते हुवे नहीं लेवे [८] आते हूवे आहार लेवे पीछा जाते नहीं लेवे.

७९–८२ कालसे भिक्षाचरी के ४ भेदः—[१] पहिले पहरका लाया तीसरे पहरमें खावे, [२] दूसरे पहर का लाया चौथे पहर में खावे. [३] दूसरे पहरका लाया तीसरे पहर में भोगवे. [४] पहिले

पहरका लाया दूसरे पहर में भोगवे.

८३-८६ भावसे भिक्षाचरी के ४ भेदः—[१] सर्व वस्तु अलग २ भोगवे, [२] सर्व वस्तू भेली कर भोगवे. [३] इच्छित वस्तु के त्याग करे, [४] मुख में ग्रास फिरावे नहीं तथा प्रमाण से कमी अहार करे.

४ " रस परित्याग तप " के १० भेद.

८७-९६ [१] ' निव्वितिए '--दूध, दही, घी, तेल, मिठाइ, यह ५ त्यागे [२] ' पणिएरस परिचए ' --धार विगय तथा उपर से विगय लेना छोडे, [३] ' आयम सित्थ भोए '--औसावणमें के कण दाणे खाकर रहे, [४] ' अरस अहारे ' रस और मसाले रहित अहार भोगवे. [५] ' विरस अहारे '--ज्युना धान्य सीजा हूवा भोगवे. (६) ' अंत अहारे '--उडद चिणा प्रमुख के बाकले भोगवे. (७). ' पंत--अहारे ' ठंडा बासी अहार भोगवे. (८) ' लुह अहारे '--लुखा अहार भोगवे, (९) 'तूच्छ अहारे'--निसार तुच्छ अहार भोगवे. (१०) अरस विरस-अंत--प्रात--लुख--तुच्छ सर्व भेला कर भोगवे.

५ " काय क्लेश तप " के १८ भेद.

९७--११४ बारह भिक्षूक [साधू] की पडिमाः-[१] पहिली पडिमामें एक महीने तक एक दात अहारकी और एक दात पाणी लेवे [२] दूसरी में दो महीने दो दो दात अहार पाणीकी [३--७] तीसरीमे तीन जावत् सातमीमें सात महीने तकसात २अहार पाणी की दात लेवे, [८-१०] आठमी नवमी और दशमीमें सात २ दिन चोविहार एकान्तर उपवास करे, [११]इग्यारमीमें बेला करे आर, [१२] बारमीमें तेला करे, समशानमें कायुत्सर्ग करे. और [१३] कायुत्सर्ग कर खडे रहे.

(१४) उकडू आसण वगैरा नाना प्रकार के आसाण करे (१५) केशका लोच करे. (१६) उग्रह विहार करे, (१७) शीत ताप सहे, (१८) खाज नहीं कुचरें! वगैरा.

६ "प्रति सलीनता तप के" १६ भेद

११५-११८ मुख्य में प्रतिसलीता के ४ भेदः-१ इन्द्रि प्रतिसलीनता, २ कषाय प्रतिसलीनता, ३ योग प्रतिसलीनता, ४ विवक्त सयणा प्रतिसलीनता सो स्त्री पशु नपुसक रहित स्थानमें रहे.

११९-१२३ इन्द्रिय प्रतिसलीनताके पन्द्हर भेद (१-५) श्रुत, चक्षु, घ्रण, रस, स्पर्श्ये, इन पांचों इन्द्रि को अपने वश्य में करे.

१२४-१२७ कषाय प्रतिसलीनता के ४ भेदः-[१-४] क्रोध मान-माया-लोभ इन चारों कपाय का त्याग करे.

१२४-१३० योग प्रतिसलीनता के ३ भेदः १-३ मन वचन-काय-इन तीनो को वश करे

☞ यह बाह्या प्रगट तप के ६ भेद हुवे.

७ "प्रायश्चित तप" के ५० भेद

१३१-१४० दश प्रकार से दोष लगावेः-१ कंदर्प काम के वश, २ प्रमाद के वश, ३ अनजान से, ४ क्षुधा के वश, ५ आपदाके वश, ६ शंका के वश, ७ उन्माद के वश, ८ भय के वश, ९ द्वेश के वश. और १० परिक्षा निमित.

१४१-१५० अविनित (पापी) दश प्रकार आलोयणा करे १ क्रोध उपजाकर, २ प्रायश्चित के भेद पूछकर, ३ दूसरे के देखर दोष कहे, ४ छोटे दोष कहे ५ या बडे २ दोष कहे, ६ बोलता गड वड करे. ७ लोकोको सुनाकर कहे. ८ बहुत लोकोके सन्मुख कहे. ९ प्रायश्चितके अजानके आगे कहे. और १० सदोषी के आगे कहे

१५१—१६० दश गुणका धारक आलोयणा करः-१ आत्मा का खटका वाला, २ जातिवंत. ३ कूलवन्त, ४ विनय वन्त, ५ ज्ञानवन्त. ६ दर्शनवन्त. ७ चारित्र वन्त, ८ क्षमावन्त, ९ वैराग्यवन्त, और १० जितेन्द्री.

१६१—१७० दश गुणका धारक प्रायश्चित दे शकेः-१शूद्धाचारी. २ व्यवहार शूद्ध, ३ प्रायश्चित की विधी का जान. ४ शुद्ध श्रद्धा वन्त ५ लज्जा दुर कर प्रायश्चित देने वाले. ६ शुद्ध करने सामर्थ्य. ७ गंभीर, ८ दोष कबुल करा के प्रायश्चित देने वाले. ९ विचक्षण, और १० प्रायश्चित लेने वाले की शक्ति के जान.

१७१-१८० दश प्रकारके प्रायाश्चितः—१ " आलोयणा "—गुरु आगे पाप प्रकाशे २ " प्रतिक्रमण '—पश्चाताप युक्त मिथ्या दुष्कृत्य देवे, ३ ' तदुभय '—आलोचना और मिथ्या दुष्कृत्य दोनो करे. ४ ' विवेगे '—अकल्पानिक वस्तु परिठावे, ५ ' विउसग्ग '—इर्यावही आदि कायुत्सर्ग करे. ६ ' तवे' —आंबिल उपवासादि तप करे, ७ ' छेद, —चारित्र में से दिन मास कम करे, ८ मूल-दूसरी वक्त दिक्षा देवे, ९ ' अपावठप '-उठने की शाक्ति नहीं रहे ऐसा तप करावे, और १० पारांचिय ६ मांस या १२ बर्ष तक सम्प्रदाय के बाहिर रखे.

८ " विनय तप " के ८२ भेद :-

१८१--१८७ मुख्य में विनय के ७ भेद :- १ ज्ञान विनय, २ दर्शन विनय, ३ चारित्र विनय, ४ मन विनय, ५ वचन विनय, ६ काया विनय ७ लोक व्यवहार विनय.

१८८-१९२ ज्ञान विनय के पन्दरह भेदः-मति, श्रुति, अवधी, मनः

पर्यव, केवल इन पांच ज्ञान के धारक का विनय करे.

१९३-१९४ दर्शान विनय के दो भेदः-१ सत्कार करे और २ अशात टले.

१९५–२३९ अनाशातना विनय के ४५ भेदः–१ अर्हत, २ अर्हंत परूपित धर्म. ३ आचार्य, ४ उपाध्याय, ५ स्थिविर, ६ कुल, ७ गण, ८ संघ, ९ क्रियावन्त, १० सभोगीं, ११ मति ज्ञानानी, १२ श्रूति ज्ञानानी, १३ अवधी ज्ञानी, १४ मनः पर्यव ज्ञानी, और १५ केवल ज्ञानी. इन १५ की अशातना नहीं करे, इन १५ की भक्ति करे और इन १५ के गुणानुवाद करे. यों १५ को ३ गुणा करते १५×३=४५ भेद हुवे.

२४०-२४४ चारित्र विनय के ५ भेदः– १-५ सामायिक, छेदोस्थापनिय. ५ परिहार विशुद्ध, सुक्ष्म संपराय और यथा ख्यात इन पांच चारित्र वंतका विनय करे.

२४५–२४६ मन विनय के दो भेदः–१ पाप मार्ग से मन निवारे, २ धर्म में प्रवृतावे.

२४७–२४८ वचन विनय के दो भेदः—१ पापकारी वचन छोडे, २ धार्मिक वचन उच्चारे.

२४९–२५५ काया विनय के ७ भेदः—१–७ चलते खडे रहते, बैठते, सोवते, उल्लंघते, पल्लंघते और सर्व इन्द्रियों को अयत्ना से निवार यत्ना में प्रवृतावे.

२५६–२६२ लोक व्यवहार विनय के ७ भेदः–१ गुरुके आज्ञा में चले, २ गुणाधिक साधर्मी की आज्ञामें चले, ३ स्वधर्मी का कार्य करे. ४ उपकारी का उपकार माने. ५ चिन्ता उपजावे. ६ [illegible] विचक्षणता से प्रवर्ते. और ७ देश काल उचित प्रवर्ते.

९ " वैयावच्च तप " के १० भेद

२६३-२७२ १ आचार्य, २ उपाध्याय, ३ नविदिक्षित, ४ गिल्याणी-रोगी, ५ तपस्वी, ६ स्थिविर, ७ स्वधर्मी, ८ कूल-गुरु भाइ ९ गण-स्मप्रदाय, और संघ ४ तीर्थ १० इन दशों को अहार वस्त्र, स्थान आदि दे सेवा करे.

१० " सज्झाय तप " के ५ भेद.

२७३--२७७ १ वायणा-सूत्र पढे, २ पूच्छणा--अर्थ पूछे, ३ परिट्टणा वारम्वार फेरे, ४ अणुप्पेहा-दीर्घ द्रष्टी से विचारे, और ५ धम्म कहा-धर्म कथा व्याख्यान करे.

११ " ध्यान तप " के ५ भेद.

२७८--२८१ ध्यान के मुख्य ४ भेद १ आर्त ध्यान २ रौद्र ध्यान, ३ धर्म ध्यान, ४ चार शुक्ल ध्यान.

२८२--२८५ आर्त ध्यान के चार भेद १-२ मनोज्ञ अच्छे शब्दादि विषय का संयोग और अमनोज्ञ बुरेका वियोग चिंतवे ३-४ ज्वरादि रोगों का नाश और काम भोग सदा बने रहो ऐसा चिंतवे.

२८६-२८९ आर्थ ध्यानीके १ लक्षणः- २ अक्रांद करे. ३ शोक करे. ४ आँश्रुपात को और ५ विलापात करे.

२९०--२९३ रोद्र ध्यान के ४ भेदः-१-४ हिंशामें, झुटमे, चोरीमे, और विषय भोग में अनुरक्म होवे.

२९४-२९७ रोद्र ध्यानी के ४ लक्षण १-२ हिंशा आदि पांच ही आश्रव का एक वक्त या वारम्वार चिन्तवत करे. ३ आज्ञान पणे अकृत्य करे हिंशा धर्म स्थापे. और ४ मरे वहां तक पाप का पश्चाताप नहीं करे.

☞ (यह आर्त और रौद्र दोनों ध्यान त्यागने से तप होता है)

२९८-३०१ धर्म ध्यान के ४ पायेः-१ 'आणा विचय' श्री तिर्थंकर की आज्ञाका चिंतवन करे. २ 'आवाय विचय' राग द्वेष का नाश होवे सो चिंतवे, ३ 'विवाग विचय'-शुभाशुभ कर्मों से ही सुख दुःख होता है, ऐसा चिंतवे. और ४ संठाण विचय-लोक का वा वस्तु के संस्थान (आकार) चिंतवना करे.

३०२-३०५ धर्म ध्यानी के ४ लक्षण १ 'अणारूइ' तिर्थंकर की आज्ञा पर रूची जगे, २ 'निसग्ग रूइ'-तत्वातत्व जानने की रूची जगे, (३) 'उपदेश रुइ'-सद्बोध श्रवण करने की रुची जगे. और ४ 'सुत्त रूइ' सुत्र पढने की रूची जगे.

३०६-३०९ धर्म ध्यानीके ४ आलंबनः-१ वायणा, २ पूछना, ३ परियटना, ४ धर्म कथा.

३१०-३१३ धर्म ध्यानी कीः-४ अनुप्रेक्षाः-१ 'अणिच्चाणुप्पेहा' पुद्गलिक पदार्थ सर्व अनित्य है, २ 'असरणाणुप्पेहा-' संसार में कोइ भी आश्रय दाता नहीं है. ३ 'एगत्ताणुप्पेहा' चैतन्य सदा एकला ही है. ४ 'संसाराणुप्पेहा' चार गति के परिभ्रमण में महा दुःख है.

३१४-३१७ शुक्ल ध्यान के ४ पाये १ 'पुहत वीय के स वीयारी' वीतर्क और विचार सहित. २ 'एगत्तावियके अवीयारी'-वितर्क सहित और विचार रहित, ३ 'सुहम किरिय अपडिवाइ' इर्याव ही क्रिया युक्त अप्रातिपाती और. ४ समुच्छिन्न किरिय अनीयट्टी-सर्व क्रिया रहित मोक्ष गामी.

३१८—३२१ शुक्ल ध्यानी के ४ लक्षणः-१ 'विवेगा'-तिल और तेल के जैसा आत्मा और कर्म को भिन्न जाने, २ 'विउसग्ग' बाह्य अभ्यन्तर संयोग से निवृत्त, ३ 'अवहे' अनुकूल प्रतिकूल परिसह सम भाव सहे, ४ 'असमोह'-मनोज्ञ अमनोज्ञ विषय पर

राग द्वेश नहीं करे.

३२२–३२५ शुक्ल ध्यानी के ४ आलम्बनः—‘ खंती ’ क्षमावंत २ ‘ मुत्ति ’ निर्लोभी ३ ‘ अज्जव ’ –सरलता और ४ ‘ मद्दव ’ निर्भिमानता.

३२६–३२९ शुक्ल ध्यानी की ४ अनुप्रेक्षाः–१ ‘ आवायाणुप्पेहा ’ –पांचही आश्रव अनर्थ के मूल हैं २ ‘ अशूभानुप्पेहा ’ पुद्गल द्रव्य ही अशुभ कर्ता है, ३ ‘ अंनत वितीयाणुप्पेहा ’ –अनंत पुद्गल प्रावर्तन आत्माने किये हैं. और ४ ‘ विपरिणामाणूप्पेहा ’ पूद्गल का स्वभाव सदा पलटता ही रहता हैं.

१२ “ विउसग्ग तप ” के २५ भेद.

३३०–३३५ मुख्य में विउसग्ग दो प्रकार केः-१ द्रव्य विउसग और २ भाव विउसग्ग.

३३२–३३५ द्रव्य विउसग्ग के ४ भेदः—१ ‘ शरीर विउसग ’ शरीर की ममत्व त्याग. २ ‘ गण विउसग्ग ’–गुणवन्त हो सम्प्रदाय त्याग ३ ‘ उवही विगसग्ग ’ –वस्त्र पात्र आदि उपाधी त्याग. और ४ ‘ भत्तपान विउसग्ग ’ अहार पाणी के त्याग करे.

३३६–३३८ भाव विउसग्ग के ३ भेदः–१ कषाय विउसग्ग २ संसार विउसग और कर्म विउसग्ग.

३३९–३४२ कषाय विउसग्ग के ४ भेदः—१-४ क्रोध-मान-माया-लोभ का त्याग करे.

३४३–३४६ संसार विउसग्ग के ४ भेदः–१-४ नर्क तिर्यंच मनुष्य और देव इन चारों गतिमें जानेके कर्मो–कार्यो का त्याग करे.

३४७–३५४ कर्म विउसग्ग के ८ भेदः—१ ज्ञानावर्णिय.

दर्शानावर्णिय, ३ वेद विनय. ४ मोहानिय, ५ आयूष्य, ६ नाम, ७ गोत्र, और ८ अन्तराय, इन आठ कर्मों के वन्धन के कारण से आत्माको वचावे.

☞ यह छः प्रकार का आभ्यन्तर (गुप्त) तप हुवा.

यह तप के जघन्य दो, मध्यम वहार, और उत्कृष्ट ३५४ भेदोंका संक्षिप्त वरण हुवा, इनका विस्तार उववाइजी, सूत्र उत्तरा ध्ययनजी सूत्र, और जैन तत्व प्रकाश आदि ग्रन्थों में से जानना.

एसे ३५४ प्रकार तप दश वैकालिक सूत्र के नवमे अध्याय के चौथे उदेशे में कहे मुजव करे.

सूत्र—चउविहाखलु तव समाही भवइ तं जहा—नो इह लोगठयाए तव महिठेज्जा, नो परलोग ठयाए तव महिठज्जा, नो किति व एण सद्द सिलो गठयाए तव माहिठज्जा. नन्नत्थ निज्जर ठयाए तव महिठज्जा.

चउत्थं पय भवइ एत्थ सिलोगो—

गाथा—विविह गुण तवो रए यनिच्चं, भवइ निरासए निज्जर ठिए॥
तवसा धूणइ पुराण पावगं । जुत्तो सया तव समाहिए ॥ ३ ॥

अर्थात्—गुरु महाराज फरमाते हैं कि अहो शिष्य निश्चय से तपकी समाधी चार प्रकार से होती है:-१ इस भव के सुखका नियाण अर्थात् लब्धी ऋद्धि आदि की प्राप्ती होवो ! ऐसी इच्छा से भी तप नहीं करे, २ परलोक परभव के सुख का नियाणा अर्थात् देवता की ऋद्धी या चक्रवृती आदि पद्वी प्राप्त होने की इच्छा से भी तप नहीं करे. ३ सर्व दिशाओं में कीर्ती फेलाने की इच्छासे भी तप नहीं करे. ४ पूर्वोक्त तीनही प्रकार की इच्छा रहित फक्त एकान्त कर्मों की निर्जरा (खपाने) के अर्थ तप करे. (गाथार्थ) अनेक प्रकार के गुण

श्लोक–दाणं सुपात्रे विशुद्धच शीलं । तपो विचित्रं शुभ भावनाच ।
भवार्णे वो तारण यान पात्रं । धर्म चतुर्द्धा मुनियो वदंति ॥ १ ॥

थात्–सुपात्र को दान, शुद्ध शील, विचित्र प्रकारका तप और शुभ भाव, यह चारों संसार समुद्र के तरनेवाले यान पात्र (जहाज) समान हैं, ऐसा मुनिश्वरने फरमाया है.

दान की महीमा.

श्री पूर्वो चार्यों ने धर्म के मुख्य ४ साधन फरमाये हैं. दान शील, तप, और भाव, इन चारों को अनुक्रमें आराधने से ही सचे, धर्म की आराधना की कही जाती है. देखिये धर्म के प्रवृताने वाले खुद श्री तीर्थंकर भगवान ही मोक्ष मार्ग को अंगीकार करते अनुक्र में इन चारही की आराधना कर ते है. अवल दिक्षा लिये के पहिले बारह महीने तक नित्य एक क्रोड और आठ लाख (१०८००००० सोनैये सोलह मासे की सुवर्णकी मोहर) का दान देते हैं. यह दान धर्म की पहिले आराधना कर; फिर शील अर्थात आचार चारित्र ग्रहण करते हैं; और फिर तप करते हैं. तब क्षायिक भाव की प्राप्ती होने से, क्षपक श्रेणिप्रतिपन्न हो, घन घातिक कर्म का नाश कर केवल (ब्रह्म) ज्ञानकी प्राप्ती होती है. और फिर जिस मार्गसे अर्थात्

अर्थात्—सम्यक्त्वी ज्ञानी शुद्ध चारित्र निग्रन्थ वीतराग जिनका चलन शक्ति रूप जो शरीर है सो जिन मार्गकी प्रतिमा है.

दंसण अणंत । णाणं । अणंत विरिय अणंत सुख्खय ॥
सासय सुखपदेहा । मुक्का कम्मठ बंधेहिं ॥ १३ ॥
णिरुव ममचल । मख्खाहा णिम्म विया ॥
जंगमेण रूवेण । सिद्धठाण म्मिठि यावो । सा पडिम्मा धुवासिद्दा ॥ १४ ॥

दान आदि चारोंकी अनुक्रमें अराधना करने से मोक्ष मार्गकी प्राप्ती हुइ, उसही मार्ग के विष मुमुक्षुजनो (मोक्ष के अभिलाषीयों) को प्रवृताने परमात्मा ने यह चारही वातों का द्वादशांगी द्वारा विविध भांती कर वरनन दर्शाया.

तो जिस मार्ग कर अपने परमपूज्य पुरुषों ने आत्महित साधा और वोही मार्ग स्वीकारने का अपने को विविध भांती कर फरमान किया. उसी मार्ग पर चलने से अपनी आत्मा का कल्यान होगा ! न कि फलांग मार दान शील को छोड एकदम तपश्वीराज महाराज धीराज वज जानेसे, और घणी खमाके (वहुत क्षमा हुवे विना ही) झुटे नाम के अभिमान में फूल नेसे ! विना गुण का नाम कितना हांस्यपद गिनाजाता है, इस वातका पुक्त विचार कर जिनेश्वर के फरमान मुजव अनुक्रमे चारोंही को आराधना चाहीये.

अव विचारना चाहीये की जो सवसे अधिक गुणाढ्य होता है उसे ही सवका प्रमूख पद दिया जाता हैं. तैसे ही दान प्रमुख चार धर्म के साधन में दान को प्रमूख पद दिया है, इसलिये सर्वसे अधिक दान गुनवन्त प्रत्यक्षही भाष होता है, क्योंकि दान ही शील आदि मार्ग में प्रवृता शक्ता है. इस लिये धर्मार्थियों को अवल दान धर्म की आराधना करने की वहूतही जरूर है. और इसही लिये यहां शास्त्रानुसार दान नामक प्रथम धर्म का यथा मति व्याख्यान किया जाता है.

"दान का अर्थ और भेद"

दान शब्दकी धातु 'दात्' है दात्का अर्थ देना होना है, अर्थात् किसी भी निमित से किसी को किसी प्रकार की वस्तु दी

जाय उसे दान कहते हैं. इस दानके श्रीठाणांगजी सुत्रमें १० भेद कहे हैं.

गाथा–अणुकंपा, संग्गेह, चेव । ऽ भंय कालुंणिए, तिए॥

लज्जाए, गारंवा, णं, च । अहंम, पुण सत्तम ॥

धर्म्म, अठम वुत्तं । कोंही तियं, कयंतियं ॥

अर्थात्—१ अनुकम्पा दान, २ संग्रहदान, ३ अभयदान, ४ कालुणी दान, ५ लज्जादान, ६ गारवदान, ७ अधर्मदान, ८ धर्म दान ९. काही दान, और १० कीर्ति दान, इन दशका खुलासासे वर्णन किया जाता है:—

१ " अनुकम्पा दान "

और कितनेक एकांत विषय सुख-इन्द्रियों की कषाय की पोषणता में मशगुल बन बिलकुल ही धर्म ध्यान आतम साधन नहीं करते हैं, और कितनेक धर्म नाम के भरम में पड धर्म के स्थान अधर्म करते हैं, शांती के स्थान उन्माद करते हैं, पाणी में भी लाय (आग) लगा देते हैं. अर्थात् धर्म के नाम से झगेड कदाग्रह मचाते हैं. इन्द्रीयों की और कषायों की पोषणतामें ही धर्म मान बैठे हैं. अहो प्रभू! ऐसे भारी कर्म जीवों की आगे क्या गति होगी! इन कर्मों का बदला कैसी मुशीवत से देवेगें! यह विचार भी अनुकम्पा का है.

और भी सम्यक्त्वी, श्रावक, तथा साधु होकर, सम्यक्त्व, देशवृत, और सर्व वृती पणा आदर कर, यथा तथ्य आराधना पालना स्फर्शना नहीं करते हैं; और हरेक तरह विराधना करते हैं; जिससे यह आगे को हीन स्थिती को प्राप्त होकर पश्चाताप करेंगे, अहो प्रभू! तब इन विचारे जीवों की क्या दिशा होगी? यह विचार उन जीवों को समजाकर उनकी आत्माका सुधारा करना, सो भी अनुकम्पाही है. और ऐसे ही अपनी आत्माका भी विचार करे कि-महा पुण्योदय कर मेरी आत्मा इतनी ऊंची आइ है, सम्यक्त्वादि आराधन करने सामर्थ्य वनी है. और फिर पूर्ण पणे आराधन नहीं कर शक्ति है, तो हे आत्मान्! तेरी क्या दिशा होगी! इत्यादि विचार से अपनी आत्माको सम्यक्त्व व्रतके भंग के मार्ग से बचाकर सम सम्वेगादि मार्ग में प्रवृतावे सो भी स्वनुकम्पा.

श्री तीर्थंकर भगवंत द्वादश प्रषधा के मध्य विराज मान हो कर, भिन्न २ भेद कर सब समजे ऐसा धर्मोपदेश फरमाते थे, सो भी एकांत जगत् वासी जीवोंको आधी व्याधी उपाधी रूप दुःख में पीडीत हुवे देख अनुकम्पा लाकर, उन दुःखमे मुक्त करने ही फरमाते

पण करने असामर्थ्य हो, वृद्ध पन में पुत्रादि सहायको का वियोगी हूवा हो, सो अनाथ गिने जाते हैं. २ जो असामर्थ्य हो अर्थात् अत्यन्त दुःख से पीडित हो हस्त पग नेत्र कर्ण आदि अंगोपांग रहित हुवा हो, कुष्ट आदि राज रोगसे पीडित हो, सो असामर्थ्य कहे जाते हैं. तैसे ही दुष्काल आदिमें अन्न आदिक की महगाइ के कारण से कूटम्वका निर्वाह करने असामर्थ्य हो, अन्न पाणी आदि उपद्रवसे द्रव्य का कुटम्व का वियोगी हो दुःखी हूवा हो. इत्यादि अनाथ असामर्थ्य दुःखी जीवोंको किसी भी प्रकार के वदलेकी इच्छा नहीं रखते. अन्न, धन्न, वस्त्र, स्थान, पात्र, गात्र, * औषध, आदि की सहायता दे कर उस दुःखका निवारन कर सूखी वनावे सो संग्रह दान कहा जाता है.

३ " अभय दान "

सुयगडांग सुत्र फरमाते हैं कि " दाणाण सेठं अभय पयाणं " अर्थात् सर्व दानों में अभय दान ही श्रेष्ट है.

समवायंगजी सुत्र में भय सात प्रकार के फरमाये हैं.

१ 'इह लोग भय' मनुष्यको मनूष्यका भय होता है, उसे इह लोग भय कहते है. परचक्र व जूलमी राजा ओंके व चोर चन्डाल आदि अनार्य मनुष्य के वशमें पड दुःखी हो रह हैं, व क्लेशी कुटम्वके झगडे में फस कर जो जीव दुःख भोगव रहे हैं, वगैरा दुःखीत जीवो को यथा योग्य सहाय कर उस दुःखसे मुक्त करे सो इह लोग अभयदान.

२ 'पर लोग भय ' मनुष्यको पशू देव आदिक से भय होने सो परलोग भय. सिंह सर्प आदि या डंश मत्सगादि क्षुद्रजीवों के उ-

* गात्र दान सो शरीर से उन के कार्यमें सहाय करने का है. परन्तू नरक गति में पोंचाने वाला कन्या दान वगैरा नहीं समझना.

पद्रव्यसे मनुष्यको बचावे. इसका अर्थ ऐसा नहीं समजना कि क्षुद्र जीवों का नाश करे. क्योंकि किसी भी जीवों को दुःख देना उसका नाम अभयदान कदापि नहीं होता है, जो क्षुद्र जीवोंका नाश करनेसे दया करी, बताते हैं वो अनार्य है. देखिये श्री मद्भागवतका सतवा स्कन्धका १४ वा अध्यायमें नारद ऋषि क्या फरमाते हैं.

श्लोक—यु मष्ट खर मर्का खुसरी, सर्प क्षगा मक्षिका ॥
आत्मान पूत्र वत पस्येत. तेषांमन्तर न कीयेत [illegible]॥

अर्थात्–युका (ज्युं,) उंठ, गद्धा, वंदर, गिलोरी, वि सर्प, पक्षी और मच्छर मक्खी जैसे छोटे और क्षुद्र प्राणीयों को भी अपनी आत्मा व पूत्र तुल्य समज कर पालना चाहिये ? परन्तु किंचित ही, अंतर कदापि नहींज रखना ! की जीये ? और भी इस से ज्यादा क्या कहें? तथा नर सिंह अवतार, बारह अवतार खूद इश्वरने धारण किया कहते हैं, और कृष्णजी को सर्प की सेजा कहते हैं, और महादेव जी के गलेमें सर्प की माला कहते हैं, तथा नाग पंचमीको प्रयायःसर्व हिंदु नागको पूजते हैं, सिर झुकाकर नमस्कार करते हैं, जो सच्चा नाग नहीं मिले तो चित्रका बनाकर ही पूजते हैं. और फिर सर्प सिंह वराह (सुर) जैसे प्राणी को क्षुद्र बताकर मारते हैं, ऐसे अज्ञानी यों को कैसे समजाना? इसलिये इन जीवों की घात न करते, उन की तरफ से किसी प्रकार पशुता भाव कर उपद्रव होता हो उससे बचने ऐसा रहना चाहिये कि जिससे ऐसा प्रसंग न आवे; जैसे बहुत अशुद्धी मलीनता ऐं ख्वाडा आदि एक स्थान संग्रह कर रखने से क्षुद्रि जीवों की उत्पती अधिक होती है, तो विशेष काल संग्रह कर रखना नहीं. ऐसा उपावकी यो जना होने से परलोक अभय दान दिया गिना जाता है. और देवादिक के उपद्रव कि भूत प्रेत पिशाव मडाकीनी शाकिनी पालित झो-

टिंग वगैरे की तो वह स्थान भ्रमणा होगइ है, वादि आदि रोग से, प्रकृती विकार होने से, व्यन्तर व्याधीके भरममें पड जाते हैं. तैसे ही वावा भोपा आदि मतलवी जनो के भरमाने से भरममें पडजाते हैं, वैमका भूत भरलेते हैं. ऐसे झगडेमें सुज्ञको नहीं फसना चाहिये, और जो कोइ स्थान व्यतन्रादि जोग हो तो भी डरना नहीं चाहिये, क्यों कि देवता ऐसे क्षुद्र नहीं हैं कि जो जीवादि के वध से खूशी होवे, यह तो अज्ञानियों की भरमणा है. और भय से घेसाकर मरजाते हैं. जिससे अनेक जन भ्रमित वन जाते हैं, इस भरममें भी सुज्ञ जन नहीं पडना. इत्यादि विचार से देवादिके भयसे वचावे सो परलोक अभय दान.

३ 'आदान भय' लेन देनका भय यह भी वडा जवर काम है, कर्जदार को नर्क के दुःख भोगवता कहते हैं. इस मे वचने का मुख्य उपावतो करज करनाही नहीं, अवलसे ही विचार रखना कि जिससे आगे आपसोश आपदा में फस दुःखी होना नहीं पडे. और कदापि हो हार होतव से होइगया हो तो चूकाती वक्त घवरा- ना नहीं, धैर्यता और नम्रतासे कारज अदा सुख से होता है, परन्तु जो उछांछले हो प्राण झोंक मरजाते हैं. वो करजासे कदापि नहीं छूटते हैं. उलटे दूने कर्जदार होते हैं, जैसे कारागृह में से भगा हुवा केदी दूनी सजाका अधिकारी होता है तैसे. ऐसा जान कितना ज- वर भी दुःख आते आत्म घातकी इच्छा मात्र ही नहीं करने. मन- भाव से दुःख सहना. कि जिससे इसही जन्ममें छुटका होजाय. और जो कोइ सामर्थ्य हो कर्ज दारों को उस कर्ज से यथा शक्ति अदा कर साता उपजावे तो वो आदान अभय गिना जाता है. तैसे ही जिन जीवोंने इस भव में वैर विरोध होने से, व जन्मान्तर सम्बन्धी जो

वेर बदला होवे उस से सद्बोध कर क्षमत क्षमावना करावे, अंतःकरण से वैर विरोध की निवृती करे, करावे तो, उस भी आदान अभयदान समजना चाहिये.

४ 'अकस्मात् भय' अचिन्त्य अनधारा भय अचानक आकर उत्पन्न होवे उसे अकस्मात् भय कहते हैं, यह होनहार की वात गिनी जाती है, एकाएक टाली नहीं टलती है. ऐसे विचारसे अकस्मात् भय प्राप्त होती वक्त धैर्य धारन काना चाहिये. और कितनेक भोले जीव को भय उत्पन्न होवे जैसे कूटम्ब के या धनके वियोग के समचार श्रवण कर, पत्र तार आदिमं पढकर, उसे सुनाकर अकस्मात् भय उपजाते हैं, सुज्ञों को इस से वहुत वचकर रहने की जरूर है. अर्थात् वश पहोंचे वहां तक किसी को भय उत्पन्न होवे ऐसी वात कहना ही नहीं चाहिये. और कोइ कर्माधीन अकस्मात भयसे अग्नि पाणी आदि से या वाहण डुवनेसे, प्लेग आदि रोगसे भय भीत हुवा हो, उस की यथा शक्ति रक्षा करे. सो अकस्मात अभय दान.

५ 'मरण भय' कहा है कि 'मरणं महा भयाणी' अर्थात् मरण सामान और दूसरा भय इस जगत् में हेही नहीं ! मरण महा भयका स्थानक है, क्योंकि महा भरात में कहा हैः—

आनिष्टा सर्व भुतानां । मरण नाम भारत ॥
मृत्यु कालेही भुतानां । सद्यो जायती वे पथू ॥ १ ॥

अर्थात्—मरणका नाम ही जीव मात्र को अप्रिय लगता है, सूनते ही रोमांच होजाते हैं, थर्राट छूट जाते है, धूज उठते हैं. या मरती वक्त पापात्मा कम्पाय मान होती है, विचारे कर्मों करके पराधीन हुवे जीवों पर, अज्ञानी जन विन मतलव या किंचित रस ग्रधीता मतलव के वश हो, जो जीव पर घात कीपना गुजारते हैं, मरण सा

मग्री शास्त्रादि उनके सन्मुख करते हैं, तब उनको कितना जबर त्रास होता होगा, यह विचार अपनी आत्मा उसपरसे हीकरना चाहिये; कि किसी मनुष्यको फांसी आदि से मारने की शिक्षा होती है, तब वो उससे छुटने कैसा प्रयत्न करता है, कोइ उसका सर्व स्वय मांग कर उसे जीवितदान दिलाने का वचन ही देता हो तो वो अपना सर्व स्वय उसे खूसीसे समर्पण कर देता है, तांव उम्मर गुलाम होने कबूल होजाता है. तो सूज्ञो ! ऐसाही अन्य की तरफ विचारीये कहा है किः—

श्लोक—यथात्मान प्रिय प्राण । तथा तस्यापि देहीनां ॥
इति मत्वा न कृतव्यं । घोर प्राणी वधो वुद्धः ॥

अर्थात्—जैसे अपने प्राण अपनको प्यारे लगते हैं. तैसे ही सब जीवों को अपने २ प्राण प्यारे लगते हैं. ऐसा जान अहो वुद्धवंतो! प्राणी वध रूप घोरे जबर पातक कदापि नहीं करना चाहीये.

श्लोक—प्राण यथात्मानो ऽ भिष्ट । भुतानामपि वैथता ॥
आत्मौ पम्ये मंतव्य । वुद्धि मद्भीः कृतात्मनिः ॥

अर्थात्—अपने प्राणोंके जैसे ही दूसरेके प्राणों को प्यारे जान कर, अहो वुद्धीवंतो ! जैसी रक्षा अपनी आत्माकी करते हो तैसीही सब जीवोंकि करना चाहिये. भेद भाव किंचितही नहीं रखना चाहीये.

श्लोक—नाही प्राणा त्प्रियतरं, लोके किंची न विद्यते ।
तस्मादयानरः कुर्यायथात्मीन तथा परे ॥

अर्थात्—इस जगत् में प्राणसे अधिक प्रिये दूसरा कोइ पदार्थ किंचित मात्र हेही नहीं, ऐसा जान कर अहो नरवर ! अपनी आत्मा के जैसे ही सब प्राणी को जानो और रक्षा करो !

श्लोक—दीयते मर्यो माणस, कोटि जीवित मेवच ॥

धन्य कोटि परित्यज । जीवो जीवित मिच्छाति ॥ १ ॥

अर्थात्–किसी भी मरते हुवे मनुष्य को कोइ कोड सोनेये रूपेका द्रव्य (धन) देवे, तो वो कोड सोनैये का त्याग कर, एक जीवत्व की वांछा व याचना केरगा ! जीवत्व ऐसा प्रिये है !!

और जीवीतदान–मरण अभय दानका फलभी बहुत बताया है.

श्लोक–कापिलानातु सहश्राणी । जो द्विज प्रच्छ प्रचन्ती ॥

एकस्य जीवितं दद्या । नच तूल्यं, युधिष्टर ॥ १ ॥

अर्थात्–श्री कृष्ण जी कहते हैं कि अहो धर्म राज ! कोइ महीने को हजार २ गौवों दानमें देवे, और कोइ मरते हूवे एक जीव को बचावे, तो वो जीवित दानी के पुण्य की तूल्यना गौ दान किंचित मात्र ही नहीं कर सक्ता है.

श्लोक–एकतो कञ्चनं मेरू । वहु रत्नं वसुधरा ॥

एकतो भय भीतस्य । प्राणीनां प्राण रक्षणम् ॥

अर्थात्–कोइ मेरु पर्वत जितना वडा सुवर्ण का ढग कर तथा संपूर्ण पृथवी सुवर्ण से भरकर इतना सूवर्ण दान में देवे, और कोइ भय भीत प्राणी के प्राणका स्वरक्षण करे–मरते को बचावे तो उस अभय दानी की तुलयना सुवर्ण दानी नहीं कर सके !

आयत–लैयना लल्ला होलहु मोहा वलाद माऊ
हावला कीयना ललहुतक वामिन कूम.

कूरान सूराह हजकी ३६ मी आयत.

अर्थात्–हरगिज न पहूंचेगा आल्लाको गोशत उनका, और न लोहु उनका, व लेकिन पहूंचे गी उसको परहेज गारी तुम्हारी.

सूत्र–" दाणाण सेठं अभय पयाणं "

सूयगडांग अ० ६

अर्थात्–सर्व दान में श्रेष्ट दान अभय दान ही फमाया है.

ऐसे २ सब शास्त्रोंमें अभय दान के वारे मे अनेक दाखले मिल शक्ते हैं. परन्तु यहां ग्रन्थ गौरव होने के डर से न दिये.

तैसे ही द्रष्टान्त भी अनेक जैसं–मुसलमीन के महमद नवी-साहेव पयगम्वर की अल्लह ताला ने तारीफ करी कि नवी वडा रहेम दिल (दयालु) है. अजराइल फिरस्ते (देवता) उनका अज-मोदा (परिक्षा) लेने आये, और शिकरा (वाज)व फागते (क-वुतर) का रूप वनाकर फागता आगे को उडता हुवा आकर धुजता हुवा महमद के गोद में वेठ गया, पीछेसे शिकरा आकर कहने लगा महमद मेरी शिकार देदजीये. महमद वोले तूझे चाहिये तो मैं मेवा मिष्टान दिलाता हुं. परन्तु इस विचारे फागते की जानको सदमा (दुःख) मतदे. शिकारा वोलाकि यह फागता तुह्मारेको इतना प्यारा है तो इस वदले में तूह्मारे वदन का गोश (मांस) दे दिजीये. मह-मद ने यह कवूल किया, और छुरी उठाइ की उसी वक्त जमी आ-शमान कम्पने लगा. फिरसता कदमोमे आगिरा और सचा हाल कह सुनाया.

जव खूद नवी महमदने ही दूसरे की जानकी रक्षा के वद्ल अपना वदनका गोश देना कवूल किया! तो उनके हुकमपर अकी-न (भरोसा) रखने वाले मुसल मीन भाइयोंको भी लाजिम है कि वने वहां तक किसी की जान को कभी सदमा न पहुंचावे. क्योंकि रहम दिल वालों परही रहमान खुश रहते हैं. देखियेः–

सवगतगीन हिरनी के वच्चो को पकड घरको ले जाता अपने पीछे हिरनी को भगती आती देख रहेम आया, तव वच्चेको छोड भूखे ही अपने घरमे आकर सो रहे. रातको ख्वाप (स्वप्न) में

अल्ला हाताल्लाने फरमाया कि तेने बेचारी हिरणी की जान को आराम दिया, इसके बद्दल मै तुझे फजर बादशाही मिलेगी. और वो बादशा बन गये! इससे समजो-कि रहेम सेही खुदा खूश हैं!!

श्री कृष्ण भगवान् शिशुपालसे लड रहे थे, उसवक्त जमीनपर टिटोडी पक्षीणी के बच्चो को देख दया आइ, उनकी रक्षाके वास्ते हाथी का घंटा उनपर रख दिया! यों खुद भगवानने ही रक्षा करी है, तो उनके अनुयायी यों को तो जरूरही करना चाहिये.

और जैन धर्म तो अभय दान का मूल स्थान ही हैः-

१ श्री नेमी नाथजी ने पशुओं की रक्षाके वास्ते राजुल जैसी महा रूप और महा गुण संपन्न स्त्री को त्याग दिक्षाली. २ श्रीपार्श्वनाथ जी ने जलते हुवे नाग नागणी को लक्कड में से निकाले. ३ महा वीर श्वामीने अविनित शिष्य गोशाले को तेजू लेशा से जलते हुवे को बचाया. ४-५ धर्म रूची जीने कीडी यो की रक्षा निमित, मेंतारजजी ने कुकडे (मुरगे) की रक्षा निमित, प्राण झोंक दिये. ६ श्रेणिक राजाने आमरी पडह बजाया, ७ मेघ कुमारने हाथिके भव मे शुशलको बचाया. इत्यादि अनेक द्रष्टांतो उपलब्ध हैं. ऐसा उत्कृष्ट मरण अभय दान कों जान, बने वहां तक तो सद्बोध से, नहीं तो तन धनसे बने जिसतरह बचे उतने ही जीवों की रक्षा जरूरही करना चाहिये. मरण मुख प्राप्त हूवे जीवो को बचावे सो मरण अभय दान.

और ७ मां 'पुजाश्लाघा भय' सो अप कीर्ती का भय जानना, ीर्ती लज्जासे कितनेक शरमालु जन प्राणका त्याग कर देते हैं. ा जबर भय यह है, ऐसा जान सुज्ञ पुरूषों को लाजिम है, कि किसी की इज्जत को हरक पहोंचे ऐसा विचार उचार आचार कदापि नहीं करना चाहिये. अपनी इजत जैसी दूसरेकी इजत जानना चाहिये. और जितना अपनी इजत के रक्षण के लिये उपाव करते हैं. उत

नाही पर्यन्त अन्यकी रक्षाके लिये करना, यह पूजाश्लाघा अभय दानी यों का कृर्तव्य है. कितनेक वे विचार से जानते हैं कि इससे हमको लोक अच्छा जानेगें, इत्यादि विचार से दूसरे की इजत हदक करने छत्ती अछत्ती निन्दा करते हैं, शिरपर वजा (आल) चडाते हैं. यह वडा जवर अनीतीका काम जान सुज्ञ जनको सदा वचकर रहना चाहिये. और किसी कि इजत का वचाव अपने से होवे उतना करे सो पूजाश्लाघा अभयदान(यह सव अभयदानके भेद समजना चाहिये.)

४ " कलुणी दान "

इस जगत्में प्रवृती के चलाने वाले दो तरह के पुरुष हुवे हैः- १ ' परमार्थिक-' जिनो ने सव जीवों के एकन्त हितका कर्ता सत्य सद्बोध का प्रति पादन किया. और ' स्वार्थी '-मतलवी जन सो फक्त अपनाही हित साधने अनेक कल्पित ग्रन्थ आदि वनाकर भगवानने या अमुक महान पुरुषने वनाये हैं, एसा नाम रख भोले लोको को ठग, अपनी आजिवका चलाते हैं. इन दोनो की परिक्षा विद्वानो उनके लेखके व उचार के शब्दों परसेही कर लेते हैं. कि इसमें कितने विश्वा सत्य और परमार्थ है.

' कलुणीएदान ' उसे कहते हैं कि जो मरती वक्त में करने में आता है, मरती वक्त अभ्यागतों को. अनाथों को, पशु पक्षीयों को व इन के स्वरक्षण के लिये जो दान. किया जाता है. व धार्मिक परमार्थिक कार्यों में जो खर्च किया जाता है, मैं उनका निषेध नहीं करता हूं. क्योंकि पुद्गलों परसे ममत्व उतार कर तत्कल्याणादि वृद्धी और अनाथों की सहायता करनी सो पुन्य महती उपार्जन करने का मार्ग शास्त्र कारही फरमाते हैं. परन्तु कितनेक कहते हैं कि मरती

वक्त गौदान देवो ? सो वो तुह्मारेको वेतरणी नदी से पार कर देगी. यह बात कैसे मानने में आवे ? क्योंकि वेतरणी नदी तो नर्क में है. और उस गौदानी को वो गुरु नर्क में पहिलेही पहोंचाते हैं. और दी हुइ गौ तो यहांही रहजाती है, फिर न मालुम वो यहां रही गौ उस दानी को कैसे पार करती होगी ? ऐसी २ और भी कितनीक वातों व प्रथा चालु है, इसका विचार कलुनी दानी को जरूर ही करना चाहिये.

और भी इसवक्त अपनी शक्तिका घरका विचार नहीं करते मान के मरोडे मरने वाले के पीछे अप्रमाणिक खरच करने लगे हैं, सो भी बडा अयोग्य काम है, इससे केइ साहुकारों के दिवाले निकल गये, इजत डूबगइ, और आप झुर २ के मरगये! तथा उनके अनेक कुटुम्ब रोते हूवे द्रष्टी आते हैं! इसका भी सुज्ञोको जरूर विचार करना चाहिये. दो दिनकी वहावाके लिये फाजूल खरच नहीं करते, उतनाही द्रव्य व उसमें का कुछ हिस्सा धर्म उन्नतीके, ज्ञान बृद्धिके, दयाके, वगैरा परमार्थिक कामों में जो सद्व्यय करें तो उससे कित्नी धर्म बृद्धी व यशः कीर्ती कि वृद्धी होवे, और कितने जबर आरंभ छे काया के कुटोरंभ से अपना बचाव होवे, इन दोनों पाप पुण्य की वावतों का भी जरा दीर्घ द्रष्टी के साथ विचार करना चाहिये, और फिर जो विशेष लाभ दायक मालुम पडे उसे सुज्ञ पुरुष स्वभाविकही स्विकारेंगे .

५ " लज्जादान "

लाज रखने लग्नादि प्रसंगमें जो दिया जाय सो लज्जादान. लजा यह गुण सर्वोत्तम है, परन्तू जो सत्कार्य में यथा उचित यथा योग्य करे तो! मर्याद उप्रान्तकी लजा भी हानी कारक होती हैं, सो इसवक्त की लज्जाभी हानी कारक होती हैं. सो इस वक्त प्रत्यक्ष देखने में आ-

ती है. कित्नेक लोक ऐसे हैं कि लोको उनको धनाढ्य जानते हैं. और उनके घरमें फाके पडते हैं. परन्तु मानके मरोडे शरम--लज्जाके मारे अपना नाम या मान रखने घरमें और सुखमें वत्ती लगाने से नही चूकते हैं. लोकीक रखने काम करते हैं, और लोकीक को गमा वैठते हैं, लग्न पहेरावणी वगैरा काम में वेहद खरच करदेते हैं, यह अयोग्य है, हां ! संसार में वैठे हैं संसार का व्यवहार नहीं साधे तो अच्छा न लगे उसके लिये कुछ करना पडे वो वात तो अलग रही. परन्तु घर पर का विचार जरुरही चाहिये. किजिससे घर हानी जन हाँसी होने नपावे.

और तैसेही दान के विषय में साफ लज्जाका त्याग भी नहीं करना चाहिये. अर्थात् इह लोक के अपयशः से और पर लौक के डरसे निडर वन साफ दान देने दिलाने की मना करना कि किन्ने देखा पर भव सो यहां देवेंगे और आगे पावेंगे ! सब झूटी वातोंहें ! खाया पिया सो अपना है ! तथा दान देनेका यह उपदेश तो मत लवी जनो का हैं, कमाके खाते नहीं आवे तव पेट भराइ का यह धंदा सुरु किया है, अपन को इन के भरम मे पडकर धनका नाश नहीं करना चाहिये. इत्यादि कू वौध के करने वाले नास्तिक जन भी इस श्रृष्टी में वहुतसे हैं सुज्ञो को ऐसेनिर्लज्ज नास्तिको के भरम में पड लज्जा का त्याग कर लोकीक लोकोतर का नुकशान करना उचित नहीं हे.

६ " गारव दान "

आत्मा को और श्रृष्टी को अधोगति में पहुचाने वाला अभिमानही है, अभीमान के जोस में चडा हुवा मनुष्य संपती संतती

और शरीर को तुच्छ समजता योगा योग्य का विचार नहीं करते झोंक देता है. अभिमान के वश हो योगस्थान में किया हुवा दान भी यथा तथ्य फलका देने वाला नहीं होता है. कहा है कि " वासना तसे फळ " अर्थात् जैसी उस दानके फलकी इच्छा होती है वैसाही उसका फल होता है, जो अभिमान के वश हो यशः की इच्छा से दिल चहा जितना दान करे, उस दानसे उसकी कीर्ती फैले उतना ही उसका फल समजना चाहिये. जैसे श्री महावीर स्वामीको पारणा वेहराने की भावना चार महीने तक 'जीरण' नामक शेठ ने भाइ. और प्रभू पारणा लेने गये पूर्ण शेठके घर, उसने गर्वमें आकर दासीके हाथ से उडदके बाकले दिराये, उसका भगवन्तने पारणा किया. वहां देव दुंदभि वजी, और सोनैय की बृष्टी हुइ, तब लोकोंने पुछाकि तुमने क्या वेहराया (दिया) वो गर्व में आकर बोला की मैंने खीर सक्कर वहोराइ, तब लोक वहा वहा करने लगे, जिससे वो फूल गया. ज्ञानी मुनी पधारे तब ग्रामके राजाके प्रश्न करने से निश्चय हुवा कि उत्कृष्ट प्रणामकी धारा चडने से जीरण शेठ ने बारमे स्वर्ग का आयुष्य बंधा * और पूर्णने उडदके बाकले दे गर्व किया, जिससे फक्त यश सुवर्ण वृष्टि सिवाय कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं करसका. इसलिये महा दानका फलभी गर्व करनेसे नष्ट हो जाता है. ऐसा जाण यथा योग्य यथा शक्ति दान तो देना, परन्तु देकर गर्व-अभिमान नहीं करना.

७ " अधर्म दान. "

जो दान तो दिया जाय परन्तु उसका धर्म न होते अधर्म निपजे.

* कहते है कि जो उस वक्त देव दुंदभिका शब्द नहीं सुनता तो उत्कृष्ट परिणाम कि धारा चडने से केवल ज्ञान प्राप्त कर लेता !

जैसे कितनेक अधर्मी जन कलयुग की खोटी रुढी प्रमाणे लग्न आदिक उत्तम प्रसंग पर मङ्गल सुखी कहवाती अमङ्गल अपवित्र मुखवाली वैश्या कि जिसके दर्शन मात्रसे धर्म का नाश हो जाय और जो चान्डालादिक का वमन किया हुवा ऐंठवाडा ऐसी कूलटा को इच्छित द्रव्य देकर मंगल मनाने नृत्य गान आदि कराते हैं उसे द्रव्यादि देते हैं. सो अधर्म दान किया जाता है. और प्रत्यक्ष अधर्मही है, क्योकि अधर्मकी जड अनीती है, और अनीती उत्पती व वृद्धि करने का अवल दरजे का मार्ग वैश्या नृत्य है. इसका अवलोकन करने पिता और पुत्र आदि व वहूत मर्याद युक्त रहने वाली उत्तम घराणे वाली लजा शील स्त्रियों, मर्याद का भंग कर एक स्थान बैठ निर्लज गायन सुनते हैं, कुचेष्टा देखते हैं, और करते भी हैं. जिसपर पिताने विषय भाव धारन किया, वो माता हूइ, और माता को कुदृष्टी कर देखना, व विषय भाव धारन करना, फिर उस पापका क्या सुम्मर रहा ! तैसे ही वैश्या गमनी माता भग्नि और अपनी पुत्री से गमन कर ने के पाप के अधिकारी भी होते हैं. क्योंकि वैस्या के द्वारपर कूछ सेन वोट (नाम का पटिया) लगाया हुवा न होता है, अमूक साहेव तस लीम फरमारते हैं. जिसस्थान पिता जाता है. वहां पुत्र भी चला जाता है, और पिताके वीर्य से अपने खुदके वीर्यसे उत्पन्न हुइ वैश्या पुत्री के साथ भी गमन करता है, ऐसे महा अधर्म नर्क गमन के स्थान जो द्रव्य आदि दिया जाता है, उसे अधर्म दान कहा जाता है. यह दान एकांत त्यागने योग्य है.

८ " धर्म दान "

जिससे धर्म की वृद्धि होवे सो धर्म दान, सर्वोत्कृष्ट धर्म वृद्धी

के करने वाले तो साधू जी होते हैं. उनको उन के ज्ञान दर्शन चारित्र तप रूप मोक्ष मार्ग के साधन की बृद्धि के लिये, व वो सद्बोध कर धर्म का प्रसार कर मोक्ष मार्ग प्रवृतावे, इसके लिये आहार, औषध, वस्त्र, पात्र, स्थानक और जो जो उपकरणों उनको लगे वो देवे सो धर्म दान. तैसे ही सम्यक्त्वधारी वृत धारी. जो श्रावक हैं उनको धर्ममें सहाय करने वाले उपकरण पुस्तक, पूंजणी, माला, मुहपती वैठके वगैरा देवे सोभी धर्म दानकी गिनती में हैं. धर्म दान देने के योग्य बनना और धर्म दान देकर यथा युक्त लाभ लेना यह पुण्यात्माही कर सक्के है. कहा है. " अर्थस्य सारं कर पात्र दानम् " अर्थात् धन पाने का सार येही है कि सुपात्र दान कर उसका लाभ लेना.

९ " काही तीय दान "

उत्तम पुरुषों की स्वभाविकही अभिलाषा होती है कि--मेरे पर उपकार करने वाले उपकारीयों का उपकार फेडनेका मौका मुझे मिले और में उनसे ऊरण होवूं. और वक्त पर तन धनको उनके लिये झोंक देते हैं. सब तरह उन्हे सुख उपजाते हैं सो कहती दान.

१० " कीर्ती दान "

कीर्तीदान सो भाट चारण आदि बरुदावली बोल ने वाले जनों को कीर्ती फैलाने देवे सो. कीर्ती दान.

☞ इन १० दानो में योगा योग का विचार फाठक गणोंको करना चाहिये.

सूत्र–" विधि द्रव्य दातृ पातृ विशेषा तद्विशेषः "

तत्त्वार्थ सूत्र

अर्थ– दान देनेकी विधी, दातार के गुण, दानमें देने का

द्रव्य. और दान ग्रहण करने वाले पात्र-यह ४ जैसे होते हैं, वैसाही दान का फल मिलता है, सो यहां बताते हैं:—

१ " दान देनेका विधी "

श्लोक-संग्रह मुच्चस्थानं । पाद वंदन भाक्ति प्रणामंच ॥
वाकाय मनः शुद्धी-रेषण शुद्धिष्य विधी माहुः ॥

अर्थात्-दान देने की इच्छा वाले कोः-१ अवल तो जो दान में देने योग्य वस्तु हो उसका अपने घरमें संग्रह कर रखना योग्य है. जिससे वक्त पर 'ना' कहने का प्रसङ्ग नहीं आवे. २ जोपात्र (दान को ग्रहणने योग्य) आवे, उनको उच्चस्थान में खडे रखे. ३ फिर गुणानुवाद करे कि-आप वडी कृपा कर मुझे पावन करने पधारे, वगैरा. ४ यथा योग्य सविधी से नमस्कार करे. ५ दोनो हाथ जोड नम्रता युक्त अपने यहां जिस २ वस्तु का जोग हो उसकी आमंत्रणा करे, कृपा कीजीये ! यह लीजीये ! ६ परिणामो मे उल्लास पणा उदार पणा रखे, उलट भाव से, विलकुल नहीं अचकाता दान देवे. ७ दिये बाद प्रमोदता युक्त कहे- आज मेरे धन्य भाग्य ! यह वस्तु मेरी लेखे लगी. वगैरा. ८ दानेच्छू को दान अपने हाथ से ही देना उचित है, कह ते भी हैं कि " हाथे सो ही साथे " अर्थात् जो हाथ से दियती जाता है, सो ही साथ आता है. और ९ दान देती वक्त घबरावे नहीं यत्ना युक्त जो देने योग्य वस्तू हो उसे चोकस कर २ देख २ देवे की रखे सडी विगडी हो या प्रकृती को प्रतिकूल (दुखदाइ) न हो, भोगवने से संयम में विघ्न न हो, ऐसी वस्तू देवे यह दान देने की नवदा भक्ति-नव प्रकार की विधी बताइ.

भी वखोड (निंद) डालते हैं. और तपश्वियों की प्रकृती भी वहूत कर तेजही होती है. इत्यादि प्रसंगपर दातारोंको सहन सीलता रखने की वहुतही जरुर है. पात्रों का मन किंचित् मात्र नहीं दुःखा ते उन्हे संतुष्ट रखना, येही दातारोंका मुख्य कर्तव्य है. पात्रोंकी तरफसे जो जो आघात होवे, उसे समता पुर्वक सहन कर्ता, अपना दान धर्म रुप जो कर्तव्य है उसकी वृद्धि कर ताही रहै. जिससे उस दान का फलभी पूर्ण प्राप्त करले, और कीर्ती भी विश्व व्यापिनी वन जाय.

३ " निष्कपटता " दातार सरल स्वभावी हुवा चाहिये. कपट युक्त दान का वरोवर फल नहीं होता है. कपटी दातार फक्त लोको को अपना गौरव वताना चहाता है, इसलिये सामान्य वस्तु भी विशेप भभके के सात देता है, छाछ देकर दूध का नाम लेता है. और उसका जव कपट प्रगट होता है तव कीर्ती के साथ उस दान का फल भी नष्ट हो जाता है, उलट पश्चाताप करना पडता है.

४ " अन सूयत्वं " दातार इर्षा रहित चाहिये. दातारी पने का आधार प्राप्त शाक्ति पर रहा है, इसमें किसी की वरोवरी व अदेखाइ कदापि नहीं करनी चाहिये. और जो इर्षा रख दान करते हैं. अर्थात् इसने इतना किया तो में भी इतना, या इस से कुछ अधिक करुं, या यह इतना दान क्यों करता है, ऐसा इर्षा लाने से दान का फल वरोवर नहीं लगता है. अपने से जो अधिक दान का देने वाला हो, व शाक्ति हीन होकर भी थोडा वहुत दान करता हो, उस की परसंस्या करनी चाहिये. की धन्य है यह लाभ लेते हैं.

५ ' अविषा दित्व ' दातार को अखिन्न भावी रह्या चाहिये. ऐसा नहीं विचारना कि यह झगडा मेरे पिछे लग गया, सव दोड २ कर मेरे पासही आते हैं. मांगते हैं, मै किन २ को देवुं. और -

कहूं तो भी अच्छा नहीं लगता है, मेरी कीर्ती का भङ्ग होवे, वगैरा विचार दान देने के पहिले करे. और देती वक्त यह देवुं के यह देवुं, अच्छी २ वस्तु छिपावे. वस्तु होते भी नट जावे. देता २ अटक जावे. थोडा २ देवे.इत्यादि देती वक्त करे, और दिये पीछे पश्चाताप करे. इतनी क्यों देदी, वह क्यों दी, अब में क्या करुंगा ! वगैरा. ऐसी तरह जो खिन्न भाव युक्त दान देते हैं. वो फल में विपरित ता कर लेते हैं. * ऐसा जाण दान पहली उत्सुकता. देती वक्त उदारता, और दिये पीछे प्रमोद भाव धारण कर, दान का बरोबर लाभ लेना चाहिये.

६ 'मुदित्व' दातार को उल्लास भावी हुवा चाहिये. पात्र देख कर बडा खुशी होवे, विचारे कि मेरे अहो भाग्य हैं कि ऐसे २ उत्तम महान सत्पुरुषो सन्मुख पधार मेराघर पावन करते हैं, दान ग्रहण कर मेरा द्रव्य लेखे लगाते हैं. मुझे तारते हैं, यह जो नहीं होते तो मेरी यह संपती क्या काम आती, जितना पात्र में पडता है उतनाही मेरा द्रव्य है. बाकी रहके तो दूसरे मालक बन जायंगे, व नष्ट होजायगा, इस लिये प्राप्त द्रव्य के लाभ लेने की यह अपूर्व वक्त मेरे हाथ लगी है. लाभ लेना हो उतना लेलेवूं. ऐसा भाव रखता उलट भाव से पीछा नहीं देखता हुवा दान देवे.

७ 'निर हङ्कारत्वं' निरभी मानी होवे. विचारे कि—श्री तीर्थ

---

* किप्पणाण जतण वंचय। वंचय सुयणण जणक तीए मित्तो।
तणदे तणण दाणो। धम्म रहियो मित्य काय समजी जी॥ १००

अथार्त्—जो कृपण होता है वो माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि कोठगता हुवा अपनी आत्माको भी ठगता है. क्योंकि वो तन देना (मरना) तो कबुल करतां परन्तू तृण (घांस की काडी) मात्र भी देना कबुल नहीं करता है.

कर भगवंत बारह महिने के ३ अब्ज, ७४ क्रोड, ४० लाख, सो नैये दान में देते हैं. ऐसे दाने श्वरीयों के आगें में विचारा पामर कौनसी गिनती में हुं! क्या दे शक्ता हुं! इत्यादि विचारसे निरमी मानी रहै.

३ " दान देने योग्य वस्तु के नाम "

अलब साधू और साध्वीवो को देने योग्य १४ प्रकार की वस्तु शास्त्र में फरमाइ है:—१ ' असणं ' –अग्निपर सिजाकर, सेखकर, अचेत किया हुवा चौवीस प्रकारका अन्नाज. २ २ ' पाणं '–अग्निके राखके, आटा आदिक प्रयोग कर अचित किया हुवा पाणी. ३ 'खइमं ' –घृत, तेल आदि मे तले हूवे, सक्कर गुड आदि के संस्कार से मिष्ट किये हुवे पक्वान, अथवा वदाम पिसता द्राक्ष आदि फोतरे व-वीज रहित किया हुवा मेवा. ४ ' साइमं '–लविंग, सुपारीं, तज, जायपत्री पापड वगैरा स्वादिम. ५ ' वत्थ '–सुत्र के, सणके; चोल पट्टे, पछेवडी, झोली आदि में उपयोग में आने जैसे वस्त्र, ६ ' कवंल ' –शीत तृषा आदि व्याधी निवारन करने जैसे उनके वस्त्र, ७ ' पडिगहं ' –काष्ट (लकड) के तूम्बाके, मट्टीके अहार पाणी औषध आदि ग्रहण करने योग पात्रे. ८ ' पाय पुच्छणं ' ऊनका, शण का, आदि रजूहरण अद्रष्टी (जहां दिखे नहीं एसी) जगह वापरती वक्त पूंजणे के लिये रजूहरण. व वस्त्र, पात्र, शरीर पूंजणे के लिये गोच्छा. ९ ' पीठ '-बैठने वस्त्र, पात्र, पुस्तक, आदि रखने पाटला. १० ' फलग '–शयन करने–सोवनेके लिये वडा पाट. ११ 'सेजा' निवास, सज्झाय, ध्यान करने; स्थानक जगह–मकान. १२ ' संथारह '–जो वृद्ध तपश्वी रोगी साधु होवें उनके शयन करने को चांवल का, गहूं का, कोद्रव का, रालका, कॉस वगैरा का पराल (घास) १

'औषध'—सुठ, काला लुण, व अग्नि लिम्बू आदि प्रयोगसे अचित किया हूवा लूण, काली मिरच. पच।या अजमा. वगैरा औषधी दवाइ यों. १४ 'भेषध'—तेल चूरण गोली आदि वहुत वस्तू मिलकर जो दवाइ बनाइ हो सो भेषज.

यह १४ प्रकारके पदार्थ साधू साध्वीयों के देने योग्य हैं. दान देने की इच्छा वाला ग्रहस्थ यह वस्तू अपने व अपने कुटुम्ब के निमित लाया होवे. व बनाइ होवे, तो उसमें से बचाकर सुजती सचेत के संघट रहित रखते हैं, वो अपने घर कार्य में भी काम आती है, और पुण्योदय सुपात्र का जोग बन जायतो साधू साध्वी के व पडिमा धारी श्रावक के और दया पालने वाले श्रावकों के काम मे आने से महा निर्जरा महा पुण्य की उपार्जना होती है. इस सिवाय और भी शास्त्र थोकडे ढाल सज्झाय स्तव आदिक के पुस्तकें. मुहपती, माला, पूंजणी, वगैरा जो जो धर्म क्रिया में सहाय के कर्त्ता उपकरणों हैं. उस का जोग भी दाने श्वरी अपने घरमें रखते हैं, और वक्तपर दे लाभ ले ते हैं.

पुण्य ९ प्रकार से होता हैं.

ठाणंग सुत्र में ९ प्रकारकी वस्तु दानमें देने से पुण्य की उपार्जना होती हे, ऐसा फरमाया सोः—१ 'आण पुण्य'—अन्न देने से. २ 'पाण पुण्य' पाणी देने से. ३ 'लेण पुण्य' वरतन—भाजन देने से. ४ 'सेण पुण्य' मकान देने से. ५ 'वत्थु पुण्य' वस्त्र देने से. यह ५ तो वस्तु देने आश्रिय पुण्य बताया. इस में सम्यक्त्वी मिथ्यात्वी का, व सूजती असुजती का, सावद्य निवद्य का, कुछ भी प्रयोजन नहीं है, हां ! जितनी पापसे आत्मा बचेगा उत्नाही पुण्य अ-

धिक होगा. और जो वशक्त ५ वस्तू देने सामर्थ्य न होवें, तो भीवो ६ 'मन पुण्य' मन कर दूसरेका भला चहावे, गुणवन्तोकी अनुमोदना करे, ७ 'वचन पुण्य' दूसरे को सुखदाइ हितमित वचन बोलें गुणानुवाद करे. ८ 'काय पुण्य' कायासे अन्यके योग्य कार्यमें सहायता करने से, वैयावच्च करने से. और ९ 'नमस्कार पुण्य' जेष्ट पुरूषों को गुणज्ञो को नमस्कार करने से, तथा सव के साथ नम के रहने से पुण्य की उपार्जना होती है.

अव 'पूरूषार्थ सिद्युपाय' ग्रन्थकर्ताने दानमें कैसे पदार्थ देना जिसका खुलासा संक्षेप मे किया है सो यहां कहते हैं:—

राग द्वेषा संयम मद दुःख भयादिकं न यत्कूरते ॥

द्रव्यं तदेव देयं सुतपः स्वध्याय वृद्धि करम् ॥ १७० ॥

अर्थ—दान में देने योग्य वोही द्रव्य है कि—जो द्रव्य, राग, द्वेष, असंयम, मद, दुःख, भय, आदिक विकार भावोंको उत्पन्न करने वाला न होवे. और जिसके भोगवने से उत्तम तप की स्वध्याय (शास्त्र पठण) ध्यान (अर्थ चिंतवन) की वृद्धि होवे.

और जो विषय लुब्ध जीवों ने लोंको को भरम में डाल, कन्या दान, पुत्र दान आदि मनुष्य, हाथी, घोडा, गाय, वकरे, आदि पशू. सुवर्ण, चांदी, लोहा, तांवा, वरतन, आदि धातू. हीरा, पन्ना, लीलम, आदि रत्न. तरवार, सुइ, आदि शस्त्र, वाजिंत्र, भांग, तम्बाखू, गांजा, आदि केफी पदार्थ. और स्त्रीयो को ऋतु दान आदि कूकर्मो की वृद्धी करने वाली वस्तु देने में भी पुण्य व धर्म वताया है, सो प्रत्यक्षहा मिथ्यात्व है; क्योंकि इन वस्तुके भोगवनेमें जीव घात, मृषा, चौर मैथून, ममत्व मोह, विषय, कषाय, झगडे आदि अनेक पाप कर्मोंकी वृद्धि होती है, और जो यह पदार्थ देते हैं वो पापकी सहायता करने वाले पाप

के अधिकारी गिने जाते हैं, इसलिये दान में देने के योगायोग्य पदार्थों का दातार को पूरा विचार करना चाहिये.

४ " दान ग्रहण करने वाले पात्रों "

जैसे कृषाण लोक खेतकी परिक्षा करते हैं, कि इस क्षेत्रमें डाला हुवा बीज फलित होगा कि नहीं, होगा तो कितना होगा. तैसे ही दानार्थी यों को भी पात्र की पहचान करना चाहिये, और उस में डाला हूवा बीज से, कित्ना लाभालाभ होगा सो भी विचारना चाहिये, ऐसे विचार से जो दान करते हैं, वो बरोबर लाभ ले शक्ते हैं.

मुख्य में पात्र दो गिणे जाते है १ सु-पात्र और २ कु-पात्र इसका संक्षेपमें इतनाही अर्थ है, कि-जो सम्यक द्रष्टीको दिया जाय सो सू-पात्र, और मिथ्याद्रष्टी को दिया जाय सो कू-पात्र. इस में जो सू-पात्र सम्यक द्रष्टी का है उस के तीन भेदः—

पात्र त्रिभेद मुक्तं संयोगो । मोक्ष कारण गुणानाम ॥
अविरत सम्यक द्रष्टि । विरता विरतश्च सकल विरतश्च ॥

पुरूषार्थासिध्यूपाय.

अर्थात्—जो दान लेने वाले पुरुष रत्न त्रय यूक्त होवे सो पात्र कहलाते हैं, उन के तीन भेद है,–१ सर्व चारित्र के धारी (साधू) सो उत्तम पात्र. २ देश चारित्रके धारी (श्रावक) सचितके त्यागी सो मध्यम पात्र. ३ वृत रहित सम्यक द्रष्टी सो जघन्य पात्र.

इन तीन पात्र के तीन २ भेद करने से सुपात्रके ९ भेद होते हैः

१ 'उत्ताम-उत्ताम पात्र' सो श्रीतीर्थंकर भगवन्तका. २ 'उत्ताम मध्यम पात्र' श्री केवली भगवन्तका व गणधर, आचार्य महाराज का ३ 'उत्तम-कणिष्ट पात्र सो-निग्रन्थ साधु मुनिराज का. ४ 'म-

ध्यम-उत्तम पात्र ' सो पडिमाधारी श्रावक का. ५ मध्यम-मध्यम पात्र सो-बारह व्रत धारी श्रावक का. ६ ' मध्यम-कनिष्ट पात्र ' सो यथा शक्ति थोडे व्रत प्रत्याख्यान करने वाले श्रावक का. ७ कनिष्ट उत्तम पात्र सो क्षायिक सम्यक्त्वी का. ८ ' कनिष्ट मध्यम पात्र ' क्ष-योपशम सम्यक्त्वी का. और ९ ' कनिष्ट-कनिष्ट पात्र ' सो उपशम सम्यक्त्वी का. इन नवोंही को यथा योग्य रिती से यथा योग वस्तु-देकर संतोषना सो जिनेश्वर की आज्ञामें रहे.

ऐसे ही कु-पात्र के भी ९ भेद हो शक्ते हैं:-१ ' उत्तम-उत्तम सो जैन लिंग धारी साधु तो हैं परन्तु मोहकर्मकी प्रकृतीयोंका क्षयो-पशम नहीं हुवा, कारण अभव्यत्वता प्रमाणिक भाव पणे प्रणमी है. २ ' उत्तम-मध्यम पात्र ' जैनी श्रावक तो हैं परन्तु अभवी है. ३ ' उत्तम कनिष्ट पात्र ' व्रतादि कुछ नहीं, फक्त नाम मात्र श्रावक है. और आत्मा में अभव्यता प्रगमी है. ४ ' मध्यम उत्तम पात्र ' मिथ्य त्वी तो हैं परन्तु अज्ञान तप से आत्म दमन करे हैं ५ ' मध्यम-मध्याम पात्र ' मिथ्यात्वी तो हैं परन्तु लोकीक व्यवहार में शुद्धताके लिये कित्नेक व्रत नियम पाले हैं, और लोकोंके सद्बोध करे है. ६ ' मध्यम-कनिष्ट पात्र ' मिथ्यात्वी होकर भी अपना मतलब साधने सम्यक्त्वीके गुणानुवाद करे है. ७ ' कनिष्ट-उत्तम पात्र ' अनाथ अ-पंग अभ्यागत भिक्षुकादि. ८ ' कनिष्ट मध्यम पात्र ' कसाइ आदि-को धन देकर जीव छोडना. ९ कनिष्ट-कनिष्ट पात्र ' वेश्या कसाइ आदि को देना सो. यह ९ प्रकार कु-पात्र के कहे. इनको देन से पुण्य प्रकृती, लोकीक व्यवहारकी शुद्धि, यशः आदि फलकी प्राप्ती हो जाती है. श्री भगवतीजी शास्त्रको वर्तीमें फरमाया है कि:-

मोक्खत्थं च जे दाणं । एत्त वियस्स मोक्खाओ ॥

वो जीव सुखे २ पुरा करे ऐसा लम्बा आयुष्य पावे.

" दान का गुण "

हिंसायाः पर्यायो लोभो ऽत्र निरस्यते यतो दाने ॥
तस्माद तिथि वितरणं हिंसाव्यु परमण म वेष्टम् ॥

अर्थ–लोभका त्याग किये विन दान नहीं होता है, और लोभ है सो हिंशा का रूप है. इसलिये दानमें लोभका त्याग होने से हिंशाका भी त्याग हुवा. जिनोने दया रूप वृत का आराधन किया उनो ने सव वृतों का आराधन किया. इसलिये दान रूप गुण सव गुणों में श्रेष्ट और सव गुणका आराधने वाला होता है.

दान से धन्नासार्थ वाही, शंखराजा, आदिक ने तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया, ऐसा यह दान परमात्म पदको प्राप्त करनेका मुख्य उपाय है परम पद के अभिलाषी इस वृतका अराधन जरूरही करेगें वो परमात्म को जरूरही प्राप्त करेगें.

दान है सो वैयावृतका मुख्य अंग है, इसलिये वैयावृत धर्मका आगे वर्णन करने की अभिलासा धर इस प्रकरणकी यहां समाप्ती की जाती है.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी मुनिराज श्री अमोलख ऋषिजी रचित परमात्ममार्ग दर्शक ग्रन्थका " दान–नामक सोलहवा " प्रकरण समाप्तम्
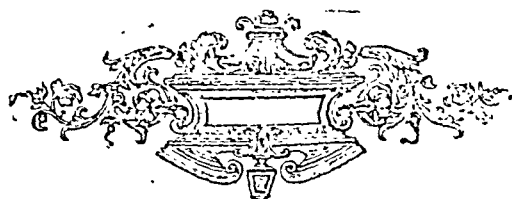
श्री परमात्मायनम

प्रकरण–सत्तरहवा.

" वैयावच्च-भक्ति "

भक्ति यह धर्म का मुख्य अंग है. भक्ति वन्त आत्मा सद् गुणों की प्रेमालु होती है. जिससे प्रेमके सवव से सद्-गुणों का आर्कषण कर आपभी अनेक सद्गुणोंकी सागर-वन जाती है, इन भक्ति–वैयावच्च नामक धर्मांग के सम वांयगजी सूत्र में ९१ भेद किये हैं सोः–

सूत्र—" एकाणउइ परं वेयावच्च कम्म पडिमतो पन्नंता "

अर्थात्–वैयवच्च कर्म नामक प्रतिमा–अभिग्रह के ९१ भेद कहे हैं. सो कहते हैं—१ साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चार तीर्थ की स्थापना करे सो ' तीर्थंकर. ' २ सद्बोध कर सद्ज्ञान दे धर्म प्राप्त करावे सो ' धर्माचार्य. ' ३ सुत्र अर्थ दोनों सुनावे पढावे मन-जावे सो ' वाचनाचार्य. ' ४ धर्म में अपनी और पराइ आत्मा स्थिर करे सो स्थिविर. ५ एक गुरु के बहुत शिष्य होवे सो ' कुल ' ६ व-हुत गुरुके बहुत शिष्यों एकत्र होकर रहे सो ' गण. ' ६ चारों तीर्थ सो ' संघ. ' ७ एकही मंडल पर बैठ कर अहार करे सो ' संभोगी. '

८ जिन सूत्रोक्त शुद्ध क्रिया करे सो 'क्रिया वंत.' ९ क्षांत्यादि धर्म की आराधना करे सो 'धम्म'. १० बुद्धि निर्मल होवे सो 'मति ज्ञानी' ११ शास्त्रज्ञान के अभ्यासी सो 'श्रुत ज्ञानी'. १२ मर्याद प्रमाणे क्षेत्र की बात जाणे सो अवधी ज्ञानी. १२ अढाइ द्विप के अन्दर के सन्नी के मनकी बात जाणे सो मन पर्यव ज्ञानी. १५ सर्व जाणे सो केवल ज्ञानी. इन १५ की—१भक्ति करना. २ बहु मान देना. ३ गुणानुवाद करना. और ४ अशातना टालना. इनचार बोलसे वगेक्त पन्दर बोलको गुणनेसे १५×४=६०भेदतो वैयावृतके यह हुवे. और१ दिक्षादातासो प्रवज्याचार्य२हित शिक्षादाता सो हिताचार्य.३सूत्रदातासो उद्देशाचार्य. ४ सूत्रार्थ दातासो समुद्देशाचार्य ५वांचनी दाता सो वाचनाचार्य. ६उपाध्याय. ७स्थिवर, ८तपस्वी, ९गिल्याणी,१०शिष्य,११स्वधर्मी, १२कुल, १३ गण, १४ संघ इन १४का—१सत्कार करे, २ आते जाते देख खडा होवे. ३ नमस्कार करे. ४ आसन आमंत्रे. ५ द्वादशावर्त वंदना करे. ६ हाथ जोडे प्रश्नोत्तर करे. ७ उनकी आज्ञा में चले. ८ जाते को पहोंचाने जावे. ९ पास रह सदा भल्ला चहावे. १० और मन वाच्छित सुख उपजावे. इस प्रकार से तो वैयावृत करे. और १ म-[illegible] [illegible] [illegible] दे. २ उनके मन प्रमाणे कार्य करे. ३ बहुत मनुष्यों के वृन्द में गुणानुवाद करे. ४ उनका कार्य आप [illegible] से निपजावे. ५ स्वामी उत्पन्न हुवे औषध पथ्य आदि भक्ति करे ६ देश काल मुजब प्रवृती करे ७ और सर्व कार्य में कुशल होवे. [illegible] [illegible] प्रवृते. यों सात तरह लोकोपचार व्यवहार [illegible]. [illegible] १४ को इन १० और यह [illegible] में सर्व ३२ हुवे. और [illegible] (३०) [illegible] सर्व [illegible] प्रकार वैयावृत्य के होते है.

ऐसी तरह वैयावृत्य करने से श्री उत्तराध्ययनजी सूत्रके २९ मे [illegible]

अध्यायमें, और भगवती सूत्रके ५ मेशतक के ६ उदेशमें फरमाये मुजब फल होता है.

सूत्र—वेयावच्चेणं भंते जीव किं जणयइ ? वेयावच्चेणं तित्थयर नाम गोत्तं कम्मं निबन्धइ ॥ ४३ ॥ उत्तराध्ये०

अर्थ—प्रश्न—अहो पुज्य ! वैयावृत्य करने से जीवको क्या फल होता है ?

उत्तर—अहो शिष्य ! आचार्यादिक की वैयावच्च करने से जीव तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म की उपार्जना करता है.

और भी विशेष इस वैयावच्चेका वरणन् गुरु गुणानुवाद, संघ भक्ति वगैरा प्रकरणों में बहुतही विस्तारसे अवल करदिया है. इस लिये यहां संक्षेपमेंही कहा है.

☞ पश्चतः जो ८ वा संघ भक्ति का प्रकरण सूत्रसे अधिक छपागया है, उस संपूर्ण प्रकरण का समावेश इस १७ वे प्रकरण में होता है जी ! !

और वैयावच्च करने वाले क्षमवंत जरूर होने चाहिये इस लिये आगे क्षमा का स्वरूप दर्शाने की इच्छा से यहां ही इस प्रकरण की समाप्ती की जाती है.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के बाल

ब्रह्मचारी मुनिराज श्री अमोलख ऋषिजी रचित परमात्ममार्ग

दर्शक ग्रन्थका "वैयावच्च नामक सतरहवा प्रकरण समाप्तम्

प्रकरण--अठरह वा.

समाधी भाव-भाव "

क्रोध वन्हेः क्षमै केयं । प्रशान्तौ फल वाहिनी ॥
उद्दाम संयमाराम । वृतिर्वा ऽत्यन्त निर्भरा ॥

अर्थात-अत्यन्त भयंकर क्रोध रुप जाज्वल मान ज्वाला (अ-ग्नी) को शांत करने वाली-बुझाने वाली एक क्षमा रूप ही महा प्र-बल औषध की वाहन हारी सरीता (नदी) है, और ज्ञानादी त्री-रत्न का धारक संयम रूप आराम-बगीचे की रक्ष करने के लिये क्ष-माही द्रढ बाड कोट है.

जब क्रोध रूप अग्नि हृदयमें प्रज्वलित होती है. उसवक्त उस के तेजसे आँखो अरुणता (लालरंग) धारण करती है, भ्रकूटी चड जाती है. प्रेम भगजाता है. और द्वेषका साम्राज्य स्थापनहो जाता है, क्षमा सील, संतोष, तप संयम, दया आदि गुण रूप काष्ट इंधन का भक्षण करती, और उस के धूम्रसे आत्मा को काली बनाती, नजीक में रहे. माता, पिता, स्त्री, पुत्र, भाइ, मित्र, गुरू, शिष्य, सेठ, दास, वगैरा तथा घर वस्त्र, भूषण, वरतन, आदि जिसकी तरफ मुडती है उसीका ग्रास करने में चूकती नहीं है. ऐसी तरह अत्रप्तता से भक्षण करती २ जब भक्षण का अभाव द्रष्टी आने लगता है, तब उत्पन्न हुइ, उसी

स्थान के रक्त मांस आदिका भक्षण कर, उसे मुरदे तुल्य बना देती है. ऐसे बुरेहाल से उसका और उस के सर्व स्वयका भक्षन करने से त्रप्त न होती हुइ, उस उत्पन्न कर्ता प्राणी को अपने साथ ही महा अंधकार युक्त नर्क स्थानमें ले जाकर सागरो बंध तक उस के साथ विलास करती ही रहती है ! यों एकही भव में नहीं ! परन्तु अनंता अनंत भवोंकी वृद्धि कर, भवों २ में जलाया करती है ! ! ऐसी भयंकर यह क्रोध रूप अग्नि है.

ऐसी भयंकर ज्वाला के ग्रास से व आताप से बचने वाले सुख-शान्ती इच्छिक प्राणीयों को इस अग्नि के प्रजले पहिले या उसही वक्त क्षमा रुप अत्यन्त शीलत जल का सींचन करना उचित है. वो जल सींचने की रीती बताते हैं.

" क्षमा वन्तों की भावना "

१ सकर्मी जीवों में गुण और अवगुण स्वभाविकता से पाते हैं, जो सच्चे सज्जन होते हैं वो अपने सज्जन को अवगुणों से बचा कर गुणों का स्व रक्षण करने हर वक्त सुचित करतेही रहते हैं. और जो गुन अवगुण को पहचान ने वाले सुज्ञ जन होते हैं. वो उन सज्जनो की हित शिक्षा श्रवण कर बडे खुशी होते हैं, विचारते हैं कि-मैं जानता नहीं था कि मेरी आत्मा इन अवगुणों कर दूषितहो रही है. अच्छा हुवा इन ने मेरे पर उपकार कर मुझे सुचित किया, अब मैं इन दोषों से मेरी आत्मा को बचाने पर्यत्न शील बन सकूंगा. मतलब कि-शत्रु भाव धार कर भी गाली प्रदान करता है, तो क्षमा सील, तो उसके क्रोध की तरफ दृष्टी नहीं लगाते, वचनो का अर्थ और अपनी आत्मा के हितके तरफ लक्ष लगाते हैं.

२ जो अपना धनका व्यय कर दूसरे पर उपकार करते हैं उने सब अच्छा कहते हैं, तो फिर हे आत्मान् जो क्रोध के तावे में हो अपना पुण्य रुप द्रव्यका नाश कर, अपने को सावध करने का उपकार करे, उसे तूं भी भला कहे. जगत्के रिवाजका अनुकरण कर.

३ धन के पीछे ही चोर लगते हैं. और धनवानही उन से बचने का प्रयत्न करते हैं, तो तू तेरे क्षमा रुप धन का यत्न कर?

४ यह तो निश्चय है कि-किया हुवा करजा चुकाये विन कदापि छुटका नहीं होने का तो, जो कोइ दुःख देता है, वो भी कर जाही चूकाता है, फिर देने सामर्थ्य हो देती वक्त क्यों रोता है. खूशी से दे.

५ अज्ञान पने से ज्ञानी वने हैं, सो महा परिश्रम से वने हैं और ऐसी वक्त में धैर्य धारण करना येही ज्ञानी का कर्तव्य है, जो ज्ञानी हो अज्ञानी की वरोवरी करने लगा तो फिर मुशीवत से ज्ञान प्राप्त करने का फायदाही क्या हुवा.

६ ज्ञान से इतना तो निश्चय हुवा कि—उदय भाव प्राप्त हुवे कर्मों को कोइ भी नहीं रोक सक्ता है, फिर तूं क्यों व्यर्थ परिश्रम करता है, आवक खुटाने से व्यय आपसे ही बंद पड जायगा.

७ वैपारी लोक यों जानते हैं कि—सर्व चुकानेसे ही खाता बंद होता है. लेन देन करने से नहीं? तो फिर हे आत्मान्? खाता खतम होनेकी वक्त प्रत्यूतर रुप देन लेन चालु क्यों रखता है, चुप रहे.

८ चोरों का स्वभाव होता है कि घरके मालिक को भरम में डालकर घरको आग लगा देते हैं, और फिर वो घर धनी आग बूजाने लगता है, इतने में चोर अपना मतलब करलेते हैं. और होंश्यार होता है वो चोर से और आगसे दोनोंसे अपने मालको बचा

लेता है. तैसे ही कर्म रुप शत्रू क्षमा आदि गुण रुप संपदा का हरण करने यह क्रोध रुप लाय आत्मा में लगाते हैं. जिससे बचो!!

९ भले मनुष्य होते हैं, वो कर्ज चुकाने में ही खुशी मानेत हैं. और महा कष्ट सहकर हीं कर्ज चुकाते हैं. ज्यों ज्यों कर्ज कमी होता है, त्यों ज्यादा खुशी मानते हैं. तैसे ही अपने पर जों जों दुःख संकट आकर पडते हैं. वो कर्मों का कर्ज कमी करते हैं. इसलिये भले आदमी ज्यादा दुःख पडने से ज्यादा खुश होते हैं, कि जलदी अदा हो जावूंगा.

१० श्वान (कुत्ता) नामक पशुका स्वभाव होता है कि—वो चिडता है तब मनुष्यको काटता हैं. परन्तु पीछा मनुष्य उसे काटता नहीं है, क्योंकि उसकी बरोबरी करने से शरमाता है. तैसे ही अज्ञानी यों कि बरोबरी करते ज्ञानी यों को भी शरम लाना चाहिये.

११ जैसे सडे हूवे अंगको अच्छे अंगसे दुर करने डाक्तर काट फाड आदि कर दुःख देता है, उसे पइसे देकर भी रोगी उपकार मानता है. तो यह शत्रू तो विन पैसे लियेही दुर्गुण रुप अंगको दूर करने परिसह देता है इसका तो ज्यादा उपकार मानना कृत्घ्नी नहीं होना.

१२ कडवी औषधी लिये विन रोग मिटे नहीं, तैसे परिसह उपसर्ग रुप दुःख समभाव से सहन किये विन कर्म कटे नहीं.

१३ जैसे विद्यार्थी मदरसे में पढकर होंशार होता है, तब उस की परिक्षा लेते हैं, कि कैसा पढा है. परिक्षा देती वक्त विद्यार्थी अडिग रहकर प्रश्नोतर करे, चूके नहीं, तोही इनाम पावे. तैसे ही यह उपसर्ग कर्ता मनुष्य परिक्षक हैं, सो मेरी परिक्षा लेने आया है कि देखें इस ने क्षांति-क्षमा धर्म का इतने वर्ष में कैसा अभ्यास किया है सो अब मूझे अडिग रह, सम परिणाम से पुरी परिक्षा देकर मुक्ति

स्थान का राज्य रुप इनाम संपादन करना ही चाहिये.

१४ आंखो वाले आदमी खड्डे से बच कर चलते हैं, तो हे आत्मान्! तूं ज्ञान नेत्र का धारक हो दूर्गति. जो रुप खड्डेसे तेरी आत्मा को बचा !

१५ इस विश्व में दो मार्ग हैं, सत्गति और दूर्गति. जो सुगति में जाना होतो क्षमा धारन कर. नहीं तो दूर्गती तो तैयारहि है.

१६ हे मुमुक्ष आत्मान् ! विन परिश्रम कोइ भी काम नहीं होता है, तो मोक्ष प्राप्ती का तो कहनाही क्या? और यह उपसर्ग तेरे पर सहजही आया है, मुक्ति का उपाव सहजही हो रहा है. फिर सम परिणाम रख अपूर्व लाभ क्यों नहीं लेलेता हैं?

१७जैसे किसीने जेहर खाया हो औरउसकी चिकित्सा करनेमें वैद्य असमर्थ होता है तो वो खुद जेहर खाकर मरता नहीं है. और जो कदापि पीलेवे तो मुर्ख गिना जाय. तैसेही क्षमा सील को विचारना चाहिये कि किसीने अपने परिणाम बिगाड कर मेरा बुरा करना चाहा, और में उसे निवारण करने (समजाने) सामर्थ्य न होवुं. तो क्या अपने परिणाम बिगाड कर उसके जैसा करना उचित है, नहीं, कदापि नहीं !

१८ जैसे गुरु महाराज व अपसर (मालिक) होते हैं, वो वारम्वार हटकते-मना करते रहते हैं, किसीधे रस्ते चलो. और उस शिक्षण को हित कारक जान उस प्रमाणे चलते हैं, वो सुखी होते हैं. तैसेही यह दूर्वचन कहने वाले भी मानु मेरे अपसर बन मुझे चेताते है कि पुर्व काल में तुमने जो क्रोध किया था उसका यह फल प्राप्त हुवा है. और अब जो करोगे तो आगे भी ऐसे बचन सुनने पडेगें, इस लिये सीधे चलो! सम परिणाम रख सहो!!

१९ इस विश्व में अनेक उत्तम पुरुष दूसरे को संतोष उपजाने-सुखी करने धनका व्यय करते हैं. और यह तुझे दूर्वचन कह कर संतुष्ट होता है-सुखपाता है; तो तेरा इसमें क्या नुकशान है. होनेंदे खुशी.

२० जो कोइ दुर्वचन कहता है, या मारता है, उससे उसके पूर्व पुण्य रुप पूंजी की हानी होती तो प्रत्यक्षही दिखती है. और में जो सम भावसे सहन करुंगा, तो मेरे निर्जरा होगी, यह भी प्रत्यक्षही दिखता है. और मैं जो पीछा इसे दुर्वचन आदि कहूं तो मेरे कर्मों की निर्जराभीन हो, और विशेष कर्मों का भी बन्ध हो-ऐसे दोनो प्रकार के नुकशान मेरे मुझे करना बिलकुल उचित नहीं है.

२१ बिन उपसर्ग व प्रसंगमिले तो क्षमा सवही करते हैं. परन्तु वो कुछ क्षमावान नहीं गिने जाते हैं. क्षमावान तो वोही कहे जाते हैं कि प्रसंग पडने पर-उपसर्ग परिसह आने पर सम भाव सहन करे. जो तूं क्षमावान् हैं तो ऐसा बन् !

२२ शस्त्र कलाके अभ्यासी वर्षों बन्ध परिश्रम कर शस्त्र चलाने की विद्या में निपुण होते हैं. और जब शत्रु को सामना करने का प्रसंग आता है, तब उस पडी हुइ विद्या का सार करते हैं. अर्थात् शत्रु का परांजप करते हैं. तैसेही मेंने इत ने दिन क्षमा का साधन किया सो लेखे लगाने का मौका येही आया है अर्थात् क्षमा रुप शस्त्र सेही इन उप सर्गादी शत्रु ओंका परांजय करु. जो ऐसी वक्त यह शस्त्र काम नहीं आया तो फिर सब परिश्रम व्यर्थही है.

२३ देख आत्मान् ! जो कुठरा (कुराडे) से चंदन वृक्षका छेदन करते हैं, तो वो चंदन उस कुठरा की धार को और छेदन कर्ता दोनो को सुगन्धही प्रदान कर प्रसंद करता है. ऐसाही तुं बन अर्थात् उपसर्ग करता का भी भला कर.

२४ मंत्र वादी मंत्र की साधना करते हैं, उस वक्त उनपर अनेक उपसर्ग पडते हैं. उन सब को वो सम भाव रख सहते हैं, तोहो उनका इष्ट कार्य होता है, तैसेही मोक्ष प्राप्ती का मंत्र साधने जो मैं प्रवृत हुवा हुं तो अडग हो इष्टितार्थ सिद्ध करना चाहिये.

२५ " कडाण कम्मा न मोख ऽ त्थी " इन वचनो पर पूर्ण परतीत है तो फिर जो कर्म मेरे यहां उदय भाव को प्राप्त हुवे हैं. उनका बदला यहां जो समभाव से नहीं चुकावूगा तो फिर नर्क तिर्य चादिगती में तो जरुरही चुकाना पडेगा ! तो फिर सम भावसे स्वल्प काल तक यांही बदलादे नर्कादि दुर्गती से अपना छुटका करलूं !

२६ जो कोइ अपना अच्छा कार्य देरसे होने की उम्मेद होवे, और वो जल्दी हो जावे तो बडी खुशी होती है. तैसेही कर्म रूप कर्जा इतना जल्दी खपने का भरोसा नही था, और यह जल्दी खपनेका मोका मिलगया है तो खुशीहो, बिलकुलही मन मत दुःखा!!

२७ संसारी जन धन के, यश के, सुखके लिये अनेक कष्ट सहते हैं, तो मुजे तो मोक्ष रूप महा लाभ की इच्छा है तो क्या उस महा लाभ के लिये इतनासा भी दुःख नही सहूं. जरुर सहना चाहिये.

२८ एकेक के प्रति पक्षीसे ही एकेक की मालुम होती है. जैसे रात्री से दिनकी. तैसेही क्रोधी उपसर्ग कर्ता जो हैं वो मेरे पर उपसर्ग करे और मैं सम भाव सहूंगा, तबही लोक मुझे जानेंगे की यह क्षमावन्त है, यह नहीं होता. उपसर्ग नहीं करता तो लोक मेरे गुण कहां से जानते इस लिये यह तो मेरा प्रख्याती कर्ता है, उपकारी है इन की ही ख्याती होनेसेही मैं प्रसिद्ध हुवा हूं !

२९. जो जो मुनिराजोंने गये काल मे केवल ज्ञान व मोक्ष प्राप्त किया है, सो उपसर्गो—संकट सहकरही किया है. इसलिये केवल

ज्ञान व मोक्ष का दाता उपसर्ग व उपसर्ग कर्ताही है. इने वधालो !

३० जो वडे २ शूर वीर मान धारी जोधा ओं सदा शास्त्र वक्तर से सज्जहो रहने वाले, और शब्द से विश्वको गर्जाने वाले, संग्राम समयि पीठ वतावें-भग जावें तो उनकी वडी हाँसी होती है. वह मुह वताने लायक नहीं रहते हैं. तैसेही मै ओगा मुहपति आदी साधू के लिंग रुप शस्त्र वक्करसे सज्ज हुवा, सद्बोध की गर्जना से शभा का गर्जाने वाला, इस उपसर्ग रूप संग्राममें पीठ वतावूंगा तो-क्रिया से भ्रष्ट होवूंगा तो, मेरे धर्मकी और मेरी वडी हँसी होगी इस लिये पीठ वताना-भगना विलकूलही योग्य नहीं!

३१ दुकर तप, दुकर ध्यान मौन व शील, ताप सहन लोच आदि काया कष्ट करता तव इतने कर्मोंका नाश होता, यह उपसर्ग का समय तो फक्त सम भाव मात्र से ही क्षिणमें कर्मोंका नाश होता है. सव आफत मिट पाप कटता है. तो कटने दे? ऐसी समता धार!

३२ यह तो निश्चय है कि इस भवका या परभवका वैर हुवे विन किसीका किसी पर द्वेष जगताही नहीं है. तो पुर्व भव में मैंने इसका कूछ नुकसान किया, तव ही इसका द्वेष जगा है, तो वदला ले लेने, दो इस वक्त में देने सामर्थ्य हुं.

३३ यदि विन अपराध ही यह मेरे पर द्वेष करता है, तो अज्ञानी वाल पशू है. शाणे मनुष्य को कभी छोटे वचे मार देवे, या कुछ वोल देवे तो वो उसकी दरकार नहीं करता है, खातर में नहीं, लाता है. तो मूझे भी इस अज्ञानी के वचन पर व कृतंव्यपर लक्ष नहीं देते, उलट दया करनी ही उचित है.

३४ यह अज्ञानता से मदान्धहो कर उन्मत वत् वन रहा है, इसे क्रोध से नहीं परन्तु युक्ति से समजाकर सुधारा करना चाहिये

मदोन्मत वडा गजेन्द्र व मृगेंद्र (सिंह) यूक्ति से वश हो जाता है, तो क्या यह नहीं होगा ? अवस्यही होगा. ऐसा निश्चयात्मक वन अवल उसे नम्रतासे–उसे सुहावे ऐंसे बचनो से वश में करे, वो शांत पडे तब उसे क्रोध के दुर्गुण बताकर समजावे. कि–देख भगवती सूत्र के ५ शतकके ६ उद्देशे में कहा है.:—

सूत्र—जेरां भंत्ते परं आलि एणं असंभुतेणं अभ्भ खवाणेणं अभ्भखववाति. तस्सणं कह प्पगारा कम्मं कजंति ? गोयमा-जणं परं आलिएणं असंतएणं अभ्भखवा णेणं अभ्भखवति तस्स तहप्प गारा चेव कम्मक जंति, जत्थेवणं आलिसमा गच्छंति तत्थेवणं पडि संवे देज्ति. तत्तो पच्छा वेदेति. सेवं भंत्त २ ॥

अर्थात्—प्रश्न गौतम स्वामी पूछते है कि अहो भगवंत जो झूटा अणहोता आल–कलङ्क किसीको देवे दूसरे के दुर्गुण प्रगट करे, वो किस प्रकारके कर्म बांधकर भोगवता है ? भगवन्तेन फरमाया अहो गौतम–जो दुसरे को झूटा कलङ्क देता है, दूसरे के दुर्गुण प्रगट करता है वो उस ही प्रकार कर्म भोगवता है, अर्थात्–उसही भवमें तथा वो कलंक देने वाला आगे जहां जाकर उत्पन्न होगा वहां उस के सिरपरभी उसही प्रकारका कलंक लग उसकी फजीती होगी !!

ऐसा भगवन्त का फरमान जान अहो सुखेच्छु आत्मा ! इस क्रोध को उपशमाकर शांत–शीतल बनो ! इत्यादि समजाने सेः—

वो सुधरजाय तो अच्छा. नहीं तो अपने शूद्ध अशयका फलतो अपने को जरूर ही मिलेगें परिश्रम व्यर्थ नहीं होता हैं.

३५ किसी भी कार्यको सहायता मिलती है तब उसकी वृद्धि होती है. जैसे अग्नि को इंधन मिलेगा तो वो बढेगा, नहीं तो मुरजा कर नहीं बुज जायगा. तैसे ही क्रोधाग्नि को जानना.

दुहा—दीधा गीली एक है, पलट्या गाल अनेक ॥
जो गाली देवे नहिं । तो रहे एक की एक ॥ १ ॥

३६ जो कू-वचन बोलता है, वो अपने विश्वे गमता है, सुन कर समता रखने वाले के निर्जरा और कीर्ति ऐसे दो लाभ होते हैं.

३७ यह तो आपन निश्चय जानते हैं कि इस जगत् में ऐसी जात योनी कूल स्थान नहीं है कि जहां अपन जन्में मरे नहीं होवें. अर्थात्-सर्व जाति में जन्म धारण कर आये हैं, फिर कोइ अपने को चंडाल दुष्ट मूर्ख गींवार आदि शब्द कहे तो बुरा क्यों मानना, गाली क्यों समजाना, क्या वो झूटा है ? वो तो अपने पूर्व जन्मका स्मरण करा, बिगडी अक्कलको ठिकाने लाता है. इसलिये उपकारी है!

३८ गाली देता है, कूछ लेता तो नहीं है, जैसी उसके पास वस्तू है वैसी वो देता है, तेरे पसंद हो तो ग्रहण कर नहीं तो छोड देना पसंद वस्तूको ग्रहण कर मलीन मत बन !

३९ क्या सबही गालीयो खराबही होती है ? नहीं, ऐसा नहीं समजना. जरा उनके अर्थके तरफभी गौर फरमाना. जैसे (१) किसीने कहा "तेरा खोज जावो" अथवा "रे खोज गया।" तो उसने तो अपन को सिद्ध तुल्य बनाया. क्यों कि खोज (संसार का पय गाम) तो फक्त सिद्ध काही गया है. इसलिये यह आसिर्वाद हुवा. (२) किसीने कहा 'रे कर्म हीन, अथवा 'हत भागी' अथवा 'अभगी' अकर्मी तो यह तीनों गुण सिद्ध भगवन्तमें पाते हैं. (३) 'रांन्डा' कहे तो अपन को ब्रह्मचारी बनाया, क्यों कि उत्तम पुरुष तो स्त्रीयों मात्र की साथ भगि भावही धारन करते हैं. इन तीन शब्दों के अनुसार सेही सब बातों के भावार्थ की तर्फ लक्ष देनेसे- सीधा लेने से, अनहित कारि वचन भी हित कर्ता हो जाते हैं.

४० कोइ अपनको बुरा कहे. चोर जार वगैरा कुछभी कहे, तो अपने मन के साथही विचार करना कि-यह जो कहता है सो कर्मक

शास्त्र की आज्ञानुसार में करता हूं या नहीं, तीर्थंकर की, गुरुकी, मालक की, जीवकी चोरी करता हूं या नहीं. पंचइन्द्रियों के विषय की लुब्धपता मेरे में है, या नहीं. यों विचार कर ने से उसके कहे मु- जब अपनी आत्मा में जो दुर्गुण द्रष्टी आने लगे तो विचारिये कि- अहो इसने तो मेरे पर वैद्य–हकीम से ज्यादा उपकार किया, विन 'फी' लिये और विन नाडी देखेइ मेरे अतःकरणका रोग बता दिया तो फी देने के बदलेमें उलटे अपशब्द कहना. ऐसे जबर उपकार के बदले में अपकार करना, यह कितना जबर पाप ! ऐसा जान कु वि चारसे आत्मा बचाना.

४१ यदि उस ने कहे वो दुर्गुन अपनी आत्मा में द्रष्टी नहीं आवें, तो बुरा मानेने की कुछ जरूर नहीं है. क्योंकि अंधे को अंधा कहने से बुरा लगता है. परन्तु शुद्ध नेत्री को नहीं.

४२ अपन भले हैं, और किसी ने अपनको बुरा कह दिया तो क्या अपन बूरे हो जायगें ? नहीं कदापि नहीं. जैसे रत्न को किसीने काँच कह दिया तो क्या वो काँच हो जायगा ? कदापि नहीं.

४३ हे आत्मान ! सुकुमाल न होना, अहंता घटाना, सद्गुणी बनना इत्यादि सत्पुरुषों की हित शिक्षा का पठन मनन कर एक वचन मात्रभी सहन नहीं कर शक्ता है. तो फिर ज्यादा क्या करेगा ?

४४ अरे प्राणी ! नर्क तिर्यंच चाकर व दरिद्री मनुष्य और अ- भोगी देवो में परवश पणे पल्योपम सागरोपम तक महा जबर प्रहार और महा जबर परिताप सहन किया, तो क्या अब किंचित् काल के लिये इतनासा भी दुःख नहीं सहशक्ता हैं ? तो क्या पीछा वैसेही दुःख भोगवने चहाता है ?

४५ बहुत कर्ज का छूटका तो नम्रतासे ही होता है. करडाइ करने वाले से कट मिती का व्याज भी भरले ते हैं, तो तूं बनीया हो कर इस बात को भूले मत, नम्रतासे थोडी मेही सर्व कर्ज चूका,

फारकती ले कर वे फिकर वन.

४६ जो वस्तु जिस काम में लगाने की होती है, उसका वि-गाड न होवे उसके पाहिले सुज्ञ उसे उसकाम में लगा देते हैं. उस काम में लगाते उस वस्तुका व्यय-नाश होने का बिलकुलही फिकर नहीं करते हैं. तैसे ही यह शरीर भी धर्म तप संयम में लगाने का है, क्षमा आदि धर्म का रक्षण होते इस शरीर का नाश होवे तो भ-लाइ होवो. उसका फिकर करे वलाय ?

४७ यह वध करने वाला शरीर का नाश करता है, तो यह तो नाश वंतही है, अर्थात् कभी भी इसका नाश होवेइगा. और इ-स शरीर के नाश से मेरा कुछ भी नाश नहीं होता है. क्यों कि मै (आत्म) अविन्या सी अखन्डित हूं, अग्नि से जलूं नहीं, पाणी से, गलूं नहीं, हवासे उडूं नहीं, जेहर से मरुं नहीं. शास्त्र से कटूं नहीं, पशू पक्षी काइ भी भक्षण कर सके नहीं. फिर मुझे डर किसका ?

४८ रे आत्मान ! तूं गरुर में आकर वैर वदला लैने तो तै-यार होता है. परन्तु संभालना ! उलट न हो जाय. लेने के वदले दे-न दार कर्जदार नहीं वन जाय ! देख तेरे महान् पिता श्री महावीर प्रभूने वैर वदला कैसी तरह चूकाया है, गवालिये जैसे पामर जाती की भी मार खाइ, परन्तू कुछ जवाबही नहीं दिया. और वदला चु-काने चंडकोशिकको विंबीपर, शूलपाणी यक्ष के मंदिर में, और अ-नार्य देशमें गये ! उनकी तरफ से होता हुवा मरणान्त करे ऐसा ज-वर असाह्य कष्टको समभावसे सहन किया ! और फिर उनको बोधा-मृतका पान कराकर तृप्तकर, स्वर्ग मोक्ष में पहोंचाये ! वो ही प्रभू सर्व वदला चूकाकर मोक्ष पाये. देख ! वैर इसतरह चूकता है, यह अ-नुकर्ण मुझे करना उचित है, अर्थात् समभावसे उपसर्ग सहना, और अपकार के वदलेमें उपकार करना, येही वदला चूकाने का अत्यूत्तम उपाय श्री वीर परमात्मा ने अपन को वताया, सो करना चाहिये.

४९ शत्रूता से निवृतने का सर्वोतम सच्चा–अकशीर अचुक उपाव येही है कि–अपणी आत्मा को शत्रू भाव रुप अमङ्गल पदार्थ से अपवित्र बनानाही नहीं चाहिये. जो अपना मन पवित्र हुवा-सव पर पवित्र रहा तो सबका मन अपने पर पवित्र रहेगा, फिर शत्रुता उत्पन्न होवेगाही नहीं.

५० यह क्षमा धर्म है, सो परमोत्कृष्ट धर्म है. इस की बराबर आराधना पालना स्पर्शयना कर ने से जीव यहां परमानन्दी पना भोगव ने लगता है और आगे भी श्रेष्ट सुख पाता है.

५१ 'क्षमा स्थाप ते धर्म' क्षमाही धर्म का स्थान है, 'क्षमा तुल्यं तपो नास्ति,' क्षमा जैसा दूसरा तपही नहीं है. 'खंती जीवा ते मुणी वंदे' क्षमा वन्तो को ऋषियो भी वंदते है. ऐसी तरह अनेक जगह सूत्रों ग्रन्थों व कवीता ओं में क्षमा की परसंस्या करी है. ऐसी सर्व मान्य क्षमा देवी. आवो ! मेरे देह मन्दिर में निरंत्र वसो !!

५२ ऐसी तरह जो पठन मनन निर्दिध्यासन कर क्षमा, शील, वनते हैं. जिनका मन पवित्र होता हैं, तन बलवंत होता है, नियम दृड होता हैं, सर्व जगत् जन्तु मित्र वनते हैं, और सर्व सिद्ध होते है.

तथास्तु ! तथास्तु !! तथास्तु !!!

ऐसी तरह क्षमा का आराधन है सोही परपात्मा का मार्ग है. ऐसे क्षमा सील तीर्थंकर पद–परमपद प्राप्त करते हैं. परन्तु जिन की आत्मा निरंत्तर अपूर्व ज्ञान ग्रहण करने में उद्यमी हो, वोहीं सच्चे क्षमा वन्त होते हैं. इसलिये अपूर्व ज्ञान ग्रहण करने के गुनों का आगे वरणव करने की अभिलापा रख. इस प्रकरण को समाप्त करता हूं.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी मुनिराज श्री अमोलख ऋषिजी रचित परमत्ममार्ग दर्शक ग्रन्थका 'समाधी-भाव नामक अठारहवा' प्रकरण समाप्तम्.
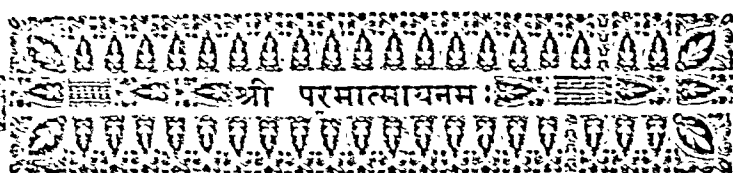
प्रकरण--उन्नीसावा.

" अपूर्व ज्ञाना भ्यास "

पढमं नाणं तओदया । एवं चिठइ सव्व संजए ॥
अन्नाणी किं काही । किंवा नाहीय सेय पावगं ॥

अर्थात्–प्रथम ज्ञान होयगा तो वो स्वात्म की और परमात्म को जानेगा और जानेगा तो दया पालेगा. जहां ज्ञान (जीवा जीव की पाहिचान) नहीं हैं, उसकी शुभ क्रिया-अनुष्ठान में अन्ध तुल्य प्रवृती रहती हैं. जो जीव अजीव को जाने गाही नहीं, वो संयम– आत्म दामन के मार्ग को जाने गाही कहां से ? और नहीं जानेगा वो अङ्गीकार कैसे करेगाः विन अङ्गीकार किये उसकी आत्मा का कल्याण होणाही नहीं. ऐसे अजान मनुष्य इस दुस्तर संसार सागर की कालीधार में डूब जायंगे. इसलिये सुखार्थी जनों का ज्ञानाभ्यास –नित्य अपूर्व (पहिले न सीखा हो ऐसा) ज्ञानका अभ्यास करने की वहुत आवश्यक ता है. जरुर करनाही चाहिये.

अहो भव्य गणो ! इस जगत् में सर्व से उत्तम पदार्थ ज्ञानही है. क्योंकि जगत् के और परमार्थिक सब सुख ज्ञान के आधीन रहे है.

" प्राचीन कालकी स्थिती "

सत्ययुग– चतुर्थ काल में सुखकी धनकी कुटंब की इत्यादि शुभ पदार्थों की अधिक ता, और दुःख क्लेश रोग इत्यादी की हीन-ता जो थी, सो सब ज्ञान-सद्विद्या काही प्रशाद था, सो सूत्रों द्वारा ग्रन्थो कहानियों–और इतिहॉसो के तरफ जरा गौर कर अवलोकन करिये, कि उस जमाने के लोक कैसा और कितना ज्ञान का–विद्या का अभ्यास करतेथे. जैसे इस जमाने के लोक स्त्री सम्बन्ध मिलने में कर्तार्थ ता समजते हैं. अर्थात् लग्न (व्याव) हुवा कि संसार में आने का सार प्राप्त कर लिया. एसा समजेत हैं. ! तैसं वल्के इस से भी बहुत अधिक उस जमाने के लोक विद्या–ज्ञान संपादन करने में सार्थकता– सफलता समजते थे. गत जमाने के सच्चे मावित्रों (क-ली काल के शत्रु मावित्रों जैसे नहीं थे, परन्तु वो तो) पुत्र पुत्रियों की जहां तक संसार व्यवार के कार्य में आप से समजते नही थे, इ-न्द्रियो जागृत होती नहीं थी, वहां तक उन को स्त्रीयों के सह वास से साफ अलग रख. और ज्ञानका विद्याका अभ्यास कराते थे. सो भी पुरुषको ७२ कलातक, और स्त्रीयों को ६४ कला तक पढाते थे, तब ही संसारी विद्याका कुछ अभ्यास किया समजते थे.

" पुरुषकी ७२ कलाके नाम "

१ लिखीत कला * २ गणित, ३ रूप प्रावृत, ४ नृत्य, ५ गीत

---

* लिखित कला की १८ लिपि–हंसालिपी, भुत, राक्षस, यवनी. तूरकी, कीरी, द्रावडी, सैंधवी मालवी, कनडी, नागरी, लाटी, फारस अनी मिती, चाणकी, मुल देवी, उडी, और भी इन १८ लिपी योंमे देश प्रावत से फरक पड गुजराथी, सोरठी, मराठी, इत्यादी अनेक, तरह बनी है, यह फक्त एकही कला के भेद हैं, एसे ७२ ही के अलग२ अनेक भेद होते है

लिपी छेद ३१ तत्काल बुद्धि, ३२ वस्तु शुद्धि, ३३ वैद्यक क्रिया. ३४ सुवर्ण रत्न शूद्धि, ३५ घट भ्रमण, ३६ सारपारिश्रम, ३७ अंजन योग ३८ चुर्ण योग ३९ हस्तलाघव, ४० बचन पटुत्व, ४१ भोज्यविधी, ४२ वाणिजविधी. ४३ काव्य शक्ति, ४४ व्याकरण, ४५ शाली खंडन, ४६ मुख मन्डन, ४७ कथा कथन, ४८ कूसुमगुथंन, ४९ श्रृंगार ५० सर्व भाषा ज्ञान, ५१ अभिधान, ५२ आभरण सज, ५३ भृत्योपचार, ५४ ग्रहाचार, ५५ संचय करण, ५६ निराकर, ५७ धान्यरधंन, ५८ केश बंधन ५९ विणानाद, ६० वीतंडवाद, ६१ अंकाविचार, ६२ लोकव्यवहार, ६३ अंत परिक्षा ६४ प्रश्न पहेली.

इन ७२ और ६४ कला के नामपर से ही जरा ख्याल कीजीये कि कित्ना जबर व्यवहारीक ज्ञान का अभ्यास गत काल में पुत्र पुत्रीयों को कराते थे!!

" प्राचीन कालका धर्माभ्यास्य "

ऐसे ही धर्मके अभ्यासके तरफ भी जरा लक्ष दिजीये! जिन२ शास्त्रोंमें श्रावक श्राविकाके गुणका वरणव चला है, वहां साफ लिखा है कि—वह श्रावकों आरंभ और परिग्रह परसे ममत्व कमी करने वाले, श्रुत धर्म चारित्रधर्म को यथा शक्ति ग्रहण करने वाले, और दूसरे को उपदेश देकर, व आदेश कर कर धर्म ग्रहण कराने वाले, व्रत अतिचार रहित पालने वाले, सु-शील, सु-व्रती, जीव अजीव के स्वरूप को यथा तथ्य पहचानेन वाले, पुण्य पाप आश्रव संवर निर्जरा, किया, अधिकरण (कर्म बन्ध के कारण) बंध, मोक्ष, इनको भिन्न २ भेद कर जानने वाले, वगैरा बहुतही वरणन चला है. और भी देखिये! श्री उत्तराध्ययन सूत्र के २१ मे अध्याय में कहा है—" निग्गंथे पावयणे, सावय से वी कोवीये " अर्थात् चंपा नगरी के पालितश्रावक निग्रन्थ के वचन—शास्त्र के कोविद—जाण काहा गया

ही भगवतीजी में तुंगिया नगरीके श्रावको का वगैरा बहुत स्थान अधिकार है, और तैसेइ उत्तराध्यायनजी के २२में अध्यायमें राजमती जी को "सील वन्ता बहुसुया" अर्थात् शील वंती बहोत शास्त्रकी जान बताइ है, इन के पिता जैन धर्म से विन वाकेफ होकर भी राजमतीजी ने बच पण से जैन शास्त्रका कित्ना ज्ञानाभ्यास किया था, सो देखिये? तैसे ही जय वंती श्राविकाने भगवन्त श्री महावीर स्वामी से प्रश्नोतर किये हैं; वगैरा आगे के मनुष्यों में व्यवहारिक और धार्मिक ज्ञानका इतना जोर था, तब ही वो कम से कम एक घर में ६० स्त्री पुरुष एकत्र रह शक्ते थे. और क्रोडों सोनैये की इष्टे (संपती) वाले थे, तथा शरीर भेपनी, निरोगयता, सुन्दर सु-रूपता वगैरा उत्तम २ ऋद्धि के धरने वाले थे. यह सब जहो जलाली भोग-वने का मुख्य हेतु ज्ञान ही था!

"अर्वाचीन काल की स्थिती"

और अभी जो उस ही देशकी अत्यन्त हीन स्थिती हो रही है, महाराजाओं दासत्व भोगव रहे हैं, बहुत से मनुष्यों अन्न २ पा-णी २ करते मर रहे हैं, वन वासी यों की तरह मकान की व अपने माल्की माल्की रहित निराधार बन बैठे हैं, वगैरा जो दुर्दशा हो रही है, सो सब अज्ञानता काही कारण है. बताइये! अबी इस आर्य भूमी में ७२ और ६४ कलाके जान कौन स्त्री पुरुष हैं सो, और नव तत्व की पोपटी विद्या छोड परमार्थिक स्वरूप से जानने वाले कि-तनेक श्रावक हैं सो भी बताइ ये! बंधुओं! अबी तो दो चार चान्दी व तराजू पकडने आया, कि बस उनके मावित्र वहीं विचार करने को लडका होशार होगया, जल्दी शादी करो! और दश वरसके परणादे

गले में बारह चौदह बर्षा का डींगरा बांध, बडे पोमाये २ फिरने लगा ते हैं, ऐसी पुत्रों के साथ कट्टी शत्रुता साध ते ही मित्रतासमजते हैं, देखिये अज्ञा दिशा !! वैशही फजूल खरच, कुसम्प, क्लेश, निर्लज्जता वगैरे खोटे रिवाजों का प्रसार होने से दिनोदिन इस देश की सुख संपती का नाश होता द्रष्टी आ रहा हैं.

" विद्याका प्रत्यक्ष प्रभाव "

और जो स्वप्नमें भी ज्ञान व विद्या के नाम में नहीं समजते थे, वनवाश ही उनके शेहर, पत्ते जिनके वस्त्र, और लाल पीले कं करों को पाणी में घिसकर शरीरको लगानाहि वो सिणगार समजते थे, ऐसे ने जो विद्यार्की झन्डा उठया, और सत्युग के कुछ पासंग में नहीं आवे इतनासाही अभ्यास कर, पारिश्रम उठा हरेक विद्याको अजमाइ; तो वो आज सर्व मान्य महा राजा बन बैठे हैं! उन के तेज प्रताप से बडे २ वीर क्षत्रीयों के पूत्र चुप हो गये हैं! उनकी एक छत्र आज्ञा प्रवर्त रही है! और उसी देशके लोको, अनेक कला कौशल्यता कर अज्ञ जनों को चकित कर रहे हैं? हंसा २कर द्रव्य ग्रहण कर साक्षात् देवलोक व सत्य यूग जैसी सुख संपती ऋध्दि निरोगता सूरुपता भोगवते अनेक द्रष्टी आते हैं!! तो भी, आँखो होतभी अंधे और हीये के फूटे, आर्यों दिनो दिन अपनी दिशा विगाड ने में ही सुधारा समजते हैं? हां, अपशोश २ ??

अहो आर्य बन्धवों ? चेतो चेतो, आँखो खोलो, और अपने हितके गवे पी बन विद्या व ज्ञान वृध्दि का पुनः पर्यत्न करो !! भर्तृ हरीने कहा है किः—

विद्या नाम नरस्य रूप माधिकं, प्रच्छन्नं गुप्तं धनं ।
विद्या भोगकरी यशः सुख करी, विद्या गुरूणां गुरू ॥

विद्या वन्धू जनो विदेश गमने, विद्या परं दैवतम् ।
विद्या राजसु पूजिता हि धनं, विद्या विहीनः पशुः ॥

अर्थात्-जिस मनुष्यने विद्याभ्यास नहीं किया, ऐसा निर्बुद्धि और निर्विद्या मनुष्य हैं सो पशु-जानवर जैसे हैं. क्योंकि हस्त पद कर्ण चक्षु आदि अव्ययव के धारक को जो कभी मनुष्य कहें तो. फिर वंदर को भी महा मनुष्य कहना चाहिये ! क्योंकि मनुष्य से एक अंग (पूंछ) उस के ज्यादा है! परन्तु उसको मनुष्य नहीं कहने का कारण येही है कि-उस मे विद्या व ज्ञान नहीं है,. इसलिये-मनुष्यका रूप ही विद्या है. इस वक्त के मनुष्यों को धन की अधिक लालसा होती है, परन्तु सच्चा धनतो विद्या ही है, क्योंकि दूसरे धनका तो चोर हरण करते हैं, राजा हांसल लेताहै, अग्निमें जल जाता है, पाणी, में डूब जाता है, व गल जाता है, इत्यादि केइ उपद्रव्य लगते हैं, और भार भूत भी होता है. और वि .

श्लोक-नच चोर हर्यां नच राजग्राही। नच वन्धू भाजं नच भार यादी ।
एते धनं सर्व धनं प्रधानं। विद्या धनं सत्पुरुपोत नान ॥ १ ॥

अर्थात्—विद्या धन का-न तो चोर हरण (चोरी) कर शके हैं. न राजा हाँसल लेता है, न भाइ भाग लेता है, और न विदेश में फिरते भार भूत होता है. इसलिये सब धन में विद्याधनही उत्तम है. और जो सत्पुरुष होते हैं. उनहीं के पास मिलता है. और धन तो दूसेर को देने से कमी होता है, और विद्या धन देने से दूना होता है. इसलिये सच्चा धन विद्याही है. अबी के लोक विषय भोग में मजाह मानते हैं. परन्तु सच्चा भोग तो विद्या काही है. क्योंकि विषय भोग क्षिणिक सुख रूप परगन महा दुःख दाता होते हैं. और विद्या भोग अनन्त अक्षयानन्द का दाता है. तथ्या विद्या भ्यासी क्योंके पुनेरु ज्ञान होकर

खाद्य अखाद्य व पथ्य अपथ्यका ज्ञान होनेसे अपथ्यसे बचे रहते हैं. जिससे शरीरका रक्षण कर इच्छित भोग भोग वशक्ते हैं. मनुष्योंको यशः कीर्तिकी अभिलाषा भी अधिक रहती है, सो सची कीर्ती (नामून) तो विद्या सेही होती है. क्योंकि विद्वर अकार्योंसे बचते हैं. सवका भला करते हैं, इसलिये उन्हें सब चहाते हैं. मनुष्य जो सुख चहाते हैं वो सुख भी विद्या में ही हैं, क्योंकि सब सुखका साधन विद्या सेही होता है. गुरुओं का गुरु विद्याही है. जो जगत् में गुरुपद पाते हैं वो विद्या के बलसेही पाते हैं. प्रदेश में विद्या बन्धू- भाइ के जैसी सहायताकी करने वाली होती है, खान पान सत्कार सन्मान सब सुख दिलाती है. परम देवता भी विद्याही है, क्योंकि परम पद को प्राप्त हुवे परमात्मा की पहचान भी विद्या से ही होती है. और परमात्मा के पद को प्राप्त ज्ञान वन्त ही होते हैं. और परमदेव आत्मा है. उसका स्वरुपही ज्ञान मय है. इसलिये विद्याही परमदेव है. विद्यावन्तो की बडे २ नरेन्द्रो पूजा करते हैं, तथा राजा तो स्वदेश में पूजाता है ! और 'विद्वान सर्वत्र पूज्यते' अर्थात्—विद्वान सर्व देशमें पूजाते हैं, इत्यादि विद्या के गुणों का अन्तर द्रष्टी से विचार करते सर्व उत्तमोत्तम सुख की देने वाली एक विद्याही द्रष्टी आती है.

यह तो द्रविक ज्ञान—विद्या आश्रिहा गुणो की परसंस्या कही. द्रविक ज्ञान में ऐसे २ गुन हैं, तो धर्म ज्ञान व आत्मिक ज्ञान के गुनो का तो कहना ही क्या ?

निरालो जगत्सर्व । मज्ञान तिमिरा हतम् ॥
नाव दास्ते उदे त्युचैर्त या व ज्ज्ञान भास्करः ॥

अर्थात्—जब तक ज्ञान रुपी सूर्य का उदय नहीं होता है, तभी तक यह समस्त जगत् अज्ञान रुपी अन्धकारसे आच्छादित है,

अर्थात्-ज्ञान रूपी सुर्य का उदय होते ही अज्ञान अन्धकार नष्ट हो जाता है, आत्मा के निज गुण प्रकाश ने लगते है.

"ज्ञानार्थी के—विचार"

१ इन्द्रियों रूप मृग (हिरण) जो संसार रुप रण (जंगल) में अनेक तरह के पदार्थ श्रवण कर, अवलोकन कर, सूंघकर, स्वाद कर, भोगवकर, उन में लुब्धता धारण करते हुवे अहो निश परि भ्रमण कर ते हैं, उन मृगों को कब्ज करने युक्त उपाय ज्ञानही हैं. अर्थात्-ज्ञान से इन्द्रियों सहज तावे होजाती है.

२ ज्ञान-कर्म शत्रूकों नाश करने तिक्षण खडग है. सर्व तत्वो को प्रसिद्ध करने अद्वितीय सूर्य है. प्रमाद रुप राक्षसका क्षय करने वज्र है. और क्लेश रुपी ज्वाला वुजाने पुष्करावर्त मघवत् है.

३ वडे २ योगीश्वर ज्ञानकी प्राप्ती के लिये, वडे २ दुष्कर तप जप नियम अभिग्रह धारण करते हैं, और वोही ज्ञान प्राप्त करते हैं.

४ जिन २ उपायसे अज्ञानी कर्मो के वंधन से वंध जाता है, उन २ उपायको ज्ञानी विवेक वैराग्य युक्त कर कर्मों से छुट जाते है.

५ अज्ञानी क्रोडो जन्म में क्रोडो पुर्व लग किये हूवे तप से कर्म का नाश कर शक्ता है, तव ज्ञानी उतने कर्म एक शाश्वोश्वास मात्र में खपा देते हैं. ज्ञान ऐसा प्राक्रमी है.

६ ज्ञानीजन के आचर्ण कर्म वंधनसे मुक्त होनेके कारण भूत होते हैं. कारण की लुखवृति होने से कर्म चोंटते नहीं हैं.

७ ज्ञानीका और अज्ञानी का रहनेका स्थान यह संसार रुप एक ही है. परन्तु भेद विज्ञान के कारण से आचरण और आचरण के फलों में पृथवी आकाश जितना अंतर होता है, यह ज्ञानका म-

हात्म तत्व वेता सिवाय अगम्य हैं-

८ लोकीक और लोकोतर सुधारा एक ज्ञान से ही होता है.

ऐसे २ अंनत गुणोंका सागर ज्ञानको जाण, गुणज्ञ सदा अपूर्व अपूर्व कि जो पहिले पढा नहीं हो ऐसा ज्ञान पडतेही रहते हैं, ज्ञान अपरम्पार है, कितना भी पढे तो कभी अंत तो आनेका ही नहीं; इस लिये ज्ञान ज्ञान प्रेमी को ज्ञान ग्रहण करने में तृप्ती आती ही नहीं है. ऐसी अतृत्ती से अपुर्व ज्ञान हग्रण करते नवीन २ अनेक चमत्कारिक बातों का हृदय में चमत्कार उत्पन्न होने से उसमें उनकी बुद्धि लीन होने से, एकाग्रता लगती है उसवक्त आत्मा में उत्कृष्ट रसायण आने से तीर्थंकर गौत्रकी उपार्जना होती है.

"ज्ञान ही मोक्षका मार्ग हैं"

श्री दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्याय में कहा है कि:— ज्ञान उस ही को कहना जिस से जीव आदि पदार्थ (९ तत्व) की समज होवे. ❋ जिसे जीवादि पदार्थ की समज होगा, वो जीवादि के रहनेका स्थान चार गति चौवीस दंडक—चौरास लक्ष जीवा योनी वगैरा को जानेगा. जो गति दंडक आदिको जानेगा वो उन ऊंच नीच गतियों में उपजने का कारण जो पुण्य और पाप है, उनके उपार्जन करने की रिती को जानेगा. जो पुण्य पाप को जानेगा वो पुण्य

❋ गाथा—सुत्र सुणी पथण व यागो । णधम्मो णय सातरस पाणो ॥
तउ पथण किहक जय । वाइस इव धुणी थाणी पलाये जो ॥ १ ॥

अर्थात्—सूत्र सुणते भी हैं और पढते भी है और पढाते भी हैं परन्तु उसका सार धर्म, वैराग्य, शांती रस, धारण नहीं करते हैं वो कउवेकी तरह फक्त ध्वनी करने वाले हैं.

सुद्रष्ट तरंगणी.

पापसे होते हुवे वन्धन की जो संसारका कारण है. और उस बंधन से छूटना सो मोक्ष है. इन दोनों को जानेगा. जो वन्ध मोक्ष को जानेगा, वो वन्ध के कारण जो देवे मनुष्य तिर्यंच सम्वन्धी भोग हैं. उनसे नीवृतेगा. जो भोगसे निवृतेगा-त्यागेगा, वो वाह्य (प्रगट धन धान आदि) और अभ्यान्तर (गुप्त विषय कषाय आदि) परिग्रह से निवृतेगा. जो भोग परिग्रहसे निवृतेगा, वो द्रव्ये तो शिर (मस्तक) दाढी मूछके केशोका लोच कर मुंढ होवेगा; और भावसे क्रोध आदि कषायके अंकूर को अंतःकरण से उखाड कर मुंड होवेगा. जो द्रव्य से भाव से मुढ होवेगा, वो अणगार-घरके त्यागी चारित्र-संवर रूप उत्कृष्ट धर्म की स्फर्श्यना करेगा. जो उत्कृष्ट धर्म को स्फर्शेगा, उन की आत्मा पर चडा हुवा अनादी का मिथ्यात्व मोह रूप मेल दूर होवेगा. जिससे जिनकी आत्मा कर्म रहित निर्मल होवेगा. जिनकी आत्मा कर्म रहित निर्मल हुइ है, उनको महा दिव्य जगत् प्रकाशी-सर्व लोकालोक व्यापक-आपार अंनत-अक्षय-केवल ज्ञान केवल दर्शनकी प्राप्ती होवेगा. जिनको केवल ज्ञान केवल दर्शनकी प्राप्ती हुइ है, वो राग द्वेष रूप महा जवर कट्टे शत्रू के जीतने वाले जिनेश्वर कहलावेंगे. और वो जिनेश्वर लोकालोक के सर्व पदार्थों को हस्तांवल वत् फट प्रगट प्रत्यक्ष देखेंगे. ऐसे जिनेश्वर केवल ज्ञानी भगवान ग्रामानुग्राम अप्रतिवन्ध विहार कर जिस श्रुत ज्ञानके प्रसादसे इतने ऊंचेआये—केवल ज्ञान पाये, इन्द्र नरेंद्रके पुज्य हुवे हैं, उसही श्रुत ज्ञान का केवल ज्ञान द्वारा जाने हुवे पदार्थों को अमोघ धारा वाणी की वागरणाकर प्रकाश व प्रसार करते हैं. और आयुष्य के अन्ते सेलेसी करण पडिवर्जे कर अर्थात् मन वचन काया के जोगो को पर्वत (पहाड) की माफिक स्थिरी भूत कर

बाकी रहे सर्व कर्मों का नाश कर, शरीर का त्याग कर शुद्ध सत्य चितानन्द अवस्था को प्राप्त हो कर जो सर्व लोकके उपर अग्र भाग में परमात्मा पद—मोक्ष स्थान हैं उसको प्राप्त करते हैं,-वहां सादी अनंत, अनंत—अक्षय-अव्याबाध शाश्वत सुखकी लेहर में विराजमान होते हैं. सो परमात्मा कहलाते हैं.

अहो भव्यों! श्रुत ज्ञान का सदा अभ्यास करने से वरोक्त कहे मुजब यों अनुक्रमें उच्चसे उंच दिशा आत्मा की होती है, और आखिर परम परमात्म पद तक पहोंचती है, यह ध्यानमें लीजीये!

ऐसा श्रुत ज्ञान को महा प्रभाविक जान सदा अपूर्व ज्ञान का अभ्यास करतेही रहना चाहिये. यह ज्ञानका अभ्यास जिनो के हृदय में सूत्र की भक्ति होगी सो कर शक्ते हैं, इसलिये सूत्र भक्ती का वरणन आगे करने की इच्छा से इस प्रकरण की समाप्ती की जाती है.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी मुनिराज श्री अमोलख ऋषिजी रचित परमात्ममार्ग दर्शक ग्रन्थका 'अपूर्व-ज्ञान नामक उन्नीसावा' प्रकरण समाप्तम्

श्री परमात्मायनम :

प्रकरण--बीसावा.

" सूत्र-भक्ति "

श्लोक-तीर्थ प्रवर्तन फलं यत्प्रोक्तं कर्मतीर्थंका नाम ॥
तस्योदया त्कृतार्थो ऽप्यर्हं स्तीर्थप्रवर्त यति ॥

अर्थात्-संसार से उद्धार करने वाले तीर्थ प्रवर्तन रुप फल दायक जो तीर्थंकर नाम कर्म शास्त्र में कहा गया है. उसीके उदय से, यद्यपी तीर्थंकर- अर्हंत भगवन्त कर्तार्थ हैं. तथापि तीर्थकी प्रवृती अर्थात् संसार सागर से पार उतारने वाले धर्म का उपदेश करते हैं, वो धर्म उपदेश होता है. वाणीका प्रकाश होता है सो अर्थ रुप होता है, अर्थात् ऐसी सरलता के साथ वचनो चार होते हैं. कि किसी भी देशका किसीभी भाषाका जाण किसीभी अवस्थामे (बाल युवा वृद्ध, पशु, पक्षी, मनुष्य देव) हो सब श्रोता गणों को ऐसाही भाष होता है कि-यह भगवान् हमारीही भाषा मै उपदेश फरमाते हैं ! इसलिये भगवानकी वाणी अर्थ रुप है.

गाथा-अर्थं भासती अरिहा, सुतं गुथंती गणहरा निउणं ॥
सासण स्सहि अठाहि । तो सुतं पव तहइ ॥

अर्थात्–अरिहंत भगवन्त तो अर्थ रुप वाणीका प्रकाश करते हैं. और उसही वाणी के अनुसार गणधर महाराज गद्य पद्य मय सूत्र गूंथते हैं. उन सूत्र के आधार से जहां तक श्रीजिनेश्वर भगवान् का सासन चलता है वहां तक चारही तीर्थ किया करते हैं, धर्म दीपाते हैं.

ऐसे अर्हत कथित और गणधर गूंथित व दशपूर्व ज्ञान धारी महात्मा होवें उनके रचित को सूत्रही कहे जाते हैं.

गाथा–महतोऽति महाविषयस्य । दुर्गम ग्रन्थ भाष्य पास्य ॥

कः शक्तः प्रत्यसं, जिन वचन महादेधः कर्तुम् ॥

अर्थात्–महान् और महा विषयसे पूर्ण, और अपार जिन भगवान के वचन रुपी महा समुद्र का प्रत्यास (संग्रह) है सोही सूत्र कहे जाते हैं. कि जिनो का एक २ शब्द का अर्थ अपार होता है. अबी इस पंचम कालमें तीर्थंकर भगवान तो हेही नहीं. परन्तु उनही के फरमाये जो सूत्र हैं उनही के प्रशाद से भव्य जग तारक धर्म को प्राप्त कर शक्ते हैं, और आगे चलाते हैं. जिस से अनेक जीवों संसार के पार पहोंचने समर्थ बनते हैं. ऐसे पर मोपकारीसूत्रों की भक्ति परम आवश्यकिय कृतव्य है.

एक मपि तु जिन वचानाद्य स्मानिर्वाहकं पदं भवति ॥

श्रुयन्ते चानन्ताः सामायिक मात्र पद सिद्धाः

अर्थात्–श्रीजिनेश्वर भगवान के उपदेशका एक भी पद अभ्यास करने से उत्तरोत्तर ज्ञान प्राप्ती द्वारा संसार सागर पार उतार देता है, क्योंकि केवल सामायिक मात्र पद से अनंत सिद्ध होगये,

ऐसा जो सिद्ध दाता सूत्र ज्ञान है, उसकी भक्ति करना योग्य ही है.

" सूल भक्ति की विधी और सद्‌बोध "

पुस्तके षु विचित्रेषु श्री जिनागम लेखनं ।
तत्पूजा वस्तु भिः पुण्यैर्द्र व्याराधन मुच्यते ॥

सो भक्ति इस तरहसे करना चाहिये कि जो जिनागम-सुत्र पुराणे होकर जीर्ण भावको प्राप्त हुवे हैं, जिनकी अशातना नहीं हो [illegible] शा नहीं निपजे. इस तरह लेखन आदि कराकर व करकर बहुत काल टिके ऐसे वंदोवस्त के साथ रखे. जितना ज्यादा प्रसार फैलाव व[illegible] उतना करने में कचास नहीं रखे इसवक्त मूद्रायणयन्त्र (छापखाने की सुभिता होने से सर्व धर्मावलम्बी. अपना २ धर्मका ज्ञान प्रसि[illegible] कर ने कटिबध-सावध हूवे हैं, एसी वक्त में जैनको मौन रहना वि[illegible] कुल उचित नहीं हैं, क्योंकि सब धर्मका लोक दिगदर्न करने लग[illegible] हैं, और जैनकातत्व उनके द्रष्टिगत न हुवा तो जैनीयों ने धर्म विष[illegible] शंका उद्भवनेका, तथा जैनी जैनसे चुत होनेका बडा धोका है. ए[illegible] जान, जैन के भी अलग २ फिरके वाले अपना २ मत जाहिरमें रख[illegible] ने लगे हैं, जो यह महाशयों फक्त अन्यकी कटनी की तरफसे द्रष्टि फिरालें और अपना सत्य दर्शाने का प्रयास में न चूकें तो जरुर इष्टीतार्थ साध ने सामर्थ्य वने. क्योंकि आपस की कटनी से अ[illegible] घर की कितनी जानने जोग बात अन्य के हाथ लगने से व[illegible] भेद भाव नहीं जानने वाले सर्व मतकी असत्य कल्पना करअन्य [illegible] तावलम्बी वनजाते हैं. यह करतुत मेरे द्रष्टी गत होनेसेही यहां नम्र सुचना करी है, देखिये आप ! जो जैन शास्त्र निगपक्षद्रष्टी मुद्रित हुवे हैं, उन्हे पढकर पश्चिमात्य वासी बडे २ विद्वानों [illegible]

गोल सम्बंधी वातोंमे लोकों शंका सील होने लगे हैं. इत्यादि प्रसंग आनेका मुख्य हेतु सूत्र भक्ति का अभावही है.

न मालुम इस वक्त वहुत लोकोंकी क्या समज होगइ है. कि ज्ञान को छिपाने में, दूसरों को न वताने में ही फायदा समजने लगे है, किसको कभी एक दोहरा भी नवा पागयातो वो येही विचरेंगे की रखे मेरा कोइ लेन जाय. वडी अपशोस की वात है कि वो उसे इतना गुप्त रख, न मालुम कौनसा फायदा उठाना चहाते है यह जो विचार कभी केवली भगवान. या शास्त्रके उद्धार कर्ता देवर्द्धी गणी क्षमा समण करते तो यह धर्म कभीका ही लुप्त होजाता !! अहो भाइयों ! अव कितना ज्ञान रहा है, जो अपन छिपावे, जव पूर्वो का ज्ञान था, और दशवा विद्या प्रवाद पूर्व अनेक चमत्कारिक विद्याओं कर के भरा हुवा था, वोभी पढने वाले को खुशी के साथ पढाते थे, तो और ज्ञान की तो कहना ही क्या ? गौतम श्वामी जैसे जैन के प्रतिपक्षी को भी श्री महावीर प्रभु ने जैनी वनाकर एक मुहुर्त मात्र में चउदह पूर्व की विद्या देदी. कहीये है, कोइ ऐसा ज्ञान दानका दाता ! अवतो फक्त अपने शिष्य कोइ एक गाथाका अर्थ वताते भी माया सेवन करते हैं, कि रखे सव वता देवूंगा तो फिर मेरे को कौन पूछेगा. ऐसे २ कदाग्रियों के हाथ ज्ञान जाने से, इस वक्त नवी फिलसुपी के निकले हुवे तर्क वादी यों. जैन के नाम धारी पंडितोको खगोल भुगोलादि के सहज प्रश्नो से दिगमुढ वना पंडिताइ हरण करलेते है. ऐसी धर्म की पडति दिशा का अवलोकन करते ही ज्ञान को छिपा रखते हैं, प्रगट नहीं काते हैं, फिर वो उनका ज्ञान भन्डारमेंपडा २ सड जायगा, तव क्या काम आयगा !! इस वातको जरा दीर्घ दृष्टीसे विचारीयो और जिस धर्म केनाम से द पसाद से पुण्य पद भोगवते मजामान

ते हो उसही धर्म की रक्षा कीजीये, अधोगति में जाने को बचा ली-जीये, और डूबते हुवे ज्ञानका पुनरोधार कर जर ज्योती मल काइये कि जिससे जैन पंडितो धर्म के गुरुरों ताकतवर हो कर तर्क बेताओं का वितर्क द्वारा समाधान कर सत्य सनातन धर्म को उंचालावें.

" सूत्र भक्ति के ८ दोष "

१ ' काल ' सूत्र दो प्रकार के होते हैं (१) ' कालिक ' उसे कहते हैं, कि जो दिन के रात्रीके पहिले और चौथे पहरमें पढे जावें बाकी की वक्त में नहीं. और दो उत्कालीक सुत्र जो (१) दिन उदय होते, (२) मध्यान में. (३) सन्ध्यासमय. सुर्य अस्त होते (४) आधेरात्री में इन चार ही वक्त में सदा एक २ महूर्त वर्जकर. और (५) आश्विन सुदी पूर्णिमा. (६) कार्तिक वदि प्रतिपदा. (७) कार्तिक सुक्ल पूर्णिमां. (८) मार्गिशीर्ष कृष्ण प्रतिपदा. (९) चेत सुदी पुर्णिमां. (१०) वैशाखवदि पडिवा. (११) आषाढ सुदी पु-र्णिमा. (१२) भाद्रव वदी प्रतिपदा (१३) भाद्रव सुदी पूनम. (१४) आश्विन वदी प्रतिपदा. इन ८ दिनो में संपूर्ण दिन रात वर्जकर. यों १४ काल वर्ज कर सूत्र पडे.

२ ' विणए ' जिस से अपन को ज्ञान की प्राप्ती होवे, ऐसे सूत्र पुस्तक वगैरा को पग नहीं लगावे. शिरके नीचे दाभ कर नहीं सोवे. अपवित्र स्थान नहीं रखे. वगैरा अशातना टाले. और सुत्र श्रवण करती वक्त जो ! तेहत !! आदि शद्धो से व धाता हुवा ग्रहण करे.

३ ' बहु मान ' सूत्रों के वचनो को बहु मान पुर्वक ग्रहण करे. एकान्त आत्मा के कल्याण करता जाणे. और (१) ' उकावय '

तारा टुटे तो एक महूर्त. (२) 'दिशा दह' फजर शाम को या दू-सरी वक्त भी दिशा लाल रंग की रहे वहां तक. (३) 'गज्जियो' गर्जना (गाजे) तो एक महूर्त. (४) 'विज्जए' विजली चमके तो एक महूर्त. (५) 'निग्घाए' कडके तो आठ पहर. (६) 'जुव') सुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, त्रतिया, चन्द्रमां रहे वहां तक. (७) 'जक्खलें' आकाश में मनुष्य पशु पिशा चादि के चिन्ह दिखे वहां तक. (८) 'धुम्मीए' काली धूंइ (धूंवर) पडे वहां तक (९) 'महिये' श्वेत (धोली) धूंवर पडे वहां तक. (१०) 'रए घाए' आकाश में धूलके गोटे चडे हुवे द्रष्टी आवे वहां तक. (११) 'मंस' पंचेन्द्री का मांस द्रष्टी आवे वहां तक. (१२) 'सोणी' रक्त द्रष्टी आवे वहां तक. (१३) 'अट्ठी' अस्थि (हड्डी) द्रष्टी आवे वहां तक. (१४) 'उच्चार' विष्टा द्रष्टी आवे वहां तक. (१५) 'सुसाण' मशान के चारों तरफ १००—१०० हाथ. (१६) 'राय मरण' राजा के मृत्यू की हडताल रहे वहां तक. (१७) 'रायवूगह' राजा ओं का युद्ध होवे वहां तक. (१८) 'चंदवरागे' चन्द्र ग्रहण खग्रास होवे तो वारह पहर, कम होवे तो कम. (१९) 'सुरोव रागे) सूर्य ग्रहण की भी चन्द्रवत. (२०) 'उवसंता' पचेन्द्रि का कलेवर (जीव रहित शरीर) पडाहो वहां से चारों तरफ १००—१०० हाथ वरजे. ऐसी तरह असज्झाइ वर्ज कर सूत्र पडे. और सूत्र वाचने वाले का वहुमान करे ३३ अशातना टाले.

४ 'उवहाणें' सामान्य मंत्रभी जो विधी युक्त पढे तोही फली भूत होता है, तो सूत्र ज्ञान विधी विना पढा कैसे फली भूत होगा, ऐसा जाण सूत्र प्रारंभ करती वक्त, और पूर्ण करती वक्त गुरु महाराजके फरमाये वैसा उपवास आम्बिल आदि तप करे. और यथा विधी विनय युक्त पठन

मनन करे. उघाडे मुख से बांचे नहीं.

५ 'निन्हवणे' सुत्रके वचन लोपे गोपे छिपावे नहीं. कितनेक मत पक्ष के मारे, अपने मतसे अन मिलता सूत्र बचनको उत्थाप अर्थ फिर कर मन माने अर्थकी व पाटकी स्थापना करदेते हैं, सो बडा जूल्म करते हैं, एक सामान्य राजा के फरमान कों भी जो भी जो कोइ फिरा देता है, वो बडी जवर शिक्षा भुक्त ने का अधिकार होता है. तो जो त्रिलोकी नाथ श्री तीर्थंकर भगवान के फरमान को फिरावेगा उस के पापकी तो कहनाही क्या ? तीर्थंकरो के वचनको जानकर उत्थापने वाले, व फिराकर अन्य रूप में परगमाने वाले, बौध बीज सम्यक्त्वका नाश कर अनंत संसार में परि भ्रमण करते हैं, ऐसा सुत्रका फरमान जान भव्यात्म यथा तथ्य जैसा उसका अर्थ भासे या गुरू गम से धारा होवे वैसा श्रद्धते परूपते है.

६ 'वंज्जणे' शास्त्रके अभ्यासीको अवल व्याकरण का जाण ज़रुरही हुवाही चाहिये. क्योंकि व्याकरण के जाण विना शव्दोका शुद्ध उचार होना मूशकिल है, और अशूद्ध बचन बोल ने से शास्त्र की अशातना होती हैं, सो कर्म बंधका कारण है, इसलिये आचारांग सूत्र के फरमाये मुजब १६ बचन के जान जरूर ही होना चाहिये. और पठन करती वक्त व उचारण करती वक्त उपयोग रखकर वने वहां तक शुद्ध उचार करना चाहिये कदाक ज्ञानावर्णिय के उदय कर जो पूर्ण अक्षरों का ज्ञान न होवे तो, जैसा गुरू महाराज के पास से धारण किया हो वैसा उचारण करना चाहिये.

७ 'अत्थ' सूत्रार्थ को विप्रित नहीं करे अर्थात् शास्त्रके वचन हैं, सो अनंत ज्ञानी के फरमाये हुवे बहुतही गंभीर है अल्पज्ञ के पूर्ण ग्राह्यज में आने बहुत ही मुशकिल हैं, इस लिये गुरू गमकी वहुत

जरूर है, और जैसा गुरू महाराजके पाससे धारण किया होवे, वैसा ही आगे सुणावे सिखावे, परन्तु अपनी पंडिताइ का डोल जमाने गप्पसप्प चलावे नहीं. जो वचन समज में न आवे तो साफ कह देवे कि मैं इतना ही जानता हुं. तुम विज्ञानियों के पास खुलासा करलेना. और अपने मन मे भी संकल्प विकल्प न करे, क्योंकि चउदह पूर्व के पाठी मुनिवरों ही संका शील हो जातेथे, तब अहारिक समुदघात कर केवल ज्ञानियों के पास से प्रश्नोतर मंगाते थे. तो अपने पास कितनाक ज्ञान है, ऐसा विचारसे प्रणामों में निश्चलता रखे.

८ 'तदुभय' सुत्र और अर्थ दोनोंही माननिय हैं, अर्थात जो अर्थ सुत्रके अनुसार सुत्रसे मिलता हुवा हो. और दश पुर्व ज्ञान के धरण हार ने किया हो, सो सब मान्य है. और दश पुर्व से कमी अभ्यासी यों ने जो सूत्र पर विशेषार्थ किया हो वो सर्व मान्य नहीं है, क्योंकि भगवंत ने फरमाया है, कि दश पुर्व से कमी अभ्यासि यों का समसूत्र भी होता है; और मिथ्या सूत्र भी होता है, जो सूत्र (मुल पाठ) और उसका अर्थ जैसा होवे वैसाही श्रवे परूपे उस में कमी ज्यादा विप्रित विलकुल ही कदापि नहीं करे.

यह ज्ञान के ८ दोष कहे, उसे वरज कर. निर्दोष रितीसे सूत्र का अभ्यास करते हैं. सो सूत्र भक्ति कही जाती है.

सूत्र—सेनुणं भंते तमेव सच्चं णीसंकं जंजिणेहिं पवे दियं. हंता गोयमा तमेव सच्चं णीसंकं जंजिणेहिं पवे दियं. से नूनं भंते एवं मण धारे माणे, एवं पकरे, माणे, चिठमाणे, एवं संवरे माणे, आणा ए आराहए भवंति. हंता गोयमा, धारे माण जाव भवंति. सेनूणं भंते अत्थितं अत्थिते परिणमेइ नत्थितं नात्थित्त परिमणइ, हंता गोयमा. जाव परिणमेइ.

श्रीविवहा पन्नती (भगवती) सूत्र उसु-२१

प्रकरण-एकीसावा.

" प्रवचन-प्रभावना "

प्रवचन-अपर-वचन, अर्थात् जिनराज-श्री तीर्थंकर भगवान के तुल्य ज्ञान और अतिशय का धारक दूसरा कोइ भी नहीं होता है, कि जो ऐसा वचन उचार सके, इस लिये जिनराज के वचनो कोहि प्रवचन कहे जाते हैं. और उन प्रवचनों के आधार से जो धर्म मार्ग प्रवृते-चले उसे जैन धर्म व जैन मार्ग कहा जाता है, ऐसे जैन मार्ग की वृद्धि व उन्नती करनी उसे प्रभावना कही जाती हैं, जो तीर्थंकर परमात्माके मार्गानुसारी होवें, उने उस मार्ग की प्रभावना करनी येही उस पदको प्राप्त करने का अवल दरजेका सब से श्रेष्ट उपाय है, सो करना चाहिये.

८ " प्रभावना. "

यह प्रवचन की प्रभावना ८ प्रकार से होती हैः-१ प्रवचनी. २ धर्म कथा. ३ निरोपवाद. ४ त्रि-कालज्ञ. ५ तप. ६ वृत. ७ विद्या, और ८ कवित्व. इनका जरा विस्तार से वरणन करते हैं.

१ " प्रवचन--प्रभावना "

परमात्मा ने मोक्ष प्राप्त करने के चार (ज्ञान--दर्शन--चारित्र और तप) उपाय बताये हैं, इस में प्रथम पद ज्ञानको दिया है. इस लिये प्रवचन प्रभावना-उन्नती करनेका पहिला उपाव ज्ञानही है. इस लिये प्रवचन उन्नती इच्छक अवल गुरु आदि गीतार्थों के पास यथा विधी जैन धर्म के जिस कालमें जितने शास्त्र होवे उन सवका जान पना अपनी बुद्धि में स्थिर रहे उतने बिस्तारसे करना चाहिये. और जो अपने अनुयायी होवे संसारीयों के तो स्त्री, पुत्र, आदि कुटम्ब; मित्र, या, मुनीम, गुमास्ते, दास, दासी, आदि. और साधु के शिष्य शिष्यणी आदि. उनको शाक्ति भक्ति से जैन शास्त्र का अभ्यास कराना चाहिये. तैसे ही शास्त्र थोकडे स्तवन सज्झाय वगैरा जो गुणानुराग संवेग वैराग रस कर पुर्ण भरे होवें उसका भी अभ्यास करे करावे. इस तरह ज्ञान आत्मामे रमण करने से स्वभाविकही अंतःकरणपवित्र हो रूची जगे जिससे सम्यक्त्व आदि गुण आत्मा में प्रगमें और पक्के जैन के आस्तिक्य बन जैन उन्नती लेने और वोभी करने लगे.

२ " धर्म कथा--प्रभावना "

प्रवचन की प्रभावना करने का दूसरा उपाव धर्म कथा--व्याख्यान करना सो है. उपर कहे प्रमाणे जो सब शास्त्र के ज्ञान हुवे है. और धर्म के आस्तिक्य बने हैं, उनको उचित है; कि उस ज्ञान का दान अन्यको दे आस्तिक्य बनावे, वो ज्ञान देनेका मुख्य उपाव

दय मय परम धर्मका ही आराधक हो, दुराग्राही कदापि न हो, इत्यादि गुण संयुक्त जो होता है, उसे ही ज्ञान दान देना योग्य है.

धर्म कथा करने की विधी ठाणांगजी सूत्रमें इस तरहसे कही हैः-

सुत्र—चउविह कहा पन्नंता तंजहा—अखेवणी,
विखेवणी, संवेगणी निवेगणी

१ 'अखेवणी' धर्म कथा उसे कहते हैं, जिसका अक्षेप स्थापना श्रोता गणों के हृदय में हूवहु होवे. इस के चार प्रकारः-(१) वक्ता को लाजिम है कि श्रोता गण को अवल साधूका आचार, पंचाचार, महाव्रतादि प्रवृती का वरणव विस्तार से सुनावे, जिसे सुन के श्रोता संयम ग्रहण कर ने सामर्थ्य बने.

श्लोक—नो दुः कर्म प्रवृतति नेकुयुयाति सुत श्वामि दुर्वाक्य दुःख।
राजादौ न प्रणामोऽशन वसन धन स्थान चिंता न चैव ॥
ज्ञानाप्ति लोंक पूज्या प्रशम सूख रतिः प्रेत्यमोक्षांघवाप्ति ।
श्रमण्येऽमी गुणा स्तुस्त दिह सुमतय स्तत्रयत्न कुरू धर्म् ॥

अर्थात्—मुनिराज—किसी प्रकार के दुष्कर्म—कु-कर्म में कदा प्रवर्त होते ही नहीं हैं, न उन के स्त्री, पुत्र, श्वामी, सेवक हैं, कि जिससे दुर्वाक्य—कटू बचन कहने सुनने का प्रसंग आवे. न वो महाराजादि किसी को कभी नमन (सलाम) करते हैं, न उनको खान पान वस्त्र स्थानादि की कदापि चिंता फिकर होती है, क्योंकि विरक्त हैं, और विरक्तो को कुछ कमी नहीं हैं, और सदा अपूर्व २ ज्ञानानन्दमें रमणता व सर्व जगत् के वंदनिय पूज्य निय. प्रशम सुख में रति इत्यादि इस लोकमें सूख भोगवते हैं, और देह छुटे (मरे)बाद स्वर्ग मोक्ष कि सूख के भुक्ता होते हैं, ऐसे जब्बर २ सूख जिन दिक्षामें हैं, इसलिये अहो बुद्धि वन्तो ! तुम रत्नत्रय रूप जो जिन दि

क्षा है; उसे ग्रहन करने का-साधु होने का उद्यम करो !

जो कदा दिक्षा लेने के भाव नहीं हुवे तो साधुओ पर पूज्य बुद्धि उत्पन्न होवेगा. क्योंकि जैन साधूओं की कहनी और करणी एक सी है, ऐसा दुक्कर आचार अन्य कंही भी नहीं. २ कितनेक वक्ताओं पाण्डिताइका डोल जमाने षट्द्रव्य आदि सुक्ष्म उपदेश पहिले से ही करने लगते हैं. सो कितनेक श्रोताओं के ग्रहाज में नहीं आने से सुनते २ कंटाल जाते हैं, और व्यवहार प्रव्रती से वाकेफ नहीं होते, कोरे धर्म के धूंसरे वन व्यवहार विगाड कर धर्म को लजाने जैसे कृतव्य करते हैं. इसलिये वक्ताओं को लाजम हैं कि-अवल व्यवहार मार्ग में प्रवृतने की आदेश द्वारा नहीं परन्तु उपदेश द्वारा रिती वतावे. तथा अमुक काम करने से इतना पाप लगता है, और वोही काम अमुक तरह करे तो इतने पापसे आत्मा वच जाती है, वगैरा व्यवहार की प्रवृती वताता हुवा आप भी पाप से खडाय नहीं, और श्रोता भी समजजाय, और जो कोइ वक्ता होना चहाता हो, उसे उपदेश करने की पद्धवती वतावे. और श्रोता ओंको शभामें कैसे प्रवृतना सो भी वतावे. और अमुक पाप करने अमुक कुगति होती है, और पापसे आत्म शुद्ध करने की अमूक रिती है, वगैरा तरह व्यवहार सुधारे(३) वक्ताओं का वौध करती वक्त वहुतही सावधगिरी रखनेकी जरुर है. क्योंकि शभामें किसी को भी आनेकी मना न होती है, इसलिये हर एक तरह के और हर एक महजव के लोक आते हैं. उनका मन न दुःख ते उनको समाधान होजाय. और वो जो प्रश्न धार कर आये हों उसका आसय उनकी मुख मुद्रासे जान उपदेश द्वारा ऐसा समाधान करे कि पीछा उनको प्रश्न पूछने की जरुरही न रहे. और कदापि कोइ प्रश्न पूछभी लेवेतो उसे एसा मार्मिक शब्द से

उतर देवे कि—जिस से पृछक के रोम २ में वो बात ठस जाय. खुश हो जाय. चमत्कार पा जाय. (४) जिनेश्वर का मार्ग एकान्त नहीं है, परन्तु स्याद्वाद है. इस बात को वक्ता पुक्त लक्ष में रखकर उपदेश करे, कि जिस से किसी के पकड मे नहीं आवे. और ऐसी सरलता के साथ प्रकाशे कि जिस में किसी मत की निंदा रुप शब्द नहीं आवे. किसी तरह विरोधी पना मालुम नहीं पडे. और श्रोताओं के मन मे ठस जाय कि इन का कहना सत्य है. यह अक्षेपनी कथा के चार प्रकार कहै.

२ " विखेवणी "—न्यायमार्ग का त्याग कर अन्याय मार्ग में प्रवृतने सुरु होता हो, उसे पुनः न्याय मार्ग में विक्षेप—स्थापे सो विक्षपनी कथा कही जाती है, इसके चार प्रकारः—(१) प्रायः सर्व वक्ताओंका रिवाज है, कि अपने मतकी ही परसंस्या करते हैं. व अपने मत काही ज्ञान दूसरों को देवें. अपने मत पर दूसरों की रुची जगे वैसी कथा करने की भगवंत ने यह रिति फरमाया है कि—अपने मत का ज्ञान प्रकाशते बिच २ में दूसरे के महजब कै भी चुकटले छोडता जाय, कि जिस से अन्य मतावलम्बी समजे कि अपने महजब जैसी इनमें भी बातें हैं. (२) किसी वक्त अन्य मतावलम्बि यों का ज्यादा अगाम हुवा हो तो. सद्गुण त्याग वैराग्य की वढाने वाली उनही के महजब की बातों उनको सुनावे. और बिच २ में अपने महजब का श्वरुप भी थोडा २ सुनाता जावे. जिस से वों समजे कि जैन मत ऐसा चमत्कारी है. इससे उनको जैन की विशेष वातों सुनने की अभिलाषा जगे. और अवसर आये ग्रहण भी करलेवे. (३) धर्म करो ! २ ऐसी पुकार तो प्रायः सही वक्ता ओं करते हैं. परन्तु जहां तक लोको पाप के कार्य में नहीं समजेगें, वहांतक उसे छोडें

गेही कैसे ? और धर्म करें गेही कैसे ? इसलिये वक्ता ओं को लाजिम है कि-श्रोता ओं को पाप या मिथ्यात्व का स्वरुप खुलासा वार वता कर. उससे प्राप्त होते हुवे फलको वतावे. जिस से जिनके अंतःकरण में खटका पडे कि पाप ऐसा दुःख दाता है, इसे नहीं करना चाहिये. (४) परन्तु पाप खोटा है, २ दुःख दाता है, ऐसा एकान्त पुकार भी निकम्म गिना जाता हैं, क्योंकि पाप विना संसार का निर्वाह होना मुशकिल है. एकांत पापकी निंदा करने से कदाक श्रोता भडक भी जाय. इसलिये पाप के कार्य का प्रकाश कर ते हुवे. विच २ में धर्म के कार्य भी वताते जाय, कि विवेक पूर्वक लुख व्रती कार्य करने से कर्म वंध कम होता है, वगैरा. इत्यादि श्रवण करने से श्रोतागणों की इच्छा पाप से वचकर यथा शक्ति धर्म करने की होवें. यह निक्षेपनी कथा के चार प्रकार हुवे.

३ 'संवेगणी'-सद्बोध करनेका मुख्य हेतू येही है कि श्रोताओंके हृदयमें वैराग्य स्फुरे, इसकेचार प्रकारः-(१) सच्चा वैराग्य का कारण वस्तुकी अनित्यता जाणना येही है; और जो जो वस्तू द्रष्टी गत होती है; वो सव अनित्यही प्रत्यक्ष दिखती है; अर्थात्-क्षिण २ में उनके स्वभावका पल्टा होताही रहता है(ऐसा पक्का ठसावे) और धर्मही नित्य है, सुखदाता है, परन्तु धर्मकी प्राप्ती होनी वहुतही मुशकिल है, सो वतावे. इन वातोंसे श्रोताओं का मन संसारकी वातों से उतर कर धर्मकी तरफ लगे. (२) दूसरा वैराग्य का कारण सुख की इच्छा और दुःख का डर भी है. इस लिये देवलोको के सुखका वरणव करके कहे कि यह अच्छी करणी दान आदिक का फल है, और नर्क के दुःखों का वरणव कर के कहे कि यह खराव करणी पाप का फल है, जिसे सुन जिज्ञपु नर्क के दुःख से डर पाप को छोडे, और स्वर्ग मोक्ष की इच्छा से धर्म करने प्रवृत होवें. (३) तीसरा वैराग्य भाव में हरकत करणे वाला मनुष्यों

का स्नेह है, इसलिये श्रोताओं को स्वजनो का मतलवी पणा समजा कर उन पर से ममत्व भाव कम करावे. और सत्सगं से वैराग्य की वृद्धि होती है, इसलिये सत्संगका गुण वताकर उसमे संलग्न करे. ४ चौथा वैराग्य का कारण पुद्गलों की ममत्व का त्याग है. इसलिये पुद्गलोका स्वभाव जो मिलने विछडने का है; तथा अच्छे के बुरे और बूरे के अच्छे होने का है; सो वतावे. और भी पुद्गलों की ममत्वका करने वाला. पुद्गलों का छोडती वक्त दुःखी होता है, तथा जो पुद्गल उसका त्याग करे तो भी वो ममत्वी ही दुःखी होता है, परन्तु पुद्गल दुःखी नहीं होते हैं, इत्यादि समजकर उन परसे ममत्व कमी करावे. और ज्ञानादि गुणोंकी अखन्डता अविन्यासी पना वताकर ज्ञानादि गुणोंका प्रेमी बनावे. यह संवेगी कथाके चार प्रकार.

४ " निर्व्वेगणी " धर्म कथाका मुख्य हेतू यह है, कि–संसार के परिभ्रमणसे जीवों को निवारना. भव भ्रमण वडाने का मुख्य हेतू कर्म है, वो कर्म चार तरह भोगवे जाते हैं:– (१) कितनेक ऐसे अशुभ कर्म हैं, कि जिसके अशूभ फल इस ही भव में प्राप्त हो जाते हैं, जैसे मनुष्य मारने वाला देहान्त शिक्षा पाता है, झूटकी जवान काटते हे. चोंरो को खोडे भाखसी मे बंद कर देते हैं व्यभिचारी गरमी के रोग से सड २ कर मरजाता है. विशेष ममत्व से धन कुटम्बका गुलाम हो मारा २ फिरता है, वगैरा. (२) कितनेक शुभ कर्म भी ऐसे हैं, कि जिसके फल इसही लोकमें मिल जाते हैं, जैसे–साधू आदिक जो उत्तम प्राणी हैं. जो हिंशा नहीं करते हैं; वो सर्व को प्रिय लगते हैं, वंदनिय पुज्य निय होते हैं. झूट नहीं बोलते हैं, उन के वचन सर्व मान्य होते हैं. चोरी नहीं करते हैं, वो विश्वास पात्र हो, वे पर्वाह होते हैं. ब्रह्मचर्य पालते हैं, वो शरीर से और बुद्धि से प्र-

वल होते हैं. निर्ममत्व रहते हैं, वो सदा सुखी रहते हैं, यह प्रत्यक्ष में शुभ कर्म के फल इस भव के इस ही भव में भोगवते द्रष्टी आते हैं, (३) जो कर्म पूर्ण पुण्योदय से इस जन्म के किये हुवे कू-कर्म के फल इस भव में उदय नहीं आवे तो यों नहीं समजना कि वो सब व्यर्थ गये. क्योंकि किये हुवे कर्मका बदला दिये विन कदापि छूटका नहीं होता है, इसलिये उन अशुभ कर्मोंका बदला देने मरकर नर्क तीर्यंच आदि कु-गति में जाकर जरूरही भोगवेगा' (४) तैसे ही जो शुभ कर्म करते हैं. और वो कदापि पुर्व पापोदय कर दुःखी द्रष्टी आते हैं, तो ऐसा नहीं समजनाकि वो व्यर्थ जाते हैं, वो शुभ कर्म के कर्ता भी आगे को मनुष्य देव आदि उत्तम गति में जाकर उसका फल जरूरही प्राप्त करेंगे. यह निर्वेगणीकथा.

ठाणांगजी सुत्रानुसार धर्म कथा-व्याख्यान करने की रिती बताइ. धर्म के प्रभावको जहां विशेष मनुष्यों का समोह एकत्र-एक स्थान जमा हुवा देखते हैं, वहां अवसर जाने जैसा होवे तो जाकर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, अनुसार विचक्षणता से सर्व को प्रिय लगे और सब खुलासा वर समज जावें ऐसी भाषामें स्याद्वाद शैली युक्त निसंकित पणे मोटे मंडाण से धर्मोपदेश-व्याख्यान-सद्बोधण कराते हैं. जिससे धर्म की उन्नती-प्रभावना होती है.

३ " निरोपवाद प्रभावना "

जो धर्म अपन ने परिक्षा पुर्वक ग्रहण कर अपना तन, मन, धन, जिसके समर्पण कर दिया है, उसका अपवाद-निंदा या कमी पणा किसीभी तरह से होता देखे धर्मात्मा उसे कदापि सहन नहीं कर शक्ते हैं. हरेक उपासक उस अपवाद को निवारण कर पूर्ण ज्योति

प्रकाश करना ये ही वीर प्रभू के वीर पुत्रों का कृतव्य है. धर्मका अपवाद चार तरह दूर करेः—(१) [क] अपने मतावलम्बियों को अन्य मतावलाम्बियों के परिचय से. व अन्य मतावलम्बियोंके शास्त्र पठन से. अन्य मतीके ढोंग धतूरे देखने से. [ख] स्वमत के गहन ज्ञान के शास्त्रों पठन श्रवन से [ग] स्वमत के किसी साधू आदि का अयोग्य कृत्य देखकर. [घ] धर्मी जानोपर संकट पडा देखकर वगैरा कारणोंसे धर्म से परिणाम चलित हुवे हों, और अपने जान ने में आवे तो आप उसे समजावे कि-[क] अन्यमतियों में जीवाजीवका यथार्थ ज्ञान नहीं होनै से उनकी करणी निर्थक है, ऐसा भगवन्त ने फरमाया है सर्वज्ञ कथित शास्त्रही प्रमाण गिणे जाते हैं. अन्य कृत का नियम नहीं. इसलिये अन्य मतावलोम्व के वचन सर्व मान्य नहीं होते हैं. ढोंग धतूरे से मोक्ष नहीं मिलता है. ढोंग तो अनंत वक्त जीव कर आया है, परन्तु कुछ गरज सरी नहीं. मोक्ष तो आत्म साधन से है. [ख] केवल ज्ञानी के कथे हुवे वचन छद्मस्त के ग्राह्यमें आस्ते २ आवेंगे, एकदम चक्राकर घवराना नहीं चाहिये. [ग] कर्मों की गाति विचित्र है, पूर्व के पाठियों भी कर्म का धक्का लगने से गिरजाते हैं; तो अन्य सामान्य प्राणीका तो कहनाही क्या! दूसरे का खराबा देख अपना खराबा कोइ भी सुज्ञ पुरुष नहीं करेगा. [घ] सूख दुःख यह कर्मों की छांया हैं, धर्मी अधर्मी सर्व पर पडती है, और दुःख है सो ही दुःख क्षय कर ने की औषधी है, अर्थात् दुःख को समभाव सुक्तने से ही दुःख दाता अशुभ कर्म का नाश होगा. और तब ही सूख की प्राप्ती होगी इत्यादि सद्बोध से उन के चितका समाधान करे. पुनः धर्म मार्ग में स्थिरी भूत करे.

(२) किसी क्षेत्र में स्वधर्मी यों का प्राक्रम थोडा होवे और

उन्हे कोइ अन्यमति संकट में डाल जबरदस्ती से व किसी प्रकारका लालच दे धर्म से भ्रष्ट करते होवें संकट में डालते होवे, यह बात अपने जानने में आवे और अपन उस अपवाद को निवारने सामर्थ्य होवे, स्वधर्मी को धर्म में स्थिर स्थापने सामर्थ्य होवें, तो शक्ति भक्ति से जैसे जैसे बने वैसे उसे अपने धर्म में स्थिर करे. यद्यपि आप समर्थ न हो और दूसरा कोइ समर्थ आपके जानने में हो तो उस के पास आप जाकर, उन्हे समजाकर, स्वधर्मी को सहाय दिलाकर, उसे धर्म में स्थिर करे. अपना धर्म दिपावे.

(३) कोइ मिथ्या मोह के उदय कर, मिथ्या ज्ञानके प्राक्रम कर, मिथ्याभिमानी बन मिथ्या धर्म की वृद्धि कर ने अनेक उपाय कर, सत्धर्मी यों को भृष्ट करने प्रवृत हुवा. और उस को हटाने की अपने में शक्ति होवे तो हरेक युक्ती कर उसे हटावे. जहां अपनी लग वग पहोंचती हो वहां से पहोंचाकर मिथ्यात्व का जोर कमी कर जैन धर्म की उन्नती करे.

(४) कोइ मिथ्यात्वी कु-तर्क वादी छल कपट का भराहुवा सरल स्वभावी मुनिवर को छलने आवे. और आप जान जावे तो मुनिवर को समस्या से चेताकर होंश्यार करें. तथा वो जो मर्याद उलंघन कर विवाद करता होतो आप उससे विवाद कर यथा उचित रिती से हरावे. सू पक्ष कु-पक्ष का निराकरण करे. इत्यादि रिती कर जैन धर्म पर आते हुवे अपवाद का निवारन करे. धर्म की उन्नती करने मे दिपाने में अपनी शक्ति बिलकुलही गोपवे नहीं. कदापि पीछा हटे नहीं.

४ "त्रिकालज्ञ-प्रभावना"

धर्म की उन्नती का मुख्य हेतु ज्ञानही है. और जक्तमें बहुत

कालसे ऐसी प्रथा-रूढी चली आरही है कि-"चमत्कार वहां नमस्कार" और जैन शास्त्रमें चमत्कार का कुछ टोटा नहीं हैं, और केवल ज्ञानी सर्वज्ञो के वचन कदापि मिथ्या होते नहीं है. जंबूद्विप प्रज्ञाप्ती, चन्द्र प्रज्ञाप्ती सुर्य प्रज्ञाप्ती वगेरा सूत्रोंमें खगोल भूगोल विद्याका, भुत भविष्य वर्तमान के शुभाशुभ वर्ताव का लाभालाभ, सुख दुःख का जाणना वगेरा का ज्ञान है, उसका जान पना गुरु आमनासे यथा विधी से करे. परन्तु यह विद्या गंभीर सहासिक द्रढ श्रद्धालु इत्यादि गुण का धारक हो वोही ग्रहण कर शक्ता है, क्योंकि इस विद्या का पात्र होना वहुत ही मुशकिल है, यह विद्या जहां तहां प्रकाश नहीं की जाती है यह तो दिक्षा आदि कोइ मोटा उपकार का कारण होवे या साधु आदि तीर्थोंपर, या धर्म पर कोइ महा संकट प्राप्त होने जैसा मौका हो; उसे निवारन करने. आदि महा काणर सिरपर झुंजवा-प्रकाशना पडे तो, प्रायश्चित ले तूर्त शुद्ध होवें.

८ "तप प्रभावना"

जैन प्रवचन की प्रभावना करनेका तप यह अति उत्तम और अति विशाल मार्ग है. क्योंकि जैन धर्म जैसी तप की निर्मलता निरालम्बता अन्य पंथ में नहीं हैं, अन्य मातियों तपका नाम धारण कर केइ रात्री को खाते हैं, केइ पहर दो पहरही भूखे मर फिर माल मसाले खाते हैं. केइ अनन्त जीवों का पिंड कंद मूल आदि का भक्षण कर तप समजते हैं, ऐसे अनेक तरह के ढोंग चल रहे हैं, ऐसे कायरों जैन मार्ग में होते हुवे उपवास अठाइ पक्ष खमण मांस खमण आदिका नाम सुण उनकी अक्कल चक्राजाती है. और कितनेक नास्तिक तो इस बात को कबूल ही नहीं करते है. गुप्त आहार करने का वगैरा दोष—कलङ्क चडाते हैं. परन्तु वो जानते नहीं है, कि-

जैन मार्ग में बिलकूलही पोल चले ऐसा नहीं हैं. क्योंकि अवलतो तप करने वाले आत्मार्थी होते हैं, वो इस लोकको किसी प्रकारका लालच नहीं चहाते हैं, दूसरा विशेष तप धारीको भोगिक पदार्थ से तद्दन अलग ही रखते हैं. और उन के दर्शनार्थी हरवक्त वने नहीं रहते हैं, और नक्त की कहनी भी है, कि "नहाये के वाल और खायके गाल छिपे नहीं रहते हैं" इत्यादि कारण से जैन मार्ग में बिलकुलही पोल नहीं चलती है, जो फक्त कर्मोंकी निर्जरार्थ तप करते है, वो कदापि किसी प्रकारका दोष नहीं लगाते हैं. यह निश्चय जानना. ऐसा जैन धर्मका उग्र घोर तप देख लोक चमत्कार पावे जिससे जैन धर्मकी प्रभावना होवे.

६ "वृत" प्रभावना

वृत–नियम धारन करना यह भी धर्म का प्रभाविक पणा है, क्योकि ममत्व का त्याग करने सेही वृत होते हैं, अपन को प्राप्त हुइ वस्तुका भोगोपभोग नहीं लेना, जिस से भावसे तो महा कर्म की निर्जरा होती है और द्रव्ये लोक देख चमत्कार पाते है, कि धन्य है, सशक्ति प्राप्त वस्तु भी नहीं भोगवते हैं. मन को मारते हैं. इस तरह धर्म की प्रभावता भी होती है. अन्यमतमे ब्रह्मचर्य अन्न त्याग वगैरा एक आधा वृत धारन करने वाले भी वडे पुजाते हैं. तो जो अहिंशा आदि पंच महावृत धारन करने वाले हैं. वो जक्त में पुजावे धर्म दीपावे इसमें आश्चर्यही काय का? तैसे ही भर युवानी में इन्द्रियो का निग्रह करना. जवर २ अभिग्रह धारन करना. कायुत्सेर्ग, मौन, लोच, आताप ना (सुर्य के ताप मे रहना). अल्प उपाधी. विगय त्याग, वगैरा साधुजी करणी करते हैं, तैसेही श्रावक भी सजोडे ब्र-

हान्चार्य, रात्री चारही अहार का त्याग. सचित का त्याग. गाली देने के त्याग रुपे अन्नी उप्रान्त लाभ—नफा उपार्जने का त्याग. वगैरा अनेक प्रकार के नियम धारन करें, और शुद्ध उत्सह प्रणाम से पाले. जवर वक्त—संकट समय वृतका निर्वाह करें. देव मनुष्य आदि का चलाया नहीं चले, वृत नहीं भांगे वगैरा तरह वृत धारणा और उसके निर्वाह की द्रढता देख, अन्य लोक मनमें चमत्कार पावे कि देखो! इनमें कैसे त्यागी वैरागी हैं, कैसे २ दुकर वृत धारण करते हैं, और कैसी दुक्कर वक्त पर भी लोभ ममत्व का त्याग कर आखडी निभाते हैं. आत्मा वश में रखते हैं. धन्य है. उनका जन्म सफल है. ऐसा अपन भी कुछ करें. ऐसी तर धर्म वृध्दी और प्रभावना होवे.

७ ' विद्या ' प्रभावना.

विद्या=जानना व प्रकाश करना जिसे विद्या कहते हैं. सो अनेक तरह की होती है. जैसे रोहीणी, प्रज्ञाप्ती, पर शरीर प्रवेशनी, रुप प्रावृर्तनी, गगन गामिनी, अदश्य वगैरा अनेक तरहकी है. तैसेही मंत्र शक्ति अंजन सिध्दी, गुटिका सिध्दी, रस सिध्दी, इत्यादि अनेक विद्या आगे प्रचालितथी. विद्या धरों, और लब्धि धारी मुनिराजों को यह शक्तियों प्राप्त होतीथी, जिस से वो वक्तसर विद्या को प्रजुंयुज कर. जैन धर्म की कीर्ति दिगांतर में गजा देते थे. और बडे २ इन्द्रो को थरथरा देतेथे. ऐसे शक्ति के धारक हो कर भी ऐसे गंभीर होते थे की कोइ जान भी नहीं शक्के कि यह ऐसे कर माती हैं. क्योंकि वो फक्त धर्म का लोप होता देखही उसका उदय करने प्रजुंजते थे, अन्यथा नहीं और परजुंजे पीछे प्रायाश्चित ले तुर्त शुद्ध हो जाते थे. इस वक्त इस प्रभावकी लुप्तता हुइ जैसी दिखती है.

उस वात परही जरा विचार करोगें तो अपने मनसे, ही समज जावें गे कि हम हमारे देव गुरु धर्म की प्रभावना करते हैं, या अपचेष्टा करते हैं.

गत काल के सामर्थ धने श्वरी धर्मात्माओं अपनी शक्तिका व धनका व्यय मिथ्यात्व का नाश करने, पाखंड को हटाने में लगाकर प्रभावना समजते थे. और इसवक्त के भोले जैनी यों अपने महान् पिताकी लाज लुंटने में. अपने भाइयों की गर्दन उडाने में, अपने धर्म के एक अंगका नाश करने में ही धर्म की प्रभावना समजते हैं एकेक वातका पक्ष धारन कर सत्यासत्यका व वीतराग प्रणित स्याद्वाद मार्ग है, उसका यथार्थ विचार नहीं करते. धर्म खाते में जमा हुवे लक्षो क्रोडों द्रव्य को अधर्मी, मांस अहारी यों के भोगमें लगाकर, अपने भाइयों को रोते हुवे तरसते हुवे देखकर मजा मानते है ! और धर्म की प्रभावना समजते है !

आगे के महान् मुनिराजों ग्रामानुग्राम विहारकर जिनेश्वर की आज्ञानुसार प्रवृतकर, राग, द्वेष, का निवृतन, कर ने वाली स्याद्वाद मय द्वादशांगी जिनेश्वर की वाणी का सद्वोध कर जैन धर्म को प्रदिप्त करते थे. और इस वक्त के मुनि महात्माओं, अपने धर्म के दूसरे अंगकी उत्थापना और अपनी मानता की स्थापना करने मे ही सद्वोध समजते हैं. जाने सम्यक्त्व संयम का इजारा हमारे को ही मिलगाया है, अन्य सबको मिथ्यात्वी ढीले पासथे वगैरा कलंक लगा कर निंदा करने मे ही धर्म की उन्नती समजने लग हैं. किसी से विवाद कर वृतकों कर जीत गये, तो जैसे पाणी में चिना फुलता है, त्यों फूलजाते हैं, और हेन्ड वीलों पुस्तको में अपने नामपर आप शुभोपमा वाचक शब्द छपाकर जानते हैं कि हमारी कीर्ती दिगा

में फेल गइ ! बश हम अद्वितीय बनगये ! हम ही जैन मार्ग के सच्चे प्रभावक हैं !! ऐसे मानेमें भराजाते हैं, ऐसी २ इसवक्त अनेक बातों चलरही है; सब का कहां तक वरणव करूं, यह इस जमाने की रचना देख बडा ही अपसोस पैदा होता है, कि हे प्रभू ! यह एकदम ऐसा जूलम काय से होगया ? सत्य के आगे पडदा कैसे पडगया? अपनी तरवार से, अपना ही अंग का छेदन करने में कैसे चातुरी मानने लगे ? यह क्या गजब हो रहा है !! सूर्य से अन्धकार और चन्द्रमासे अङ्गार वृष्टी ! आर्थत् सूर्य जेसै ज्ञान के धारक पाण्डितराज-कहलाते हैं, विशेपत्व वोही राग द्वेष रूप अन्धकार की वृधी के कारण बन रहे हैं, और परम शांत रस से भरपुर श्री वीतराग का यह जैन मार्ग है उसमे मारकूट? आदि कलेह रूप अंगार की वृष्टी हो रही है, अब कहीये! इस जूलम का क्या इलाज करना! इस अंगारको कैसे बुजाना ! इस अन्धेरे को कैसे भगाना और जैन प्रभावक नाम धारन कर जैनकी पाय माली कर रहे हैं, उन्ह कैसे समजाना !! अहो अंर्हत् सन्मती अर्पो ! सन्मती अर्पो ! और हमारे मनमें जैन के प्रभावक बनने की जो उत्कंठा है, तो हे कृपानिधे ! दयालु प्रभू ! हमे सच्चे प्रभावक बनावो ! क्लेश रूप लाय बुजवो ! कु-संपकी धाड भगावों ! राग द्वेष रूप अन्धकार मिटावो और सच्चा प्रेम "मिती में सव्व भुएसु वेरंमज्झंन केणइ" अर्थात् 'वसुधा मेव कुटम्बिकं' सर्व जीव मेरा कूटम्ब हैं, मित्र हैं, किसीके साथ मैरे किंचित वैर विरोध नहीं हैं, ऐसा सच्चा प्रेम उत्पन्न करो ! सब जैन धर्म धारीयों को एकही श्रधासील बनाइये जी ! इस सच्चे अपके प्रवृताये हुवे पंथमें हमारे को लगाकर आगे बढने शाक्ति की बक्सीसकी जी य ! अहो वीर परमात्मा महान पिता जी ! हम आपके कू पुत्र भी है, तो आपको

आपके मावित्रपने के वृद्ध की तरफ द्रष्टी कर, हमारे सब दुर्गुनों का नाशकर सुपुत्र बनाने आपही समर्थहो ! सो बनाइये. आप सिवाय और कोइ भी हमारा सुधारा करने वाला इस सारे विश्व में हमारे को नही दिखता है, इल लिये आपकी सेवामें अर्ज गुजारी है, और हमें पूर्ण भरोसा है कि आपही हमारा कल्याण करोगे. सो हैं पिता श्री शिघ्रही कीजीये !

" संपके लिये द्रष्टान्त "

अहो कृपानिधे ! श्री महावीर परमात्मा ! आपने आन्त ज्ञान दर्शन में भविष्य काल का स्वरुप जान मानो आपके अनुयायी यों को सम्प मे प्रवृतने, स्वद् वाद मत का सत्स्वरुप बताने, शास्त्र द्वारा अनेक द्रष्टान्त दे समजाने में तो कुछ कचास नहीं रखी ! उन बातों को हम जानते हैं, पढते हैं. सुनते हैं, परन्तु उसका तात्पर्य–मतलब पर जो हम शान्त–निरापक्ष चित से विचार करें तो वो हमारे पर असर कर्ता होवें.

इस वक्त में श्रीविवाह पन्नंती (भगवती) जी सूत्र का दूसरे शतक का पांचमा उदेशेका पठन कर रहाहूं, उसमें सम्प के बार में एक अत्युत्तम द्रष्टान्त मेरे द्रष्टी गत होने से जैन के प्रभावको को दर्शा, सच्चे प्रभावक बनाने की उम्मेद से यहां रजु करता हूंः—

यथा–साक्षात् देवलोक जैसी 'तुंगीया' नामक नगरीके विषे अनेक (बहुत) श्रावको रहतेथे. वो भवन (घर) सयन आसन वाहन धन धान्य सुवर्ण रुपा दास दासी गौ–बैल माहिष (भैंस) अश्व गज आदि ऋद्धि कर सर्व जनसे अधिक थे. ऋद्धि कर किसी के हटाय हटते नहीं, दिव्य रुप तेज कर शोभाय मान दिखते थे. नित्य अनेक सह श्रगम द्रव्य व्याज आदि वैपार में उत्पन्न होताथा. उ-

नके घरमे नित्य चारही प्रकार का अहार बहुत निपजता थाकि जिससे उनके आश्रय रहे अनेक जनो का पोषण होताथा. और उन श्रावको ने जीवाजीव (आत्मा अनात्म) का स्वरुप जाना था, पुण्य पाप के कर्तव्यो में समजे थे, अश्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण (शस्त्र) वंध, मोक्ष इन ९ तत्व-पदार्थों के ज्ञान को नय नक्षेपे प्रमाण द्वारा जान कर कुशल-धर्म मार्ग में होंशार हुवे थे, उन श्रावक को. देविंद्र, नरेंद्र, दानव, मानव, कोइं भी किसी भी दुसहाय उपाय करके भी निर्ग्रंथ प्रबचन (धर्म मार्ग) से कदापि चला नहीं सक्ते थे. और वो किसी भी कार्य में भेरु भवानी पीर आदि किसी भी देव की कदापि सहाय्यता नहीं वांछते थे, निग्रन्थ प्रवचन (शास्त्र) के ज्ञान में शंका कांक्षा आदि दोषों रहित निर्मळ थे. जिनोने शास्त्र का अर्थ गुरु गम द्वारा प्राप्त किया था, ग्रहण किया था. संशय उत्पन्न हुवे सविनय पूछ कर निश्चय कियाथा. जिन श्रावको की हाड की मीजी (तन मध्य वर्ती धातू) धर्म रुप प्रेमानुराग कर मजीठ के रंग जेसी रंगा गइथी और वो अपने पुत्रादि स्वजन परजनो के सन्मुख वार्तालाप के समय वरम्वार येही कहते थे कि-आयमाउसो ! 'णिग्गंथ पावयने अठे अयं परमठे सेसे अणठे' अर्थात अहो अयुष्य वन्तो ! इस जगत में धर्मही सार पदार्थ है, ? धर्म सेही पर्मार्थ-मोक्ष की प्राप्ती होगी, बाकी धन स्वजन आदि सब अनर्थ के हेतू-कुगति के दातार हैं ! उन श्रावकोने प्राप्त द्रव्य का लाभलेने धर्म का प्रभाव बताने अपने घर के द्वार सदा खुले (उगाडे) रखे थे. कि किसी भी भिक्षुक को कदापि अन्तराय न आवे. वो श्रावकजी राजाके अंतउर में, या राजा भेठ के भंडार में जाने से उनकी अपतीत कदापि नहीं होती थी. और वो श्रावकजी पांच अणुव्रत

तीनणगुवृत चार शिक्षावृत और भी अनेक छुटक प्रत्याख्यान व अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा. अमावश्य, आदि पर्व तिथी के उपवास पोसह सम्यक प्रकारे आत्म हित जाण निर्दोष पालते पलाते प्रवर्तते थे. और साधू मुनिराज को शुद्ध प्रसुक (निर्जीव) अहार, पाणी सूकडी, मुखवास, वस्त्र, पत्र. कंवल रजुहरण, स्थानक पाट, पाटले, औषध, भेषध, प्रति लाभेत—वेहराते (देते) विचरते थे. इत्यायि धर्म करणी तप करणी कर अपणी आत्माको भावते हुवे रहते थे. !*

उसवक्त श्री पार्श्वनाथके शिष्य स्थिविर भगवंत जाति कुल वल रूप की उत्तमता मुक्त विनय ज्ञान दर्शन चारित्र तप लज्जा लाघव गुण संपन्न, उत्साही तेजस्वी विशिष्ट—वचनी यशवंत, क्रोध-मान माया-लोभ-इन्द्री-निद्र-परिसह को जीतने वाले, जीवने की आशा और मरने के डर रहित, जावत् कुत्तीयावण जैसे सर्व गुण सहित पांच सो (५००) साधू के परिवार से परिवरे ग्रामानुग्राम सुखे २ विहार करते तुंगीया नगरी के वाहिर पुष्पवति नामक वागिचे में पधारे, यथा उचित वस्तू वापरने की वन पालक (माली) की आज्ञा ग्रहण कर तप संयम से अपनी आत्मा भावते सुखे विचरने लगे.

उसवक्त तुंगीया नगरी के अनेक मनुष्यों का समोह मुनिराज के दर्शनार्थ जाते देख श्रावको आपस मे कहने लगे कि अहो देवानुप्रिय! पार्श्वनाथस्वामी के शिष्य स्थिविर भगवंत अनेक उत्तम गुण संपन्न पुष्पवती उद्यान में तप संयम से अपनी आत्मा भावते विचरते हैं, तथा रूप स्थिविर भगवंत के नाम गौत्र श्रवण करने से ही महा

* देखिये ! गत काल के श्रावको ऐसी ऋद्धिवन्त होकर भी धर्म ज्ञान के कैसे जानकर दृढ श्रद्धावन्त, धर्मात्मा, उदार प्रणामी थे, यह अनुकरण इस वक्त के श्रावको को अवश्य ही करना चाहिये.

फल की प्राप्ती होती है, तो फिर क्या कहना सामने जाकर उनको वंदना नमस्कार कर सेवा भक्ति करने से फल होवे उसकी ? इसलिये शिघ्र चलो, स्थविर भगवन्त को वंदना करने. * ऐसा आपस मे श्रवण कर सब श्रावको न्हाये मंगल पवित्र वस्त्र धारन किये अल्प-भार और कीमत बहुत ऐसे आभरण से शरीर विभुषितकर, अपने २ घरसे निकल कर, सब एकस्थान मिलकर, पांवोसे चलकर, तुंगीया नगरीके मध्यवीच हो पुष्फवती उद्यान के नजिक आये, १ आपने पाससे सचित वस्तु सब दूर रखी. २ छत्र दंड आदि अयोग अचित वस्तु अलग रखी. ३ एक साडी वस्त्र का उतरासण किया (मुखके आगे वस्त्र लगाया) ४ स्थिवीर भगवंत को देखते ही हाथ जोडे, और ५ धर्म मार्ग में मन एकाग्र किया यह पंच अभिगम सांच के स्थिवीर भगवन्त के सन्मुख आकर तिखुत्ता के पाठसे यथा विधी न-मस्कार कर सन्मुख बैठ सेवा भक्ति करने लगे.

उसवक्त स्थिविर भगवन्त ने उन श्रावकों को और उस महा परिषदा को चार महाव्रत × रूप धर्म सुनाया. श्रावको व्याख्यान श्र-वण कर बहूत हर्ष संतोष पाये. और वंदना नमस्कार कर प्रश्न पूछने लगे

* देखिये ! मुनिराजके दर्शनो का श्रावकोंका कैसा उत्सहा होता था ?

× सब चौवीसी का रिवाज है, कि पहिले और छेले (चौवीसवे) तीर्थंकर के वारमें पंच महाव्रत धारी साधू होते थे, और बीच के २२ तीर्थंकर के चार महाव्रत धारी होते थे, कारण कि बीच के तीर्थंकरों के साधु आत्मार्थी और बडे विद्वान होते थे, इसलिये स्त्री और परिग्रह दोनो ही एक ' ममत्व परित्याग ' महाव्रत में ग्रहण कर लिये थे क्यों कि दोनो ही ममत्व भाव से धारण किया जाते है, इसलिये उनोने एक ही शब्द में स्त्री और धन दोनों का त्याग किया था.

प्रश्न-' संयमेणं भंते किंफले, तवे किंफले ' अर्थात् अहो भगवन्त ! संयमका और तपका क्या फल होता है?

उत्तर-" संयमेणं अज्जो अणण्ह फले, तवेणं वोदाण फले " अर्थात् अहो आर्य ! संयमसे आश्रव (आते हुवे पाप) का निरूंधन होता है, और तप से पूर्व संचित कर्म का नाश होता है.

प्रश्न-" जातिणं भंत्ते संयमेणं अणण्ह फले तवेणं वोदाण फले, किं पतियणं भंते देवा देवलोए सुववज्जंति " अर्थात्-अहो भगवन्त! जो संयमसे अनाश्रव और तपसे पूर्व कर्मका नाश होता है, तो साधु देवलोक के विषे क्यों उपजते हैं?

१ तवका लिये पुत्र नामे स्थिविर ने उत्तर दिया कि-" पुव्व तवेणं अज्जो देवा देव लोए सु उवज्जंति " अर्थात् अहो आर्य ! पूर्व तप (सराग) के प्रभाव से साधू देवलोक में जाते हैं.

२ तव महील नामे स्थिविर बोलेः-पुव्व संयमेणं अज्जो देवा देवलोए सु उवज्जंति ' अर्थात्—अहो आर्य ! पूर्व संयम (सरागी चारित्र) के प्रभाव से साधु देवलोक में जाते हैं.

३ तव आणंद ऋषि स्थिविर कहने लगेः-" कम्मियाए अज्जे देवा देव लोए सुउववज्जति. अर्थात् अहो आर्य? कर्म बाकी रहने से साधु देवलोक में उपजाते हैं.

४ तव काशव नामे स्थिविर बोले 'संगियाए अज्जो देवा देव लोए सुउववज्जति ' अर्थात् अहो आर्य ! द्रव्यादि विषयके संग कर के साधु देव लोक में उपजते हैं.

(तव जेष्ट स्थिविर भगवंत ने फरमाया कि) अहो आर्य पूर्व तप, पूर्व संयम, कर्म और संग कर के साधु देवलोक में उपजते हैं, ऐसा इन चारों साधुओं का जो कहना है, सो सच्चा है, आत्म

भाव से बनाया हूवा (स्व कपोल कल्पित) नहीं है !

उसवक्त वो श्रावको स्थिविर भगवंत के मुखार विन्द से वचन श्रवण कर हर्ष संतोष पाये, और भी अनेक प्रश्नोतर कर साधुओं को वंदना नमस्कार कर स्वथान गये.

उसवक्त श्रमण भगवन्त श्री महावीर श्वामी राजग्रही नगरी बाहिर गुण सिला नामें बगीचे में पधारे. भगवन्त के जेष्ट शिष्य गौतमश्वामी अनेक उत्तमोतम गुण संपन्न निरंत्र छट २ (बेले २ पारणां करते संयम तप से अपनी आत्मा भावते हुवे विचरते थे, सवक्त बेला के पारणां के दिन पहले पहरमें सज्झायकी दूसरे प में ध्यान धरा, तीसरे पहर में शांत भाव से मुहपती पत्रों और व की प्राति लेखना कर झोली हाथ में ग्रहण कर, भगवन्त के सन्मु आ, स विनय वंदना कर आज्ञा ले इर्या सूमती सोधते राजग्रही न गरी में भिक्षा निमित पारिभ्रमण करते, बहुत जन के मुह से सून कि 'तुंगीये नगरीके पुष्फवती उध्यान में पार्श्वनाथ श्वामी के शि ष्य स्थिवर भगवन्त पधारे उन के दर्शनार्थ श्रावको गये, और उ नोने तप संयमका फल पूछा जावत् चारों साधूओं ने अलग २ ज बाब दिया. इत्यादि श्रवण कर मणेंभ संशय उत्पन्न हुवा. अहार आदि खपती वस्तु ग्रहण कर भगवन्त के पास आगे गमना गमन के पाप से निव्रते आलोचना कर भगवन्त को अहार, पाणी, बताया. और फिर स विनय तुंगीया नगरी की सुनी हुइ सर्व हकीगत निवेदन कर पूछ ने लगे कि अहो भगवान! उन स्थिविर भगवन्त ने श्रावक को प्रश्नोतर दिया सो ज्ञान सूक्त दिया ?

तब भगवन्त ने फरमाया कि अहो गौतम ! जो स्थिविर भग वन्तने उत्तार दिया सो योग्य दिया, ज्ञान कर के युक्त उत्तार दिया

में भी ऐसा ही कहता हुं कि पुर्व तप से पुर्व संयम से, कर्म से, और संग के साधू देव लोक में उपजते हैं. ◉ इति ◉

यह द्रष्टांत मूल सुत्र और अर्थ प्रमाणे इत्ने विस्तारसे लिखने का मेरा मुख्य हेतू यह है कि-यह संपुर्ण कथन इस वक्त में प्रवृत ते हुवे साधू श्रावक जो लक्षमें लें, इस मुजब जो प्रवृती करें, तो सच्ची २ जैन की प्रभावना होवे ! जैसे तीर्थंकरों की वक्त में यह धर्म दीप रहाथा वैसाही अवी भी प्रदिप्त होवे, इस में संशय ही नहीं ! !

अहो साधू जी महाराजो ! और श्रावक गणों ! आँख मिच कर जरा हृदय में इस कथन को अच्छी तरह से विचारीये कि-उन चारों ही स्थिविर भगवन्तने एकही प्रश्न का अलग २ उत्तर दिया, उसे स्याद्वाद शेली के जान गुरू महाराज, श्रावको, और अपना अलग ही पंथ चलाने वाले वीतराग श्री महा वीर परमात्मा ने उस कथन को कवूल किया ! क्योंकि स्याद्वाद सत्यस्वरूप के जान थे, कथन का मतलव तात्पर्य की तरफ उन महात्माओं का लक्ष लगने से वो चारों उत्तरका मुख्य अर्थ एकही समजे थे, इसलिये न उनो चारों कथनियों ने अपना २ पक्ष तान अलग २ सम्प्रदायों करी, और न उन श्रावको ने एकेक का पक्ष धारन कर यह मेरे गुरूजी और यह तेरे गुरूजी! ऐसा द्वेता भाव दर्शाया कि वहुना खुद तीर्थंकर भगवान ने भी उन ही के कथन को कवूल किया ! ये ही स्यादवाद (जैन) पंथका सत्य स्वरूप है, इसही संपके परम प्रताप कर यह समस्त आर्य लाय में अद्वितीय वन रहाथा !

इसी कथन को जो इसवक्त के महात्मा मूनिवरो, और श्रावको ध्यान में ले कर जो निर्जीवी सहज २ वावतो जैसे कि-१कोइ फरमाते हैं, दया में धर्म तो कोइ फरमाते हैं, भगवान की आज्ञा में

धर्म. २ ऐसे ही कोइ फरमाते हैं, आयुष्य सात प्रकार टुटता है, और कोइ फरमाते हैं, आयूष्य नहीं टूटता है, ३ ऐसे ही कोइ फरमाते हैं, श्रावक को छ; कोटि से सामायिक करना, कोइ फरमाते हैं, आठ कोटी से करना. ४ ऐसे ही स्थानक के बाबत, ५ मृतिका वरतन साधूको रखनेके बाबत. वगैरा वगैरा सहज २ बाबतो बदल अलग २ सम्प्रदायों (बाडे) बांध लिये हैं, और हमारी सम्प्रदाय वाले ही सत्य श्रद्धासील (सम्यक्त्वी) हैं, ऐसे तान ही तान में बडा विषवाद बडा रखा है, और वरोक्तादि बातोंकी तरफ जरा दीर्घ द्रष्टी स्याद्वाद शेली कर विचारें तो कुछ भी फरक द्रष्टी नहीं आता है, जैसे भगवन्त हिंशा करने की आज्ञा कदापि नहीं दे सक्ते हैं, इसलिये भगवान की आज्ञा और दया दोनों ही का एकही अर्थ हुवा. २ तैसे निश्चय में तो समय मात्र भी आयुष्य कमी नहीं होता है, और व्यवहारमें सात कारण से आयुष्य टूटता है, तब ही भगवती जी सूत्र के प्रथम शतक के ८ में उदेश में फरमाया है, कि बाणा का मार हुवा छः महीने पहिले मर जाय तो उस मारने वाले को घातिक कहना यों निश्चय व्यवहार की अपेक्षासे दोनों बात एकसी ही हूइ. ३ ऐसे ही श्रावक छः कोटी से सामायिक करो या आठ कोटी से करो उन की इच्छा इस झगडे में साधु को पडने की क्या जरूरत है? क्योंकि साधू तो सर्व नो कोटी से सामायिक ग्रहण करी है. वगैरा विचार से इसवक्त के पढे हुवे प्रायः तमाम झगडे निशार भाप होते , स्याद्वाद शेली ऐसी गंभीर्य है, कि उस के वेता ऐसी खुलक । क्या ? परन्तु कैसी भी विषय वात होवे उसे सम बना शक्ते हैं, जैन जैसे पवित्र सत्य मार्ग में इत ने मातान्तर फटने यह सब स्याद्वदा शेली की अविज्ञताका ही मुख्य कारण है! इस ही वास्ते नम्र अर्ज करने में आती है, कि वरोक्त तुंगीया नगरीमें हुवे बनाव

ा तरफ जरा लक्ष देकर वैसं गंभीर्य वनिये ! सर्व फूटके कारणों का याद्वाद द्रष्टी से विचार कर, सम प्रगामा साम्पेल हो सच्ची प्रभावना कर सच्चे प्रभवाक वनिये जी !

" ज्युंनी और नवी प्रवर्ती "

और इस वक्त भी कितनेक महात्माओं और धर्म प्रेमी ओं धर्म मार्ग की उन्नती करने यथा शक्ति क्षप करते हैं, ज्युने जमाने की दवसे चलते हैं. सो भी ठीक है. जैसे की प्रभावना के नाम से लड्डू वतास आदि मिठाइ बांटते हैं. वरतन बाटते हैं, वगैरा यह रिवाज उसवक्त निकला दिखता है, कि जब धर्म लुप्त हो कर पुनरोद्धार हुवा था, उसवक्त अज्ञ जीवों के मनको आकर्षण कर, धर्म मार्ग मे लगाने के लिये जो युक्ति जेष्ट पुरुषोंने हूंढकर चलाइ है, उसे अपन नष्ट कदापि नहीं कर शक्ते हैं, क्योंकि अवी भी कितनेक स्थान देख ने में आता है, कि लालच से ललचा कर भी व्याख्यान आदि में वहूत प्रषदाका जमाव होता है. और उस मिससे ही धर्म कथा श्र. वण कर वणिक कौम वाले और अन्य को भी जैन धर्म करते हैं; संयम लेते है, और महा प्रभाविक वनते हैं, तथा संसार में रह कर भी धन तन से धर्मोन्नती करते है, और भी ऐसी प्रभावना में कितनेक सीजते स्वधर्मी को, कितनेक गरीब स्थिती को प्राप्त हुवे स्वधर्मी यों को, कितने तपस्वी श्रावक श्राविका को [illegible] वडा सारा लगता है, इस उम्येदसे भी कितनेक धर्म वृद्धि कर [illegible] हैं. और धर्म का गौरव भी दिखता हैं.

परन्तु अवी के जमाने की हवा पलट गइ है, क्योंकि [illegible] से अवी शिक्षा रिवाज वढ गया है, लोकों अंतः [illegible] नेत्रों मे [illegible]

की परिक्षा करने, तत्व ढुंढने लग गये हैं, इसलिये बहुत से क्रिश्चिन आदि अन्य मतावलम्बियोने अपने धर्म की सत्यता दूसरेके हृदयमें ठसाने धर्मका प्रसार करने लक्खें क्रोडो पुस्तकों हेंड बिलों छपवाकर प्रसिद्ध किये है, और कर रहे हैं. जिसमें जिनके मतमें क्रोडो मनुष्य मिलगये हैं, और मिल रहे हैं, इसलिये इस ही व्यवहार को सांचवने की इसवक्त के जैन प्रभावको को बहुत जरूर है, अर्थात् मिठाइ वस्त्र पात्र की प्रभावना से अपन अपना धर्म का तत्व अन्य विद्वानों के हृदय में नहीं ठसा सकेंगे परन्तु अपने अत्युतम पवित्र निकलङ्क धर्म के गहन विषयों के तात्विक बातों कों और जो जो जैन धर्म के कृतव्य कर्म अन्य को विरूद्ध भाष होते हैं, उनको सरल (खुली) भाषा में अनेक देश की भाषा में बनाकर छपवाकर प्रभावना करना अमुल्य देने से ही अपने धर्म को स्थिरकर विश्वव्यापी बना सकें गे इसलिये इसकी बहुतही जरूर हैं.

अहो धर्मेच्छू ओं ! में खात्री पूर्वक कहता हुं कि जैन धर्म जैसा पवित्र धर्म इस विश्वमें दूसरा है ही नहीं इसकी सत्यता के लिये दे-खीये जैन धर्म के थोडे शास्त्रों पश्चिमात्य विद्वानों के हाथ लगें हैं. जिससे हरमन जेकोबी जैसें वडे २ विद्वानों एक अवाज से परसंस्या करने लगे हैं, और थोडे ही ज्ञान से वो जैन के ऐसे सोकीन बन गये हैं कि जो जैन की मूल भाषा, जैन के शास्त्रोंके मूल में वापरी हुइ कि जो अर्ध मागधी नाम से बोली जाती है, उस भाषाका उनोंने इतना जबर ज्ञान रहस्य पूर्वक प्राप्त कर लिया है, कि वैसा जैनी इस आर्या में विरलाही मिलेगा और इसी सबब से अपने जैन धर्मी कि जिनके घर में पुर्व परंपरासे कोश्यान वर्षोंसे जैन धर्म चला आता है जो जैन के पण्डित राज महाराज धीराज बजते हैं, वो भी जैन

शास्त्रों को छपाकर प्रसिद्ध करने में शरमाते थे, कि कंही भुल रह
जायगी तो हँसी होगी, वगैरा कारणों से. और पाश्चिमात्य विद्वानो
की खातरी होगइ कि वह अपने से भी अधिक हैं, तव उन के पास
शुद्ध करा कर दशवैकालिक उत्तराध्ययनजी वगैरा शास्त्र छपवाये
हुये द्रष्टी गौचर होते हैं, और उनकी प्रस्तावना में ही वरोक्त वात
सिद्ध करते हैं! अहो शरम, अति शरम, जैनी यों ! अवभी सं-
भलो. और तुमारे पूर्वजों का, नहीं तो तुमारे सन्मुख ही प्रवीन हुवे
कि थोडे काल पहले जिनको तुम अनार्य आदी शब्दो से सवोधन
करते थे. और उनही के पास तुमारे गुरूओं की वत्ती हुइ विद्याका
सुधारा कराते हो, तो आप अव उन ही का अनुकरण करो! और जैन
धर्म के सचे ज्ञान के शौकीन वनो ! और मेरी उपर की हुइ सुचना
की तरफ जरा गौर फरमाकर, मिठाइ आदि की प्रभावना से, धर्म
ज्ञान के पुस्तको को ही सची प्रभावना समज. अपनी २ शक्ति प्र-
माणे, विद्वानों को सहायता दे, यथा योग्य साता उपजा कर, गुप्त
रहा हुवा और प्रसिद्ध में आया हुवा जैन धर्म के ज्ञान का सर्व दे-
शकी भाषा ओं में भाषांतर करा कर, और उसकी लाखों प्रतों छपवा
कर, सर्व देशमें अमुल्य भेट देना सुरु करो ! फिर थोडे ही वर्षों में
देखो कि जैन कैसा पवित्र धर्म है, और सची प्रभावना इस ही को
कहते हैं.

और दूसरी रूढी जो इसवक्त एक धर्म की अनेक सम्प्रदायों
द्रष्टी आती है, सो भी योग्यही वृद्ध पुरुषों ने स्थापन करी है, क्यों
कि सव अपनी २ सम्प्रदाय व गच्छ की उन्नती के लिये तन करते
हैं, मन, तन, धन, कर अपने २ गच्छ को दीपाते हैं, जिस गच्छा
धिपती जो आचार्य हैं, वो अपने २ गच्छ की नगवना—रखन्या कर

शरीर कायम रहकर चलता है, अर्थात् पांव सब शरीर का वजन उठाकर इच्छित स्थान पहोंचाते हैं. हाथ वस्तु को तैयार कर भोगोपभोग मे लगाते हैं. कान सुनने में. आँख देखने में, दाँत चाव नेमें, पेट संग्रह कर रस पचन करने मे, और नशों सर्व स्थान रस पहोंचाने में वगैरा सहायता करते हैं. तवही यह शरीर चलता है. जो यह अङ्गोपांग इर्षा लावे कि हमे क्या गरज सर्व शरीर का वजन उठाये फिरें, जो हाथ को पेट को गर्ज होगी तो वो अपना २ काम कर लेंगे, वगैरा. इस विचार से जो सर्व अंगोपाग अपना २ काम छोड बैटे तो फिर देखीये इस शरीर की थोडे दिनों में कैसी बुरी हालत होती है. तैसेहो जो जैन की भीन्न २ सम्प्रदायों हैं वो जो एकेक की गर्ज नहीं रखेंगे, तो यह धर्म भी विशेष काल चलनेकी उम्मेद नहीं समजीये. इस द्रष्टांत को अच्छी तरह विचारीये !

अव जरा पीछे निगाह कर देखिये ! दो वक्त वारह २ वर्षके जवर दुष्काल पडे, जिससे इस भारत भूमि में से जैन धर्म प्रायः नष्ट जैसा ही होगया था, उसका पुनरोद्धार श्रावक शिरोमणी लोंका जी और मुनिमौलीमणी श्रीलवजी ऋपिजी महाराजने फक्त ४-५ साधुओं के सहाय से तह मनसे पर्यत्न किया, अन्य मतावलम्बीयों ने श्रीलवजी ऋपिजीके शिष्यों को शस्त्रसे जहर मारडाले, और उनही के धर्म स्थानमें गाड दिये, और भी मार ताड वगैरा अनेक प्रकारके परिसह उपजाये तो निंदा की तो कहनाही क्या ? परन्तु वो महात्माओं उसकी दरकार नहीं रखते, फक्त अपने इष्टी तार्थ सिद्ध के उपाय में लग रहे तो उन के लक्खों अनुयायी यों वृतमान काल में हाजिर हैं, और इसवक्त के महात्मा ओं और श्रावको एकेक संप्रदाय में सेंकडों हजारों की संख्यासे हायती वंत हो कर भी सम्प्रदाय तो दूर रही, परन्तु अपने शिष्यों को और अपने कूटम्बको ही अपने

धर्म में स्थिर नहीं रख शक्ते हैं, तो औरों को सुधार कर धर्म में लगाने की तो आसा ही आकाश कुसुम वत है. हाय ! ह आपसोस ! आपसोस !! आपसोस !!!

"अब भी चतो !!"

अहो जैन उन्नती के हिमाती ओं ? प्रभाविको ! वरोक्त को जरा ध्यान में ले धर्म कंद कूदाल कु-सम्प इर्षा इसका जड से नाश करो. यह सम्प्रदायों के झगडे, मेरे तेरे साधू श्रावको के क्षेत्रों का पक्ष रूप जेहर के अंकूर को हृदय से उखाड कर को, और वर्तमान जमाने के वर्तमाव में अनुकूल प्रवर्ती होवे धारन करो. सब श्री महावीर पिताजी के पुत्रों एक मंडल पे भुक्ता बनों. अन्य सब प्रयास का त्याग कर अपने शिष्यों और वो के स्वरक्षण के उपाव में कटिबध हो. है जितने कोही कायम द्रढ श्रधालु सच्चे प्रेमी. और स शक्तों को प्रभावक बनावो. और अपने परम पावित्र एकांत दया मय धर्म को बोंध धर्म की म अद्वितीये सर्व भारत वासी बनावों ! येही मेंरी अंतःकरणी अ उत्कंठा है, सो अहो गुरू महाराजा ओं ! अहो बंधप गणों ! श्रावको ! और अहो सम्यक् द्रष्टी यों ! शिघ्र पूर्ण करो ! शिघ्र करो !! बहुतही जल्दी से पूर्ण करो !!!

तथास्तु ! तथास्तु !!

ऐसी तरह जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव के अनुसार अनुकूल शक्त तह मन तहचित से प्रवृत कर प्रवृताकर जो श्री जिने धर्म की प्रभावना करते हैं, वो महान् पुरूषों सतीयों कृष्ण वा श्रेणिक महाराज. देवकीजी सुलसाजी आदि का तरह तिर्थंकर की उपार्जन कर परमातम पदको प्राप्त कर अजराम मर अव्याबाध नंत अक्षय शाश्वत सुख को प्राप्त कर. परमानन्दी परम सुखी होते

"उप संहार"

यह वीसही वोल तीर्थंकर गौत्र उपार्जन करने के,-परमात्मा पद प्राप्त करने के,-श्रीज्ञानाता धर्म कथांग सूत्रके ९ में अध्यायमें खुद श्री महावीर परमात्मा ने अपने मुखार विन्द से फरमाये और श्री गणधर महाराजने कथन किये, तदनुसार उनही की परमोत्म वाणी के अधार से मेरी अल्पज्ञता प्रमाणे वृतमान कालको अनुसर अन्या अनेक शास्त्रों व ग्रन्थो के आश्रय से विस्तार कर निजात्म और परात्म परमात्मा पद प्राप्त करने सामर्थ्य वने इस हेतु से इसही विचार से इस परमात्म प्राप्ती नामक ग्रन्थ की रचना रची गइ है. इसमें जो कोइ सम्मास व शब्द मात्र भी जिनाज्ञा विरुद्ध कथा या होतो अनंत ज्ञाकी और निजात्मा की साक्षी से मैं 'तस्स मिच्छामी दुक्कडं' देताहूं, और गीतार्थों विद्वानों से नम्र अर्ज करता हूं कि मेरे आशय पर लक्ष दे, मेरी सर्व भूलों को माफ कर इसकी शुद्धि वृद्धि कर, यह सर्व मुमुक्षों ओं के मनार्थ पूर्ण करने वाला हो एसी वनाइये. और पाठक गणों! श्रोतागणो! परमात्म पद प्राप्त कर परमानन्दी परम सुखी वनिये!!

ॐ शांती! शांती : शांती ??

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के महंत मुनिराज श्री खुवाऋषि जी महाराजके शिष्य आर्य मुनिवर श्री चेना ऋषिजी महाराज के शिष्य वाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी रचित "परमात्म मार्ग दर्शक" ग्रन्थका "जैन मार्ग प्रभावना-नामक एकीसवा प्रकरण समाप्त.

और:—

"परमात्म मार्ग दर्शक" ग्रन्थ

समाप्तम्.